दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ॥ सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः ॥ " इति मनूक्तेः । तत्रैव वासिष्ठः–' न त्वकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा, न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ' इति । इदं च भर्तृसत्त्वे ॥ अन्यथा–'दद्यान्माता पिता वायं स पुत्रो दत्त्रिमः स्मृतः ' इति वत्सव्यासवचोविरोधः स्यात् ॥ दानं प्रतिग्रहोपलक्षणम् ॥ यत्तु समन्त्रकहोमस्य पुत्रप्रतिग्रहाङ्गत्वात् । व्याहृत्यादिमन्त्रपाठे च स्त्रीशूद्रयोरनधिकारात् । तयोर्दत्तकपुत्रो न भवत्येवेति शुद्धिविवेके रुद्रधरेणोक्तम् ॥ वाचस्पतिश्चैवमेवाह । तन्न । भर्तुरनुज्ञया स्त्रिया अपि प्रतिग्रहोक्तेः ॥ यद्यपि मेधातिथिना भार्यात्ववददृष्टरूपं दत्तकत्वं होमसाध्यमुक्तम् । स्त्रियाश्च होमासंभवस्तथापि व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादि कारयेदिति हरिनाथादयः । संबन्धतत्त्वेप्येवम् ॥ एवं शूद्रस्यापि ॥ ' स्त्रीशूद्रस्य सधर्माणम् ' इति स्मृतेः ॥ अत एव शूद्रकर्तृकहोमो विप्रद्वारैव पराशरेणोक्तेः ॥ "दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः । ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ " अत्र माधवाचार्यः–' यो विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय तदीयं हविः शान्तिपुष्ट्यादिसिद्धये वैदिकैर्मन्त्रैर्जुहोति तस्य विप्रस्यैव दोषः । शूद्रस्तु होमफलं लभेतैवेति व्याचचक्षे ' ॥ दत्तके विशेषः कालिकापुराणे–"पितुर्गोत्रेण यः

पुत्रको आपत्तिके समय जलपूर्वक दें वही अपना सजातीय और प्रीतिका पात्र होताहै ॥ वहांही वसिष्ठने लिखाहै कि, जिसके एकही पुत्र हो वह न एक पुत्रको दे. न ले, और भर्ताकी आज्ञा बिना न स्त्री पुत्र दे और न ले, यह बातभी तब है जब पति विद्यमान हो अन्यथा इस वत्स और व्यासके वाक्यका विरोध होगा कि, माता वा पिता जिसको दे वही दत्तक पुत्र होताहै इस वाक्यमें दान, प्रतिग्रहका भी उपलक्षण कहाहै, जो रुद्रधरने शुद्धिविवेकमें यह लिखा है कि, मन्त्रसहित हवन पुत्र लेनेका अंग है, और व्याहृतिआदि मन्त्र पढनेमें स्त्री और शूद्रका अधिकार नहीं है, उनका, दत्तकपुत्र ही न होगा, और वाचस्पतिने भी यही लिखाहै, ठीक नहीं कारण कि, स्वामीकी आज्ञासे स्त्रीको भी प्रतिग्रह करना लिखाहै यद्यपि मेधातिथिने भार्यात्व: (पत्नीपना) के तुल्य अदृष्टरूप दत्तकत्व (दत्तकपना) हवनसाध्य लिखाहै और स्त्रीको हवन करना असंभव है तथापि व्रतआदिके तुल्य ब्राह्मणके द्वारा स्त्रीको हवन आदि करना चाहिये यह हारनाथ आदिका कथन है, और सम्बन्धतत्त्वम भी इसी प्रकार लिखाहै ॥ इसी प्रकार शूद्रकोभी जानना कारण कि, यह स्मृति हैं कि, स्त्री और शूद्र तुल्यधर्मवाले होतेहैं, इसीसे शूद्रको ब्राह्मणके द्वाराही होम करना चाहिये कि, जो ब्राह्मण दक्षिणाके निमित्त शूद्रकी हविको होमताहै, वह ब्राह्मण शूद्र होताहै, और शूद्र ब्राह्मण होताहै, इसमें माधवाचार्यका यह कथन है कि, जो ब्राह्मण शूद्रकी दक्षिणा लेकर शूद्रकी हविको शान्तिपुष्टि आदिके निमित्त वेदके मन्त्रोंसे होमताहै उस ब्राह्मणकोही दोष है, शूद्रको तो हवनका फल मिलताही है ॥ दत्तकमें विशेष

पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते । आचूडान्तं न पुत्रः स पुत्रतां याति चान्यतः ॥ चूडोपनयसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥ ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्वर्षान्न दत्ताद्याः सुता नृप । गृहीत्वा पञ्चवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत् ॥ पंचमोर्ध्वं स्वदानेच्छोरेव दानं न चान्यथा । विक्रयं चैव दानं च न नेयाः स्युरनिच्छवः ॥ दाराः पुत्राश्च सर्वस्वमात्मनैव तु योजयेत् ॥ ॥ ९ ॥ " इति हेमाद्रिमाधवधृतव्यासदक्षादिवचनात् ॥ यच्च याज्ञवल्क्यः ॥ 'स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते ' इति ॥ तदूर्ध्वं स्वदानानिच्छुपुत्रपरम् ॥ तेन सर्वस्वदाने स्वदानेच्छुदारपुत्रदानं सिद्धम् ॥ यत्त विश्वजिदधिकरणे षष्ठे । तत्र पुत्रादीनां ज्ञातित्वेन स्वशब्दवाच्यत्वात् पुत्रत्वेन दानाशंका निराकृता ॥ जन्यपुंस्त्वस्य दानेनानिष्पत्तेः । दासत्वेन दानं भवत्येव । तस्माद्यथेष्टविनियोगार्हत्वं स्वत्वं भवत्येव ॥ पुत्र स्वत्वाभावं वदन् पुत्रक्रयविक्रयादिशुनःशेफविक्रयादिश्रौतलिङ्गाद्दासक्रयविक्रयादिव्यवहारायोगान्मूर्ख एव ॥ ' यो नहिग्रभायारणः सुशेवोन्योदर्योमनसामंतवाउ' इति श्रुतौ दत्तकनिषेधः ॥ सोप्यौरसातिशयार्थः ॥

कालिकापुराणमें कहा है कि, हे राजन् ! जिस पुत्रका पिताके गोत्रसे संस्कार हुआ है, वह मुण्डनपर्यन्त औरका पुत्र नहीं होसकता जिसका मुण्डनसंस्कार अपने गोत्रसे किया हो वे दत्तक आदि पुत्र होसक्ते हैं, अन्यथा दास होतेहैं, हे राजन् ! पंचमवर्षके उपरान्त दत्तक आदि पुत्र नहीं होसक्ते, पांचवर्षके पुत्रको ग्रहण करके प्रथम पुत्रेष्टि करे, पांच वर्षके उपरान्त तो वही देसकता है जिसको देनेका इच्छा हो और नहीं कारण कि, हेमाद्रि और माधवमें व्यास और दक्षके ये कथन हैं कि, बेंचना और देना विना अपनी इच्छाके नहीं करसकते स्त्री पुत्र और सर्वस्व इन सबको आपही दे ॥ जो याज्ञवल्क्यने यह लिखाहै कि, अपने कुटुम्बकी प्रसन्नतासे स्त्री और पुत्रको त्याग करदे, यह वाक्य उस पुत्रक निमित्त है जो अपने दानकी इच्छा करता हो और जिसका संस्कार हो उससे सर्वस्वदानकी अभिलाषावालोंको स्त्री और पुत्रका दान सिद्ध हुआ जानना, जो विश्वजितके छठे अधिकरणमें पुत्र आदिकोंको भी जाति होनेसे स्वशब्दका अर्थ हैइससे पुत्रके देनेकी आशंका करके उसका निराकरण लिखा है कारण कि, उसमें जन्य पुरुषपनोंके दानकी सिद्धि नहीं, अर्थात् वह जिसको प्रदान कियां जाय उसका जन्य नहीं होसकता, दासरूपसे दान होसकताहै, पुत्रमें स्वत्वके अभावको वर्णन करते और पुत्रके क्रय विक्रय आदि और शुनःशेफके क्रय विक्रय आदि मन्त्रके प्रमाणसे दास और क्रय विक्रय आदि व्यवहारका योग नहीं है, इससे वह मूर्ख है, 'नहिग्रभायारणः' जो इस मंत्रमें दत्तक पुत्र लेनेका निषेध है वहभी औरसपुत्रकी

१ नहिग्रभायारणः सशेवोन्योदर्यो मनसामन्तवाउ ॥ अधाचिदोकः पुनरित्सएत्यानोवाज्यभीषालेतुनव्यः ऋ० मं० ५ । ३ । ६ । ८

अन्यथा शुनःशेफादिप्रतिग्रहश्रौतलिंगविरोधापत्तेः । ' उपेयां तव पुत्रताम् ' इत्युक्तेः ॥ इदं च श्रौतलिङ्गं स्वयं दत्तक्रीतपरम् । न दत्तकपरम् ॥ द्वादशविधपुत्रमध्ये-'दत्तात्मा तु स्वयंदत्तः ' । ' क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः' इति याज्ञवल्क्येन तयोर्दत्तकाद्भेदोक्तेः ॥ तयोश्च-'दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ' इति कलौ निषेधात्तेन संस्कारोत्तरं स्वयं क्रीतो न भवति ॥ तदुत्तरं दत्तको न भवत्येवेति सिद्धम् ॥ यमलसंस्कारे ज्येष्ठकनिष्ठत्वम् । अथ यमलयोः संस्कारक्रमार्थं ज्येष्ठकनिष्ठभाव उच्यते ॥ मनु-"पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः । कथं तयोर्विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ सदृशः स्त्रीप्रजातानां पुत्राणामविशेषतः । न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥२॥" तेन कनिष्ठायां पूर्वजात एव ज्येष्ठो न ज्येष्ठायां पश्चाज्जात इत्यर्थः ॥ स एव श्राद्धाधिकारी ॥ ", जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् । यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता ॥ " देवलः-"यस्य जातस्य यमयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम् । संतानः पितरश्चैव तस्मिञ्ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम् ॥" भागवते तु ' द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिवेशविपर्ययात्' इत्युक्तेः

उत्तमताके निमित्त है ऐसा न माननेसे शुनःशेफ आदिके लेनेमें वेदके प्रमाणका विरोध होगा कारण कि, मन्त्रोंमें यह कथन है कि, मैं तेरा पुत्र हूंगा यह मन्त्रका प्रमाणभी स्वयंदत्त और क्रीतके विषयमें समझना चाहिये, दूसरेके विषयमें नहीं, कारण कि, याज्ञवल्क्यने वे दोनों द्वादश प्रकारके पुत्रोंमें उस दत्तकसे भिन्न लिखेहैं कि, जिसने अपनी आत्मा स्वयं देदीहो, वह स्वयंदत्त और जिसे मातापिताने वेचाहो वह क्रीत इन दोनोंको कलियुगमें इस वाक्यसे निषेध कहा है कि, दत्तक औरससे पृथक् कलियुगमें पुत्र नहीं होसक्ते ॥ अब यमों (एकसाथ उत्पन्न हुओं) का संस्कारोंके क्रमार्थ वर्णन करते हैं मनुने कहाहै कि, यदि जेठी पत्नीका पुत्र छोटा हो और छोटीका बडा हो तो उनका विभाग किस प्रकार हो इस सन्देहमें सदृश स्त्रियोंमें उत्पन्न हुये पुत्रोंमें विशेषके अभावसे मातासे ज्येष्ठता नहीं है जन्मसे ज्येष्ठता है, अर्थात् वही ज्येष्ठ है जो प्रथम उत्पन्न हुआ हो तिससे कनिष्ठा (छोटी) में प्रथम हुआही ज्येष्ठ है, और बडी भार्यामें पीछे उत्पन्न हुआ बडा नहीं और श्राद्धमें भी वही ज्येष्ठ अधिकारी है, जन्मसे जो जेठा हो उसेही बुलाना सुब्रह्मण्याओंमें भी लिखा है यमोंके गर्भमें भी वही बडा है जिसका जन्म पहिले हुआहो देवलने कहा है कि, यमोंमें जिस उत्पन्न हुएका मुख पिता और पितर प्रथम देखैं उसमेंही ज्येष्ठता होती है भागवतमें तो यह कहा है कि, वीर्य सींचनेके समय जब दो प्रकारसे वीर्य होता है, तब दो गर्भ होतेहैं, और वीर्यप्रवेशसे विपरीत जन्म होता है, अर्थात् जो गर्भमें प्रथम जाता है वह पीछे जो पीछे जाता है वह प्रथम

पश्चादुत्पन्नस्य ज्यैष्ठ्यमुक्तम् ॥ अत्र देशाचारतो व्यवस्था । पूर्वमेव तु युक्तं गर्भाष्टम इत्यादौ विशेषनिर्देशे एव गर्भग्रहणं नान्यत्र ॥ अन्यथा तद्वैयर्थ्यात् ॥ सूतिकास्नानम् । अथ सूतिकास्नानम् ॥ ज्योतिषे—" करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रेन्दवाश्विध्रुवभेह्नि पुंसाम् । तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनीन्द्राः ॥" नामकर्म । अथ नामकर्म ॥ मदनरत्ने बृहस्पतिः— "द्वादशे दशमे वापि जन्मतोपि त्रयोदशे । षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात् ॥" याज्ञवल्क्यः—'अहन्येकादशे नाम । ' हेमाद्रौ भविष्ये—"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां मासि केचन । अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये मनीषिणः ॥ " दशम्यामतीतायामिति ज्ञेयम् ॥ ' आशौचापगमे नामधेयम् ' इति विष्णूक्तेः ॥ गृह्यपरिशिष्टेपि—'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम् । ' व्युष्टेऽतीते ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—'अमासंक्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत् ॥ ' श्रीधरः—"मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीधनिष्ठाच्युतप्राजेशाश्विशशाङ्कपौष्णदिनकृत्पुष्येषु राशौ स्थिरे । छिद्रां पञ्चदशीं विहाय नवमीं शुद्धेष्टमे भार्गवज्ञा-

---

उत्पन्न होता है, इससे पीछे उत्पन्न हुआही ज्येष्ठ कहा है, इसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये, पहिले यह कथन है कि, गर्भसे आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करै, इत्यादि वाक्योंमें जहां विशेषका निर्देश है वहांही गर्भका ग्रहण है और स्थानमें नहीं अन्यथा गर्भपद वृथा है ॥ अब सूतिकाका स्नान लिखते हैं, ज्योतिषमें कहा है कि, हस्त ज्येष्ठा पूर्वाफाल्गुनी स्वाती धनिष्ठा रेवती अनुराधा मृगशिर अश्विनी ध्रुवनक्षत्रोंमें और रिक्ताभिन्न तिथिको मुनियोंने पुरुषोंके निमित्त प्रसूता स्त्रियोंकी स्नानविधि शुभ लिखी हैं ॥ अब नामकर्म मदनरत्नमें बृहस्पतिने लिखा है कि, बारह वा दशवें दिन ब्राह्मणका और जन्मसे तेरहवें दिन क्षत्रियका, सोलह वा वीसवें दिन वैश्यका, तीसवें दिन शूद्रका नामकर्म करै, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, ग्यारहवें दिन नामकरण करै, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, दशवें द्वादश दिन महीना इनमें किसीमें नाम रखना कहतेहैं और अन्यतो बुद्धिमान् अठारहवें दिन कहते हैं यहां दशमीके वीतनेपर समझना चाहिये, कारण अशौचके वीतनेपर नामकरण करै यह विष्णुने लिखाहै, गृह्यपरिशिष्टमें भी कहा है कि जन्ममें दशरात वीतनेपर शत १०० रातमें वा वर्ष दिनमें नामकरण करै, ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने लिखा है कि, अमावास्या संक्रान्ति भद्राआदिमें समय आनेपरभी न करै, श्रीधरने कहा कि, अनुराधा पुनर्वसु मघा तीना उत्तरा शतभिषा स्वाती धनिष्ठा श्रवण रोहिणी अश्विनी मृगशिर रेवती हस्त पुष्य इन नक्षत्रोंमें और स्थिर[1]राशी लग्नमें, छिद्रा पंचदशी (३०, १५) नवमी इनको त्यागकर जब अष्टम भवन शुद्ध हो, शुक्र बुध बृहस्पति ये वार हों और अमृतनाम दिन होयतो बालकका नाम धरै॥

---

१ वृष सिंह वृश्चिक कुम्भ यह स्थिर राशि हैं ॥

-चार्यामृतपादभागदिवसे नामानि कुर्याच्छिशोः ॥" मनुः-"शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु । वैशस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥ " मदनरत्ने नारदीये-"सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् । नामपूर्वं तु मासस्य मङ्गलं सुसमाक्षरैः ॥" तत्रैव गार्ग्यः-'मासनाम गुरोर्नाम दद्याद्बालस्य वै पिता।' स्मृतिसंग्रहे-"कृष्णोऽनन्तोच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः । उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ॥ योगीशः पुंडरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ॥" अत्र मार्गशीर्षादिश्चैत्रादिर्वा क्रम इति मदनरत्ने-" तन्मासनाम प्रथमं दद्यात्संबुध्य चैव हि। देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥ सर्वापणानां पुण्यानां चिह्नार्थं योषितां नृणाम् । काव्यानां च कवीनां च पश्वादीनां च सर्वशः ॥ राजप्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते ॥ २ ॥ " नाक्षत्रमपि नाम कार्यम् ॥ ' अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामौपनयात् ' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ ' कुलदेवतानाक्षत्रसंबद्धं पिता नाम कुर्यात् ' इति मदनरत्ने शंखोक्तेः ॥ तच्च नक्षत्रपादाक्षराद्याक्षरं कुर्यादित्युक्तं परिशिष्टे-' तदक्षरादिकं नाम यस्मिन्धिष्ण्ये यदक्षरम् ' इति ॥ सुदर्शनभाष्ये तु-" रोरेममृज्येविषु वृद्धिरादौ छान्त्ये च वान्त्ये श्रवशाश्व-

---

मनुने कहा है कि ब्राह्मणका नाम शर्मांत क्षत्रियका वर्मांत और वैश्यका धनसंयुक्त शूद्रका प्रेष्य (दास आदि) से युक्त रखना चाहिये मदनरत्नमें नारदने कहा है कि सूतकके पीछेमें अपने कुलके उचित नामकरण करै और सम अक्षरोंसे ऐसा नाम रक्खै जिसमें पूर्वमंगलरूप महीनेका नाम आवे वहांही गार्ग्यनेभी कहा है कि पिता बालकका नाम महीने वा गुरुके नामसे रक्खै कृष्ण अनन्त अच्युत चक्री वैकुण्ठ जनार्दन उपेन्द्र यज्ञपुरुष वासुदेव हरि योगीश पुंडरीकाक्ष ये क्रमसे महीनोंके नाम हैं यहां मार्गशिर वा चैत्रसे क्रम लेना चाहिये यह मदनरत्नमें लिखा है उस महीनेका नाम प्रथम सम्बोधनसे दे देवमंदिर हाथी घोडे वृक्ष वापी कूप सब दुकानके बेचनेयोग्य चिह्न स्त्री और पुरुष काव्य कवि पशु आदि राजाके राजमहल घरके चिह्नके लिये नामकरण करना लिखा है ॥ नक्षत्रसे भी नाम करना कारण कि आश्वलायनने यह कहा है कि नमस्कार करने योग्य नाम देखै (रक्खै) उस विद्याके नामको उपनयन आदिमें माता पिता जानें और मदनरत्नमें शंखने: लिखा है कि कुलदेवता महीना नक्षत्र इनसे संयुक्त नाम पिता रक्खै, वह नक्षत्रका नाम ऐसा हो जिसमें नक्षत्रके पादका अक्षर आदिमें संयुक्त हो यह परिशिष्टमें कहा है, जिस नक्षत्रमें जो अक्षर आदिमें हो वही अक्षर नामके आदिमें हो, सुदर्शनभाष्यमें तो यह लिखाहै कि, रोहिणी रेवती मघा मृगशिर ज्येष्ठा विशाखा इनमें उत्पन्न हुएका नाम ऐसा रक्खै जिसकी आदिमें वृद्धि हो, और जिस

त्सुक्षु । शेषेषु नाम्नां कपरः स्वरोन्त्यः स्वाप्वोरदीर्घः सविसर्ग इष्टः ॥ " इत्युक्तम् ॥ ष्ठान्त्येति प्रौष्ठपदेत्यत्रादौ ष्ठात्परे च वृद्धिः प्रौष्ठपाद इति ॥ अन्त्यमपभरणीशब्दः श्रुतावुक्तः ॥ तत्र श्रवणादौ च वारिवृद्धिः अपभरण आपभरण इत्यादि ॥ मदनरत्ने वसिष्ठः–" जन्माहे द्वादशाहे वा दशाहे वा विशेषतः । उत्तरारेवतीहस्तमूलपुष्याः सवारुणाः ॥ श्रवणादिति मैत्रं च स्वातीमृगशिरस्तथा । प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्ता नामकर्मणि ॥ २ ॥" अथ दोलारोहः । पारिजाते बृहस्पतिः–" दोलारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेपि वा । षोडशे दिवसे वापि द्वाविंशे दिवसेपि वा ॥ " ज्योतिर्निबन्धे–" करत्रये वैष्णवरेवतीषु दितिद्वये वाश्विनकध्रुवेषु । कुर्याच्छिशूनां नृपतेश्च तद्वदान्दोलनं वै सुखिनो भवन्ति॥" तत्रैव–" आन्दोलाशयने पुंसो द्वादशो दिवसः शुभः । त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा ॥ अन्यस्मिन् दिवसे चेत्स्यात्तिर्यगास्ये प्रशस्यते ॥ " अथ दुग्धपानम् । नृसिंहः–" एकत्रिंशदिने चैव पयः शंखेन पाययेत् । अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयरात्रिषु ॥ " अथ कर्णवेधः । मदनरत्ने वसिष्ठश्रीधरौ–" मासे षष्ठे सप्तमे वाष्टमे वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशेह्नि । मध्येनाह्नः पूर्वभागे न रात्रौ नक्षत्रं द्वे द्वे तिथी वर्जयित्वा ॥ " अत्र जन्ममासो वर्ज्यः ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः–

नक्षत्रमें हो उससे आगे वृद्धि हो और भरणी श्रवणअश्विनीमें विकल्प करके वृद्धि हो, और शेष नक्षत्रोंमें ख आदिमें जिनकी ऐसे नामियों (अकारभिन्नस्वर) से परे अन्त्यका स्वर इसी प्रकार होता है जिससे परे ककार हो और जो दीर्घ न हो, और जिसमें विसर्ग हो, जैसे प्रौष्ठपदमें प्रौष्ठपाद अन्त्यशब्दसे भरणी ग्रहण करै, यह श्रुतिमें कहाहै मदनरत्नमें वसिष्ठने लिखाहै कि, जन्मसे बारहवें दशवें दिन नामकरणमें उत्तरा, रेवती, हस्त, मूल, पुष्य, शतभिषा, श्रवण, पुनर्वसु, अनुराधा, स्वाती, मृगशिर, रोहिणी, धनिष्ठा, यह नक्षत्र उत्तम हैं ॥ अब दोलारोहको लिखते हैं, पारिजातमें बृहस्पतिने भी लिखाहै कि, दशवें वा बारहवें वा सोलहवें वा, बाईसवें दिन बालकको पालनेमें बैठावे, ज्योतिर्निबंधमें कहाहै कि, हस्तसे तीन श्रवण और रेवती पुनर्वसु पुष्य अश्विनी ध्रुवसंज्ञक योगमें बालक और राजाको पालनेमें झुलानेसे सुखी होतेहैं, वहांही कहाहै कि, आंदोलनमें लडकोंको बारहवां और कन्याओंका तेरहवां दिन उत्तम है, इसमें नक्षत्रका विचार नहीं करना अन्यदिनमें करै तो उस नक्षत्रमें करै जो तिर्यङ्मुख हो, वह अच्छा है ॥ अब दुग्धपानमुहूर्त्त, कहते हैं, नृसिंहने कहाहै कि,, ३१ वें दिन बालकको शंखसे दूध अन्नप्राशनके नक्षत्र और दिनमें वा उदयकी रात्रिमें प्रान:करावै ॥ अब कर्णवेध कहते हैं ॥ मदनरत्नमें वसिष्ठ और श्रीधरने लिखाहै कि, छठे सातवं मासमें बाहरवें सोलहवें दिन कान बींधने, दिनके मध्यमें और रात्रिमें कर्णछेदन न करै दो नक्षत्र और दो तिथियोंको त्यागदे इसमें जन्मके मासको वर्जदे, कारण कि, ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहाहै, कि, छठे

" मासे षष्ठे सप्तमे वाप्यष्टमे मासि वत्सरे । कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये ॥ " मदनरत्ने–" प्रथमे सप्तमे मासि अष्टमे दशमेऽथ वा । द्वादशे च तथा कुर्यात्कर्णवेधं शुभावहम् ॥ " हेमाद्रौ व्यासः–" कार्त्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेपि वा । कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ " श्रीधरः–"हरिहयकरचित्रासौम्यपौष्णोत्तरायादितिवसुषु घटालीसिंहवर्ज्ये सुलग्ने । शशिगुरुबुधकाव्यानां दिने पर्वरिक्तारहिततिथिषु शुद्धे नैधने कर्णवेधः ॥ " मदनरत्ने बृहस्पतिः–"द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी ॥ द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने ॥ सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः । शूद्रस्य चायसी सूची मध्यमाष्टांगुलात्मिका ॥ २ ॥ " हेमाद्रौ देवलः–" कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः । तद्दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः ॥ " शंखः–" अंगुष्ठमात्रसुषिरौ कर्णौ न भवतो यदि । तस्मै श्राद्धं न दातव्यं दत्तं चेदासुरं भवेत् ॥ " ताम्बूलभक्षणम् । चण्डेश्वरः–"सार्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं प्रथमं शिशोः । कर्पूरादिकसंमिश्रं विलासाय हिताय च ॥ मूलार्कचित्रकरतिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णे तथा मृगशिरोदितिवासवेषु । अर्केन्दुजीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलभक्षणविधिर्मुनिभिः प्रदिष्टः ॥" अथ निष्क्रमणम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे–'तृतीये वा चतुर्थे वा

सातवें महीनेमें वा वर्षदिनमें कर्णवेधकी बडाई करते हैं, कारण कि, वह पुष्टि आयु लक्ष्मीके बढानेवाला होता है, मदनरत्नमें कहा है कि, प्रथम सातवें आठवें दशवें बारहवें महीनेमें शुभदायक कर्णवेध करै, हेमाद्रिमें व्यासने कहा है कि, कार्तिक पौष चैत्र फाल्गुनके शुक्लपक्ष और शुभदिनमें कर्णवेध करना उत्तम है, श्रीधरने कहा है कि, श्रवण आर्द्रा हस्त चित्रा मृगशिर रेवती पुष्य पुनर्वसु धनिष्ठामें और कुम्भ सिंह वृश्चिकसे भिन्न लग्नमें चन्द्र बृहस्पति बुध शुक्रके दिनमें पर्वरिक्तासे भिन्न तिथिमें, और आठवें घर शून्यवाली लग्नमें कर्णवेध करै, मदनरत्नमें बृहस्पतिने कहा है कि, द्वितीया दशमी छठी सप्तमी त्रयोदशी द्वादशी पंचमी तृतीया कर्णवेधमें उत्तम है, राजाकी सोनेकी, ब्राह्मण और वैश्यकी चांदीकी, शूद्रकी लोहेकी बीचकी अंगुलीसे ८ अंगुलकी सुईसे बींधें हेमाद्रिमें देवलने कहा है कि, ब्राह्मणके कर्णके छिद्रमें सूर्यकी छाया प्रवेश न कर सके, कारण कि, उसको देखकर पुरातन भी पुण्य समूह नष्ट हो जाते हैं शंखने कहा है कि, कानोंमें अंगुष्ठभरका छिद्र न हो, यदि होय तो उसे श्राद्ध न देना चाहिये, और दे तो वह श्राद्ध आसुरी हो जाता है ॥ अब ताम्बूल भक्षण कहते हैं ॥ ढाई महीनेके बालकको प्रथम कपूरआदि मिलाकर विलास और हितके निमित्त पान दे. मूल, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, हस्त, श्रवण, ज्येष्ठा, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, पुनर्वसु, धनिष्ठा इन नक्षत्रोंमें और सूर्य: चन्द्र बृहस्पति शुक्र बुध वारोंको मुनियोंने ताम्बूलभक्षणकी विधि उत्तम लिखी है ॥ अब निष्क्रमणको कहते हैं । ज्योतिर्निबन्धमें यमराजने कहा है कि,

मासि निष्क्रमणं भवेत् ॥' यमः—"ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम् । चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥" अत्र 'सूर्येन्द्वोः कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । 'छन्दोगानां निष्क्रमणे वृद्धिश्राद्धं नास्ति' इति कल्पतरुः ॥ व्यास—"मैत्रे पुष्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेनुकूले विधौ हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च । कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोर्बुधगुरौ शुक्रे विरिक्ते तिथौ कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकिते॥" मदनरत्ने—'अन्नप्राशनकाले वा कुर्यान्निष्क्रमणक्रियाम् ॥' विष्णुधर्मे—"दिगीशानां दिने तत्र तथा चन्द्रार्कयोर्द्विजैः । पूजनं वासुदेवस्य गगनस्य च कारयेत् ॥ बहिर्निष्कासयेद्गेहाच्छंखपुण्याहनिस्वनैः । चन्द्रार्कयोर्दिगीशानां दिशां च गगनस्य च । निक्षेपार्थमिमं दद्मि ते मे रक्षन्तु सर्वदा । अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रमथापि वा । रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ४ ॥" माधवीये मार्कण्डेयः—"अग्रतोऽथ प्रविन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥ प्रथमं यत्स्पृशेद्बालस्ततो भाण्डं स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति ॥ २ ॥" इति ॥ अथोपवेशनम् ॥ प्रयोगपारिजाते पाद्मे विष्णुधर्मे च—"पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमु-

---

तीसरे वा चौथे महीनेमें निष्क्रमण होता है, यमराजने लिखा है कि, ३ मासमें बालकको सूर्यका दर्शन और चौथे महीनेमें चन्द्रका दर्शन करावे, इसमें सूर्य और चन्द्रमा आदिकी पूजाका कर्म और उनका श्राद्ध नहीं है इस छान्दोगपरिशिष्टके कथनसे वेदपाठियोंके निष्क्रमणमें वृद्धिश्राद्धका विधान नहीं है यह कल्पतरुका कथन है, व्यासने कहा है कि, अनुराधा, पुष्य, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, हस्त, ज्येष्ठा, मृगशिर इन नक्षत्रोंमें शुभ चन्द्रमा और श्रेष्ठ ग्रहोंमें तथा बुध, गुरु, भृगुवारमें रिक्तासे भिन्न तिथियोंमें कन्या, कुम्भ, तुला, सिंह, लग्नोंको सौम्य ग्रह देखते होंय तो बालकको बाहर निकाले, मदनरत्नमें भी कहा है कि, अन्नप्राशनके मुहूर्तमें निष्क्रमण करे विष्णुधर्ममें कहा है कि, दिशाओंके अधिपतियोंके दिनमें चन्द्र वा सूर्यवारको ब्राह्मण वासुदेव और आकाशका पूजन करै शंख स्वस्तिवाचन और बाजोंसहित बालकको घरमेंसे निकाले और यह कहै कि चन्द्रमा सूर्य और दिशाओंके पति दिशा और आकाश इनको निक्षेप (धरोहर) के निमित्त इस बालकको देताहूं यह इसकी रक्षा करैं यह बालक सावधान हो चाहै प्रमत्त हो दिन हो वा रात हो इन्द्र आदि देवता सब इसकी रक्षा करैं माधवीयमें मार्कण्डेयने कहा है कि बालकके आगे शिल्पके भांड सम्पूर्ण शस्त्र और वस्त्रको रखकर उसके लक्षणको देखै उनमेंसे जिसको बालक स्पर्श करले उससेही उस बालककी जीविकाका अनुमान करै ॥ अब भूमिमें उपवेशन (बैठाना) कहते हैं ॥ प्रयोगपारिजातमें पद्मपुराण और विष्णुधर्मका वाक्य है कि पांचवें महीनेमें बालकको भूमिपर बैठावे उसमें सब-

प्रवेशयेत् । तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमोप्यत्र विशेषतः ॥ उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम् । प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम् ॥ वाराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजम् । रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे ॥ आयुःप्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये । अचिरादायुषस्त्वस्य ये केचित्परिपन्थिनः ॥ जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् । धरेण्याशेषभूतानां माता त्वमसि कामधुक् ॥ अजरा चाप्रमेया च सर्वभूतनमस्कृता । चराचराणां भूतानां प्रतिष्ठानाव्यया ह्यसि ॥ कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥ ६ ॥ "

अन्नप्राशनम् । पारिजाते नारदः—" जन्मतो मासि षष्ठे स्यात्सौरेणान्नाशनं परम् । तदभावेऽष्टमे मासि नवमे दशमेऽपि वा ॥ द्वादशे वापि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम् । संवत्सरे वा संपूर्णे केचिदिच्छंति पण्डिताः ॥ २ ॥ " मदनरत्ने लौगाक्षिः—' षष्ठेऽन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा ' इति । शंखः—' संवत्सरेऽन्नप्राशनमर्धसंवत्सरे वा ' इति ॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः—" षष्ठे वाप्यष्टमे मासि पुंसां स्त्रीणां तु पंचमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम् ॥ रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम् । त्यक्त्वान्यतिथयः प्रोक्ताः सितजीवज्ञवासराः ॥ चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ॥ ३ ॥ " श्रीधरः—" आदित्यतिष्यवसुसौम्यकरानिला-

---

ग्रह श्रेष्ठ हैं विशेषकर मंगल उत्तम हो तीनों उत्तरा, मृगशिर, पुष्य, ज्येष्ठा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी अनुराधा ये नक्षत्र उत्तम हैं वराहदेवकी और भूमिकी पूजा करै हे वसुधे ! हे देवि ! सब स्थानमें प्राप्त हुए इस बालककी तुम रक्षा करो हे हरिप्रिये ! इसके सम्पूर्ण अवस्थाके प्रमाणकी रक्षा करना जो इसकी चिरायुके शत्रु हैं वा जीवन आरोग्य धनके द्वेषी हैं उनको शीघ्रही दग्ध करो तुम सब भूतोंकी धारिणी और कामधेनुरूप तुम माता हो अजर अमर और सब भूतोंके प्रणाम करने योग्य हो चर अचर भूतोंकी स्थिति तुममें है और तुम अविनाशिनी हो हे मातः ! बालककी तुम रक्षा करो और ब्रह्माभी इस बालकको मानो॥ अब अन्नप्राशनको कहतेहैं, पारिजातमें नारदने कहाहै कि, सौर मासके प्रमाणसे जन्मसे छठे महीनेमें अन्नप्राशन होताहै उसके अभावमें आठवें, नववें, दशवें, बारहवें महीनेमें सौर प्रमाणसे अन्नप्राशन होताहै, कोई पंडित संवत्सरकी पूर्तिपर इच्छा करतेहैं, मदनरत्नमें लौगाक्षिने कहाहै कि, छठे महीनेमें वा दांत जमनेपर अन्नप्राशन करै. शंखने कहाहै कि वर्षदिनमें वा आधे वर्षमें अन्नप्राशन करै, नारदने कहा है कि, छठे वा आठवेंमें पुरुषोंको और पांचवें वा सातवेंमें कन्याओंको नवान्नप्राशन करावै तौ उत्तम है, रिक्ता, दिनका क्षय, नन्दा, द्वादशी, अष्टमी, अमावास्याको छोडकर तिथि, शुक्र, बृहस्पति, बुधवार, चन्द्र ये उत्तम हैं, और कृष्णपक्षके पिछली पांच तिथिको त्यागकर अन्नप्राशन करना उत्तम है, श्रीधर कहते हैं कि, पुनर्वसु, विशाखा, धनिष्ठा,

द्विचित्राजाविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः । बालान्नभोजनविधौ दशमे विशुद्धे छिद्रां विहाय नवमीं तिथयः शुभाः स्युः ॥ " वसिष्ठः-" बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धने च राज्ञाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्ये । शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहे सीमन्तयात्रादिषु मंगलेषु ॥ " मार्कण्डेयविष्णुधर्मयोः-"ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं चन्द्रार्कौ च दिगीश्वरान् । भुवं दिशश्च संपूज्य हुत्वा वह्नौ तथा चरुम् ॥ देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गतस्य च । अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकाञ्चने ॥ मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत्पायसं तु वा ॥ ३ ॥ " इति ॥ अब्दपूर्तिनिर्णयः । अथाब्दपूर्तिः ॥ व्यवहारनिर्णये-" नवाम्बरधरो भूत्वा पूजयेच्च चिरायुषम् । मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत्प्रयतस्तथा ॥ ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं द्रौणिं कृपं बलिम् । प्रह्लादं च हनूमंतं विभीषणमथार्चयेत् ॥ स्वनक्षत्रं जन्मतिथिं प्राप्य संपूजयेन्नरः । षष्ठीं च दधिभक्तेन वर्षेवर्षे पुनः पुनः ॥ ३ ॥ " तिथितत्त्वे एतन्नामभिस्तिलहोमोप्युक्तः ॥ आदित्यपुराणे-" सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलवारिभिः । गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ स्वनक्षत्रं च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः । प्रतिसंवत्सरं यत्नात्कर्त्तव्यश्च महोत्सवः ॥ २ ॥ " कृत्यचिन्तामणौ-" गुडदुग्धतिलान्दद्याद्धस्ते ग्रन्थिं च बन्धयेत् । गुग्गुलं निम्बसिद्धार्थदूर्वागोरोचनादिकम् ॥ संपूज्य भानु-

मृगशिर, हस्त, स्वाती, अश्विनी, चित्रा, रोहिणी, श्रवण, शतभिषा, उत्तरा, रेवती, मित्रसंज्ञक नक्षत्र बालकके अन्नभोजन करनेमें दशवें स्थान शुद्धवाली लग्न छिद्रा और नवमीको त्यागकर तिथि ये सब उत्तम कही हैं; वसिष्ठने कहा है कि, बालकका अन्नभोजन यज्ञोपवीत राजाका अभिषेक इनमें जन्मका नक्षत्र श्रेष्ठ है, विवाह सीमन्त यात्रा आदि मंगलकार्यमें निरन्तर अशुभ है, मार्कण्डेय और विष्णुधर्ममें कहा है कि, ब्रह्मा, शिवजी, सूर्य, चन्द्रमा, दिशाओंके स्वामी पृथ्वी और दिशाको पूजकर और अग्निमें चरुको होमकर देवताओंके आगे माताकी गोदमें बैठे और भूषणोंसे सज्जित बालकको सुवर्णयुक्त पात्रमें शहत, घृत, दहीसहित अन्न चटावे, वा खीर बालकको भोजन करावे ॥ अब अब्दपूर्ति (वर्षगांठ) को कहते हैं, व्यवहारनिर्णयमें कहा है कि, नवीन वस्त्रोंको धारण करके मार्कण्डेय आदि चिरायुषोंकी पूजा करै, और सावधान हो भक्तिपूर्वक मनुष्य मार्कण्डेयकी पूजा करै, फिर, दीर्घायु व्यास, राम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि, प्रह्लाद, हनुमान्, विभीषणकी पूजा करै, और अपना नक्षत्र और जन्मतिथिको प्राप्त होकर मनुष्य दही और चावलसे वर्ष वर्षमें वारंवार षष्ठीकी पूजा करै, तिथितत्त्वमें इनके नामोंसे तिलोंसे होम करना भी कहा है, आदित्यपुराणमें लिखा है, जन्मदिनमें सवलोग मांगलिक स्नान कर गुरु, देवता, अग्नि, ब्राह्मणोंको यत्नसे पूजे और अपना नक्षत्र माता पिता ब्रह्माकाभी पूजन करै, और प्रतिवर्ष यत्नसे महोत्सव करै ॥ कृत्यचिंतामणिमें लिखा है कि, गुड, दूध, तिलका दान करै और हाथमें वर्षकी गांठ बांधे, गुग्गुल,

विघ्नेशौ महर्षि प्रार्थयेदिदम् । चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ॥ रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा । मार्कंडेय नमस्तेऽस्तु सप्तकल्पांतजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन्मुने । चिरंजीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवर द्विज ॥ कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीवनम् । मार्कंडेय महाभाग सप्तकल्पांतजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव । सतिलं गुडसंमिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः ॥ मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥ ७ ॥ " इति पयः पिबेत् ॥ तिथितत्त्वे स्कान्दे—" खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वगमौ तथा । आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥ " तत्रैव दीपिकायाम्—" कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मतिथिर्भवेत् । अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ " कृतान्तः शनिः—'तस्य सर्वौषधिस्नानं गुरुदेवाग्निपूजनम् ॥ ' वृद्धमनुः—" मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा । अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥ " अत्र जन्मतिथिरौदयिकी ग्राह्या ॥ " युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया । रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता " इति कृत्यतत्त्वार्णवे वचनात् ॥ विशेषो मत्कृतशूद्रधर्मे ज्ञेयः ॥ अथ कटिसूत्रम् । प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे-

नींब, दूर्वा, सरसों, गोरोचनसे सूर्य और गणेशकी पूजा करके महर्षिजनोंकी इस प्रकार प्रार्थना करै कि, भो मार्कण्डेय ! तुम जिस प्रकार चिरंजीवी हो मैं भी इसी प्रकार रूप, धन, लक्ष्मीसे सदा युक्त रहूं, हे मार्कण्डेय ! हे कल्पांततक जीनेवाले ! आपको प्रणाम है हे भगवन् ! हे मुने ! आरोग्यसिद्धिके निमित्त प्रसन्न हो, हे मुनिश्रेष्ठ ! हे द्विजसत्तम ! हे मुनिशार्दूल ! जैसे तुम चिरजीवी हो इसी प्रकार मुझे भी चिरजीवी करो, हे मार्कण्डेय ! हे महाभाग ! हे सातकल्पजीवी ! आयु और आरोग्यसिद्धिके निमित्त तुम वरदाता हो, मार्कण्डेयसे वरको प्राप्त होकर तिल और गुड मिलाहुआ आधा अञ्जली दूध अवस्थाकी वृद्धिके निमित्त पान करता हूं, इस मन्त्रको पढकर दूध पीवे, तिथितत्त्वमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, वर्षगांठके दिन नख और केशोंका खण्डन, मैथुन, मार्ग, मांस, क्लेश, हिंसा न करै ॥ वहांही दीपिकामें कहा है कि, शनैश्चर और मंगलवारको जिसके जन्मकी तिथि हो और उस दिन श्रेष्ठ नक्षत्रका योग न हो तो उसके पद पदपर विघ्न होता है, उसको सर्वौषधिसे स्नान करना चाहिये. गुरु, देवता, अग्निकी विधिपूर्वक पूजा करे, वृद्ध मनुने कहा है कि, मरण, जन्म, संक्रांति, श्राद्ध, जन्मदिन, अयोग्योंका स्पर्श इनमें उष्ण (गर्म) जलसे स्नान न करै, इसमें जन्मकी तिथि उदयकालकी लेनी चाहिये, कारण कि, कृत्यतत्त्वार्णवमें यह कहा है कि, युगादि वर्षवृद्धि पार्वतीकी प्रिय सप्तमी ये सूर्योदयकी इच्छा करती हैं इसमें दो तिथियोंका योग न मानना चाहिये, इसमें विशेष हमारे बनाये शूद्रधर्ममें देख लेना ॥ अब कटिसूत्रको कहते हैं, प्रयोगपारिजातमें ब्रह्मपुराणका लेख है कि, प्रतिवर्षके अन्त्यके

" प्रतिसंवत्सरान्तर्क्षे वक्ष्ये नृणां विधिं परम् । दत्त्वा गोभूहिरण्यादि तथा स्वर्णा-दिनिर्मितम् ॥ बध्नीयात्कटिसूत्रं च वासः संगृह्य नूतनम् । दूर्वांकुरैस्थाज्येन चरुणा वा पिनाकिनम् । आयुष्यहोमं कृत्वा च तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ " अथ चौलम् । प्रयोगपारिजाते षड्गुरुशिष्यः–जाताधिकाराज्जन्मादि तृतीये द्वे तु चौलकम् । आद्येऽब्दे कुर्वते केचित्पञ्चमेऽब्दे द्वितीयके ॥ उपवीत्या सहैवेति विकल्पाः कुल-धर्मतः ॥ " बृहस्पतिः–" तृतीयेऽब्दे शिशोर्गर्भाज्जन्मतो वा विशेषतः । पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोपि वा समम् ॥ " तत्रैव नारदः–" जन्मतस्तु तृतीयेऽब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः । पञ्चमे सप्तमे वापि जन्मतो मध्यमं भवेत् ॥ अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशेपि वा " इति ॥ पारिजाते बृहस्पतिः–" उत्तरायणगे सूर्ये विशेषात्सौम्यगोलके । शुक्लपक्षे शुभं प्रोक्तं कृष्णपक्षे शुभे-तरत् ॥ अशुभोन्यत्रिभागः स्यात्कृष्णपक्षे त्रिधा कृते ॥ " तत्रैव वसिष्ठः–" द्वित्रिपञ्चमसप्तम्यामेकादश्यां तथैव च । दशम्यां च त्रयोदश्यां कार्यं क्षौरं विजानता ॥ " नृसिंहीये–" षष्ठ्यष्टमी चतुर्थी च नवमी च चतुर्दशी । द्वादशी दर्शपूर्णे द्वे प्रतिपच्चैव निन्दिताः ॥ " वसिष्ठः–" रवेरङ्गारकस्यैव सूर्यपुत्रस्य चैव हि । निन्दिता दिवसाः क्षौरे शेषा कार्यकराः स्मृताः ॥ " ज्योतिर्निबन्धे बृह-

---

नक्षत्रमें मनुष्योंकी उत्तम विधिको लिखता हूं गौ, भूमि, सुवर्णका दान करके सुवर्ण आदिसे निर्मित्त कटिसूत्र (कोंधनी) को बांधै नये वस्त्र पहनकर दूबके अंकुर घी और चरुसे शिव-जाक निमित्त आयु वढानेके निमित्त हवन करके पितर देवताओंको तृप्त करै ॥ अब चौलको कहते हैं, प्रयोगपारिजातमें षड्गुरुशिष्यका वाक्य है कि, जाताधिकार (गर्भाधान) वा जन्मसे तीसरे वर्षमें मुण्डन होता है कोई प्रथम पांचवें दूसरे वर्षमें भी लिखते हैं, और कोई यज्ञोपवीतके संग करते हैं यह सब विकल्प कुलधर्मसे जानने चाहिये, बृहस्पतिने कहा है कि, बालक (स्त्री वा पुरुष) का मुण्डन गर्भ वा विशेषकर जन्मसे तीसरे, पांचवें, सातवें वर्षमें होता है ॥ वहांही नारदने कहा है कि, जन्मसे तीसरे वर्ष बुद्धिमान् श्रेष्ठ जानते हैं जन्मसे पांचवें और सातवेंमें मध्यम होता है, गर्भसे नौवें और ग्यारहवेंमें अधम होता है, पारिजातमें बृहस्पतिने कहा है कि, उत्तरायण सूर्य हो और विशेषकर सौम्य गोलका योग होय तो शुक्लपक्षमें शुभ और कृष्णपक्षमें अशुभ है, और कृष्णपक्षके तीन भाग करके पिछला भाग अच्छा नहीं, वहांही वसिष्ठने कहा है कि, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, दशमी, त्रयोदशीमें ज्ञानी मनुष्यको क्षौर कराना चाहिये, नृसिंहीयने कहा है कि, छठ, अष्टमी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, प्रतिपदा निन्दित हैं और शेष शुभ हैं ॥ वसिष्ठने कहा है कि, सूर्य, मंगल शनिवार क्षौरमें निंदित हैं और शेष शु[illegible], ज्योतिर्निबन्धमें बृहस्पतिने कहा है कि, पापग्रहोंके

स्पतिः–" पापग्रहाणां वारादौ विप्राणां शुभदं रवौ । क्षत्रियाणां क्षमासूनौ विट्-शूद्राणां शनौ शुभम् ॥ हस्ताश्विविष्णुपौष्णाश्च श्रविष्ठादित्यपुष्यभम् । सौम्यचित्रे नवक्षौरे उत्तमा नव तारकाः ॥ त्रीण्युत्तराणि वायव्यं रोहिणी वारुणं तथा । क्षौरे षण्मध्यमा प्रोक्ता शेषा द्वादश गर्हिताः ॥ निधने जन्मनक्षत्रे वैनाशे चन्द्रमेऽष्टमे । विपत्करे वधे क्षौरं प्रत्यरे च विवर्जयेत् ॥ ३ ॥ " अत्र लग्नशुद्धिरन्ये च योगा ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयाः । अन्ये च विशेषाः श्मश्रुकर्मनिर्णये वक्ष्यन्ते ॥ एतच्च शिशोर्मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् ॥ तदाह ज्योतिर्निबन्धे मदनरत्ने च वृद्धगार्ग्यः– " पुत्रचूडाकृतौ माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात्क्षौरं विवर्जयेत् ॥ " अस्यापवादमाह तत्रैव नारदः–" सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पञ्चाब्दात्प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ इति गर्भविपत्तिः स्याच्छिशोर्वा मरणे यदि । सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ॥ २ ॥ " बृहस्पतिः–" गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौरकर्म न कारयेत् ॥ व्रताभिषेके एवं स्यात्कालो वेदव्रतेष्वपि ॥ " अभिषेकः समावर्तनम् ॥ ' गर्भिण्यामपि पञ्चमासपर्यन्तं न दोषः ' इत्युक्तम् । मुहुर्तदीपिकायां गर्गेण–' पंचमासादूर्ध्वं मातुर्गर्भस्य जायते मृत्युः ' इति । मदनरत्ने बृहस्पतिः–" पुत्रचूडाकृतौ

वारोंमें ब्राह्मणोंको रविवार श्रेष्ठ है, क्षत्रियोंको मंगल, वैश्य शूद्रोंको शनि, अच्छा है. हस्त, अश्विनी, श्रवण, रेवती, श्रविष्ठा (धनिष्ठा), पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिर, चित्रा ये नौ नक्षत्र नवीन क्षौरमें उत्तम हैं, तीनों उत्तरा, स्वाती, रोहिणी, शतभिषा, ये क्षौरमें मध्यम हैं, शेष बारह निंदित हैं, जन्मनक्षत्रमें क्षौर होय तो मरण, अष्टम चन्द्रमामें करै तो नासिकाका नाश, विपत्[1] नक्षत्रमें हो वा प्रत्यरि[2]में होय तो मृत्यु करै, इससे इनको त्याग दे, इसमें लग्नकी शुद्धि और दूसरे योग ज्योतिषसे जानने, और विशेष श्मश्रु (डाढी) कर्मके निर्णयमें लिखेंगे ॥ बालककी माताको गर्भ होय तो यह मुण्डन न करना यही ज्योतिर्निबन्ध और मदनरत्नमें वृद्धगार्ग्यने लिखा है कि, पुत्रके चूडाकर्ममें यदि माता गर्भिणी होय तो बालककी शस्त्रसे मृत्यु होती है इससे उस कालमें क्षौर न करावै, इसका निषेध वहांही नारदने लिखा है कि, पुत्रकी माता गर्भिणी होय तो पांच वर्षसे प्रथम चूडाकर्म न करै, पांच वर्षके उपरान्त तो करले, यदि गर्भमें विपत्ति हो अर्थात् पात हो जाय वा बालक मरजाय तो यज्ञोपवीतके संग करै, तब कुछ दोष नहीं है, बृहस्पतिने कहा है कि, बालककी माता गर्भिणी होय तो मुंडन न करै, और व्रतका अभिषेक और देवव्रतोंमें भी इसी प्रकार होता है, गार्भिणी होनेपरभी पांचवर्षतक दोष नहीं लगता यह मुहूर्तदीपिकामें गार्ग्यने लिखा है कि, पञ्चम मासके उपरान्त माताके गर्भकी मृत्यु होती है, मदनरत्नमें बृहस्पतिने-

---

१ विपत्–कृत्तिका । २ प्रत्यरिः–मृगशिर ।

माता गर्भिणी यदि वा भवेत् । विपद्यते गुरुस्तत्र दम्पती शिशुरब्दतः ॥ गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु । पंचमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ " गर्गः–ज्वरस्योत्पादनं यस्य लग्नं तस्य न कारयेत् ॥ दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥" लग्नमिति मङ्गलोपलक्षणम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः–"विवाहोत्सवयज्ञेषु माता यदि रजस्वला । तदा स मृत्युमाप्नोति पंचमं दिवसं विना ॥ " वसिष्ठः–' यस्य माङ्गलिकं कार्यं तस्य माता रजस्वला । ' अर्थं तदेव ॥ तत्रैव बृहस्पतिः–"प्राप्तमभ्युदयश्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि । पत्नी रजस्वला चेत्स्यान्न कुर्यात्तत्पिता तदा ॥ " पितेति कर्तृमात्रोपलक्षणम् ॥ संकटे तु वाक्यसारे उक्तम् " अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे ह्युपस्थिते । श्रियं संपूज्य विधिवत्ततो मङ्गलमाचरेत् ॥ " एतच्च मण्डनोत्तरं न कार्यम् ' न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः ' इति मदनरत्ने वसिष्ठोक्तेः ॥ तत्रैव कात्यायनः–"कुले ऋतुत्रयादर्वाङ्मण्डनान्न तु मुण्डनम् । प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम् ॥" तथा वृद्धमनुः–" एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥ " आशौचे तु संग्रहे–" संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते । कूष्माण्डाभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमा-

लिखा है कि, पुत्रके चूडाकर्ममें यदि माता गर्भिणी होय तो गुरु, माता पिता बालक ये वर्ष दिनमें मरजाँय माताके गर्भमें मुण्डन ५ महीनेसे प्रथम करले और पीछे न करै गर्गने कहा है कि, जिसको ज्वर होय वह मंगलका कार्य न करै, वह दोष दूर होने पर पीछे स्वस्थ होकर धर्म करै ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहा है कि विवाह उत्सव यज्ञोंमें यदि माता रजस्वला होय तो पांचवें दिनको त्यागकर वह पुरुष जिसका मंगल कार्य है मृत्युको प्राप्त होता है, वसिष्ठने कहा है कि जिसका मांगलिक कार्य होय उसकी माता रजस्वला होय तो वह पांचवें दिनको त्यागकर मृत्युको प्राप्त होता है, वहांही बृहस्पतिने कहा है कि पुत्रके संस्कार कर्मके निमित्त नांदीमुख श्राद्धमें यदि पत्नी रजस्वला होजाय तो उसके पिताको नान्दीमुख श्राद्ध न करना चाहिये, इसमें पिताशब्द कृत्य करनेवालेका उपलक्षण है यदि विपत्ति होय तो वाक्यसारमें यह लिखा है कि, और मुहूर्त न मिले और रजोदोष होजाय तो विधिसे लक्ष्मीका पूजन करके मंगलकार्य करै, यह मुण्डनसे पीछे न करना कारण कि, मदनरत्नमें वसिष्ठने यह लिखा है कि, वर्षके मध्यमें और एक गोत्रमें मंडन (विवाह) से उपरान्त मुण्डन न करै, वहांही कात्यायनने यह कहा है कि एककुलमें तीन ऋतुसे प्रथम मंडनसे प्रवेशसे निर्गम मंगलकार्यमें इष्ट नहीं है, वहांही वृद्धमनुने कहा है मुण्डन कि एक मातासे उत्पन्न हुए पुरुष स्त्रीका एक वर्षमें एक कर्म न करै, यदि माताका भेद प्राप्त होय तो करले ॥ आशौच होय तो संग्रहमें यह कहा है कि संकट होय या सूतक होजाय तो कूष्मांडी ऋचाओंसे घृतका हवन करके दुधारी गौका दान करै, फिर चूडा, यज्ञोपवीत, विवाह, प्रतिष्ठा

-चरेत् " इति ॥ ज्योतिर्निबन्धे-" षष्ठेऽब्दे षोडशे वर्षे विवाहाब्दे तथैव च । अन्तर्वत्न्यां च जायायां नेष्यते मुण्डनं क्वचित् ॥ " अन्योपि विशेषो वक्ष्यते ॥ दीपिकायां-" न चूडा जन्मभामेये दारुणेषु शनौ कुजे ॥ प्रतिपद्भद्ररिक्तासु विद्यारम्भस्तु पंचमे ॥ " प्रयोगरत्ने-" मध्ये शिरसि चूडा स्याद्वासिष्ठानां तु दक्षिणे । उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्यपानां शिखा मता ॥ " माधवीयेप्येवम् ॥ आपस्तम्बस्त्वाह-' तूष्णीं केशान्विनीय यथर्षि शिखा निदधाति ॥ ' यथर्षिप्रवरसंख्यया ॥ तासां मध्यशिखावर्जमुपनयने वपनं कार्यम् ॥ ' प्रतिदिशं प्रवपति ' इत्युपनयने तेनैवोक्तेः ॥ "रिक्तो वा एषो न पिहितो यन्मुंडस्तस्मै तदपिधानं यच्छिखा" इति श्रुतेः ॥ ' विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ' इति निषेधाच्च । सत्रे तु-'वचनात्सशिखं वपनम्' इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥ यत्तु-'कुमारा विशिखा इव' इति लिङ्गं तच्छंदोगपरम् ॥ अपरार्के मदनरत्ने च लौगाक्षिः-' दक्षिणतः कमुञ्जा वसिष्ठानामुभयतोऽत्रिकश्यपानां मुण्डा भृगवः । पञ्चचूडा अंगिरसो वाजिमेके । मंगलार्थं शिखिनोऽन्ये यथाकुलधर्मं वेति ।' (कमुञ्जो-शिखा वाजिः-केशपंक्तिः) । स्मृतिदर्पणे-" एका शिखा दक्षिणतो वसिष्ठगोत्रस्य पञ्चाङ्गिरसो

आदि करै ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, छठे सोलहवें वर्षमें वा विवाहके वर्षमें स्त्री गर्भवती होय तो मुण्डन न करै, और विशेष विवाहके प्रकरणमें लिखेंगे, दीपिकामें कहा है कि, जन्मनक्षत्र, कृत्तिका, दारुणसंज्ञक नक्षत्र, शनैश्चर और मंगलवार प्रतिपदा और भद्रा, रिक्ता तिथि इनमें चूडाकर्म न करै और विद्याका आरम्भ पांचवें वर्षमें करै ॥ प्रयोगरत्नमें कहा है कि, वसिष्ठगोत्रियोंकी चूडा शिरके दक्षिणमें अत्रि और कश्यप गोत्रियोंकी शिखा दोनों पार्श्वोंमें और सबकी शिरके मध्यमें होती है, माधवीयमेंभी इसी प्रकार कहा है कि, आपस्तम्ब तो यह लिखते हैं कि मौन होकर बालोंको काटकर ऋषियोंके प्रवरोंकी संख्याके अनुसार शिखाको धारण करनी चाहिये, और उनका यज्ञोपवीतमें मुंडन मध्यशिखाको त्यागकर होता है, कारण कि, आपस्तंबने कहा है कि उपनयनमें शिखाकी चारों दिशाओंको मुंडन करै, श्रुतिमेंभी कहा है कि, यह मनुष्य शिखासे न ढका होय तो रिक्त (खाली) है, जिसे मुण्ड कहते हैं उसका शिखाही ढकना है, और यह निषेधभी है, जो कृत्य शिखा और विना यज्ञोपवीतके किया है वह सब निषिद्ध है, अर्थात् न कियेके तुल्य है, यज्ञमें तो वाक्यसे शिखासहित मुण्डन होता है यह सुदर्शन भाष्यमें लिखा है॥ जो यह प्रमाण है कि, शिखाहीन कुमारोंके तुल्य है यह छांदोगि (साम वेदपाठि) योंके विषयमें जानना अपरार्क और मदनरत्नमें लौगाक्षिने कहा है कि, वासिष्ठोंकी शिखा दक्षिणकी ओर अत्रि और कश्यप गोत्रकी दोनों ओर भृगु मुंडे, आंगिरसगोत्री पांच शिखावाले अथवा मंगलके निमित्त एककेशोंकी पंक्ति रक्खे और अन्य अपने कुलधर्मके अनुसार शिखासंयुक्त रहैं, स्मृतिदर्पणमें कहा है कि वसिष्ठगोत्रियोंकी एक ओर शिखा दोनों ओर वा कुलके

भृगोस्तु । नैका शिखा कश्यपगोत्रजानां शिखोभयत्रापि यथाकुलं च ॥ " एतच्छूद्रातिरिक्तविषयम् । 'शूद्रस्यानियताः केशवेशाः' इति वसिष्ठोक्तेः । यत्तु पाद्मे–' न शिखी नोपवीती स्यान्नोच्चरेत्संस्कृतां गिरम् ' इति शूद्रमुपक्रम्योक्तम् । तदसच्छूद्रस्येति केचित् । विकल्प इति तु युक्तम् ॥ अत एव हारीतः– "स्त्रीशूद्रौ तु शिखां छित्त्वा क्रोधाद्वैराग्यतोपि वा । प्राजापत्यं प्रकुर्यातां निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् ॥ " एतत् परिग्रहपक्षे ॥ अत्र देशभेदाद्व्यवस्थेति दिक् ॥ ज्योतिर्निबन्धे–" नर्मदोत्तरदेशे तु सिंहस्थे देवमन्त्रिणि । शुभकर्म न कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे ॥ " अत्र भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये– " निवृत्ते चूडहोमे तु प्राङ्नामकरणात्तथा । चरेत्सांतपनं भुक्त्वा जातकर्माणि चैव हि ॥ अतोन्येषु तु संस्कारेषूपवासेन शुद्धयति ॥" एते संस्काराः स्त्रीणाममन्त्रकाः कार्याः । 'होमस्तु समन्त्रकः' इति प्रयोगपारिजाते ॥ आश्वलायनोपि– होमकृत्यं तु पुंवत्स्यात्स्त्रीणां चूडाकृतावपि' इति ॥ मनुरपि–' अमन्त्रका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ' इति होमोप्यमन्त्रक इत्येके संस्काराः स्त्रीणामहोमकास्तूष्णीं स्युरिति स्मृत्यर्थसारे । होमो नेति वृत्तिकृत् ॥ अथ विद्यारम्भः । मदनरत्ने नृसिंहः–"अक्षरस्वीकृतिं कुर्यात्प्राप्ते पञ्चमहायने । उत्तरायणगे सूर्ये

समान होती है, यहभी शूद्रके भिन्नोंमें जानना, कारण कि वसिष्ठने लिखा है कि शूद्रके केशवेशोंका नियम नहीं है, जो पद्मपुराणमें शूद्रके विषयमें लिखा है कि, शूद्र शिखा और यज्ञोपवीत धारण न करै और न संस्कृत वाणी बोले, वह असत् शूद्रके निमित्तमें है यह कोई कहते हैं, विकल्प तो युक्त है. इसीसे हारीतने लिखा है कि, क्रोध वा वैराग्यसे स्त्री और शूद्र शिखाच्छेदन करके प्राजापत्य व्रत करैं, अन्यथा इसका प्रायश्चित्त नहीं है; यह परिग्रह पक्षमें जानना इसमें देशभेदसे व्यवस्था माननी चाहिये, यही मार्ग है ॥ ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, सिंहके बृहस्पतिमें नर्मदाके उत्तर देशोंमें शुभकर्म न करै, और दक्षिणदेशोंमें इसका दोष नहीं है, यहां भोजनमें प्रायश्चित्त माधवीयमें इस प्रकार वर्णन कियाहै कि मुण्डनके हवन होनेपर और नामकरणमें भोजन करके सान्तपन कृच्छ्र करना, इनसे अन्य संस्कारोंमें भोजन करके व्रतकरके शुद्ध होताहै, ये संस्कार स्त्रियोंके मन्त्ररहित करने चाहिये और हवन तो मन्त्रोंसे करना चाहिये, प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनने लिखाहै कि, स्त्रियोंके चूडाकर्ममें पुरुपाक तुल्य होम कर्म होताहै, मनुने कहाहै कि, स्त्रियोंके ये सब कर्म्म विना मन्त्र होते हैं,कोई यह लिखते हैं कि, स्त्रियोंका हवन भी विना मन्त्र होताहै, स्त्रियोंके संस्कार हवन रहित मौनता युक्त होते हैं, यह स्मृत्यर्थसारग्रन्थमें कहाहै इससे होम नहीं होता, यह वृत्तिकारका कथन है ॥ अब विद्यारम्भको कहते हैं, मदनरत्नमें नृसिंहने कहाहै कि, अक्षरोंका स्वीकार

कुम्भमासं विवर्जयेत् ॥" दीपिकायाम्-"वर्षे पर्जन्यके काले षष्ठीं रिक्तां शनिं कुजम् । अनध्यायान्विना नत्वा देवं ग्रन्थकृतं गुरुम् ॥" श्रीधरः-"हस्तादित्यसमीराभमित्रपुरुजित्पौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वाराववर्थशदिनोदयादिरहिते राशौ स्थिरे चोभये । पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्त स्वीकृतिः ॥" विष्णुधर्मोत्तरे-"पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं तथा देवीं सरस्वतीम् । स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥ एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद्घृतम् । दक्षिणाभिर्द्विजेन्द्राणां कर्तव्यं चात्र पूजनम् ॥ " इति ॥ अथ धनुर्विद्या । दीपिकायाम्-"अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्राग्निपित्र्यध्रुवहरिवसुमूलेष्विन्दुभागान्त्यभेषु । शनिशशिबुधवारे विष्णुबोधेपि पौषे सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम् ॥ " अनुपनीतबाले निर्णयः । अथानुपनीतस्य विशेषः ॥ गौतमः-' प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षाः ' इति । भक्षणं लसुनादेरपि इति । भक्षणं लसुनादेरपि इति हरदत्तः ॥ अपरार्के वृद्धशातातपः-"शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम् । रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके ॥ प्राक् चूडाकरणाद्बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः । कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ॥ २ ॥ " आपस्तम्बोपि-'अन्नप्राशनात् प्रयतो भवत्यासंवत्सरादित्येके' इति ॥

पंचमवर्ष कुम्भकी संक्रांतिको त्यागकर उत्तरायण सूर्यमें विद्याका आरम्भ करै, दीपिकामें कहा है कि, वर्षाका समय, छठ, रिक्ता, शनि, मंगल अनध्यायको त्याग देवे और ग्रन्थके कर्ताको नमस्कार करके विद्यारम्भ करै, श्रीधरने कहाहै कि, हस्त, पुनर्वसु, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, चित्रा, श्रवण, मंगल, शनैश्चर, सूर्यसे भिन्न वार स्थिर राशि दोनों पक्षोंका पूर्ण चन्द्रमा, प्रतिपदा, रिक्ता, षष्ठी, अष्टमीको त्यागकर तिथि और अष्टमभवनशुद्धवाली लग्नमें विद्यारम्भ करवावे, विष्णुधर्ममें कहाहै कि, हरि, लक्ष्मी, देवी सरस्वती अपनी विद्याके सूत्रकार और विशेषकर अपनी विद्याकी पूजा करके और इन्हीं देवताओंके नामसे घीका हवन करै, और दक्षिणाओंसे ब्राह्मणोंका विद्यारम्भमें पूजन करै ॥ अब धनुर्विद्याको कहतेहैं । दीपिकामें कहाहै कि पुनर्वसु, भरणी, हस्त, पूर्वा फाल्गुनी, स्वाती, चित्रा, कृत्तिका, मघा, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मृगशिरका अन्त्यभाग, शनैश्चर, चन्द्र, बुधवार, विष्णुका जागरण पौषसे भिन्न महीना श्रेष्ठसमय और तिथिका योग होय तो धनुर्विद्याका आरम्भ करै ॥ अब उस बालकके निमित्त विशेष कहतेहैं जिसका यज्ञोपवीत न हुआहो गौतमका कथन है कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम बालक बोलने और भक्षण करनेमें स्वच्छन्द है, अर्थात् उसके बोलने और भक्षण करनेमें प्रायाश्चित्त नहीं है, हरदत्तने कहा है कि, लहसुनकाभी भक्षण करलेनेसे उस अवस्थामें दोष नहीं, अपरार्कमें वृद्ध शातातपमें कहा है कि, शिशुका अभ्युक्षण बालकका आचमन कुमारका स्नान रजस्वला आदिके स्पर्शमें लिखा है, मुण्डनसे प्रथम बालक, अन्नप्राशनसे

गौतमोपि–'न तदुपस्पर्शनादाशौचम् ।' तस्यानुपनीतस्य चाण्डालादिस्पृष्टस्यापि स्पर्शान्न स्नानम्। इदं च षष्ठवर्षात् प्राक् ऊर्ध्वं तु स्नानं भवत्येव। 'बालस्य पञ्चमाद्वर्षाद्रक्षार्थं शौचमाचरेत्' इति स्मृतेः॥ कामचारादिकेप्येवम्। "ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च। चरेद्गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये॥ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम्" इति स्मृतेरिति हरदत्तः॥ स्मृत्यर्थसारेप्येवम्॥ अथोपनयनम्। आश्वलायनः–" गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा। द्विजत्वं प्राप्नुयाद्विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः॥" मनुः–" ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोष्टमे॥" विष्णुः–"षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे। अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छतः॥" आपस्तम्बः–"गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयति।" बहुवचनं गर्भषष्ठगर्भसप्तमयोः प्राप्त्यर्थमिति सुदर्शनभाष्ये। केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यन्ते॥ आपस्तम्बः–"अथ काम्यानि सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्यकाममेकादश इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकाममुपनयेत्॥"

प्रथम शिशु, यज्ञोपवीतसे प्रथम कुमार है, आपस्तम्ब कहते हैं कि, अन्नप्राशनसे वा वर्षदिनसे प्रथम सावधान (शुद्ध होता है) गौतमनेभी कहा है कि, उसके स्पर्शसे आशौच नहीं लगता, यज्ञोपवीतसे प्रथम बालकका चाहे चांडालनेभी स्पर्श कियाहो उसका स्पर्श करके स्नान न करना, यह छः वर्षसे प्रथममें जानना इसके उपरान्त स्नानसे शुद्ध होता है, पांच वर्षसे उपरान्त बालककी रक्षाके निमित्त शौच करे, यह स्मृतिमें लिखा है, इच्छासे किये हुए कर्ममें भी इसी प्रकार होता है ११ वर्षसे प्रथम ५वर्षसे पीछे प्रायश्चित्त शुद्धिके निमित्त गुरु और मित्र करैं, इससे बहुत छोटे बालकको न अपराध लगता है न पातक है यह स्मृतिमें कहा है यह हरदत्तका कथन है स्मृत्यर्थसारमेंभी इसी प्रकार कहा है॥ अब यज्ञोपवीत विधि कहते हैं। आश्वलायनने लिखा है गर्भसे आठवें वा जन्मसे आठवेंमें वा पांचवें वा सातवें वर्षमें ब्राह्मण, ग्यारहवेंमें क्षत्रिय, द्विजत्व (यज्ञोपवीत) को प्राप्त होते हैं, मनुने भी लिखा है कि, ब्रह्मतेजकी कामनावाले ब्राह्मणका पांचवेंमें, और बलकी इच्छावाले राजाका छठे वर्ष, और धनकी इच्छावाले वैश्यका अष्टम वर्षमें यज्ञोपवीत करना चाहिये, विष्णुने भी लिखा है कि, धनकी इच्छावाला छठेमें, विद्याकी इच्छावाला सातवेंमें, सब वस्तुओंकी इच्छावाला अष्टममें, और कांतिकी इच्छावाला नवें वर्षमें यज्ञोपवीत करै आपस्तम्बने यह लिखा है कि, गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करै, सुदर्शनभाष्यमें यह लिखा है कि, (गर्भाष्टमेषु) यह बहुवचन गर्भसे छठे सातवें वर्षके ग्रहणके निमित्त है, कोई तो यज्ञोपवीतमें ब्राह्मणको छठा वर्ष नहीं कहते हैं आपस्तम्बमें यह लिखा है कि, यह आरम्भ करके ब्रह्मतेजकी इच्छावाला आठवेंमें, तेजकी इच्छावाला नवेंमें अन्न आदिकी इच्छावाला दशवेंमें, इन्द्रियकी इच्छावाला ग्यारहवेंमें पशुकी इच्छावाला बारहवेंमें

तत्र गौणकालनिर्णयः । गौणकालमाह मनुः-"आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ " ज्योतिर्निबंधे- "अग्रजा बाहुजा वैश्याः स्वावधेरूर्ध्वमव्रतः । अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः ॥ " गर्गः-"विप्रं वसन्ते क्षितिपं निदाघे वैश्यं घनान्ते व्रतिनं विदध्यात् । माघादिशुक्रान्तिकपश्चमासाः साधारणा वा सकलद्विजानाम् ॥" हेमाद्रौ ज्योतिषे-'माघादिषु च मासेषु मौञ्जी पश्चसु शस्यते ॥' कालादर्शे वृद्धगार्ग्यः- "माघादिमासषट्के तु मेखलाबन्धनं मतम् । चूडाकरणमङ्गं च श्रावणादौ विवर्जयेत् ॥ " मैत्रेयसूत्रेपि-' वसन्तो ग्रीष्मः शरत् इत्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण माघादिषण्मासा वा सर्ववर्णानामेतदुदगयनमनयोर्विकल्पः ' इति ॥ अत्रेदं तत्त्वं, नात्र वसन्तेनोत्तरायणस्य संकोचः । श्राद्धदर्शस्यापराह्णविधिनेवाधाने वसन्तादेः कृत्तिकादिने च सायंप्रातर्विधिना यावज्जीवविधेरिव युक्तः । आद्ययोः परस्परव्यभिचारान्नियमः । अंत्ये निमित्ते साङ्गकर्मोक्तेः कालापेक्षा । इह तूत्तरायणं

यज्ञोपवीत करै ॥ अब गौण समय कहते हैं कि, सोलह वर्षपर्यन्त ब्राह्मणको, बाईस वर्षपर्यन्त क्षत्रियको, चौबीस वर्षपर्यन्त वैश्यको गायत्री उल्लंघन नहीं करती, ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका अपनी अवधिके वर्ष ऊपरले वर्षमें यज्ञोपवीत न होय तो वे सम्पूर्ण शूद्रके तुल्य हो जाते हैं, गार्ग्यने कहा है कि, ब्राह्मणका वसन्तमें, क्षत्रीका ग्रीष्मऋतुमें, वैश्यका शरदृतुमें यज्ञोपवीत करना चाहिये, और माघसे लेकर ज्येष्ठपर्यन्त पांच मास सब द्विजोंको साधारण हैं अर्थात् इन महीनोंमें सब द्विज यज्ञोपवीत करैं, हेमाद्रिमें ज्योतिषका कथन है कि, माघ आदि पांच महीनोंमें मौंजीबन्धन (यज्ञोपवीत) श्रेष्ठ है ॥ कालादर्शमें वृद्धगार्ग्य कहते हैं कि, माघ आदि छः महीनोंमें मेखलाबन्धन (यज्ञोपवीत) और चूडाकर्म करै, और श्रावण आदि महीनोंको त्याग दे, मैत्रेयसूत्रमें भी कहाहै कि, वसंत ग्रीष्म शरद् ये तीनों ऋतु तीनों वर्णोंको क्रमसे हैं वा माघ आदि छः महीने उत्तरायण कालमें करै इन दोनोंका विकल्प है, अर्थात् तीनों वर्ण चाहे वसंत आदि ऋतुमें चाहे माघ आदि छः मासोंमें यज्ञोपवीत करैं, इसमें यह सिद्धान्त है कि, यहां वसंतसे उत्तरायणका संकोच उस प्रकार नहीं कहा है, जैसे अमावास्याके श्राद्धका अपराह्णविधिसे कहते हैं, और जैसे अग्न्याधानमें वसंतका कृत्तिका नक्षत्रसे और जैसे यावज्जीव अग्निहोत्रविधिको सायंकाल प्रातःकाल विधिसे संकोच प्राप्त होता है, प्रथम दोनोंमें परस्पर व्यभिचार दोष हैं, अर्थात् दर्शविना अपराह्ण और वसंतविना कृत्तिका । इससे नियम करदिया है कि, वसंतकी कृत्तिकामें ही करै, तीसरेमें किसी निमित्तसे सांगोपांग कर्मके कहनेसे कर्मकालकी अपेक्षा प्राप्त है अर्थात् जबतक जिये अग्निहोत्र करै, परन्तु इसने यह नहीं कहा कब करै, इससे ' सायंप्रातर्जुहुयात्' इस वाक्यने सायंकाल प्रातःकालकी प्राप्ति बताई, यहां तो उत्तरायणके विना वसंत प्राप्त हो नहीं सकता, इससे न नियम है और न इसमें निमित्त

विना वसन्तस्याभावान्नानियमः । न वा निमित्तत्वम् । न चैकं वृणीत इतिवद्- वयुत्यानुवादः । तद्वाक्यभेदापरिहारात् ॥ उत्तरायणविधिवैयर्थ्यात्त्वनुकल्पो- यमिति । माघ आदिर्येषां पञ्चानां एवं षट् । पारिजाते बृहस्पतिः-"झषचाप- कुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः । अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ॥ " वृत्तशते-"न जन्मधिष्ण्ये न च जन्ममासे न जन्मकालीयदिने विदध्यात् । ज्येष्ठे न मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुताया अपि मङ्गलानि ॥ " राजमार्तण्डः- "जातं दिनं दूषयते वसिष्ठो ह्यष्टौ च गर्गो नियतं दशात्रिः । जातस्य पक्षं किल भागुरिश्च शेषाः प्रशस्ताः खलु जन्ममासि ॥ जन्ममासे तिथौ भे च विपरीत- दले सति । कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्गभार्गवशौनकाः ॥ जन्ममासनिषेधेपि दिनानि दश वर्जयेत् । आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्युस्तिथयोपरे ॥ ३ ॥ " ग्रन्था- न्तरे-" व्रते जन्मत्रिखारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चनात्सकृत् । शुभोतिकाले तुर्याष्टव्य- यस्थो द्विगुणार्चनात् ॥ शुद्धिर्नैव गुरोर्यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि । चैत्रे मीनगते

है, यदि कोई शंका करै कि, ' एकं वृणीत ' नाम एक ब्राह्मणका वरण करै इसके समान पृथक् करके अनुवाद है, अर्थात् ब्राह्मणोंका वरण करै, इससे ही एकका वरण प्राप्त था जैसे एकका वरण करै यह सिद्धका कथनरूप अनुवाद है, इसी प्रकार उत्तरायणकी विधिसेही यज्ञोपवीत सिद्ध होगया था वसन्तमें करै यह भी सिद्धका कथनरूप पृथक् करके अनुवाद है, सो उचित नहीं इसमें भी पूर्वोक्तके तुल्य वाक्यभेदरूप दोषका परिहार प्राप्त न होगा, अर्थात् माघआदिमें उत्तरा यणमें करै और वसन्तमें करै ये दो विधान करनेवाले वाक्य हो जायँगे, इससे उत्तरा- यणमें यज्ञोपवीत करै, इस विधिके व्यर्थ हो जानेसे वसन्तमें करै, यह अनुकल्प है, यह इतना यहां निचोड है, यहां माघ आदिमें पांच और एक माघ अर्थात् जिन पांचकी आदिमें माघ है इस प्रकार छः मास लेने कारण कि, यह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है, पारिजातमें बृहस्पतिने कहा है कि, मीन धन कर्कका अशुभ भी बृहस्पति विवाह यज्ञोपवीत आदिमें अत्यन्त शुभको करता है, वृत्तशतमें कहा है कि, जन्मका नक्षत्र जन्मका महीना जन्मके दिनमें और जेठे पुत्र और जेठी कन्याका ज्येष्टमासमें मंगलकार्य न करै, राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, वसिष्ठ जन्मके एक दिनको और गर्गऋषि जन्मसे आठ दिन और अत्रिऋषि जन्मसे दश दिन और भागुरि जन्मसे एक पक्षको अनिष्ट कहते हैं शेष दिन जन्मके मंगलकार्योंमें श्रेष्ठ हैं, यदि जन्मके महीने तिथि और नक्षत्रमें पक्षका भेद होय तो मंगलकार्य करलेना यह गर्ग भार्गव शौनकका मत है, जन्ममासके निषेधमें भी जन्मदिनसे लेकर दशदिन त्याग दे शेष तिथि श्रेष्ट हैं ग्रन्थान्तरमें कहा है कि, यज्ञोपवीतमें जन्मका तीसरा छठा बृहस्पति एक वार पूजनसे उत्तम है अतिकाल होगया होय तो छठा आठवां बारहवां भी दूने पूजनसे श्रेष्ठ है, यदि आठवें वर्षमें जिस बालककी बृहस्पतिकी शुद्धि न हो, उसका यज्ञोपवीत चैत्रमास और मीनके सूर्यमें उत्तम है ॥ जन्मसे

-भानौ तस्योपनयनं शुभम् ॥ जन्मभादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ । मौञ्जी-बन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥ ३ ॥ " नारदः—"बालस्य बलहीनोपि शान्त्या जीवो बलप्रदः ॥ यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते चोपनायनम् ॥ " शान्तिश्चाग्रे वक्ष्यते ॥ ज्योतिर्निबन्धे नृसिंहः—"तृतीया पञ्चमी षष्ठी द्वितीया चापि सप्तमी । पक्षयोरुभयोश्चैव विशेषेण सुपूजिताः ॥ धर्मकामौ सिते पक्षे कृष्णे च प्रथमा तथा । शुक्लत्रयोदशीं केचिदिच्छन्ति मुनयस्तथा ॥ २ ॥ " टोडरानन्दे वसिष्ठः—"नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपद्दिनम् । मेखलाबन्धने शस्तं चौले वेदव्रतेष्वपि ॥ प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे न पूर्वा परसंयुता ॥ " एतदतीतकालस्यार्तस्य बटोरुपनयनविषयम् । " प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे कदाचिच्छुभगे विधौ । चन्द्रे बलयुते लग्नवर्षाणामपि लंघने " इति व्यासोक्तेरित्याहुः ॥ एवं सप्तम्यपि । तस्या गलग्रहत्वोक्तेः ॥ बृहस्पतिः—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यपञ्चकं विना ॥ ' तथा—'मिथुने संस्थिते भानौ ज्येष्ठमासो न दोषकृत् । ' मदनरत्ने नारदः—"विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे । अपराह्ने चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ " अपराह्णस्त्रिधा विभक्तदिनतृतीयांश इत्युक्तं तत्रैव ।

आठवें, सिंहके नीचके वा शत्रुक्षेत्रके भी बृहस्पति हों तो चैत्रमें मीनके सूर्यमें यज्ञोपवीत श्रेष्ठ है ॥ नारद कहते हैं कि, बलहीन भी बृहस्पति शान्तिसे बालकको बलदायक है इससे शास्त्रोक्त वर्षमें वा अन्य वर्षमें यज्ञोपवीत करलेना, शान्ति आगे लिखेंगे, ज्योतिर्निबन्धमें नृसिंहने कहा है कि, तृतीया पंचमी षष्ठी द्वितीया सप्तमी य दोनों पक्षोंकी तिथि विशेष कर अत्यन्त उत्तम हैं, शुक्लपक्षमें यज्ञोपवीत करै तो धर्म काम सिद्ध होते हैं, और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा और शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको भी कोई मुनि इच्छा करते हैं ॥ टोडरानन्दमेंभी वसिष्ठका वाक्य है कि, कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका दिन नैमित्तिक अनध्याय है, तोभी यज्ञोपवीत मुण्डन और वेदके व्रतोंमें उत्तम है, कृष्णपक्षकी प्रतिपदा उत्तम है, पर अमावास्या और द्वितीयासे युक्त होय तो श्रेष्ठ नहीं है, यह भी उस बालकके यज्ञोपवीतमें जानना जिस बालकके यज्ञोपवीतका काल बीत गया हो कारण कि, व्यासने यह लिखा है कि, कदाचित् कृष्णपक्षकीभी प्रतिपदा तब उत्तम है जब चन्द्रमा उत्तम हो और लग्न बलवान् हो और यज्ञोपवीतके वर्ष बीत गये हों, इसी प्रकार सप्तमीकोभी जानो, अर्थात् चन्द्र आदिके बलमें शुभ जानो कारण कि, वहभी गलग्रह तिथि है, बृहस्पतिने कहा है कि, सम्पूर्ण शुक्लपक्ष और पिछली पांच तिथियोंको त्यागकर और सम्पूर्ण कृष्णपक्षकी शुभ हैं इसी प्रकार वाक्य है कि मिथुनके सूर्यमें ज्येष्ठ मासका दोष नहीं, मदनरत्नमें नारदका कथन है कि, वसन्तसे पृथक् ऋतु कृष्णपक्ष और गलग्रहमें जिसका यज्ञोपवीत हो वह फिर संस्कारके योग्य है, तीन भाग किये हुए दिनके तीसरे भागको अपराह्न कहा

वसन्ते गलग्रहो न दोषायेत्यर्थः ॥ नारदः–"कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादि दिनत्रयम् । त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः ॥" वसिष्ठः–"पापांशकगते चन्द्रे अरिनीचस्थितेऽपि च । अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ अनध्यायस्य पूर्वेद्युस्तस्य चैवापरेऽहनि । व्रतबन्धं विसर्गं च विद्यारम्भं न कारयेत् ॥ २ ॥" राजमार्त्तण्डः–"आरम्भानन्तरं यत्र प्रत्यारम्भो न सिद्ध्यति । गर्गादिमुनयः सर्वे तमेवाहुर्गलग्रहम् ॥" ज्योतिर्निबन्धे–"अष्टकासु च सर्वासु युगमन्वन्तरादिषु । अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदास्वपि ॥" सोपपदास्तु स्मृत्यर्थसारे–"सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता ॥ चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः ॥" एवं प्रदोषस्वरूपमाह गोभिलः–"षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया तु न यामिका ॥" ज्योतिर्निबन्धे व्यासः–"या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य । कृष्णे तृतीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥" अत्रापि कृष्णप्रतिपद्वज्ज्ञेयम् ॥ यत्तु बृहद्गार्ग्यः–"अनध्याये प्रकुर्वीत यस्तु नैमित्तिको भवेत् । सप्तमी माघशुक्ले तु तृतीया चाक्षया तथा । बुधत्रयेन्दुवाराश्च शस्तानि

करते हैं, यह मदनरत्नमेंही लिखा है वसंतऋतुमें गलग्रहका दोष नहीं है ॥ नारदने कहा है कि, कृष्णपक्षकी चौथ और सप्तमीसे तीन दिन और त्रयोदशीसे चार दिन यह गलग्रह तिथि हैं, वसिष्ठने कहा है कि, पापके नवांशेमें चन्द्रमा हो वा शत्रुघरका और नीचका चन्द्रमा हो वा अनध्याय हो ऐसे योगमें जिसका यज्ञोपवीत हुआ हो वह फिर संस्कारके योग्य है, अनध्यायके प्रथम दिन वा परले दिन यज्ञोपवीत विसर्जन और विद्यारम्भ न करना चाहिये, राजमार्तण्डमें कहा है, कि, गर्ग आदि मुनियोंने इसको भी गलग्रह कहा है, जहां आरम्भके उपरान्त प्रत्यारम्भ (विसर्जन) न बनै, ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, सम्पूर्ण अष्टका और मन्वन्तरादि और सोपपदामें यज्ञोपवीतका अनध्याय करना चाहिये, स्मृत्यर्थसारमें सोपपदा तिथि यह लिखी है कि, ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, आश्विन शुक्ल १० दशमी, माघ शुक्ल चौथ, और द्वादशी इसी प्रकार प्रदोष दिनको भी छोडदे, प्रदोषका रूप गोभिलने इस प्रकार लिखा है कि, षष्ठी और द्वादशी ये आधी रातसे एक घडी न्यून होय तो प्रदोष करै ॥ ज्योतिर्निबन्धमें व्यासने कहा है कि, चैत्र और वैशाख शुक्ल तीज और माघ शुक्ल सप्तमी और फाल्गुन कृष्ण तीज ये तिथि यज्ञोपवीतमें भारद्वाज मुनिराजने श्रेष्ठ कही हैं, यहांभी कृष्णप्रतिपदाके तुल्य चन्द्रमाके बलमें ही इनको शुभ जानना, जो वृद्धगार्ग्यने यह कहा है कि, जो कर्म किसी निमित्तसे किया जाय तो उसे अनध्यायमें भी कर लेना चाहिये, माघ शुक्ल सप्तमी अक्षय तीज बुध बृहस्पति शुक्र चंद्र

व्रतबन्धने " इति तत्प्रायश्चित्तार्थोपनयनविषयम् ॥ "स्वाध्यायविमुक्ता ये प्रोक्ताः कृष्णप्रतिपदादयः । प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेखलाबन्धने मताः ॥" इति दैवज्ञोक्तेरिति निर्णयामृतकालादर्शौ । यद्यप्यथोपेतपूर्वस्येत्युक्त्वा अनिरुक्तं परिदानं कालश्चेत्याश्वलायनेन पुनरुपनयने कालानियम उक्तः । तथापि निमित्तानन्तरमेव सः । तदानीमकरणे तु पूर्वोक्तकालो ज्ञेयः । प्रतिवेदमुपनयने कालानियम इति तु युक्तम् ॥ गर्गः—"ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे । व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥" स्कन्दे तु चण्डेश्वरः—"दाहे दिशां चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे च । केतौ तथोल्काशकलप्रपाते त्र्यहं न कुर्याद्व्रतमङ्गलानि ॥" तत्रैव—"वेदव्रतोपनयने स्वाध्यायाध्ययने तथा । न दोषो यजुषां सोपपदास्वध्ययनेऽपि च ॥" हेमाद्रौ ज्योतिषे—"हस्तत्रये पुष्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादितिविष्णुभेषु । शस्ते तिथौ चन्द्रबलेन युक्ते कार्यौ द्विजानां व्रतबन्धमोक्षौ ॥" ज्योतिर्निबन्धे नारदः—"श्रेष्ठान्यर्कत्रयान्त्येज्यचन्द्रादित्युत्तराणि च । विष्णुत्रयाश्विमित्राब्जयोनिभान्युपनायने ॥"

ये चार यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं यह वृद्ध गार्ग्यका कथन भी उस यज्ञोपवीतमें समझना चाहिये, जो प्रायश्चित्तके निमित्त किया जाय कारण कि, दैवज्ञोंने यह लिखा है कि स्वाध्यायमें वर्जित (अनध्यायके) दिन और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा आदि ये उस यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं जो प्रायश्चित्तके निमित्त हो यह निर्णयामृत और कालादर्शमें कहा है, यद्यपि आश्वलायनने फिर उपनयनमें समयका नियम नहीं लिखा है कि, जिसका प्रथम यज्ञोपवीत हो गया हो उसके, यज्ञोपवीतका देना, और समय नहीं लिखा तथापि निमित्तके उपरान्त (पीछे) ही वह समय अनियम जानना चाहिये उस समय न करै तो पूर्वोक्त समयही जानना, युक्त तो यह है कि, प्रतिवेद यज्ञोपवीतमें समयका नियम नहीं ॥ गर्गने लिखा है कि, सूर्यचन्द्रमाका ग्रहण भूमिका कंप केतुतारेका निकलना बिजलीका गिरना आदि दोष होय तो यज्ञोपवीतमें ज्योतिषी दश दिनका निषेध कहते हैं और कोई तेरह दिन त्यागको कहते हैं स्कन्दमें तो चंडेश्वरने यह लिखा है कि, दिशाओंका दाह भूमिका कम्प वज्रका गिरना और धूमयुक्त केतुका निकलना और बिजलीके टुकडेका गिरना इनमें तीन दिनतक यज्ञोपवीत और मंगलके कार्योंको न करै, यजुर्वेदियोंको सोपपद और अनध्यायका दोष वेदव्रत और यज्ञोपवीत और वेदपाठमें नहीं है यह वहांही कहा है, हेमाद्रिमें ज्योतिषका कथन है कि, हस्तसे तीन पुष्य धनिष्ठा रेवती अश्विनी मृगशिर पुनर्वसु श्रवणसे और चन्द्रमाके बलसे युक्त श्रेष्ठ तिथिमें द्विजातियोंका यज्ञोपवीत और विसर्जन करने चाहिये ॥ ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, हस्तसे तीन रेवती पुष्य पुनर्वसु तीनों उत्तरा श्रवणसे तीन अश्विनी

बृहस्पतिः-" त्रिषूत्तरेषु रोहिण्यां हस्ते मैत्रे च वासवे । त्वाष्ट्रे सौम्यपुनर्वस्वोरुत्तमं ह्युपनायनम् ॥" ज्योतिर्निबन्धे-" पूर्वाहस्तत्रये सार्पश्रुतिमूलेषु बह्वृचाम् । यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्यमृदुध्रुवैः ॥ सामगानां हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः। धनिष्ठादितिमैत्रार्केष्विन्दुपौष्णेष्वथर्वणाम् ॥" राजमार्तण्डस्तु ब्राह्मणस्य पुनर्वसुं निषेधयति-" ताराचन्द्रानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि । पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति ॥ " ज्योतिर्निबन्धे नारदः-" सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः प्रोक्ता व्रते शुभाः । चन्द्रार्कौ मध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः ॥ शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं तथा । शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते ॥ २ ॥ " शाखाधिपाश्च रत्नसंग्रहे-"ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमासिताः । जीवसितौ विप्राणां क्षत्रस्यारोष्णगू विशां चन्द्रः" इति ॥ पारिजाते बृहस्पतिः-" बह्वृचानां गुरोर्वारे यजुर्वेदजुषां बुधे । सामगानां धरासूनोरथवा विदुषां रवेः ॥ " अत्र लग्नशुद्ध्यादि दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ॥ विस्तरभयान्नोच्यते ॥ लल्लः-"व्रतेह्नि पूर्वसंध्यायां वारिदो यदि गर्जति । तद्दिने स्यादनध्यायो व्रतं तत्र विवर्जयेत् ॥ "

अनुराधा भरणी ये नक्षत्र यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं । बृहस्पतिने कहा है कि, तीनों उत्तरा रोहिणी हस्त अनुराधा धनिष्ठा चित्रा मृगशिर पुनर्वसु यज्ञोपवीतमें श्रेष्ठ हैं, ज्योतिर्निबंधमें कहा है कि, तीनों पूर्वा और हस्तसे तीन आश्लेषा श्रवण मूलमें बह्वृचों (ऋग्वेदियों) का, और रेवती अनुराधा हस्त और पुनर्वसु मृदुसंज्ञक और ध्रुवसंज्ञकमें यजुर्वेदियोंका, श्रवण आर्द्रा हस्त धनिष्ठा पुष्य तीनों उत्तरा अश्विनीमें सामवेदियोंका, और धनिष्ठा पुनर्वसु अनुराधा हस्त मृगशिर रेवतीमें अथर्ववेदियोंका यज्ञोपवीत करना उत्तम है, राजमार्तण्ड तो ब्राह्मणको पुनर्वसुका निषेध लिखते हैं कि, तारा और चन्द्रमा अनुकूल हों और ग्रह और वर्ष शुभभी होंय तो भी पुनर्वसुमें यज्ञोपवीत किया हुआ ब्राह्मण फिर संस्कारके योग्य है ॥ ज्योतिर्निबंधमें नारदने कहा है कि बृहस्पति शुक्र बुधवार सबके यज्ञोपवीतमें उत्तम कहे हैं, और चन्द्रमा और सूर्य मध्यम जानने और वैश्य और क्षत्रियको मंगल उत्तम है । शाखाके स्वामीका वार और शाखाके स्वामीका बल और शाखाके स्वामीकी लग्न ये तीन यज्ञोपवीतमें दुर्लभ हैं ॥ शाखाके स्वामी रत्नसंग्रहमें यह लिखे हैं कि, ऋक्, साम, अथर्व, यजुर्वेदियोंके स्वामी क्रमसे बृहस्पति, बुध, मंगल, शुक्र होते हैं बृहस्पति और शुक्र ब्राह्मणोंके स्वामी क्षत्रियोंके मंगल और सूर्य, वैश्योंका स्वामी चन्द्रमा होता है पारिजातमें बृहस्पतिने कहा है कि, ऋग्वेदियोंका वार बृहस्पति, यजुर्वेदियोंका बुध, सामवेदियोंका मंगल, और अथर्ववेदियोंका सूर्य होता है, यज्ञोपवीतमें लग्न आदि ज्योतिषियोंसे जानने चाहिये, यहां विस्तारभयसे नहीं लिखते ॥ लल्लने लिखा है व्रतके दिन यदि

ज्योतिर्निबन्धे-"नान्दीश्राद्धं कृतं चेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः । तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भं न कारयेत् । " एतद्बह्वृचातिरिक्तानाम् ॥ तेषां तद्दिने वेदारम्भाभावात् । अतस्तेषामुपनयनं न भवत्येव ॥ ऐतरेयोपनिषदि-'मृगादिज्येष्ठान्तं वर्षर्तुः ॥ तं विना वर्षादौ त्रिरात्रमनध्यायः ' इति वेदभाष्ये उक्तम् । एतच्च प्रातस्तनिते सायंस्तनिते तु दिवैव चरुं श्रपयित्वा सायंसंध्योत्तरं होमं कुर्यात् । "न संध्यागर्जिते काले न वृष्ट्युत्पातदूषिते । ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वं चेन्न निवर्तते ॥ ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वमन्नं न दुष्यति । " इति संग्रहोक्तेः । इति प्रयोगरत्ने भट्टचरणाः ॥ सायंगर्जने शान्तिनिर्णयः । अत्र शान्तिरप्युक्ता नृसिंहप्रसादे । "ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं यदि । तदा विघ्नकरं ज्ञेयं बटोरध्ययनस्य तत् ॥ तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियज्ञे भवेत् ॥ सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान्पठेत्प्रज्ञाविवृद्धये । गायत्री चैव मन्त्रः स्यात्प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा ॥ धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत् ॥ " उपनयने चाधिकारिणः । माधवीये वृद्धमनुनोक्ताः-" पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः । उपानयेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे परः परः ॥ "

प्रातःसंध्यामें मेघ गर्जे तो अनध्याय हो जाता है, इससे उसमें व्रतका त्याग देना ज्योतिर्निबंधमें यह कहा है कि, यदि नान्दीमुख श्राद्ध किये उपरान्त अकालिक अनध्याय होजाय तो उपनयन कर लेना और वेदारंभको न करै बह्वृचोंका (असमय) अनध्यायमें वेदारंभ नहीं होता इससे यह ज्योतिर्निबंधका कहना तिनसे भिन्नोंके निमित्त है इससे तिनका असमय अनध्यायमें यज्ञोपवीत नहीं होता, ऐतरेय उपनिषद्में मृगशिरसे ज्येष्ठातक वर्षा ऋतु है उसके विना वर्षाऋतुमें तीन रात्रका अनध्याय है यह वेदभाष्यमें कहा है, प्रयोगरत्नमें भट्टचरणोंने यह लिखा है कि, यह वाक्य प्रातःकालके गर्जनेके विषयमें है, यदि संध्यामें गर्जै तो दिनमें पकाये हुये चरुका संध्याके उत्तर सायंकाल हवन करले, कारण कि संग्रहमें लिखा है कि, संध्याके समय गर्जनेमें और बिजली आदिके उत्पातमें ब्रह्मौदन (चरु) को अग्निमें पकाना न चाहिये, वे और पकाहुआ अन्न इनमें दूषित नहीं होता ॥ इस स्थलमें नृसिंहप्रसादमें शान्तिभी लिखी हैं, कि, यदि प्रदोषके समय ब्रह्मौदनविधि (यज्ञोपवीतके भात) से पूर्व मेघ गर्जै तो वह विद्यार्थीको अध्ययनका विघ्नकारी समझना चाहिये उसकी शान्ति मैं शास्त्रके अनुसार लिखता हूं कि, शान्तिहवनमें घीसहित (खीर) प्रधान है इससे इनका होम करै, और बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धिकी वृद्धिके निमित्त बृहस्पतिसूक्त तथा गायत्री पढे, और प्रायश्चित्त होमको घृतसे करै, दूध देती हुई बछडासहित गौ आचार्यको दे, फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे फिर ब्रह्मौदन विधिको करै ॥ उपनयन करानेमें अधिकारी माधवीय ग्रन्थमें मनुने ये लिखे हैं कि, पिता, दादा, भाई, जातिके मनुष्य, और सगोत्री, तथा ब्राह्मण यज्ञोपवीत करानेके अधिकारी हैं, और इनमें पूर्वालाभ होय तो

प्रयोगरत्ने–" पितैवोपनयेत्पुत्रं तदभावे पितुः पिता । तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः ॥ " पितेति विप्रपरं, न क्षत्रियादेः । तेषां पुरोहित एव । उपनयनस्य दृष्टार्थत्वात् । तेषां चाध्यापनेऽनधिकारात् । अत्र पितृव्यस्य ज्येष्ठभ्रात्रभावेऽधिकारः । 'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ तेनेदमविभक्तपरम् । पूर्वं तु विभक्तपरम् । मातू रजोदोषे तु प्रागुक्तम् ॥ अथ पण्ढमूकादीनां विशेषः । प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे–" ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स इति श्रुतिः । तस्माच्च पण्ढबधिरकुब्जवामनपंगुषु ॥ जडगद्गदरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु । मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ॥ ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् । मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्याविति केचित्प्रचक्षते ॥ कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति चैतयोः । तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा ॥ संस्कारमन्त्रहोमादीन्करोत्याचार्य एव तु । उपनेयांश्च विधिवदाचार्यस्य समीपतः । आनीयाग्निसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत् । कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥ एवमेव द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्ड-

---

परंपरका ग्रहण है, अर्थात् पिता न होय तो पितामह इत्यादि, प्रयोगरत्नमें भी लिखाहै कि, पिताही पुत्रका उपनयन करै, वह न होय तो पितामह और उसके अभावमें चाचा, यदि पितृव्य न होय तो सगा भाई यज्ञोपवीत करावै, पिताभी ब्राह्मणोंके निमित्त है, क्षत्रियादिको नहीं, कारण कि, उपनयनका दृष्टार्थ इस लोकके निमित्त होनेसे पुरोहित ही अधिकारी है, और क्षत्रिय आदिकोंका वेदके पढानेमें अधिकार नहीं है, और यहां पितृव्यकाभी ज्येष्ठभाईके न होनेमेंही अधिकार है कारण कि याज्ञवल्क्यने लिखाहै जिन भाइयोंका संस्कार नहीं हुआ उनका प्रथम संस्कृत भाई संस्कार करै, तिससे यह अविभक्त (अभिन्न) पर है विभक्तपर नहीं माताको रजोदर्शन होय तो यज्ञोपवीतका करना प्रथम कह आये हैं ॥ अब नपुंसक और मूक (गूंग) आदिमें विशेष कथन करतेहैं, प्रयोगपारिजातमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, ब्राह्मणीमें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै वह ब्राह्मण होता है, यह श्रुति है, उससे उत्पन्न हुये नपुंसक बहरे कुबडे वामने लंगडे हैं जड तोतले रोगी शुष्क और विकल अंगवाले हैं, वा मत्त उन्मत्त गूंगे हैं, वा निद्रालु और इन्द्रियसे रहित हैं वा पुंस्त्वहीन होगये हैं इनका भी यथोचित संस्कार करना कोई यह कहतेहैं कि, इन दो मत्त उन्मत्तका संस्कार न करै, ये दोनों पतित तो नहीं हैं. पर इनका कर्ममें अधिकार नहीं. उनकी सन्तान संस्कार करने योग्य हैं, कोई तो इससे अन्यथा कहते हैं कि, उनके संस्कार होम आदि आचार्यको करने चाहिये, यज्ञोपवीत करने योग्य नपुंसक आदिको आचार्य विधिसे अपने निकट लाकर और अग्निके पास बैठाकर और स्पर्श करके गायत्रिका जप करे, निदान कन्यादान करनेसे भिन्न सब कर्मको आचार्य करै इसी प्रकार ब्राह्म-

गोलकौ ॥ ७ ॥ " इति ॥ स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥ कुण्डगोलकयोः संस्कार्यत्वं श्राद्धे निषेधश्च क्षेत्रजपुत्रविषयः । अन्यस्य-' विन्नास्वेष विधिः स्मृतः ' इति वचनात् । अब्राह्मण्येनोपनयनाद्यप्राप्तेरित्यपरार्कः । उपनयनं च कुमारं भोजयित्वा कार्यम् । 'प्रागेवैनं तदहर्भोजयन्ति ' इति मदनपारिजाते गोभिलोक्तेः ॥ गायत्र्युपदेशश्चोत्तरतोग्नेः कार्यः । 'उत्तरेणाग्निमुपविशतः । प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुख इतरोऽधीहि भोः' इति शांखायनसूत्रोक्तेः ॥ यद्यपि कात्यायनेन- ' तथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोग्नेः प्रत्यङ्मुखाय ' इत्युक्त्वा 'दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके ' इति विकल्प उक्तः ॥ तथापि कातीयानामेव सः बह्वृचानां तूत्तर एव वेदैक्यात् ॥ भिक्षायां विशेषनिर्णयः । भिक्षायां विशेषमाह कात्यायनः-'मातरमेवाग्रे भिक्षेत । ' पराशरमाधवीये-"मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ॥ " संस्कारलोपे निर्णयः । अथ संस्कारलोपे शौनकः-" आरभ्याधानमाचौलात्कालेऽतीते तु कर्मणाम् । व्याहृत्याग्निं तु संस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम् ॥ एतेष्वेकैकलोपे तु पादकृच्छ्रं समाचरेत् । चूडायामर्धकृच्छ्रं स्यादापदि त्वेवमीरितम् ॥ अनापदि

गोंसे उत्पन्न हुये कुण्डगोलकभी संस्कार करने योग्य हैं, पतिके जीते हुये जारसे उत्पन्न हुयेको कुण्ड और मरे पीछे जारसे उत्पन्न हुयेको गोलक कहतेहैं स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखाहै, कुण्डगोलकका संस्कार और श्राद्धमें निषेध क्षेत्रज पुत्रके विषयमें है, औरको ब्राह्मण न होनेसे यज्ञोपवीतकी प्राप्तिही नहीं है यह अपरार्कका कथन है, यज्ञोपवीत बालकको भोजन कराकर करना, कारण कि, मदनपारिजातमें गोभिलने यह लिखा है कि, यज्ञोपवीतमें बालकको पहले ही भोजन करावै ॥ गायत्रीका उपदेश अग्निसे उत्तर दिशामें करै, कारण कि शांखायन सूत्रमें यह लिखाहै कि, अग्निसे उत्तरमें बैठेहुये पश्चिममुख बालकको पूर्वमें बैठाहुआ आचार्य यह कहै, भो वटो ! अध्ययन करो यद्यपि कात्यायनने यह विकल्प लिखाहै कि इसके उपरान्त वटुको गायत्रीका उपदेश अग्निसे उत्तर पश्चिममुख बैठे हुएको करै, यह कहकर कोई लिखते हैं कि, दक्षिणकी ओर बैठे हुयेको उपदेश करै, तथापि यह कात्यायनोंके निमित्त है बह्वृचोंको तो उत्तरमें ही उपदेश करै, कारण कि, उनका एकही वेद है ॥ कात्यायनने भिक्षामें विशेष लिखा है कि पहिले मातासेही भिक्षा मांगे, पराशरमाधवीयमें लिखाहै कि, माता बहिन मौसी इनसे प्रथम भिक्षा मांगे अथवा जो इसका अपमान न करै उससे मांगे ॥ अब संस्कारके लोप (न होना) में शौनकका कथन है कि, गर्भाधानसे लेकर मुण्डनपर्यन्त संस्कारकाल बीतजाय तो व्याहृतियोंसे वीका संस्कार और हवन करके क्रमसे कर्म करै, यदि इनमें एक २ कर्मका लोप होय तौ चौथाई कृच्छ्र करै मुण्डनके लोपमें आधा कृच्छ्र करै, यह आपत्तिमें लिखाहै, आपत्ति न होय तो सब कर्मोंके लोपमें दूना २प्रायश्चित्त करै॥

तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत् ॥ २ ॥ " पारिजाते कात्यायनः–"लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रायश्चित्ते कृते पश्चाल्लुप्तं कर्म समाचरेत् ॥" स्मृत्यर्थसारे चैवम् ॥ कारिकायां तु–'प्रायश्चित्ते कृतेऽतीते लुप्तं कर्म कृताकृतम्' इत्युक्तम् । "प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै । कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्ये तु विपश्चितः" इति ॥ त्रिकाण्डमण्डने तु–"कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषु च । कालातीतानि कृत्वैव विदध्यादुत्तराणि तु ॥" तत्र सर्वेषां तन्त्रेण नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । देशकालकर्त्रैक्यात् । "गणशः क्रियमाणानां मातॄणां पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ एतद्बहूनामपत्यानां युगपत्संस्कारकरणविषयमिति बोपदेवः । अतीतसंस्काराणां युगपत्करण इत्यन्ये । तत्रापि चौलस्योपनीत्या सहेति पक्षे उपनीतिदिन एवानुष्ठानं न पूर्वदिने । सहत्वस्य दिवसैक्ये सन्निकृष्टतरत्वात् वृद्धाचारोऽप्येवम् ॥ उपनीतिदिने मध्याह्नसंध्यामाह पारिजाते जैमिनिः–" यावद्ब्रह्मोपदेशस्तु तावत्संध्यादिकं च न । ततो मध्याह्नसंध्यादि सर्वं कर्म समाचरेत् " इति ॥ ब्रह्मगायत्री ॥ यत्तु वचनम्–"उपानये तु कर्तव्यं सायंसन्ध्ये उपासनम् । आरभेद्ब्र-

---

पारिजातमें कात्यायनने सब स्थानमें कर्मके लोपमें प्रायश्चित्त लिखाहै, प्रायश्चित्त करने उपरान्त लोप हुए कर्मको करै स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखा है. कारिकामें तो यह लिखा है कि, प्रायश्चित्तके उपरान्त वह कर्म किया भी न करनेके बराबर है जिसका समय बीतगया हो कारण कि, यह कहा है कि, प्रायश्चित्त होनेपर बीता हुआ कर्म करना, यह कोई आचार्य लिखते हैं और अन्य विद्वान् यह कहते हैं कि, न करना. त्रिकाण्डमण्डनमें तो यह लिखा है कि, वे कर्म करने होंय जिनका समय बीतगया हो और अन्य कर्म भी प्राप्त होय तो उन कर्मोंको प्रथम करके जिनका समय बीतगया हो फिर नये कर्मोंको करै ॥ वहां सब कर्मोंका तन्त्र (एक) से ही नान्दीमुखश्राद्ध करै, कारण कि, देश काल करनेवाले यह सब एक हैं. छंदोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, गणसे (एकवार) किये हुए कर्मोंमें माताओंका पूजन और श्राद्ध एकवारही पहिले करले, और भिन्न २ न करै. बोपदेव तो यह लिखते हैं कि, यह उस विषयमें है कि, जब एकवार बहुतसे अपत्यों (सन्तान) का संस्कार हो. और तो यह कहते हैं कि, जिनका समय बीत गया हो; उनके संस्कारोंके विषयमें है, उनमें भी मुण्डन जब यज्ञोपवीतके संग है, उस पक्षमें उपनयनके दिनही नान्दीमुख श्राद्ध करना, पूर्वदिनमें न करना कारण कि, संग करनेमें एक दिनमेंही श्राद्ध अत्यन्त निकट है वृद्धोंका आचरण भी इसी प्रकार है ॥ यज्ञोपवीतके दिन पारिजातमें जैमिनि मध्याह्नसंध्याको कहते हैं कि, जबतक गायत्रीका उपदेश न हो तबतक सन्ध्यादि न करै पीछे मध्याह्न संध्या आदि सब कर्मोंको करै, जो यह लिखाहै कि, यज्ञोपवीतमें सायंसंध्याकी उपासना करै, और

ब्रह्मयज्ञं तु मध्याह्ने तु परेहनि ॥" इति ॥ तच्छाखान्तरविषयमिति पारिजातः । विकल्प इति युक्तं पश्यामः । उपनयनाग्निस्त्रिरात्रं धार्यः–'त्र्यहमेतमग्निं धारयन्ति' इत्यापस्तम्बोक्तेः । बौधायनसूत्रे तु सदा धारणमप्युक्तम्–'उपनयनादिरग्निष्टोमोपासनमित्याचक्षते । पाणिग्रहणादित्येके । नित्यो धार्योऽनुगतो निर्मन्थ्यः' इति ॥ इदं जातारणिपक्षे । अन्यथा मन्थनासम्भवात् ॥ ब्रह्मयज्ञे विशेषः । ब्रह्मयज्ञे विशेषमाह तत्रैव जैमिनिः–" अनूपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः । वेदस्थाने तु सावित्री गृह्यते तत्समासतः ॥ " इति । येषां तद्दिन एव वेदारम्भस्तेषां नेदमिति दिक् ॥ अथ ब्रह्मचारिधर्माः । याज्ञवल्क्यः–" मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ॥ " मनुः—' अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ' वर्जयेदिति प्रकृतम् ॥ पारिजाते कौर्मे–"नादर्शं चैव वीक्षेत नाचरेद्दन्तधावनम् ॥ गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः ॥ " एतन्निषिद्धमध्वादिविषयम् । अन्यस्य गुरूच्छिष्टस्य सर्वदा प्राप्तेः । ' स चेद्व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात्' इति वसिष्ठोक्तेः । ज्येष्ठभ्रातुरित्यपि ज्ञेयम् । 'पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं

ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) का आरम्भ तो प्रथमदिन मध्याह्नमें करै, यह और शाखाके विषयमें है यह विकल्प है, यही हम श्रेष्ठ समझते हैं, उपनयनकी अग्निको तीन राततक रक्खै, कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखाहै कि, इस अग्निको तीन दिनतक धारण करते हैं. बोधायनसूत्रमें तो निरन्तर धारण करना भी लिखा है, किन्हींका यह कथन है कि, उपनयनकी अग्निको उपासनाअग्नि कथन करते हैं, उसको विवाहतक धारण करै, कारण कि, यह लिखाहै कि, मथी हुई अग्निको नित्य धारण करै और संग रक्खै यहभी उस अग्निमें है जो अरणीसे उत्पन्न हुई हो और अग्निके मथनेका असंभव है ॥ ब्रह्मयज्ञमें जैमिनिने वहां ही विशेष लिखाहै कि, यज्ञोपवीतसे प्रथमकी समान ब्रह्मचारी ब्रह्मयज्ञ करै और वेदके स्थानमें आचार्यके निकट गायत्री ग्रहण करै, और जिनका वेदारम्भ उसी दिन होताहै उनको यह वाक्य नहीं (इति दिक्) ॥ अब ब्रह्मचारीके धर्म लिखते हैं, याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, शहत, मांस, अंजन, उच्छिष्ट, शुक्त, पदार्थ स्त्री, और प्राणियोंकी हिंसा, सूर्यदर्शन, कठोर वाक्य, निन्दाको, ब्रह्मचारी सदा त्यागदे, मनुने लिखाहै कि, उबटन नेत्रोंका अंजन जूता और छत्रधारणको त्यागदे ॥ पारिजातमें कूर्मपुराणका वाक्य है कि, सीसा न देखै, दंतोन न करै, गुरुके उच्छिष्टकोही औषधिके निमित्त खाय और जानकर न खाय, यहभी निषिद्ध शहत आदिके विषयमें है, उससे और गुरुका उच्छिष्ट सदा भक्षण करने योग्य है, कारण कि, वसिष्ठने यह लिखाहै कि, जो ब्रह्मचारीको रोग होय तो गुरुकी सम्पूर्ण उच्छिष्टको औषधिके लिये भक्षण करले बडे भ्राताके भी उच्छिष्टमें यह जानना, कारण कि, आप-

भोज्यम्'. इत्यापस्तम्बोक्तेः । गुरुपुत्रे तु स्मृत्यन्तरे उक्तं-"गुरुवद्गुरुपुत्रः स्याद्न्यत्रोच्छिष्टभोजनात् ॥ ' प्रचेताः-"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥" यमः-"मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः ॥ कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी तु धारयेत् । अग्नीन्धनं भैक्षचर्य्यामधःशय्यां गुरोर्हितम् ॥ " कुर्यादिति शेषः ॥ मेखलामाहाश्वलायनः-'तेषां मेखला मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्यावी वैश्यस्य ' इति : ॥ आचार्यः-" त्रिवृता मेखला काया त्रिवारं स्यात्समावृता । तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा पुनः ॥" मनुः-"मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला । त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा । मौञ्ज्यभावे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः॥ " अत्र प्रवरसंख्यानियम इति वृद्धाः ॥ अथ दण्डाः । मनुः-"ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ । पैप्पलौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥" एषामभावे गौतमः-' यज्ञियो वा सर्वेषां मूर्धललाटनासाप्रमाणः ' इति ॥ अजिननिर्णयः । अजिनमाहाश्वलायनः--' अहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वाजिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्' इति ॥ यद्यप्यैणेयशब्देन मृगी-

स्तम्बने यह लिखा है कि, पिता और बडे भाईका उच्छिष्ट भोजन करने योग्य है. गुरुपुत्रके विषयमें तो स्मृत्यर्थसारमें यह लिखा है कि, उच्छिष्ट भोजनको त्यागकर गुरुका पुत्रभी गुरुके समान है. प्रचेताने कहा है कि, पान उवटना कांसीके पात्रमें भोजन करना इनको संन्यासी ब्रह्मचारी और विधवा त्यागदे. यमने कहा है कि, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कौपीन और कटिसूत्रको ब्रह्मचारी निरन्तर धारण करै, और अग्निके निमित्त ईंधन, और भिक्षा लावै, गुरुसे नीचे सोना चाहिये गुरुका हित करै ॥ आश्वलायनने मेखला लिखी है कि, ब्राह्मणकी मेखला मूञ्जकी, क्षत्रीकी धनुषके प्रत्यंचाकी, और वैश्यकी भेडके ऊनकी होती है, आचार्यने यह कहा है कि, तीन सूतकी मेखला निर्माण करै, फिर उसको तीन वार करै, उसमें तीन पांच वा सात गांठ लगावै. मुनिने लिखा है कि, मूञ्जकी मेखला तीन तारकी एकसी चिकनी ब्राह्मणकी बनावै और तिगुनी उसमें तीन एक वा पांच गांठ लगावै, और मूञ्जी न मिलै तो कुश अश्मंतक और बल्वजकी बनावै इसमें प्रवर संख्याका नियम है ऐसा वृद्ध कहते हैं ॥ अब दण्डोंको लिखते हैं कि, ब्राह्मण बेल और ढाकका, क्षत्रिय वट और खैरका, वैश्य पीपिल और गूलरका दण्ड धर्मपूर्वक धारण करै, यह न मिलैं तो गौतमने यह कहा है कि, अथवा सबका दण्ड यज्ञके वृक्षके निर्माण करै, और शिर, मस्तक, नासिकाके अग्रभागतक प्रमाणवाले दण्ड ब्राह्मण क्षत्री वैश्यके क्रमसे निर्माण करै ॥ आश्वलायनने चर्मको यह लिखा है, नवीन वस्त्रसे ढके ब्राह्मणका चर्म ऐणेय (मृग) होता है, क्षत्रियका रुरु मृगका, और वैश्यका बकरेके चर्मका होता है, यद्यपि ऐणेयपदसे मृगीका चर्म लिखा है क्योंकि

चर्मैवोच्यते 'एण्या ढञ्' इति पाणिनिस्मृतेः । 'ऐणेयमेण्याश्चर्माद्यमेणस्यैणमुभे त्रिषु' इति अमरकोशाच्च । तथापि—'कृष्णरुरुवस्ताग्न्यजिनानि' इति शंखोक्तेः । 'सर्वेषां वा रौरवम्' इति यमोक्तेश्च मृगचर्मणा सह विकल्पो ज्ञेयः । वस्त्राजिनयोस्तु विकल्पः । 'कार्पासं वा विकृतम्' इति गौतमोक्तेः ॥ अथ यज्ञोपवीतम् । मनुः—'कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् ॥' पारिजाते देवलः—"कार्पासक्षौमगोवालशणवल्वतृणादिकम् । यथासंभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥ शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहतांगुलिमूलके । आवर्त्य षण्णवत्या तत्त्रिगुणीकृत्य यत्नतः ॥ अब्लिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् । अप्रदक्षिणमावृत्य सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् ॥ ततः प्रदक्षिणावर्त्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् । त्रिरावेष्ट्य दृढं बद्ध्वा ब्रह्मविष्ण्वीश्वरान्नमेत् ॥ ४ ॥" तन्नवतन्तु कार्यम् । 'सावित्र्या त्रिगुणं कुर्यान्नवसूत्रं तु तद्भवेत्' इति तेनैवोक्तेः ॥ छन्दोगपरिशिष्टे—"त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् । त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥" ऊर्ध्ववृतं दक्षिणं करमूर्ध्वं कृत्वा वालितम् ॥ भृगुः—'वामावर्तवलितं त्रिगुणं कृत्वा दक्षिणा-

---

(एण्या ढञ्) इस पाणिनिके सूत्रसे और एणीके चर्मको ऐणेय और एणके चर्मको ऐण और यह दोनों चर्म तीनों लिंगमें पुरुष स्त्री नपुंसक हैं, इस अमरकोशसे मृगीका चर्म प्राप्त है मृगका नहीं तथापि काला और रुरुमृग और मेंढा इनके चर्म तीनों वर्णोंके क्रमसे होते हैं, इस शंखके वाक्यसे वा सबके चर्म रुरुके होते हैं इस यमके वाक्यसे मृगचर्मके संग मृगीचर्मका विकल्प समझना, अर्थात् दोनोंमेंसे किसीको धारण करै, कारण कि, गौतमने यह लिखा है कि, वस्त्र और चर्ममें विकल्प है वा इस प्रकारका वस्त्र हो जो फटा न हो ॥ अब यज्ञोपवीतको कहते हैं, मनुने लिखा है कि, ब्राह्मणका यज्ञोपवीत कपासका और ऊपरको तिगुणना मेला (बटा) हुआ होता है, मदनपारिजातमें देवलने कहा है कि, तीनों द्विजाति कपास, पाट, गौके बाल, सन, वल्वतृण आदिका यज्ञोपवीत यथासम्भव धारण करैं, शुद्ध देशमें शुद्ध सूत्रको संमिलित अंगुलियोंके मूलमें छानवे बार गिनके फिर उसे बलसे तिगुना करके जलके नामवाले मन्त्रोंसे धोकर ऊपरको मेंठे, और तिगुने किये उसको प्रदक्षिणा क्रमसे बटकर तिगुना करै फिर प्रदक्षिणा बटनेसे नव ९ सूत्र होते हैं, उसे तीन बार लपेटकर और दृढतासे बांधकर ब्रह्मा विष्णु शिवको प्रणाम करै, यज्ञोपवीतके तन्तु करने, और गायत्रीसे तिगुना करके नवसूत्र हो जाते हैं यह उन्होंने ही लिखा है छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, तीन तन्तु ऊर्ध्व बटकर नीचे बटै, फिर तिगुना करके यज्ञोपवीत होता है, उसकी एक ग्रन्थि देनी इष्ट है, ऊर्ध्ववृत उसको कहते हैं जो दक्षिण हाथको ऊँचा करके धारण किया जाय । भृगुने लिखा है कि, बाईं ओरके मेलसे बटे हुएको तीन लडी करके फिर प्रदक्षिणावर्त लेकर

षतवलितं त्रिगुणं कार्यम् ।' स एकस्तन्तुरेवं त्रितन्तुकमित्यर्थः ॥ कात्यायनः-"पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् ।: तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम् ॥ " वसिष्ठः-"नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपःक्षयः । तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः ॥" पारिजाते देवलः-"उपवीतं बटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते । एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥." स एव-'बहूनि षायुष्कामस्य ।' तत्र मन्त्रमाह स एव-'यज्ञोपवीतमिति वा व्याहृत्या वापि धारयेत् ॥' हेमाद्रौ-"यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि । तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ॥ " देवलः-"सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत् । विच्छिन्नं चाप्यधो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥ " मनुः-"मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रतः ॥ " भैक्ष्यचरणादिलोपे प्रायश्चित्तम् । अथैतल्लोपे प्रायश्चित्तम् । मनुः-" अकृत्वा भैक्ष्यचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ " अमत्या आपदि त्यागे तु याज्ञवल्क्यः-" भैक्ष्याग्निकार्ये त्यक्त्वा

तिगुना करै वह एक सूत होता है फिर इस प्रकार तीन तन्तु उसमें होते हैं । कात्यायनने कहा है कि, पीठपर और नाभिपर धारण करनेसे कमरतक पहुँच जाय वह यज्ञोपवीत धारण करने योग्य होता है, न अतिलम्बा न अति ऊँचा, पहरना वसिष्ठने कहा है कि, नाभिसे ऊपर यज्ञोपवीत होय तो आयुकी हानि और नाभिसे नीचे होय तो तपका क्षय होता है तिससें बुद्धिमान् मनुष्य नाभिके तुल्य यज्ञोपवीत निर्माण करै ॥ पारिजातमें देवलने कहा है कि, ब्रह्मचारीका यज्ञोपवीत एक, वानप्रस्थ और गृहस्थीके दो, संन्यासियोंका एक होता है यह शास्त्रका सिद्धान्त है, देवलनेही लिखा है, कि, आयुकी इच्छावाला बहुतसे यज्ञोपवीत धारण करै, उसका मन्त्र देवलने लिखा है ' यज्ञोपवीतं परमं ' इत्यादि मन्त्रसे वा व्याहृतियोंसे धारण करै हेमाद्रिमें कहा कि, वेद और स्मृतिमें कहे कर्मोंमें दो यज्ञोपवीत धारण करै और डुपट्टेके निमित्त तीसरा धारण करै परन्तु वस्त्रके न होनेमें वह पहरे रहै, अन्यथा न पहरै, देवलने कहा है कि, गायत्रीको दशवार पढकर यज्ञोपवीत ऊपरको फेंके यदि वह छिन्न हो जाय वा नाभिसे नीचे निकल जाय वा भोजन करके जो निर्माण किया हो उसको त्यागदे मनुने कहा है कि, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, टूटे हुयेको जलमें डालकर मन्त्रसे अन्योंको ग्रहण करै ॥ अब इसके भिक्षाचरणआदिके लोप (अभाव) में प्रायश्चित्त लिखते हैं, मनुने कहा है कि, भिक्षाका आचरण न करके और अग्निहोत्र न करके रोगी न होय तो सात राततक अवकीर्णीके (वीर्यपाती) के व्रतको करै, विना जाने आपत्तिमें त्यागदे तो याज्ञवल्क्यने यह लिखा है:

तु सप्तरात्रमनातुरः । कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥ उपस्थानं ततः कुर्यात्समासिञ्चन्त्यनेन तु ॥ " मन्त्रास्तु मिताक्षरायां ज्ञेयाः । सकृल्लोपे तु ऋग्विधाने-" मानस्तोके जपेन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये । अग्निकार्य विना भुक्तौ न पापं ब्रह्मचारिणः ॥" स्मृत्यर्थसारे तु-'संध्याग्निकार्यलोपे स्नात्वाऽष्टसहस्रं जपः । भिक्षालोपेऽष्टशतम् । अभ्यासे द्विगुणं पुनः संस्कारश्चेत्युक्तम् ॥ ' अपरार्के संवर्तः-" यः संध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥" अग्निकार्यं संध्याद्वये कार्यम् । 'अग्निकार्य ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि ' इति याज्ञवल्क्योक्तेः सायमेव वा । 'सायमेव वाग्निमिन्धीतेत्येके ' इति लौगाक्षिणोक्तेः ॥ ब्रह्मचारिणो मधुमांसभक्षणस्त्रीसंगादौ निर्णयः । पारिजाते वृद्धशातातपः-"ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं तथैव च । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥" ऋग्विधाने-"तंवो धिया जपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये ॥ ब्रह्मचारी स्वधर्मेषु न्यूनं चेत्पूर्णमेति तत् ॥ " स्त्रीसङ्गे तु मनुः-"अवकीर्णी तु कामेन गर्दभेन चतुष्पथे । स्थालीपाकविधानेन यजेद्वै निर्ऋतिं

कि, भिक्षा और अग्निकार्यको छोड़कर रोगीसे भिन्न होय तो सात रात्र व्रत करना चाहिये और कामावकीर्ण इन दो मन्त्रोंसे दो आहुति दे फिर प्रार्थना कर और इस मंत्रसे सेचन करै, मन्त्र तो मिताक्षरामें लिखा है एकवार लोपमें तो ऋग्विधानमें लिखा है कि ' मानस्तोके ' इस मन्त्रको सौवार शिवालयमें जप करे, अग्निहोत्रके विना ब्रह्मचारीको भोजन करलेनेमें पाप नहीं है, स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है, कि संध्या और अग्निकार्यके लोपमें स्नान करके आठ सहस्र जप करै भिक्षाके लोपमें आठ सौ और वारम्वार करनेमें दूना जप करै, और फिर संस्कार करै ॥ अपरार्कमें संवर्तने कहा है कि, जो यथाविधि सन्ध्या और अग्निकार्य नहीं करता उसको स्नान करके सावधानीसे आठ सहस्र गायत्री जपनी चाहिये, अग्निकार्य दोनों संध्याओंमें करना कारण कि, याज्ञवल्क्यने यह लिखा है कि, फिर दोनों संध्याओंमें अग्निकार्य करै, वा सायंकालकोही प्रज्वलित करै यह कोई कहते हैं कारण कि, लौगाक्षिने यह कहा है कि, सायंकालको अग्नि प्रज्वलित करै ॥ पारिजातमें वृद्धशातातपने कहा है कि, जो ब्रह्मचारी मधु, मांस भक्षण करता है वह प्राजापत्य कृच्छ्रको करके शेषव्रतको पूर्ण करै, ऋग्विधानमें कहाहै कि, जो ब्रह्मचारी अपने धर्मसे च्युत हो जाय तो शिवमंदिरमें जाकर ' तंवोधिया ' मन्त्रको एक लाख जपे, स्त्रीके प्रसंगमें मनुने यह लिखा है कि, जानकर स्त्रीसंग करनेवाले चौराहेपर गधेपर चढे और स्थालीपाककी

१ मानस्तोके तनये मान आयौ मानो गोषु मानो अश्वेषुरीरिषः । वीरान्मानो रुद्रभामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वाहवामहे ऋ० १ । ८ । ६ ॥ २ तंवोधियानव्यस्याशविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितं सयध्यै सनोवक्षदनिमानः सुब्रह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ऋ० ४ । ६ । १४ ॥

निशि ॥" विस्तरस्तु मिताक्षरादौ ज्ञेयः ॥ उपवीतनाशे तु हारीतः—' मनोव्रतपतीभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा पुनः प्रतीयात् ॥' तत्रैव मरीचिः—"ब्रह्मसूत्रं विना भुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथ वा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥" मनुः—"भोशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोभिवादने । आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥ अकारश्चास्य नाम्नोन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥" शर्मन्निति नकारात् पूर्व इत्यर्थः ॥ अभिवादने प्रत्यभिवादनादौ विशेषः स्मृत्यर्थसारे पारिजातादौ ज्ञेयः॥ यमः—"ज्यायानपि कनीयांसं संध्यायामभिवादयेत् । विना शिष्यं च पुत्रं च दौहित्रं दुहितुः पतिः ॥" अथ पुनरुपनयनम् । पारिजाते शातातपः—"लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनम् । उष्ट्रमानुषकेभाश्वरासभीक्षीरभोजनात् ॥ उपानयं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः ॥" इति ॥ हेमाद्रौ वृद्धमनुः—" जीवन्यदि समागच्छेद्घृतकुम्भे निमज्ज्य च । उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ।" तत्रैव पाद्मे—' प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनः संस्कारमर्हति । ' चन्द्रिकायां बौधायनः—" सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः । अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च गत्वा संस्कारमर्हति ॥ " हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे वृद्धगौ-

विधिसे रात्रिको निर्ऋति देवताकी पूजा करै तो शुद्ध हो, इसका विस्तार तो मिताक्षराआदिमें लिखा है यज्ञोपवीत नष्ट होनेमें हारीतने कहा है कि, ' मनोव्रतपतीभिः ' इन मंत्रोंसे चार घृतकी आहुति फिर यज्ञोपवीत धारण करै ॥ वहांही मरीचिने लिखा है कि जो यज्ञोपवीतके विना भोजन वा मलमूत्र करता है वह आठ सहस्र गायत्रीका जप और प्राणायाम करनेसे पवित्र होता है... मनुने कहा है कि, दूसरेको प्रणाम करनेमें अपने नामके अन्तमें भो शब्दका उच्चारण करै, और ब्राह्मणको हे सौम्य ' आयुष्यमान् भव ' यह कहकर आशीर्वाद दे, और इसके नामके अन्तमें अकार अक्षर और प्रथम अक्षरको प्लुत बोलना चाहिये, अर्थात् शर्मन् इस नकारसे प्रथमका अकार प्लुत करै अभिवादन (नमस्कार) और प्रत्यभिवादन आदिमें विशेष तो स्मृत्यर्थसार और पारिजात आदिमें लिखा है यमने कहा है कि, बडाभी संध्याके समय छोटेको प्रणाम करै, परन्तु शिष्य, पुत्र, दौहित्र और जामाताको न करै ॥ अब फिर यज्ञोपवीतको कथन करते हैं, पारिजातमें शातातपने कहाहै कि, लहसुन, गाजर, सलगम, और कुत्ती, ऊंटनी, मानुषी, हथिनी, घोडी, गधी इन सबके दूधको पीकर फिर संस्कार अर्थात् यज्ञोपवीतके योग्य होताहै, और वारंवार तो तप्त कृच्छ्र करै हेमाद्रिमें वृद्धमनुने लिखाहै कि, यदि जीवता हुआ मनुष्य फिर आजाय तो घीके घडेमें प्लावित और स्नान करके इसके जात कर्म आदि संस्कार करै, वहांही पद्मपुराणमें लिखाहै. प्रेतशय्याका प्रतिग्रह (ग्रहण) करनेवाला फिर संस्कारके योग्य होताहै, चन्द्रिकामें बौधायनने कहाहै कि, सिंधु, सौवीर, साराष्ट्र और प्रत्यन्तवासी, अंग, बंग, कलिंग, देशोंमें जानेसे फिर संस्कारके योग्य होताहै, हेमाद्रिके प्रायश्चित्त-

तमः-" खरमुष्ट्रं च महिषमनड्वाहमजं तथा । वस्तमारुह्य मुखजः कोशे चान्द्रं विनिर्दिशेत् ॥ " मार्कण्डेयः-" खरमारुह्य विप्रस्तु योजनं यदि गच्छति । तप्तकृच्छ्रत्रयं प्रोक्तं शरीरस्य विशोधनम् ॥ पुनर्जन्म प्रकुर्वीत घृतगर्भविधानतः ॥ " मदनरत्ने मिताक्षरायां च स्नानमात्रमुक्तम् ॥ मनुः-" अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंसृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ " मिताक्षरायां पराशरः-"यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः । अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति ॥ सञ्चरेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च । जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २ ॥ " बौधायनसूत्रम् ' अथोपनीतस्य व्रतानि भवन्ति नान्यस्योच्छिष्टं भुञ्जीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां न स्त्रिया सह भुञ्जीत मधुमांसश्राद्धसूतकान्नानि दशासंधिनीक्षीरं छत्राकनिर्यासौ विलापनं गणान्नं गणिकान्नमित्येतेषु पुनः संस्कारः ॥ ' प्रतिषिद्धदेशगमनमित्येके, अथाप्युदाहरन्ति-" सौराष्ट्रसिंधुसौवीरमवन्तीदक्षिणापथम् । एतानि ब्राह्मणो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति " ॥ पुनःसंस्कारनिर्णयः । अथ पुनः संस्कारं व्याख्यास्यामो देवयजनप्रभृत्यग्निमुखात्कृत्वा पालाशीं समिधमाज्येनाऽऽक्त्वाभ्याधाय वाचयति ॥ ' पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः० कामाः स्वाहेति ' अथान्त्यप्रायश्चित्ते जुहोति यन्म

काण्डमें वृद्ध गौतमका वाक्य है कि, जो ब्राह्मण गर्दभ, ऊंट, भैंसा, बैल, बकरा, तथा मेंढेपर कोशभर चढकर चले तो चांद्रायण करै ॥ मार्कण्डेयने कहाहै कि यदि ब्राह्मण गधेपर चढकर योजनभर चले तो तीन तप्तकृच्छ्रसे उसका शरीर शुद्ध होताहै, और घृतमें गर्भकी विधिसे उसका फिर जन्मसंस्कार करै, मदनरत्नमें और मिताक्षरामें तो स्नानमात्रही लिखा है, मनु कहतेहैं कि, तीना द्विजाति वर्ण, अज्ञानसे विष्ठामूत्र और मदिरामिश्रित वस्तुको खाकर फिर संस्कारके योग्य होते हैं मिताक्षरामें पराशरने कहाहै जो (विरक्त) वा संन्यासी वा अनशनव्रतका करनेवाला फिर गृहस्थमें आनेकी इच्छा करै तो वह तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायण करै, और जातकर्म आदि संस्कारोंको फिर करके शुद्ध होताहै, बौधायनसूत्रमें कहाहै कि यज्ञोपवीत होनेपर उसके ये व्रत होतेहैं कि, पिता और जेठ भाईको त्यागकर अन्यके उच्छिष्टको न भोजन करै, और न स्त्रीके संग खाय, मधु, मांस, श्राद्ध, और सूतकका अन्न और दश दिनकी ब्याई और गर्भिणीका दूध, छत्राक, गूंद, रुदन, गण (समुदाय) और वेश्याका अन्न खानेसे फिर संस्कार होताहै कोई यह भी कहते हैं कि, निषिद्ध देशमें जानेसे भी फिर संस्कार होताहै उसमें यह वाक्य कहते हैं कि, सौराष्ट्र, सिंधु, सौवीर, अवंती, (उज्जैन) दक्षिणका मार्ग इसमें ब्राह्मण जाकर फिर संस्कारके योग्य होताहै ॥ अब फिर संस्कारका वर्णन करतेहैं कि, देवपूजनसे लेकर अग्निके मुख करनेपर्यन्त कर्मको सम्पादन कर पालाशकी समिधाको घीसे भिजोय और रखकर यह मंत्र पढें कि, "पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः कामाः स्वाहा " इनको पढकर प्रायश्चित्तके मंत्रोंसे

आत्मनोमिंदाभूत्० पुनरग्निश्चक्षुरदादिति द्वाभ्याम् । अथ पक्काज्जुहोति । 'सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त० । घृतेन स्वाहेति ' अथाज्याहुतीरुपजुहोति-- 'येन देवाः पवित्रेण इति तिसृभिः अनुच्छन्दसं स्विष्टकृत्प्रभृति सिद्धमाधेनुवरदानात् ' अथापरमापरिधानात्कृत्वा पालाशीं समिधमाधायाथात्रत्यप्रायश्चित्ते जुहोत्यथ व्याहृतीर्जुहोति । अथापरो ब्राह्मणवचनादेव सावित्र्यां शतकृत्वो घृतमभिमंत्र्य प्राश्य कृतप्रायश्चित्तो भवति । गुरोर्वाप्युच्छिष्टं भुञ्जीताथाप्युदाहरन्ति ॥ 'वपनं दक्षिणादानं मेखला दण्डमजिनभैक्ष्यचर्याव्रतानि च निवर्तन्ते पुनः संस्कारकर्मणि ' इति ॥ आश्वलायनगृह्येपि--अथोपेतपूर्वस्येत्यादिना पुनः संस्कार उक्तः तथा पित्रादिव्यतिरेकेन ब्रह्मचारिणः प्रेतकर्मकरणे पुनरुपनयनमित्यपरार्कादयः ॥ त्रिस्थलीसेतौ--" कर्मनाशाजलस्पर्शात्करतोयाविलंघनात् । गण्डकीबाहुतरणात् पुनः संस्कारमर्हति ॥ " गौडास्तु--'करतोयाजलस्पर्शात्कर्मनाशाविलंघनात्' इति पठन्ति ॥ तन्न ॥ दानधर्मेषु करतोयास्नाने प्राशस्त्योक्तेः । " करतोये सदानीरे सरिच्छ्रेष्ठेति विश्रुते । आप्लावयसि पौराणां पापं हर करोद्भवे " इति स्मृतिदर्पणचन्द्रिकालिखितस्नानमन्त्राच्च । पराशरः--" अजिनं मेखला दंडो भैक्ष्यचर्या

हवन करै जो मेरे आत्माकी निन्दा हुई उसको अग्नि दूर करो इन दो मंत्रोंसे हवन करै और " अग्ने० " इस मंत्रसे सात घृतकी आहुति देनी चाहिये, फिर घृतकी आहुति " येन देवा पवित्रेण " इन तीन मन्त्रोंसे दे फिर सब वेदोंकी स्विष्टकृत आदि धेनुके वरप्रदान तक करके फिर परिधानके दूसरे कर्मको करके ढाककी समिध रखकर और व्याहृतियोंको पढकर प्रायश्चित्तके निमित्त हवन करै पक्ववस्तुओंसे हवन करै " सप्त ते अग्ने " इत्यादि घृतसे आहुति दे " येन देवा इति " अनुच्छान्दस स्विष्टकृतादि कर्म धेनुदानतक सिद्ध होते हैं, इसके पीछे ब्राह्मणके वाक्यसे ही गायत्रीसे सौ वार घृतको अभिमंत्रित और भोजन कर प्रायश्चित्त किया करै वा गुरुकी उच्छिष्ट भक्षण करै, इसमें भी यह वाक्य लिखतेहैं कि द्विजातियोंके फिर संस्कारकर्ममें मुंडन मेखलाका दान मृगचर्म भिक्षाटन व्रत नहीं होते आश्वलायनगृह्यमें फिर संस्कार कहाहै कि, जिसका प्रथम संस्कार होचुकाहै उसका फिर करै, इसी प्रकार कहाहै कि, पिता आदिसे भिन्नका यदि प्रेतकर्म ब्रह्मचारी करै तो पुनः यज्ञोपवीतके योग्य होताहै यह अपरार्क आदिने कहाहै. त्रिस्थलीसेतुमें कहाहै कि, कर्मनाशा नदीके जलस्पर्शसे और करतोया नदीके लंघनेसे और गंडकी नदीको भुजाओंसे तैरनेसे फिर संस्कारके योग्य होता है ॥ गौडोंका तो यह कथन है कि, करतोयाके जल स्पर्श और कर्मनाशाके लंघनेसे, फिर संस्कार करै सो ठीक नहीं कारण कि, दानधर्मोंमें करतोयाका स्नान उत्तम कहा है, और स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा यह मंत्रभी है कि, हे करोद्भवे ! नदियोंमें श्रेष्ठ और प्रसिद्ध करतोयाके जलमें जो स्नान करता है उसके पापको दूर करो, पाराशरका मंत्र है कि, फिर संस्कारमें

व्रतानि च । निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ " हरदत्तस्तु-"य एकं वेदमधीत्यान्यं वेदमध्येतुमिच्छति । तस्य पुनरुपनयनं तेन प्रतिवेदमुपनयनं कर्तव्यम् " इत्याह । अन्ये नैतन्मन्यन्ते 'सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यः सावित्र्यनूच्यते ' इत्यापस्तम्बोक्तेः तद्विधिः कारिकायां-" वेदान्तरमधीत्यैव ऋग्वेदं ये त्वधीयते । उपनीतिरियं तेषामलंकरणवर्जिता ॥ यद्वै तदुपनीतस्य प्रायश्चित्तं यदा भवेत् । कृताकृतं च वपनं मेधाजननमेवच ॥ मेधाजननसद्भावे व्रतचर्या भवेदिह । अनुप्रवचनीयश्च तदभावे द्वयं न हि ॥ परिदानं न कार्यं स्यान्निमित्तानन्तरं त्विदम् । पूर्वस्या वाचयेत्स्थाने तत्सवितुर्वृणीमहे ॥ ४ ॥ " यत्तु हारीतः-"द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च । तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या इति । सद्योवधूनामुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः " इति ॥ तद्युगान्तरविषयं-"पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा " इति यमोक्तेः ॥ अथानध्यायः । पारिजाते बृहस्पतिः-

द्विजातियोंका मृगचर्म, मेखला, दंड, भिक्षा मांगना, व्रत नहीं होता, हरदत्तने तो यह लिखा है कि, जो एक वेदको पढकर और वेदको पढनेकी इच्छा करता है उसका फिर यज्ञोपवीत करै, तिससे प्रतिवेद उपनयन होता है, और इसे नहीं मानते कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखा है, कि, सब वेदोंसे गायत्रीका उपदेश किया जाता है, उसकी विधि कारिकामें यह लिखी है.दूसरे वेदको पढकर जो ऋग्वेद पढनेकी इच्छा करते हैं अलंकारको: त्यागकर उनकी यह उपनीति (यज्ञोपवीत) है, यद्वा प्रथम उपनीतका जब प्रायश्चित्त होता है, मुण्डन और मेधा (बुद्धि) का जनन करै वा न करै, मेधाजनन होय तो ब्रह्मचर्यभी सफल होती है और अनुप्रवचनीय (बटुसे पढवाना) भी होता है मेधाजनन न होय तो यह दोनों कार्य नहीं होते और यहां निमित्तके उपरान्त परिदान न करै, प्रथम गायत्रीके स्थानमें ' तत्सवितुर्वृणीमहे ' को बँचवावै, जो हारीतने यह लिखा है कि, दो प्रकारकी वधू होती हैं, एक ब्रह्मवादिनी, दूसरी सद्योवधू, उनमें ब्रह्मवादिनियोंका उपनयन अग्नींधन वेद पढना और अपने घरमें भिक्षा मांगना करते, और सद्योवधुओंका उपनयन करके विवाह करै, यह युगांतर अर्थात् दूसरे युगोंके विषयमें है कारण कि, यमने कहा है कि, प्रथम कल्पोंमें स्त्रियोंको मौंजी बांधना वेदोंका पढा़ना और गायत्रीका उपदेश इष्ट था ॥ अब अनध्याय कथन करते हैं पारिजातमें

१ वेदोंका पढाना इस वाक्यसे वेदाङ्ग और शास्त्रोंके पढानेका दोष नहीं है नहीं तो विवाहके समय मंत्रपाठ वधूसे किस प्रकार होगा, और यज्ञकर्ममें अपशब्द भाषणका निषेध है सो बिना संस्कृतके बोध हुए पाठ भ्रष्ट होगा इससे कर्म बिगडेगा इस कारण मंत्रको छोडकर और पढनेमें दोष नहीं ॥

" प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वणोर्द्वयोः । श्वोनध्यायेऽथ शर्वर्यां नाधीयीत कदाचन ॥ " नारदः—" अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥ " निर्णयामृते—" चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु । अनध्यायस्तु कर्तव्यो या च सोपपदा तिथिः ॥ " गर्गः—" शुचावूर्जतपस्ये च या द्वितीया विधुक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ " स्मृत्यर्थसारेपि—' आषाढीकार्तिकीफाल्गुनीसमीपस्थद्वितीयासु च ' इति ॥ मनुः—" उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु " इति ॥ उत्सर्गे तु—' मनूक्तपक्षिण्यहोरात्राभ्यां त्र्यहस्य विकल्पः ' इति विज्ञानेश्वरः ॥ 'अष्टकाशब्देन सप्तम्यादित्रयं ज्ञेयम् । तिस्रोष्टकास्त्रिरात्रमन्त्यामेके' इति गौतमोक्तेः ॥ 'ऋत्वन्तास्विति सौरऋत्वन्तासु चान्द्रान्तस्य पर्वत्वेनैव निषेधसिद्धेः ' इति सर्वज्ञनारायणः ॥ एते नित्याः । नैमित्तिकानप्याह याज्ञवल्क्यः—"त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा ॥ संध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने । समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके । ऋतुसंधिषु

बृहस्पतिने कहा है कि, प्रतिपदा, चतुर्दशी, अष्टमी, दोनों पर्व और अगले दिन अनध्याय होय तो प्रथम रात्रिमें कदाचित् न पढे, नारदने कहा है कि दोनों अयन, विषुव (तुलामेष) विष्णुका शयन और जागरण, मन्वादि और युगादि तिथि इनमें अनध्याय करना चाहिये । निर्णयामृतमें लिखा है कि, चातुर्मास्यकी द्वितीया तिथि, मन्वादि और युगादि और सोपपदा तिथि इनमें अनध्याय करना । गर्ग कहते हैं कि, चातुर्मास्य आषाढ, कार्तिक, फाल्गुनकी द्वितीयामें पंडितजन अनध्याय कहते हैं ॥ स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, आषाढ, कार्तिक, फाल्गुनके समीप (कृष्ण) की द्वितीयाओंमें अनध्याय होता है मनुने कहा है कि, उपाकर्म और उत्सर्गमें तीन रात्र और अष्टकामें दिनरात्र और ऋतुके अन्तमें एकरात्र अनध्याय होता है, उत्सर्गमें मनु कहते हैं कि, पक्षिणी और अहोरात्रके संग तीन दिन, इसका विकल्प है यह विज्ञानेश्वरका कथन है, अष्टकाशब्दसे सप्तमी आदि तीन जानने चाहिये, कारण कि, गौतमने यह लिखा है कि, तीन अष्टका होती हैं और कोई यह कहते हैं कि, पिछली एक होती है, ऋतुके अन्तवालियोंमें सौरमासके प्रमाणसे ऋत्वंतोंमें चन्द्रमाससे अन्तका निषेध पर्वसेही सिद्ध है, यह सर्वज्ञनारायणका कथन है, यह पूर्वोक्त अनध्याय नित्यके जानने चाहिये. नैमित्तिक (कारण युक्त) अनध्यायोंको कथन करते हैं याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, शिष्य, ऋत्विक्, गुरु बन्धुकी मृत्युमें उपाकर्म और उत्सर्ग, सन्ध्याके गर्जन, वज्रपात, भूमिकम्प, बिजलीका पतन, वेदको समाप्त करके दो दिन, और आरण्यकको पढकर, पंचदशी, चतुर्दशी

भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमपकैः । कृतेन्तरे त्वहोरात्रं शुक्रपाते तथोच्छ्रये ॥ ४ ॥ " ग्रहणे द्विनिशोक्तावपि ग्रस्तास्ते त्र्यह-मित्युक्तं प्राक् स्मृत्यर्थसारे तु–' रात्रौ तु ग्रहे तिस्रो रात्रीः दिवा च त्र्यहम् ।' इत्युक्तम् । ऋतुः सौरः ॥ भुक्त्वेत्युत्सवविषयम् । ' ऊर्ध्वं भोजनादुत्सवे ' इति गौतमोक्तेः ॥ श्राद्धिकमहैकोद्दिष्टभिन्नं तत्र तु त्र्यहमिति मनुः ॥ स्मृत्यर्थ-सारे चैवम् ॥ यत्तु–' पश्वाद्यन्तरा ये त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च ' इति गौतमोक्तं तत् प्रथमाध्ययने ॥ याज्ञवल्क्यः–" श्वक्रोष्टृगर्दभोलू-कसामबाणार्तनिःस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥ देशेऽशुचा-वात्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे । भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेऽतिमारुते ॥ पांसु-प्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥ खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षगिरिरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान् विदुः ॥ ४ ॥" बाणो–वंशः । शततन्तुर्वीणेति हरदत्तः ॥ अमेध्याः–सूतिका-दयः । स्तनितं–गर्जः । वर्षातोन्यत्र गर्जवृष्टिविद्युतां यौगपद्ये आकालिकः ।

अष्टमी, राहुसूतक (ग्रहण), ऋतुकी सन्धि, भोजनके उपरान्त और श्राद्धका प्रतिग्रह लेकर और पशु मेढ़क, बिलाव, न्योला, कुत्ता, सर्प ये बीचमेंसे निकल जाँय तो अहोरात्र और इसी प्रकार (वीर्य) पात और उच्छ्रायमें अहोरात्र, अनध्याय होता है, ग्रहणमें यदि दो रात कही हैं तथापि ग्रस्त होते अस्त होनेमें तीन दिन जानने चाहिये, यह पहले कह आये हैं॥ स्मृत्यर्थसारमें तो यह कहा है कि रात्रिके ग्रहणमें तीन रात्रि और दिनकेमें तीन दिन; यहां ऋतुसे सौर लेना चाहिये, और भोजनके उपरान्त यह उत्साहमें है, कारण कि, भोजनके उप-रान्त उत्सवमें न पढै, यह गौतम कहतेहैं श्राद्धमें एक दिन एकोद्दिष्टसे भिन्नमें है, वहां तो मनुने तीन दिन लिखेहैं, स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखाहै, जो यह गौतमने लिखाहै कि, पशु आदिके बीचके निकलनेमें तीन दिन व्रत और परदेशमें जाना है, वह प्रथम अध्ययनमें समझना चाहिये, याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, कुत्ता, गीदड, गधा, उल्लू, सामवेद, सौ तंतुओंकी वीणा, बाण, तथा आर्तका शब्द, अमेध्य (सूतिका आदि), मृतक, शूद्र, चाण्डाल, श्मशान, पतितकी निकटता, अशुद्ध स्थान तथा अपनी अशुद्धि, बिजली बादलका शब्द, भोजन करके गीले हाथ, जलका मध्य, अर्द्धरात्र, अत्यन्त पवन, धूलिका वर्षण, दिशाओंके दाहमें, संध्या नीहार (कुहर) भयसे भागते हुएकी दुर्गन्धि, सज्जनके घरमें आनेपर खर तथा ऊंटकी सवारी, हाथी, अश्व, नौका, वृक्ष, ऊपरमें गमन ये सत्ताईस तात्कालिक अनध्याय जानना और ऐतरेय उपनिषद्में तो यह कहाहै कि, वर्षासे भिन्न ऋतुमें वर्षे तो तीन दिन

वर्षासु तात्कालिक इति नारायणः ॥ संध्यागर्जे तु हारीतः--'सायंसंध्यास्तनिते रात्रिः। प्रातः संध्यास्तनितेऽहोरात्रम् ॥' रात्रौ विद्युत्यपररात्र्यवधिः। 'विद्युति नक्तं चापररात्राद्' इति गौतमोक्तेः ॥ 'तृतीयादिनांशोत्तरं तु विद्युति सर्वरात्रम्' इत्याह स एव। त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमिति अर्धरात्रे मध्ययामद्वयमिति विज्ञानेश्वरः ॥ मध्यदण्डचतुष्टय इति निर्णयामृते ॥ मनुः--" न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे। न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके ॥ रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥" कौर्मे-"श्लेष्मातकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च। कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः ॥" मनुः--"शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसस्थिकाम्। नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥" प्रौढपादः पादोपरि पाददाता आसनारूढपादो वेति हरदत्तः। सोपपदास्वपि प्रागुक्तम् ॥ स्मृत्यर्थसारे-" श्रवणद्वादशीमहाभरण्योः प्रेतद्वितीयायां रथसप्तम्यामाकाशे शवदर्शने चाहोरात्रम्। असपिण्डे गुरौ मृते त्रिरात्रम्। आचार्ये उपाध्याये च पक्षिणी। आचार्यभार्यापुत्रशिष्येष्वहोरात्रम् ॥ अग्न्युत्पाते गोवि-

---

अनध्याय होताहै, और वेदभाष्यमें भी लिखाहै कि मृगशिरसे लेकर ज्येष्ठा पर्यन्त वर्षाऋतु है, यह पीछे कह आये हैं तिससे औरमें वर्षा आदि होय तो तीन दिनरात अनध्याय होता है, हारीतने तो इस गौतमके कथनसे सन्ध्याके समय गर्जनमें अनध्याय लिखाहै कि, सायंकालकी सन्ध्याके समय गर्जे तो एक रात्रि; प्रभात सन्ध्याके समय गर्जे तो अहोरात्र, रात्रिमें विजलीका शब्द होय तो पररात्रकी (अगली) अवधितक अनध्याय होताहै ॥ तथा दिनके तीसरे भागमें विजलीकी कडक होय तो सम्पूर्ण रात्रि अनध्याय होताहै; तीनों भागोंमेंसे कोई समय यदि विद्युत् प्रवृत्ति होय तो सम्पूर्ण दिन अनध्याय होताहै, विज्ञानेश्वरने तो आधीरातके समय मध्यमें विजली होय तो मध्यके दो प्रहर अनध्याय लिखाहै । निर्णयामृतमें तो वीचके चार प्रहरोंमें विजलीके शब्दसे अनध्याय लिखाहै । मनु कहते हैं कि, विवाद, लडाई, सेना, संग्राम, भोजन करनेपर, अजीर्ण, वमन, सूतक, गात्रसे रुधिर गिरनेमें शस्त्रघावसे युक्त होनेमें अध्ययन न करै, कूर्मपुराणमें भी लिखाहै कि, श्लेष्मांतक (बहेडा) शाल्मलि (सेमल) महुआ कोविदार कैथकी छायामें कदाचित् वेद न पढै, मनु कहते हैं कि, लेटाहुआ प्रौढपाद (उकडू वैठा हुआ) तथा मांस और सूतक आदिका अन्न खाकर वेद न पढै, हरदत्तने प्रौढपाद उसको लिखाहै कि, जो पांवपर पांव रखकर वैठा हो व जो आसनपर जिसके पांव रक्खे हों सोपपदाओंमें निषेध प्रथम कथनकर आयेहैं ॥ स्मृत्यर्थसारमें भी कहाहै कि, श्रवणद्वादशी, महाभरणी, यमद्वितीया, रथसप्तमी तथा आकाशमें मृतक दर्शनमें, अहोरात्रतक न पढै, असपिण्ड गुरुके मरनेमें तीन रात्र, आचार्य उपाध्यायके मरनेमें दो दिन और एक वीचकी रात और आचार्यकी स्त्री पुत्र शिष्यकी मृत्युमें अहोरात्र अनध्ययन लगता है, अग्निके उत्पा-

प्रसूतौ त्रिरात्रम् । अयने विषुवे च पक्षिणी । अकालवृष्टौ च । आरण्यमार्जारसर्पनकुलपञ्चनखादेरन्तरागमने त्रिरात्रम् । आरण्यश्वसृगालादिवानररजकादौ द्वादशरात्रम् । खरवराहोष्ट्रचाण्डालसूतिकोदक्याशवादौ मासम् । गोगवयाजानास्तिकादौ त्रिमासम् । शशमेषश्वपाकादौ षण्मासम् । गजगण्डसारससिंहव्याघ्रमहापापिकृतघ्नादावब्दमनध्यायः । शोभनदिने चानध्यायः । विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिष्वासमाप्तेः सगोत्राणामनध्यायः ॥ "उदयेऽस्तमये चापि मुहूर्तत्रयगामि यत् । तद्दिनं तदहोरात्रं चानध्यायविदो विदुः ॥ केचिदाहुः क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकाः । तावदेव त्वनध्यायो तत्तन्मिश्रे दिनान्तरे ॥" प्रदोषं त्वाह प्रजापतिः—"षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका ॥" निर्णयामृते गर्गः—"रात्रौ यामत्रयादर्वाक् सप्तमी वा त्रयोदशी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ २ ॥" कौर्मे—"अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ॥ न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि

तसे गौ ब्राह्मण मृतक होजाय तो तीन रात दोनों अयन और विषुव संक्रान्ति और अकाल वर्षामें पक्षिणी (दो दिन एक रात) बनबिलाव, सर्प, न्योला, पंचनख आदिके बीचमें निकलनेसे तीन रात बनकुत्ता, गीदड, आदि वानर, रजक (धोबी) आदिक बीचमें निकलनेसे तो बारह दिन, गधा, सूकर, ऊण्ट, चाण्डाल, सूतिका, रजस्वला, शव आदिक बीचको निकलजांय तो महीनेभरका अनध्याय होता है ऐसा जानना चाहिये । गौ, नील गाय, बकरी, नास्तिक आदि निकल जाँय तो तीन महीने, खरगोश मेंढा श्वपाक (चांडालका भेद) आदि निकल जाय तो छः महीने हाथी, गेंडा, सारस, सिंह, भेडिया, महापातकी, कृतघ्नी आदि निकल जांय तो वर्षभर अनध्याय और सुन्दर दिनमें अनध्याय होता है, विवाह, प्रतिष्ठा, उद्यापन आदिमें तो जबतक पूर्ति न हो तबतक सगोत्रोंका अनध्याय है ॥ कारण कि, यह वाक्य है कि, जो दिन उदय वा अस्तमें तीन मुहूर्त हो वह दिन (तिथि) उस अहोरात्रमें अनध्याय माना जाता है, यह अनध्यायके जाननेवालोंका कथन है, कोई तो यह कहते हैं किसी देशमें जितनी उस दिनकी घडी हो उतनाही अनध्याय होता है, और उससे मिले और दिनमें नहीं होता, प्रजापतिने प्रदोष तो यह लिखा है, कि, छठ, द्वादशी ये अर्द्धरात्रिसे एक घडी प्रथम तक हो और तीज नौ घडी राततक हो तो इस प्रदोषमें न पढै, निर्णयामृतमें गर्गने लिखा है कि, रात्रिको तीन प्रहरसे प्रथम सातें वा त्रयोदशी होय तो सब विद्याओंके पढनेमें निंदित प्रदोष जानना चाहिये । रातमें तीजके दिन चौथ नौ घडीतक आजाय तो वेदोंके पढनेमें उसको निंदित जानना चाहिये, कूर्मपुराणमें लिखा है कि, अंग, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्रमें अनध्याय नहीं होता, और इनसे औरोंको इन पर्वोंमें त्याग

चर्ग्येत् ॥ " शौनकः—"नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणेपि हि ॥ नानध्यायोस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥ " इत्यनध्यायाः ॥ अथ महानाम्न्यादिव्रतम् । श्रीधरः—" तिथिनक्षत्रवारांशवर्गोदयनिरीक्षणम् । चौलवत्सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च ॥ " एषां लोपे शौनकः—"व्रतानि विधिना कृत्वा स्वशाखाध्ययनं चरेत् । अकृत्वाभ्यस्यते येन स पापी विधिघातकः ॥ प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाज्याहुतीः शतम् । हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः ॥ २ ॥ " स्मृत्यर्थसारे तु—' त्रीन् षड् द्वादश वा कृच्छ्रान् कृत्वा पुनर्व्रतं चरेत् ' इत्युक्तम् ॥ अथ समावर्तनम् । सुरेश्वरः—" भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । ताराचन्द्रविशुद्धौ च स्यात्समावर्तनक्रिया ॥ " बौधायनसूत्रे तु—" रोहिण्यां तिष्ये उत्तरयोः फाल्गुन्योर्हस्ते चित्रायामैन्द्रे विशाखायां वा स्नायात् ' इत्युक्तम् ॥ वसिष्ठः—" स्नानं माध्याह्नकाले तु होरायां कारयेच्छुभम् । पूर्वाह्णे तदभावे तु कुर्यात्स्नानं यथाविधि ॥ " 'सर्वे ऋतवो विवाहस्य' इति सूत्रात् यदा दक्षिणायने विवाहस्तदा समावर्तनमपि तत्रैव । अन्यथोदगयने समावर्तने ' अनाश्रमी न तिष्ठेत ' इति विरोधः स्यादित्युक्तं सुदर्शनभाष्ये ॥ एतच्च ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम् ॥ तदाह बौधायनः—

देना चाहिये । शौनकने कहा है कि नित्यकर्म, जप काम्यव्रत ऋतु और पारायणमें अनध्याय नहीं है, वेदोंके पढने और पढानेमेंही अनध्याय लिखा है । इत्यनध्यायाः ॥ अब महानाम्न्यादि व्रत कहते हैं । श्रीधरने कहा है कि, महानाम्नीव्रतमें तिथि, नक्षत्र, अंश, वार, वर्गोदय इन सबको मुंडनके तुल्य देखना लिखा है, और गोदानव्रतोंमें भी इसी प्रकारसे देखै, इनके लोपमें शौनकने यह लिखा है कि, व्रतोंको विधिपूर्वक करके अपनी शाखाको पढे विना व्रतोंके किए जो अध्ययन करता है वह पापी विधिको नष्ट करता है शाखा शाखाके प्रति एक २ कृच्छ्र और गायत्रीसे घृतकी सौ आहुति देकर स्नान करै, यह शौनकने लिखा है, स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि, तीन, छः, बारह कृच्छ्र करके पुनः व्रत करै ॥ अब समावर्तन लिखते हैं, सुरेश्वरने कहा है कि, मंगल और शनि और व्रतोंमें कहे नक्षत्र तारा और चन्द्रमाकी शुद्धिमें समावर्त्तन कर्म करना होता है, बौधायन सूत्रमें तो रोहिणी पुष्य, दोनों उत्तरा, दोनों फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखामें स्नान करै यह लिखा है, वसिष्ठने कहा है कि, मध्याह्न समय ही होरामें यथाविधि स्नान करे, वह न होय तो पूर्वाह्नमें स्नान करै जब विवाहको सब ऋतु हैं, इस सूत्रमेंसे विवाह होता है, तब समावर्त्तन भी दक्षिणायनमें करै, अन्यथा (न करै तो): उत्तरायणमें समावर्तन होगा, तो बिना आश्रम कभी न टिकै, इस कथनका विरोध होगा, यह सुदर्शनभाष्यमें कहा है, ब्रह्मचर्य व्रतके लोपके प्रायश्चित्त करके समावर्तन करले सोई बौधायनने

"शौचसंध्यादर्भभिक्षाग्निकार्यराहित्यकौपीनोपवीतमेखलादण्डाजिनधारणे दिवास्वापच्छत्रपादुकास्रग्विधारणाङ्गोद्वर्तनानुलेपनाञ्जनद्यूतनृत्यगीतवाद्याभिरतौ ब्रह्मचारी कृच्छ्रत्रयं चरेत् । महाव्याहृतिहोमं पाहित्रयोदशहोमं च कुर्यात् । समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां त्रिरात्रमाशौचं कार्यम् ॥ ". "आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥" इति मनूक्तेः ॥ आदिष्टी ब्रह्मचारीति विज्ञानेश्वरः॥ ब्रह्मचर्ये यदि कश्चिन्मृतस्तदा त्रिरात्रमध्ये विवाहः कार्योऽन्यथा नेति सिद्ध्यति । जनने तु सत्यपि न त्रिरात्रम् । तत्रातिक्रान्ताशौचाभावादुदकं दत्त्वेति वचनाच्चेति दिक् ॥ तत्रापि विकल्पः ॥ "पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्यात्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम् ॥ " इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ स्नातकव्रतनिर्णयः । स्नातकव्रतान्याह व्यासः–" यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् । छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ ॥ रौक्मे च कुण्डले वेदः कृत्तकेशनखः शुचिः । " वेदो-दर्भवटुः ॥ मनुः–" उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥ " अन्यान्यपि बह्वृचगृह्यस्मृत्यादिभ्यो ज्ञेयानि ॥ अथ छुरिकाबन्धः । ज्योतिर्निबन्धे नारदः–" छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् ।

लिखा है कि, शौच, संध्या, कुश, भिक्षा, अग्निहोत्रका त्याग, कौपीन, यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड, मृगचर्मको न धारै, दिनमें सोना, छत्र, खडाऊं, मालाको धारना, उबटना, लेपन (चन्दन) अंजन, जुआ, नृत्य, गाना, बजाना इनमें गमनमें ब्रह्मचारीको तीन कृच्छ्र और महाव्याहृतियोंसे होम करना चाहिये । समावर्तनके उपरान्त ब्रह्मचारी तीन रात्र मरनेका आशौच करै, कारण कि, मनुने यह लिखा है कि, ब्रह्मचारी व्रतकी पूर्तिपर्यंत जलदान करै, और पूर्ण होनेपर जलदान देकर तीन दिन अशुद्ध होता है यदि ब्रह्मचर्यमें किसीकी मृत्यु होजाय तो तीन रात्रभी अशौच नहीं लगता कारण, कि उसमें (बीताहुआ) अशौच नहीं होता, और पूर्वोक्त जल देकर यह वाक्यभी है कि, जन्ममें किसीको जल नहीं दिया जाता, यह संक्षेपसे कहा । उसमें भी विकल्प है अर्थात् कोई जन्ममें भी आशौच मानते हैं कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, पिताकी मृत्यु होनेपर भी ब्रह्मचारियोंको कभी दोष नहीं लगता इनको अग्निहोत्र आदि कर्मके उपरान्तमें वा तीन दिन आशौच होता है ॥ स्नातकके व्रत व्यासने यह लिखे हैं कि, दो यज्ञोपवीत, जलसहित कमण्डलु, छत्र, निर्मल पगडी, खडाऊं, जूता, सुवर्णके कुण्डल, वेद कुशाका बटुक रखै, केश और नखको न कटाना और शुद्ध रहै, मनुने कहा है कि, जूता, वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, पुष्पमाला, कमण्डलु औरके धारण कियेको धारण न करै, और भी व्रत बह्वृच गृह्य और स्मृति आदिसे जानने ॥ अब छुरिकाबन्ध कहते हैं । ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, राजाओंके विवाहसे पहिले छुरिके

विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेप्यनस्तगे ॥ जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते । मौञ्जीबन्धर्क्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥ २ ॥ '' संग्रहे-'' शूद्राणां राजपुत्राणां मौञ्ज्यभावेऽस्त्रबन्धनम् । मौञ्जीबन्धोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना ॥ '' अथ विवाहः । याज्ञवल्क्यः-''अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् । अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् । '' लक्षण्यां बाह्याभ्यन्तरलक्षणैर्युक्ताम् । बाह्यानि काशीखण्डादौ प्रसिद्धानि ॥ आन्तराण्याश्वलायनोक्तानि । 'अष्टौ पिण्डान् कृत्वा ' इत्यादीनि ॥ मनुः-'' असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥'' दत्रिममातुर्गृहीता अपि सपिण्डा अगोत्रा ॥ तत्कुलनिवृत्तये चकारान्मातुरसगोत्रा दत्तस्य पितुर्जनककुले पितुरसगोत्रापि सपिण्डत्वान्निषिद्धेत्यन्यश्चकारः ॥ असपिण्डां-सापिण्ड्यरहिताम् ॥ तच्चैकशरीरावयवान्वयेन भवति ॥ तत्र सापिण्ड्यम् । एकस्य हि पितुर्मातुर्वा शरीरस्यावयवाः पुत्रपौत्रादिषु साक्षात्परम्परया वा शुक्रशोणितादिरूपेणानुस्यूताः यद्यपि पत्न्याः पत्या सह भ्रातृपत्नीनां च परस्परं नैतत्संभवति । तथापि आधा-

बन्धनको लिखता हूं, वह विवाहमें (कहे) महीने शुक्ल पक्ष बृहस्पति शुक्रका उदय, मंगल, चन्द्रमा, ताराका बल और मौंजी बंधनके नक्षत्र तिथि और मंगलके सिवाय अन्य वारोंमें छुरिकाको बांधै, संग्रहमें लिखा है कि, शूद्र राजाके पुत्रको मौंजी न बांधनी चाहिये, इससे मौंजीबन्धनमें लिखी तिथि आदिमें मंगलवारको त्यागकर अस्त्रको बांधे ॥ अब विवाहकी विधि कहते हैं । याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, अक्षत ब्रह्मचर्यवाला मनुष्य सुलक्षण-स्त्रीको विवाहै जिसका पहिले सम्बन्ध न हुआ हो.जो सुन्दर हो अपने सपिण्डकी न हो, और अपनेसे छोटी हो, रोग रहित हो, जिसका भाई विद्यमान हो, जो अपने प्रवर और गोत्रकी न हो, और स्त्रीके लक्षण बाहर और भीतरके समझने, उनमें बाह्य तो काशीखण्ड आदिमें लिखे हैं, और अन्तरके आठ पिंड बनाकर देखै ये आश्वलायनमें लिखे हैं, मनुने कहा है कि, जो माताकी असपिंड हो, और पिताके गोत्रकी न हो वह स्त्री विवाह मैथुनकर्ममें द्विजातियोंको है, दत्तक माताका ग्रहण करनेवाला असपिण्डभी सगोत्र है, कुछ कुल निवृत्तिके निमित्त नहीं चकारसे माताकी भी असगोत्र लेनी, दत्तक पिताके जनक कुलमें पिताकी असगोत्राको भी सपिंड होनेसे इसको दूसरा चकार निषेध करता है असपिंडासे सापिण्ड्य एक शरीरके सम्बन्धसे होता है ॥ एक पिता वा माताके शरीरके अवयव पुत्र पौत्र आदिमें साक्षात् वा परंपरासे वीर्य और रजके द्वारा (मिले) हैं, यद्यपि पतिके संग पत्नीका और भ्राताकी पत्नियोंका यह सम्बन्ध परस्पर नहीं हो सकता, तो भी आधार होनेसे एक शरीरा-

१ जिन ग्रामोंमें आर्षी गोत्रा पृथ्वी है वे आर्षगोत्र कहाते हैं ।

रत्वैनैकशरीरावयवान्वयोऽस्त्येव । 'अस्थिभिः—अस्थीनि' इति मन्त्रलिङ्गात् एकस्य हि पितृशरीरस्यावयवाः पुत्रद्वारा तास्वाहिता इति मदनरत्ने पारिजातविज्ञानेश्वरादयः ॥ वाचस्पतिशुद्धिविवेकशूलपाण्यादिगौडमैथिलादयोप्येवम् ॥ श्रुतावपि-एतत् 'षाट्कौशिकं शरीरम् । त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतोऽस्थिस्नायुमज्जानः पितृतस्त्वङ्मांसरुधिराणि मातृतः' इति ॥ 'प्रजामनु प्रजायसे' इति च । चन्द्रिकापरार्कमेधातिथिमाधवादयस्तु एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यम् । "लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्" इति मात्स्योक्तेः । न च पितृव्यादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् ॥ तत्कर्तृकश्राद्धे दैवतैक्येन तत्सत्त्वात् । देवदत्तकर्तृकश्राद्धे हि ये देवताभूतास्तेषां मध्ये यः कश्चिदन्यकर्तृकश्राद्धेऽनुप्रविशति तेषां सापिण्ड्यम् । तद्भार्याणामपि भर्तृकर्तृकश्राद्धे सहाधिकारित्वेन तदन्वयात् । 'एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके' इति स्मृतेश्च। श्रुतीनां च वैराग्यार्थत्वात्तस्य सापिण्ड्यनिमित्तत्वे मानाभावात्। न च मातुलादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम्। मातामहरूपदैवतैक्यात् । ननु गुरु-

न्वयहै ही, अर्थात् एकही कुल, सबका आधार है, कारण कि, यह मन्त्रका प्रमाण लिखा है कि, अस्थियोंके संग अस्थि मिलाता हूं, एकही पिताके शरीरके सम्पूर्ण अवयव पुत्रके द्वारा उनमें स्थित होते हैं, यह मदनरत्न, पारिजात, विज्ञानेश्वर आदिका कथन है ॥ और वाचस्पति शुद्धिविवेक, शूलपाणि आदि गौड मैथिलभी इसी प्रकार कथन करते हैं, श्रुतिभी है कि, यह शरीर छः कोश (तत्वों) से युक्त है, तीन कोश पितासे, और तीन तत्त्व मातासे होते हैं अस्थि, स्नायु, मज्जा ये तीन पितासे त्वचा, मांस, रुधिर मातासे होते हैं और यहभी श्रुति है कि, यह मनुष्य प्रजामें ही उत्पन्न होता है, चन्द्रिका, अपरार्क, मेधातिथि, माधव आदिका तो यह कथन है कि, एक पिण्डदानकर्मका जिनके संग सम्बन्ध है वेही सपिण्ड हैं, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, चौथेसे आदि लेकर तीन लेप भागभुज, और पिता आदि तीन पिंडभागी और सातवां पिण्ड देनेवाला यह सात पुरुषतक सापिण्ड्य होता है; यदि कोई यह शंका करै कि, पितृव्य (चाचा) आदिमें यह सापिंड्य नहीं है, सो उचित नहीं कारण कि, पितृव्यके किये श्राद्धमें देवता एक होनेसे सापिण्ड्य है देवदत्तके किये श्राद्धमें जो देवता हुए थे उनके मध्यमेंसे जो कोई दूसरेके किए श्राद्धमें उनका सापिण्ड्य होता है, उनकी स्त्रियोंको भी स्वामियोंके किए श्राद्धमें संग अधिकार होनेसे एक शरीरका अन्वय है, और पिंड गोत्र सूतकमें वह स्त्री पतिकी एकताको प्राप्त होजाती है इस स्मृतिसे अन्वय है और श्रुति वैराग्यके निमित्त है श्रुतिभी सापिण्ड्यमें निमित्त है, इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता, यदि, कोई शंका करै कि, माना आदिमें यह नहीं है सो उचित नहीं, कारण कि, नाना आदिरूप देवता वहां भी एक हैं इससे सपिण्डता है गुरु शिष्य आदिका भी श्राद्ध देवता होनेसे सपिण्ड हो जायगा ॥

शिष्यादेरपि श्राद्धदेवतात्वात्सपिण्डत्वं स्यात्॥ किंबहुना-'सर्वाभावे तु नृपतिः कारयेत्तस्य रिक्थतः' इति मार्कण्डेयपुराणाद्राज्ञोपि श्राद्धकर्तृत्वात्सापिण्ड्यप्रसङ्गः । सत्यम् । पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतःपितृतस्तथा' इति याज्ञवल्क्यः॥ वचनेन माता-पितृसम्बन्ध एव तत्सत्त्वात् । ऊर्ध्वं सापिण्ड्यं निवर्तत इति शेषः ॥ ननु पञ्चमत्वाद्यत्र नियम्यते न मातृतः इत्यादिवाक्यमेतत् ॥ मैवम् ॥ मातृकुले पञ्चमत्वस्य पितृकुले सप्तमत्वस्य च बोधने तुल्यत्वात् । पौरुषेयत्वाददोष इति चेत् । तुल्यमन्यत्रापि । अन्यकर्तृके राज्ञस्तत्पितॄणां वा देवतात्वाभावाच्च । किंच अवयवान्वयपक्षे यथा योगरूढ्या परिहारस्तथेहापि तेन मातृकुले पितृकुले चैकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यमित्याहुः । तेनैकस्य पित्रादयः षट् पुत्रादयश्च षट् सपिण्डा भवन्ति । अत्र केचिदुभयतः साषिण्ड्यनिवृत्तावेवोद्वाहो नान्यथा इत्याहुः । शुद्धचिन्तामणिवाचस्पतिहरिदत्तादयस्तु सगोत्रत्ववत्साषिण्ड्यस्य सप्र-

बहुत कहनसे क्याहै जिसके कोई न हो उसका राजा करै, इस मार्कण्डेयपुराणके वाक्यसे राजा भी श्राद्धका कर्ता है उसको भी सापिंडयकी प्राप्ति होगी। सो सत्य है अर्थात् योग्य नहीं कारण कि, मातासे पांचवें और पितासे सातवें पुरुषसे पीछे सापिंड्य नहीं रहता, इस याज्ञवल्क्यके कथ-नसे माता और पिताके सम्बन्धमें ही सापिंड्य प्राप्त होताहै कि, पांचवें और सातवेंसे उपरान्त सपिंडता नहीं रहती है यह याज्ञवल्क्यके वाक्यमें शेष समझना । यदि कोई कहै कि, पंचमत्वका यहां नियम है, अर्थात् मातासे पांचवें और पितासे सातवें तक सापिंड्य रहताहै, और फिर निवृत्त होजाताहै, यह अर्थ नहीं है कारण कि, माताके कुलमें पांचवेंसे और पिताके कुलमें सातवेंसे आगे सापिंडय नहीं रहता नियमके न माननेमें यह वाक्यभेद होगा, ऐसा मत कहो, कारण कि, नियम पक्षमें भी माताके कुलमें पांचवें-तकका और पिताके कुलमें सातवेंतकका ज्ञान करनेमें वाक्यभेदका समान है, यदि कहो नियम पक्षमें ईश्वरोक्त होनेसे वाक्यभेदका दोष नहीं है तो निषेधपक्षमें भी ईश्वरोक्त होनेसे वाक्यभेदका दोष नहीं है । वाक्यभेदरूप प्राप्त दोषका अभावको न मानाजाय, और दूसरेके किए श्राद्धमें राजाको सापिंड्य इस प्रकार नहीं होता कि, उसके पितर उसके देवता नहीं होस-कते, किंच जब माता पिताके अवयवोंके योगसे सापिंडय होताहै, इस पक्षमें जैसे योगरूढिके इसका परिहार है इसीप्रकार यहांभी योगरूढि जानो, अर्थात् जिसमें सपिंड पदका तुल्यपिण्डवाले यह अर्थ भी करैं और पांचमें आदितक उसमें रूढभी हो शब्दके अवयवोंका अर्थ जिसमें प्राप्त हो उसे योग कहते हैं, तिससे माताके और पिताके कुलमें जिस २ में एक पिंडदानक्रियाका अन्वय हो वही सपिंड होताहै किन्हीका यह कथनहै तिससे एक पिंड करनेवालेके पितासे छ: छ: बारह सपिंड होतेहैं, इनमें किन्हीका यह कथनहै कि, दोनों ओरसे सापिंडयकी निवृत्तिमेंही विवाह होताहै, और प्रकार नहीं होता, शुद्धचिन्तामणि वाचस्पति और हरदत्त आदिका तो यह

तियोगिकत्वेन संयोगवदुभयनिरूप्यत्वात् एकतो निवृत्तावन्यतो निवृत्तेरावश्यकत्वान्मूलपुरुषमारभ्याष्टमो वरो मूलपुरुषमारभ्य द्वितीयातृतीयादिकां कन्यामुद्वहेदित्याहुः ॥ शिष्टास्तु न वधूवरयोः स्वतः सापिण्डयं किं तु कूटस्थसंततित्वात्तत्सापिंडयेनैव ॥ अतोष्टमवरं प्रति कन्याया असापिंडयेपि कन्यायाः कूटस्थेन सापिण्डयात्तत्संततिस्थत्वाद्वरस्तां प्रति सपिण्ड एवेत्यविवाहः । सापिण्ड्यासापिण्डयोः प्रतियोगिभेदेनाविरोधादित्याहुः ॥ इदमेव च युक्तम् । आशौचेप्येवं सापिण्ड्यं ज्ञेयम् ॥ यत्र तु मध्ये विच्छिन्नमपि सापिण्ड्यं मण्डूकप्लुतिवत्पुनरनुवर्तते ॥ यथा–'कूटस्थात्पञ्चम्योः कन्ययोः पुत्रौ तत्र निवृत्तिः । तदपत्ययोस्त्वनुवृत्तिस्तत्रापि न सापिण्ड्यासापिण्ड्ययोर्दोषः ॥ संबन्धिभेदात् ॥ तेन तत्र न विवाहः ॥ अत्र कूटस्थमारभ्य गणना कार्या । तदुक्तं–"वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः । पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्ड्यं निवर्तते" इति ॥ कूटस्थो मूलपुरुषः । विश्वरूपनिबन्धे–"एवमुक्तप्रकारेण पितृबन्धुषु सप्तमात् । ऊर्ध्वमेव विवाह्यत्वं पञ्चमान्मातृबन्धुतः ॥ सन्तानो भिद्यते यस्मात् पूर्वजादुभ-

---

कथन है कि, जैसे सगोत्रता सप्रतियौगिक अर्थात् उसके दो निरूपक होतेहैं इसीप्रकार सापिण्ड्यभी सप्रतियौगिक है इससे संयोगके तुल्य यह दोनोंसे बनाने योग्य है तिससे एकसे निवृत्ति होनेके पीछे औरसे उसकी निवृत्ति आवश्यक है, इससे मूल पुरुषसे लेकर दूसरी तीसरी आदि कन्याका विवाह होसकता है ॥ शिष्टोंका तो यह कथन है, वधू और वरकी स्वयं सपिंडता नहीं है किन्तु कूटस्थ (मूलपुरुष) की सन्तान होनेसे सपिंडता प्राप्त होतीहै, इससे आठवें वरके प्रति यद्यपि कन्या असपिंड है, तो भी कूटस्थके संग कन्याको सपिण्ड होनेसे वरको उस मूलपुरुषकी सन्तान होनेसे उस कन्याके प्रति सपिण्डता प्राप्तही है इससे उन दोनोंका विवाह नहीं होसक्ता कारण कि, सपिंडता असपिंडताका प्रतियोगीक भेदसे परस्पर विरोध है, और यह शिष्टोंका कहनाभी युक्त है, अशौचमें भी इसी प्रकार सपिंडता जाननी चाहिये और जहां बीचमें सपिंडता जातीहो अर्थात् बीचका कोई मृतक होगयाहो वहां मेंडककी प्लुति (कूदना) के तुल्य अनुवर्तन होजातीहै और जहां बीचमें सपिंडताकी अनुवृत्ति नहीं होती, जैसे कूटस्थसे पांचवीं कन्याके पुत्रोंमें, वहां निवृत्त होजातीहै, और उनकी सन्ततिमें तो अनुवृत्ति होजाती है, वहांभी सपिंडता और असपिंडताका सम्बन्धीके भेदसे दोष हो,इससे वहां विवाह नहीं होता, यहां कूटस्थसे लेकर गिनती करनी, सोई लिखाहै कि,वधू और वरका पिता यदि कूटस्थसे सातवां हो और उनकी माता पांचवीं होय तो उन दोनोंके सापिंड्यकी निवृत्ति होजातीहै, विश्वरूपनिबन्धमें कहाहै कि, ऐसेही उक्त प्रकारसे पिताके बन्धुओंमें सातसे ऊपरही विवाह करने योग्य है, और माताके बन्धुओंमें पांचसे उपरान्त सन्तानके भेदकी प्राप्ति होजाती है इससे मूलपुरुषसे दोनों

यत्र च । तमादाय गणेद्धीमान् वरं यावच्च कन्यकाम् ॥ " स्मृतितत्त्वे नारदः- "आसप्तमात्पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः । अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा ॥ " अत्र बन्धुभ्य इति पञ्चमीनिर्देशात् । पितुः पितृष्वसृपुत्रात्सप्तमीं मातुः पितृष्वसृपुत्राच्च पञ्चमीमपि त्यजेत् । एवमन्यबन्धुषु ज्ञेयम् ॥ त्रिगोत्रात्यये निर्णयः । तत्रापि त्रिगोत्रात्ययेऽर्वागपि विवाहं कुर्यात् । वक्ष्यमाणवचनात् । त्रिगोत्रगणनाच्च मातामहगोत्रापेक्षया । न तु स्वापेक्षया । अन्यथा पितुः पितामहदुहितुर्दौहित्रीपुत्री परिणेया स्यात् वध्वा मातामहगोत्रापेक्षया तु त्रिगोत्रान्तर्गतेन विवाहप्रसङ्ग इति संबन्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः । सम्बन्धविवेके शूलपाणिरप्याह पञ्चमात्सप्तमाच्चार्वागपि त्रिगोत्रान्तरिता विवाह्या । "असंबद्धा भवेन्मातुः पिण्डेनैवोदकेन वा । सा विवाह्या द्विजातीनां त्रिगोत्रान्तरिता च या" इति बृहन्मनूक्तेः ॥ 'सन्निकर्षेपि कर्तव्यं त्रिगोत्रात्परतो यदि' इति देवलोक्तेश्चेति ॥ एतच्च दाक्षिणात्या न मन्यन्ते ॥ यत्तु वसिष्ठः-'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा' इति ॥ यच्च विष्णुपुराणे-"पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् । गृहस्थ उद्वहेत्कन्यां न्याय्येन विधिना नृप" इति ॥ तत्पञ्चमीं सप्तमीमतीत्येति व्याख्ये-

---

गिनती वर और कन्यातक करे; स्मृतितत्त्वमें नारदने कहाहै कि, पिता और माताके बन्धुओंसे सात और पांचवें तककी और अपने गोत्रकी और प्रवरकी कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये इस वाक्यमें ' बन्धुभ्यः ' यह पंचमीका निर्देश (दिखाना) है तिससे पिताकी पितृष्वसा (फूफी) के पुत्रसे सातवीं और माताकी फूफीके पुत्रसे पांचवींको भी छोडदे इसी प्रकार और बन्धुओंमें जानना ॥ इसमें भी तीन गोत्रके भेद होनेपर प्रथम पीढियोंमें भी विवाह करले, कारण कि, ऐसाही वचन आगे लिखेंगे, तीन गोत्रकी गिनती भी मातामहके गोत्रसे करनी चाहिये अपने गोत्रसे नहीं, अन्यथा पिताके पितामहकी पुत्रीकी जो दौहित्री वा पुत्रीहै वहभी विवाहने योग्य होजायगी, यदि वधू मातामहके गोत्रकी अपेक्षासे तीन गोत्रके भीतर होय तो विवाह नहीं होता, यह सम्बन्धतत्व आदि गौडग्रन्थोंमें कहाहै, सबन्धविवेकमें शूलपाणिने भी लिखाहै कि, पांचवें और सातवेंसे प्रथम तीन गोत्रके बीचकी कन्या विवाहके योग्य है, कारण कि, बृहन्मनुने लिखाहै कि, जो पिंड वा जलदानमें माताके संबन्धमें न हो, चाहै वह तीन गोत्रके बीचमें भी होय तो भी द्विजातियोंका विवाह करनेके योग्य है, देवलने कहाहै कि, तीन गोत्रसे आगे होय तो निकटमें भी विवाह करले, इसको दाक्षिणात्य नहीं मानते ॥ जो वसिष्ठने यह लिखा है कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवीं विवाहने योग्य है, और जो विष्णुपुराणमें यह लिखा है कि हे नृप ! मातृपक्षसे पांचवीं और पितृपक्षसे सातवीं कन्याको गृहस्थी विवाहै और विधिसे विवाह ले, यह दोनों वाक्य पांचवीं और सातवींको लंघकर विवाह करै, यह

नम् । "पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया । क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः" इत्यपरार्के मरीचिवचनात् । हारलतायां शंखलिखितौ-"सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी । पिण्डश्चोदकदानं च आशौचश्च तदानुगम्" ॥ गोत्रं सन्तानम् ॥ आशौचं तानभिव्याप्य गच्छतीत्यर्थः ॥ शुद्धिविवेके शुद्धिचिन्तामणौ च ब्राह्मे-"सर्वेषामेव वर्णानां विज्ञेया साप्तपौरुषी । सपिण्डता ततः पश्चात्समानोदकधर्मता ॥ ततः कालवशात्तत्र विस्मृतौ नामगोत्रतः । समानोदकसंज्ञा तु तावन्मात्रापि नश्यति ॥ २ ॥" सप्तोर्ध्वं त्रयः सोदकाः । ततो गोत्रजाः ॥ तत्रैव ब्राह्मे--' अविभक्तधनास्त्वेते सपिण्डाः परिकीर्तिताः ' तेन विभक्तधनाभावे विभक्तः सपिण्डो धनहारी नान्यथा इत्यर्थः । तेन विवाहे आशौचे धनग्रहणे च त्रिधा सापिण्ड्यम् ॥ यत्तु--'पञ्चमीं मातृतः परिहरेत्सप्तमीं पितृतस्त्रीन्मातृतः पञ्च पितृतो वा' इति पैठीनसिस्मृतौ त्रीनित्यनुकल्प इति माधवोक्तेः ॥ "पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा । दशभिः पुरुषैः ख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् ॥ उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम् ॥ पञ्चमीं तद-

---

अर्थ करके लगाने, कारण कि, अपरार्कमें मरीचिने कहा है कि, पांचवें और सातवें जिनका विवाहकर्म होता है, कर्ममें तत्परभी वे, पतित और शूद्रभावको प्राप्त होते हैं हारलतामें शंखलिखितका कथन है कि, सबकी सपिंडता गोत्रमें सात पुरुषतक होती है, और पिंड जलदान अशौचभी वहांतक ही होता है, इस कथनसे गोत्रसे संतान लेनी वहांतक अशौच लगता है यह अर्थ जानना, शुद्धिविवेक और शुद्धिचिंतामणिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, सब वर्णोंकी सपिंडता सात पुरुषतक जाननी चाहिये, और उससे परे समानोदक धर्म प्राप्त होता है, अर्थात् सात पुरुषतक पिंड देनेका अधिकार है, और उससे आगे केवल जलदान फिर कालवशसे नाम गोत्रकी जब याद न रहे, तब उतनीभी समानोदक संज्ञाकी निवृत्ति हो जाती है, सातसे तीन समानोदक, उससे परे फिर गोत्रज संज्ञा प्राप्त हो जाती है ॥ वहांही ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, जबतक इनके धनका विभाग न हो तबतक ये सपिंड कहाते हैं, तिससे धनका विभाग न होनेपर भी पृथक् (जुदे), हुए असपिंडधनके भागी होते हैं अन्यथा नहीं, तिससे विवाह अशौच धनके विभागमें तीन प्रकारकी सपिंडता सिद्ध होती है जो किसीने यह लिखा है कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवीं वा मातासे तीसरी और पितासे पांचवीं लेनी इस पैठीनसीकी स्मृतिमें पांचवीं और सातवींके स्थानमें तीसरी और पांचवीं यह विकल्प है, इस माधवके वचनसे माता और पितासे पांचवीं और सातवीं उस कन्याको विवाहे जो दश पीढियोंतक विख्यात वेदपाठियोंके श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुई हो, सातवींसे परे कन्याको विवाहे, वह न मिले तो सातवींको विवाहे, और वह न

भावे तु पितृपक्षेप्ययं विधिः ॥ सप्तमीं च तथा षष्ठीं पञ्चमीं च तथैव च । एवमुद्वा-हयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः ॥ तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽङ्गिरा यमः ” ॥ ४ ॥ “यस्तु देशानुरूपेण कुलमा-र्गेण चोद्वहेत् । नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाद्वैतत्प्रदृश्यते” इति चतुर्विंशतिम-तात् ॥ चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमोपि वा । पराशरमते षष्ठीं पञ्चमो न तु पंचमीम्” इति पराशरोक्तेश्चानुकल्पत्वेनापदि पञ्चम्यादिपरिणयनं कार्यमिति प्रतीयते। अत्र हि तदभावे इति स्पष्टमेवानुकल्पत्वमुक्तम् । तत्र यथाश्रुतं ज्ञेयम् ॥ पूर्वोक्तमरीचिवचोविरोधात् । वस्तुनि विकल्पसंभवात् । “पञ्चमात्सप्तमाद्वीनां यः कन्यामुद्वहेद्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्वहन्” इति विष्णूक्तेः । पराशरस्य मूलाभावाच्च ॥ तस्मान्मदनपारिजाताद्युक्तदिशा दत्तकसापत्न-सम्बन्धाद्यनुप्रवेशे ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिसपिण्डविषये वा पूर्वोक्तानि ज्ञेयानि । न त्वनुकल्प इति भ्रमितव्यम् । यत्तु स्मृतिचन्द्रिकामाधवादय आहुः-‘तृतीये संगच्छावहै चतुर्थे संगच्छावहै’ इति शतपथश्रुतेः ॥ ‘तृप्ता जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयीवपामिव’ इति ॥ ‘गर्भे नु नौ

मिले तो पांचवींको पितृपक्षमें भी विवाहै, यहीं विधि है कि, सातवीं छठी पांचवीं कन्याके विवाहनेमें दोष नहीं, यह शाकटायनका कथन है, दोनों पक्षोंमें तीसरी वा चौथीको विवाहै यह मनु पराशर अंगिरा और यमका कथन है ॥ और जो देशके अनुसार और कुलमार्गसे विवाहित है वह सदैव व्यवहार (सम्बन्ध) करनेके योग्य होता है कारण कि, वेदमें भी यही लिखा है, इस चतुर्विंशतिके मतसे चौथा पांचवां वर चौथी कन्यासे विवाह करै पराशरके मतमें पांचवां छठीको विवाहै पांचवींको नहीं, इस पराशरके कथनसे पांचवींका विवाहना गौण है इससे आपत्तिमें ही पांचवींका विवाह करै यह विदित होता है और यहां छठी न मिले तो पांचवींको विवाहै यह प्रकट ही पांचवींका विवाहना गौण लिखा है यह किसीका कहा हुआ विकल्प ठीक नहीं है कारण कि, इसमें पूर्वोक्त मरीचिके वाक्यका विरोध है, और वस्तुतः (यथार्थ) विकल्पका असम्भवभी प्राप्त होता है, और यह विष्णुने भी कहा है कि, पांचवें और सातवेंसे प्रथम और अपने गोत्रकी कन्यासे जो द्विज विवाह करता है वह गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला जानना चाहिये, और पराशरके वाक्यमें कोई प्रमाणभी नहीं, तिससे यह भ्रम नहीं करना ॥ मदनपारिजात आदिके कहे हुए मार्गसे दत्तकका और सौतेले भाईके सम्बन्धका प्रवेश जब ब्राह्मणादिकमें होजाय तब उनमें वा क्षत्रिय आदिकोंके सपिंडमें पूर्वोक्त पाराशर आदिके वाक्य लगाने चाहियें, अनुकल्प नहीं मानना चाहिये, जो स्मृतिचन्द्रिका और माधव आदिका यह कथन है कि, तीसरेमें संग (विवाह) करते हैं वा चौथेमें करते हैं, मातुलकी पौत्रीको तुल्य विवाहमें पैतृष्वसेयी (फूफीकी

जनिता दम्पतीकः' इति च मन्त्रवर्णात् ॥ मातुलकन्यापरिणयनिर्णयः । "मातृष्वसृसुतां केचित्पितृष्वसृसुतां तथा । विवहन्ति कचिद्देशे संकोच्यापि सपिण्डताम्" इति शातातपोक्तेश्च मातुलकन्योद्वाहोपि कार्यः । यद्यपि पितृष्वसृकन्योद्वाहोपि प्राप्तस्तथापि 'अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु' इति निषेधाद्वचनान्तरेण तदुद्वाहस्याविधानाच्च न कार्यः ॥ अयं तु दाक्षिणात्यशिष्टाचारात् कार्य इति । नच पूर्वोक्तश्रुतीनामर्थवादमात्रता । मानान्तरेणासिद्धौ-' उपरि हि देवेभ्यो धारयति ' इतिवदनुवादानुपपत्त्या विधिकल्पनात् ॥ यत्तु शातातपः-"मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ " यच्च मनुः-'पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत बुद्धिमान्' ॥ यच्च व्यासः-' मातुः सपिण्डा यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः ' इति तद्गान्धर्वादिविवाहोढमातृविषयम् ॥ तत्र पितृगोत्रानिवृत्तेः । अत एव मार्कण्डेयपुराणे-' गान्धर्वादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ' इति ॥ ब्राह्मादिविवाहे तु परिणेयैवेति ॥ भट्टसोमेश्वरोऽपि तृतीयेऽध्याये चतुर्थपादे मातुलक-

---

लडकी को छोडदे. कारण कि, गर्भमें इन मन्त्रसे और वर्णसे स्त्री पुरुष उत्पन्न होते हैं ॥ कोई माताकी बहनकी पुत्री और कोई पिताकी बहनकी पुत्री सपिण्डताके संकोचसे विवाहतेहैं इस शातातपके कथनसे मातुलकी कन्याके संग विवाह करना, यद्यपि पिताकी बहिनकी पुत्रीके संगभी विवाह प्राप्त है तो भी वह नरकका साधन और जगत्में निन्दित है, इस निषेधसे और किसी देशमें उसकी विधिभी नहीं है इससे उसको नहीं करना, यह दक्षिणके शिष्टाचारसे करना यदि कोई कहै कि, पूर्वोक्त श्रुति अर्थवादरूप है विधि नहीं सो भी ठीक नहीं. प्रमाणान्तरसे सिद्ध न होय तो इसके तुल्य अनुवाद नहीं होसकता, इससे विधिकी कल्पना है कि, परलोकका कर्म देवताओंके निमित्त करताहै जो शातातपने यह लिखा है कि, मामाकी और माताके गोत्रकी और अपने प्रवरकी कन्याके संग यदि विवाह होजाय तो उसे छोडकर चान्द्रायण करै, और जो मनुने कहाहै कि, फूफीकी पुत्री मौसी माताकी बहिनकी पुत्री और माताके बडे भ्राताकी पुत्रीके संग गमन करके चान्द्रायण करै, इन तीनोंको बुद्धिमान् मनुष्य स्त्रीत्वमें स्वीकार न करै ॥ और जो व्यासने कहाहै कि, द्विजाति मनुष्य माताके सपिण्डकी कन्याको यत्नसे त्यागदें ये पूर्वोक्त वाक्य उस माताके विषयमें हैं जो गान्धर्व आदि विवाहोंसे विवाही गई हो कारण कि, उन विवाहोंमें पिताका गोत्र निवृत्त नहीं होता, इससेही यह मार्कण्डेयपुराणमें कहाहै कि,- गांधर्व आदि विवाहोंमें पिताके गोत्रसे ही धर्मयुक्त होताहै, यदि ब्राह्मादि विवाह हुआ होय तो विवाहने योग्य है सोमेश्वरभट्टने भी वाक्यचरणके तीसरे अध्या-

न्योद्वाहमुदाहृत्य स्मृतिविरोधेनाचारप्राप्तस्यास्य वार्तिकबाधोक्तावपि पूर्वोक्तश्रौतलिङ्गबलीयस्त्वादस्य कर्तव्यतामाह ॥ तदेतद्दत्तकस्य पालकदात्रिममातृसोदरकन्याविषयत्वेनासवर्णमातुलकन्याविषयत्वेन युगान्तरपरत्वेन चोपपन्नमपि अविचारितरमणीयं यथा तथास्तु । तथापि कलौ तावन्निषिद्धमेव ॥ 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा ' इत्यादित्यपुराणात् ॥ माधवीये बौधायनोप्यस्य निन्दामाह–'पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरत ऊर्णाविक्रयोनुपेतेन स्त्रिया च सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुलपितृष्वसृदुहितृपरिणयनमिति । अथोत्तरतः सीधुपानादिकमुक्त्वा इतर इतरस्मिन् कुर्वन् दुष्यति, इतर . इतरस्मिन्निति भट्टसोमेश्वरेणापि स्मृतिविरुद्धानां मातुलकन्योद्वाहादीनामस्माद्वचनादप्रामाण्यमित्युक्तम् ॥ बृहस्पतिरपि–"उद्वह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः । मत्स्यादाश्च नराः पूर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः ॥ उत्तरे मद्यपाश्चैव स्पृश्या नृणां रजस्वलाः" इत्यनाचारत्वमाह ॥ अत एव हेमाद्रौ मात्स्ये कर्नाटकादीनां तत्कारिणां श्राद्धे निषेधः ॥ बोपदेवेनापि लिखितं ब्राह्मम्–"यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वै वृषलीपतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम् " इति ॥ तस्मा-

यमें मामाकी कन्याके विवाह लिखकर आचारसे प्राप्त भी इसका स्मृतिके विरोधसे वार्तिकमें बाध भी लिखाहै परन्तु पूर्वकथित श्रुतिका प्रमाण अधिक बलवान् है इससे यह करनेसे योग्य लिखाहै तिसमें यह मामाकी लडकीके संग विवाह उस कन्याके विषय जानना, जो दत्तकके पालनेवाले दत्तकही माताके संग माईकी पुत्री है या पृथक् वर्णके मातुलकी पुत्री अथवा (अन्ययुग) के विषयमें है, इसले शास्त्रसिद्धभी मातुलकी कन्याको विवाहै, विना विचारेही शोभित है, तो भी कलियुगमें निषिद्धही है कारण कि, आदित्यपुराणमें यह कहाहै कि, माताके गोत्र और सपिंडसे विवाह और गोविदासन ये कलिमें वर्जित हैं ॥ माधवीयमें बौधायननेभी इसकी निन्दा लिखीहै कि, विन्ध्याचलके उत्तर और दक्षिणमें पांच प्रकारका विवाह चलताहै कि, यज्ञोपवीत रहितके और स्त्रीके संग भोजन, बासी भोजन, मामा फूफीकी कन्याके संग विवाह ये निषिद्ध हैं फिर उत्तरमें मद्यपान आदि लिखकर अन्य अन्य देशमें करनेसे दूषित होता है, और एक अन्यदेशमें करे तो दूषित नहीं होताहै; इस कथनसे सोमेश्वर भट्टने भी धर्मशास्त्रके विरुद्ध मातुलकी कन्याके विवाह आदि इस वाक्यसे अप्रामाणिक लिखे हैं बृहस्पतिने भी इनको अनाचार कहाहै कि, द्विज मामाकी कन्याको विवाहते हैं, पूर्वके मनुष्य मत्स्यभक्षण करते हैं उत्तरमें स्त्री मद्य पीती है और रजस्वलाको छू लेते हैं, इसीसे हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्य है उसके करनेवाले कर्णाटकोंका श्राद्धमें निषेध कहा है; बोपदेवनेभी ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है हे विप्र ! जहां मामाकी कन्याके संग विवाह करनेवाला और शूद्राका पति रहता हो, वहांपर किया श्राद्ध और मांससे रहित श्राद्ध पितरोंको नहीं पहुंचता, तिससे सिद्ध हुआ कि,

-मातृतः पञ्च पितृतः सप्त त्यक्त्वोद्वहेदिति सिद्धम् ॥ सम्बन्धविवेके सुमन्तुः- "ब्राह्मणानामेकपिण्डस्वधानामादशमाद्धर्मविच्छित्तिर्भवति । आसप्तमाद्विच्छित्तिर्भवति । आतृतीयात्पिण्डविच्छित्तिरन्यथा । पिण्डशौचक्रियाविच्छेदाद्ब्रह्मतुल्यो भवति ।" अस्यार्थमाह शूलपाणिः-जीवत्पित्रादित्रिकस्य वृद्धप्रपितामहादयस्त्रयः श्राद्धदेवतात्वात्पिण्डभाजो भवन्ति । तदूर्ध्वं त्रयो नवपुरुषपर्यन्ता लेपभाजः । श्राद्धकर्ता च दशम इति दशमादूर्ध्वं सापिण्ड्यनिवृत्तिः । दशमादित्युपलक्षणम् ॥ तेन पितृपितामहजीवने नवपुरुषपर्यंतं पितृजीवने चाष्टपुरुषपर्यन्तं सापिण्ड्यमिति ज्ञेयम् ॥ अपुत्रधनग्रहणे संनिहिताभावे सप्तपुरुषपर्यन्तमधिकारः ॥ धनग्राहिणमारभ्य तृतीयः पौत्रः, तदूर्ध्वं श्राद्धविच्छेदः । अन्यथा धनहारित्वेऽपुत्रश्राद्धाकरणे ब्रह्महत्येत्यर्थः । आतृतीयादित्यनूढकन्याविषयम् ॥ "अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते" इति वसिष्ठोक्तेः ॥ एतच्चाशौचविषयं सापिण्ड्यं न तु विवाहादौ । तत्र पूर्वोक्तवचनैः पञ्चमत्वसप्तमत्वनियमादिति मेधातिथिप्रमुखा दाक्षिणात्याः वाग्दानोत्तरमेतदिति शुद्धिविवेकः । मातृकुलविषयं कानीनकन्यकाविषयं चैतत् । अन्यथा-"अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापि-

---

माताले और पितासे सात कुल छोड़कर विवाह करै ॥ सम्बन्धविवेकमें सुमन्तुने यह कहाहै कि, जिसका अर्थ शूलपाणिने ऐसा लिखाहै कि, जिसका पिता जीवित हो उसके वृद्धप्रपितामह आदि तीन श्राद्धके देवताके होनेसे पिंडके भोगी होतेहैं, उससे ऊपरके तीन नव ९ पुरुषतक लेपभागके भजनेवाले होते हैं, और दशवां श्राद्धका कर्ता, इन दशसे परे धर्मका सातवेंमें वनकी नष्टता और तीसरेमें पिण्डकी नष्टता इससे अन्यथा जो पिण्ड अशौचनाश और क्रियाका विच्छेद करताहै यह ब्रह्महत्यारेकी समान होताहै दशोंसे परे सापिण्डकी निवृत्ति होती है यहां दशमतक यह उपलक्षण है, तिससे पिता पितामह जीवित होय तो नव पुरुष, पिता जीता हो तो आठ पुरुषतक सापिण्ड्य जानना, अपुत्र धनके ग्रहणमें निकटका न होय तो सात पुरुषतक अधिकार कहा है धन ग्रहणके करनेवालेसे लेकर तीसरा पोता होता है उससे ऊपर श्राद्धका विच्छेद हो जाता है इससे अन्यथा धनको ग्रहण कर के और अपुत्रके श्राद्ध आदिको न करै, तो ब्रह्महत्यारा होता है तीन पर्यन्तही सपिंड है, यह तो बिना विवाही कन्याओंके विषयमें है, कारण कि, वसिष्ठने कहा है कि, विना बिवाही कन्याओंका तीन पुरुषतक सापिंड्य माना जाता है, ॥ यह सापिंड्यभी अशौचके विषय है, विवाह आदिमें नहीं है, वहां पूर्वोक्त वाक्योंसे पांच और साततकका नियम कहा है, यह मेधातिथि आदि दाक्षिणात्योंका कथन है, सगाईके पीछे यह सापिंड्य है यह शुद्धिविवेकका कथन है, माताके कुलके वा कानीनकी कन्याके विषय यह सापिंड्य कहा है, अन्यथा इस कूर्मपुराणके संग विरोध होगा कि, विना विवाही

ण्ड्यं साप्तपौरुषम् । प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः प्रजापतिः'' इति कौर्मेण विरोधः स्यादिति रत्नाकरस्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः । युक्तं चैतत् ॥ अन्यथा कन्योत्पत्तौ पुरुषत्रयपर्यन्तमेव सूतकं स्यात् । नोर्ध्वम् ॥ सापत्नमातामहकुले निर्णयः । सापत्नमातामहकुले त्वाह मिताक्षरायां शंखः-''यद्येकजाता बहवः पृथक्क्षेत्राः पृथग्जनाः । एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्तते त्रिषु'' ॥ पृथक्क्षेत्राः भिन्नजातीयस्त्रीषु जाताः । पृथग्जनाः सजातीयभिन्नमातृषु जाताः । अत्र त्रिपुरुषं सापिण्ड्यमिति विज्ञानेश्वरो व्याचख्यौ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये सापिण्ड्यदीपिकायां चैवम् ॥ मदनपारिजाते तु पृथक्क्षेत्रजाः भिन्नमातृजाः पृथग्जनाः भिन्नजातीयाः । एतद्विजातीयसापत्नमातृकुले चतुःपुरुषं सापिण्ड्यम् । 'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा' इति वसिष्ठोक्तेः ॥ सप्तमीमिति ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिदारोत्पन्नपितृकुलविषयं चेत्युक्तम् ॥ तल्लवकपोलकल्पितत्वात् ग्रन्थान्तरविरोधाच्च निर्मूलम् ॥ 'पितृपत्न्यः सर्वाः मातरः' इत्युक्त्वा, सुमन्तुना 'तदपत्यानि भागिनेयानि' इति पृथङ्निषेधाच्च । अन्यथा सपिण्डत्वेन निषेधात् सपत्नमातुलत्वादिनिर्देशो व्यर्थः । अत एव तेन स्मृतिकौमुद्यां सवर्णसापत्नमाता-

---

कन्याओंकी सापिंडता सात पुरुषतक होती है, और विवाह की हुइयोंकी सपिंडता भर्ता प्रजापतिने भर्ताके संग लिखी है, यह रत्नाकर स्मृतितत्त्वआदि गौडग्रन्थोंमें कहा है और युक्तभी यही है, नहीं तो कन्याकी उत्पत्तिमें तीन पुरुष पर्यन्तही सूतक होगा, उससे ऊपर न होगा ॥ सापत्नमातामहके वंशमें तो मिताक्षरामें शंखने यह लिखा है कि, यदि एकसे उत्पन्न हुए पृथक् पृथक् जातिकी माताओंके पुत्र भिन्न २ होय तो वे सपिंड कहाते हैं पर उनका अशौच भिन्न २ होता है और पिंड तो तीनकोही दिये जाते हैं, इसमें (पृथक् जना) इसका अर्थ यह है कि, विजातीय माताओंमें उत्पन्न हुए हों, यहां विज्ञानेश्वरने व्याख्यान किया है कि, तीन पुरुषतक सापिंडता रहती है, पृथ्वीचन्द्रोदय और सापिंड्यदीपिकामेंभी इसी प्रकार कहा है, मदनपारिजातमें तो यह लिखा है कि, पृथक् क्षेत्रका अर्थ पृथक् २ माताओंसे उत्पन्न हुए, और (पृथक् जना) का अर्थ भिन्न २ जातिके हों यह भी विजातीय सापत्नमाताके कुलमें समझना चाहिये समान वर्ण सापत्नमाताके कुलमें तो चार पुरुषपर्यन्त सापिंडता होती है कारण कि, वसिष्ठने यह लिखा है कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवींको विवाह करे और सातवीं यहभी उस कन्याके विषयमें है, जो ब्राह्मण आदिकोंमें क्षत्रिया आदि स्त्रियोंमें उत्पन्न हुई हो और पिताके वंशमें हो वह सब कपोलकल्पित होनेसे तथा दूसरे ग्रन्थोंके विरोधसे अप्रमाण है ॥ कारण कि, सुमंतुने पिताकी स्त्री सब माता कहकर उनकी पुत्रियोंके पुत्र भानजे कहे हैं यह पृथक् निषेध किया है, अन्यथा सपिंड होनेसे निषेध हो जायगा सपत्न मातुल आदिका निषेध व्यर्थ हो जाता, इसी कारणसे उसने स्मृतिकौमुदीमें शंखके वाक्यकी

महत्कुलपरत्वेन तथैव शंखवचनं व्याख्यातम् ॥ तेन वासिष्ठं-'पञ्चमीं सप्तमीमतीत्य' इति व्याख्येयम् । तस्मात् प्राच्यैव व्याख्या युक्ता ॥ प्रयोगरत्ने भट्टैः स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु च सपत्नमातामहकुले यावदुक्तं वाचनिकमेव सापिण्ड्यमुक्तम् ॥ यथाह सुमन्तुः—'मातृपितृसंबद्धा आसप्तमादविवाह्या भवन्ति । आपञ्चमादन्येषां पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्वसारस्तदुहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि । अन्यथा संकरकारिणः स्युस्तथाध्यापयितुरेतदेव' इति ॥ आपञ्चमादिति मातृकुले त्रिगोत्रान्तरितविषयं वेति प्राच्याः ॥ मात्स्ये—"समानप्रवरा चैव शिष्यसन्ततिरेव च । ब्रह्मदातुर्गुरोश्चैव सन्ततिः प्रतिषिध्यते ॥ " तद्भगिन्यो मातृष्वसार इति तु आकरे न पठितम् । क्वचिद्वचनादविवाहः ॥ यथा गृह्यपरिशिष्टे— 'अविरुद्धसंबन्धामुपगच्छेत' इत्युक्त्वा विरुद्धसम्बन्धः स्वयमेवोक्तः । ' यथा भार्यास्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नीस्वसा च ' इति ॥ बौधायनः—"मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् । पितृव्यपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् ॥ " अतो मातृष्वसुः सापत्नपुत्रकन्याप्यविवाह्या । ' सापत्नमातृकुलजाम् ' इति मदनपारिजातोक्तेरिति केचित् । केचित्तु-'ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः ' इति मनूक्तेस्तत्पत्न्या मातृत्वा-

---

व्याख्या सपत्नमातामहके वंशमें लगाली है इससे वसिष्ठके कथनकाभी अर्थ पांचवीं सातवींको उलंघकर विवाह यह करना चाहिये, इससे प्रयोगरत्नमें भट्टोंने प्राचोंकी व्याख्याही यथार्थ लिखीहै स्मृतितत्त्वआदि गौडग्रंथोंमें सपत्न मातामहके वंशमें वचनयुक्त शास्त्रसेही सब सापिंड्य लिखाहै, वैसेही सुमंतुने लिखाहै कि, माता पिताके सम्बन्धी सात पुरुषतक और उनके आगे पांच पुरुषतक विवाह करनेके योग्य नहीं होतेहैं, पिताकी सब पत्नी माता और उनके भ्राता मातुल और उनकी भगिनी मौसी और उनकी कन्या वहिन और उनके पुत्र भानजे होतेहैं, इससे अन्यथा हो तो वर्णसंकरके कर्ता होतेहैं,और पढानेवालेके वंशमें भी इसीप्रकार है ॥ आपञ्चमात् (पांचवींतक) यह माताके कुलमें तीन गोत्रके अन्तरपर जानना यह प्राच्योंका कथन है, मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, एक प्रवरके, शिष्यकी सन्तान वेद पढानेवाले गुरुकी संतान विवाह विरुद्ध है, उन (माताओं) की वहिन मौसी होती है, यह भाष्यमें नहीं लिखा कहीं वाक्यसेभी विवाह नहीं होता जैसे गृह्यपरिशिष्टमें कहा है जिसके सम्बन्धमें विरोध नहो उसे विवाहै, यह कहकर विरुद्ध सम्बन्ध स्वयंही लिखा है कि, जैसे भार्याकी वहिनकी पुत्री, चाचीकी वहिन, बौधायनका कथन हैं कि, माताकी सौतकी भगिनी और पुत्रीको त्याग दे, चाचीकी वहिन और उसकी पुत्रीको त्याग दे, इससे मौसीके सापत्नपुत्रकी कन्याभी विवाहके अयोग्य है, कारण कि, मदनपारिजातमें भी यह लिखा है कि, सापत्नमाताके वंशमें उत्पन्न हुई त्याग दे, कोई यह कहते हैं और किन्हीका यह कथन है कि, जेष्ठ भ्राता पितातुल्य होता है इस मनुके कथनसे

दीपितुर्मातामहत्वात् । ज्येष्ठभ्रातृपत्नी भगिनी न विवाह्या ॥ तथा-'उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता ' इति मनूक्तेर्गुरुणा त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं सखापि निर्वाप्यः । अस्ततेषां कन्या नोद्वाह्याः "गायत्र्या उपदेष्टुश्च कन्यां नैवोद्वहेद्द्विजः। गुरोश्च कन्यां शिष्यो वा तत्संतत्यापि नेष्यते ॥ पुरुषत्रयपर्यन्तं भ्रात्रादेर्नैतदिष्यते। वाक्सम्बन्धकृतानां तु स्नेहसम्बन्धभागिनाम् ॥ विवाहोत्र न कर्तव्यो लोकगर्हा प्रसज्यते " ॥ २ ॥ इति वचनाच्चेत्याहुः ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ दत्तकस्य सापिण्ड्यनिर्णयः । दत्तकविषये तूच्यते ॥ तत्र गौतमः-'ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः॥ ' पंचमादिति बन्धुग्रहणान्न दत्तकमात्रपरमिदम् ॥ किंतु संतानेपि। एतत् क्षेत्रजादिद्व्यामुष्यायणपरमिति हरदत्तः॥ अत्र स्मृतिचन्द्रिका-'नियोगाद्य उत्पादयति तस्माद्बीजिनोप्यूर्ध्वं सप्तमादित्यर्थः इति दत्तकस्य जनकविषयमेतदिति साषिण्ड्यमीमांसायाम् । तेन दत्तकस्य जनककुले सप्तपौरुषं जननीकुले पञ्चपौरुषं साषिण्ड्यम् । "दत्तक्रीतादिपुत्राणां बीजवप्तुः सपिण्डता । सप्तमी पंचमी चैव गोत्रित्वं पालकस्य च ' इति बृहन्मनूक्तेः ॥ 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेश्च ॥ ' पालकपि-

---

उसकी भार्याको माता होनेसे उसके पिताको नाना होनेके कारण ज्येष्ठ भाईकी स्त्रीकी भगिनीसे भी विवाह न करना चाहिये ॥ इसी प्रकार उत्पन्न करनेवाले और वेद पढानेवाले पिताओंमें वेद देनेवाला पिता अत्यन्त उत्तम है इस मनुके कथनसे गुरुके संग भी तीन पुरुषतक सापिंड्य कहा है, मित्रभी विवाहमें निषिद्ध है; इससे उनकी कन्यासे भी विवाह न करना, और यह वाक्यभी है कि, गायत्री उपदेश करनेवालेकी कन्याको द्विज और गुरुकी कन्यासे शिष्य वा शिष्यकी सन्तान विवाह न करै, और तीन पुरुषपर्यन्त भ्राताकी कन्याका विवाहभी इष्ट नहीं जिनके यहां सगाई होगई हो अथवा जिनके संग स्नेहसम्बन्ध है, उनके यहांभी लोकनिन्दासे विवाह करना न चाहिये, इन वाक्योंमें प्रमाण नहीं है ॥ दत्तकके विषयमें तो लिखते हैं, उसमें गौतमने लिखा है कि, पिताके और जिसका बीज हो उसके सात बन्धुओंसे आगे और माताके पांच बन्धुओंसे आगे दत्तक विवाह करै इस कथनमें बन्धुके ग्रहणसे केवल दत्तक विषयमें नहीं किन्तु दत्तककी संतानके विषयमें भी लेख है, और यह हरदत्त लिखते हैं कि, ये क्षेत्रजआदि द्व्यामुष्यायणके विषयमें यह वाक्य है इसमें स्मृतिचन्द्रिकाका यह कथन है कि, जो नियोगसे उत्पन्न करै उस बीजवालेसे ऊपर भी साततक विवाह न करै, सापिंड्यमीमांसामें यह कहा है कि, दत्तकके पिता जनक विषयमें यह कथन है, तिससे दत्तकके जनककुलमें सात पुरुषतक और माताके कुलमें पांच पुरुषतक सापिंड्य है, कारण कि, बृहन्मनुने यह लिखा है कि, दत्तक आदि पुत्रोंमें बीज बोनेवालेकी सपिंडता सात और पांच पुरुषतक होती है, और गोत्रमें तो पालन करनेवालेके होती है, और

त्कुले तु पंचपुरुषम् तथा चापरार्के पैठीनसिः—"त्रीन्मातृतः पंच पितृतः पुरुषान-तीत्योद्वहेत् " इति । एतत्स एव व्याचख्यौ दत्तकादीन् पुत्रान् पितृपक्षतो निवृत्तपिण्डगोत्रार्षेयान् प्रत्येतदुच्यते पंच पितृत इति नान्यान् प्रतीति ॥ यत्तु वृद्धगौतमः—" स्वगोत्रेषु कृता ये स्युर्दत्तक्रीतादयः सुताः । विधिनागोत्रमायान्ति न सापिण्ड्यं विधीयते ॥ " यच्च वसिष्ठः—" अन्यशाखोद्भवो दत्तः पुत्रश्चैवोपनायितः । स्वगोत्रेण स्वशाखोक्तविधिना स्यात्स्वशाखभाक् " इति ॥ यच्च नारदः—"धर्मार्थं वर्धिताः पुत्रास्तत्तद्गोत्रेण पुत्रवत् । अंशपिण्डविभागित्वं तेषु केवलमीरितम् ॥ " तत्पालककुले साप्तपौरुषं सापिण्ड्यं न इत्येवं परम् न तु सर्वथा सापिण्ड्यनिषेधपरमिति सापिण्ड्यमीमांसायाम् ॥ मदनपारिजातादपि दत्तकानुप्रवेशेऽल्पं सापिण्ड्यं प्रतिभाति ॥ तथाहि तेन त्रीनतीत्येत्युदाहृत्य यस्य माता दत्तपुत्री प्रतिगृहीत्रा पुत्रीकृता तस्याः प्रतिगृहीतृकुले त्रीनतीत्येति॥ पंच पितृत इति यस्य दत्तपुत्रः पिता तस्य दत्तस्य जनककुलं तद्विषयमित्युक्तम् ॥ वस्तुतस्तु पूर्ववचसां महानिबन्धेषु क्वाप्यनुपलम्भादपरार्कादिलेखना-

गौतमनेभी वर्जिवालेकी सापिंडता लिखी है ॥ पालक पिताके कुलमें पांच पुरुषतक और पालक माताके वंशमें तीन पुरुषतक दत्तकका सापिंड्य प्राप्त है सोई अपरार्कमें पैठीनसिने कहा है कि, मातासे तीन और पितासे पांचपुरुषतक दत्तक विवाह करै, और यह उसीने अर्थ कहा है कि, उन दत्तक आदि पुत्रोंके प्रति यह वाक्य है कि, पितासे पांच पुरुष लंघकर विवाह करना अन्योंके प्रति नहीं जिनकी पिताके पक्षसे पिंड, गोत्र, प्रवरकी, निवृत्ति होगई है, और जो वृद्धगौतमने यह लिखा है कि, अपने गोत्रके जो दत्तक क्रीतपुत्र किये हैं, वे विधिसे गोत्रमें प्राप्त हो जाते हैं उनमें सपिण्डका विधान नहीं है, और जो वसिष्ठने यह लिखा है कि, और शाखासे उत्पन्न हुआ दत्तक पुत्र अपने गोत्र और अपनी शाखाकी विधिसे यज्ञोपवीत करनेसे अपनी शाखामें प्राप्त हो जाता है, और जो नारदने कहाहै कि, धर्मके अर्थ पालेहुए पुत्र उस २ गोत्रमें पुत्रके तुल्य अंश और केवल पिण्डके भागी ही होतेहैं ये गौतम, वसिष्ठ नारदके तीनों वाक्य इसके कहनेवाले हैं कि, दत्तकका सापिंड्य पालकके कुलमें सात पुरुषतक नहीं होता किंतु पांचतक होताहै, कुछ सर्वथा सापिंड्यका निषेधक नहीं है यह सापिंड्य मीमांसामें लिखाहै, मदनपारिजातसेभी दत्तकका अल्पही सापिण्ड्य विदित होता है, सोई लिखते हैं, मातासे तीन पुरुष लंघकर विवाहै, यह कहकर यह अर्थ लिखा है कि, जिसकी माता दत्तककी पुत्री हो और लेनेवालेने अपनी पुत्री बनालीहो, उसके लेनेवालेके कुलमें तीन पुरुष लंघकर दत्तकको विवाह करना चाहिये, और पितासे पांच यह तो उसके विषयमें हैं जिसका पिता दत्तकका पुत्र हो उसके पिताके वंशमेंसे पांच पुरुषतक दत्तकको विवाह न करना चाहिये, सिद्धान्त यह है कि, पूर्वोक्त वाक्य बडे २

-भावात् । पूर्वोक्तव्यवस्थायाश्च प्रतिभज्ञानतुल्यत्वाद्यैरेतल्लिखितं तेषामेव शोभते । मम तु पालककुले एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वरूपं साप्तपौरुषमेव सापिण्डयम् ॥ 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्जनककुलेपि तावदेव 'त्रीन् मातृतः' इत्यादि तु सवर्णसापत्नमातृकुलपरम् । 'यद्येकजाता बहवः' इति शाङ्खैकवाक्यत्वादिति युक्तं प्रतिभाति । अत एवास्य द्व्यामुष्यायणत्वं हेमाद्रिप्रवरमञ्जरीवृत्तिकृन्नारायणादिभिरुक्तम् । भट्टसोमेश्वरेणापि 'पृथाया कुन्तिभोजस्य पालककन्यात्वेपि ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुबीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्दत्त्रिमायाः पृथायाः जनकस्य शूरसेनस्य कुलेपि साप्तपौरुषम् । पालककुलेपि तावदेव सापिण्डयमुक्तमपि वा कारणाग्रहणे इत्यत्र सापिण्डयदीपिकायां तु दत्तक्रीतादीनां जनकगोत्रेणोपनयने कृते जनककुले साप्तपौरुषं सापिण्डयम् । पालकमातापितृकुले त्रिपुरुषम् । पिण्डनिर्वापान्निर्वाप्यलक्षणम् । त्रिपुरुषसापिण्डयम् । पालकगोत्रेणोपनयने तत्कुले साप्तपौरुषमित्युक्तम् ॥ तन्न ॥ "चूडोपायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते" इति कालिकापुराणादुपनयनोत्तरं दत्तकनिषेधात् । त्रिपुरुषमित्यत्रापि मूलं मृग्यमित्यलं बहुना ॥ मातापितृद्वार-

ग्रन्थोंमें कहीं भी नहीं दीखते और अपरार्क आदिमें नहीं लिखे, इससे पूर्वोक्त व्यवस्था भ्रमसी प्रतीत होतीहै, इससे जिन्होंने यह वाक्य लिखे हैं उनको ही शोभा देतेहैं, हमको तो यह युक्त प्रतीत होता है कि, एक पिंडदान क्रियामें सम्बन्धरूप सापिण्डय बीजवालेके सात पुरुषतक गौतमके वाक्यसे और उतनाही सापिंड्य पालनेवाले वंशमें दत्तकको होताहै, और मातासे तीन पुरुषतक सापिंड्य है, इत्यादि वाक्य तो सजातीय सपत्नी माताके विषयमें जानने चाहिये कारण कि, एकसे उत्पन्न हुए बहुत इस शंखके कथनके संग एकवाक्यता है, इसीसे हेमाद्रि प्रवरमंजरीवृत्तिकार नारायण आदिने दत्तकको द्व्यामुष्यायण लिखाहै, सोमेश्वरभट्टने भी पृथा (कुंती) को भोजपालककी कन्या होनेपर भी पिता और बीजवालेके कुटुम्बियोंमें सात पुरुषतक सापिंड्य रहता है यह लिखा है इस गौतमके वाक्यसे दत्तक पृथाका सापिंड्य उत्पन्न करनेवाले शूरसेनके वंशमें और पालक भोजके कुलमें सात पुरुषतक बराबर सापिंड्य (अपि-वा कारणाग्रहणे) इस स्थलमें लिखा है, सापिंड्यदीपिकामें तो यह लिखा है कि, दत्तक क्रीत आदि पुत्रोंका यदि उत्पन्न करनेवालेके गोत्रसे उपनयन होजाय तो पिताके कुलमें सात पुरुषतक और पालनेवाले माता पिताके कुलमें तीन पुरुषतक पिंड देने और न देनेरूप सापिंड्य होता है, पालकके कुलमें यज्ञोपवीत होजाय तो उसके भी वंशमें सात पुरुषतक सापिंड्य होता है, सो यथार्थ नहीं कारण कि, इस कालिकापुराणके वाक्यसे यज्ञोपवीतसे उपरान्त दत्तकपुत्रका निषेध है कि, जिन दत्तकआदि पुत्रोंका मुण्डन उपनयन संस्कार अपने गोत्रसे हुआहो वेही दत्तक पुत्र कहाते हैं, अन्यथा दास कहाते हैं, तीन पुरुषतक सापिण्ड्य लगता है इसमेंभी प्रमाण नहीं मिलता इति । बहुत न कहकर बस करते हैं ॥ माता और पिताके

कसापिण्डयवतीनां कन्यानामियं संख्या रामवाजपेयिनोक्ता-" उद्वोढुः पितरौ पितुश्च पितरौ तज्जन्मकृद्दम्पतीद्वंद्वं तस्य चतुष्कमष्ट च ततोऽप्यस्य क्रमात् षोडश। वंशारम्भकदम्पतीप्रमितिरित्यासप्तकक्षं रदा एकैकान्वयकन्यकाः पितृकुले त्वासप्तकक्षं ब्रुवे ॥ यद्यप्येकस्य बहवः सुताः स्युस्तदपीह तु । सम्बन्धसाम्यादेकैकगणितेत्यवधार्यताम् ॥ एकस्मान्मिथुनात्सुतोथ दुहिता द्वंद्वद्वयं तद्द्वयात्तस्माद्द्वंद्वचतुष्कमष्ट च ततोऽतः षोडशाऽतो रदाः । यावत्सप्तमकक्षमग्निऋतवः कन्या इहैकान्वये ता दन्तैर्गुणिता रसैकसदृशो वंशे सपिण्डाः पितुः ॥ मातुर्जन्मददम्पती च मिथुनं द्वंद्वं तयोः सागरास्तस्याः पञ्चमकक्षमष्टमितिरित्येकान्वयः पुंसु ते । द्वन्द्वाद्वन्द्वयुगं भतोऽन्वय इतोऽष्टौ पञ्चकक्षं शरक्षोण्यः सप्तगुणाः शराभविधवो मातुः सपिण्डाः कुले ॥ कुलद्वयस्य कन्यकायुता मिथः सपिण्डकाः । हिमांशुदृग्धरादृशो विवाहकर्मवर्जिताः ॥५॥" इति ॥ एतच्च सर्ववर्णसाधारणम् । सर्वत्र सापिण्ड्यसद्भावादिति विज्ञानेश्वरोक्तेः ॥ "पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतः क्रमात् ।

द्वारा जिन कन्याओंका सापिंड्य होताहै उनकी गिनती रामवाजपेयीने इस प्रकार लिखी हैं कि, घरके माता पिता दो, और उन दोनोंके जन्मदाता माता पिता चार और उन चारोंके माता पिता आठ, और उन आठोंके माता पिता सोलह, और उन सोलहके माता पिता बत्तीस ३२ इन बत्तीसोंमें एक २ कुलकी जो कन्या सात पुरुषतक हैं, उनको हम सपिंड लिखते हैं यही कुलके आरम्भका प्रमाण है, यद्यपि एक २ के बहुत कन्याभी होती हैं तोभी सम्बन्धकी तुल्यतासे एकही गिनी है, इस प्रकार निश्चय जानना चाहिये, और एक (स्त्रीपुरुषसे) एक कन्या हुई उस कन्यासे दो कन्या हुई, उन दोनों कन्याओंसे चार द्वंद्व (आठ) हुई, इसी प्रकार उन ४ चार द्वंद्वोंसे आठ, और आठसे सोलह, और सोलहसे ३२ बत्तीस हुई, इस प्रकार सात पीढीतक तिरसठ ६३ कन्या एक कुलमें होतीहैं, उनको बत्तीससे गुणा करनेसे २०१६ दो सहस्र सोलह कन्या पिताके कुलमें सपिंड होती है, माताके जन्मदाता दंपती (स्त्री पुरुष) दो, और उन दोनोंके माता पिता दो (मिथुन ४) और उन दोनों मिथुनोंके चार मिथुन उस माताकी चार पीढीतक सात मिथुन होंगे, यह पुरुषोंमें एक कुल होता है, और माताके वंशमें सपिंड ये होते हैं पहिले मिथुनसे दो मिथुन उन दोके माता पिता चार मिथुन, चारके माता पिता आठ, इस प्रकार पांच कक्षातक पन्द्रह १५ होते हैं, उनको सात गुना करो तो १०५ एकसौ पांच होते हैं, इन दोनोंकी कन्या परस्पर मिलानेसे २१२१ दो सहस्र एकसौ इक्कीस परस्पर सपिंड कहाती है, और उनके संग विवाह करना निषिद्ध है, यह सापिण्डय सब वर्णोंमें साधारण है कारण कि, सापिण्डय सब स्थानमें होसकता है, यह विज्ञानेश्वरने लिखा है और हरनाथका लिखा देवलका यह वाक्य भी है कि,

सपिण्डता निवर्तेत सर्ववर्णेष्वयं विधिः" ॥ इति हरनाथधृतदेवलवचनाच्च ॥ सम्बन्धतत्त्वे सुमन्तुः-'पितृष्वसृसुतां मातृष्वसृसुतां मातुलसुतां मातृसगोत्रां समानार्षेयीं विवाह्य चान्द्रायणं चरेत्परित्यज्यैनां मातृवद्बिभृयात्' इति दिक् ॥ ऋषेरिदमार्षं प्रवरः । गोत्रं प्रसिद्धम् । समाने आर्षे गोत्रे यस्य तस्माज्जाता या न भवति ताम् ॥ गोत्रप्रवरनिर्णयः । अथ संक्षेपेण गोत्रप्रवरनिर्णयः ॥ तौ च भिन्नौ निषेधे निमित्तम् । 'सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत्' इति आपस्तम्बोक्तेः । 'असमानप्रवरैर्विवाहः' इति गौतमोक्तेश्च । तत्र गोत्रलक्षणमाह प्रवरमञ्जर्यां बौधायनः-'विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वजोऽथ गौतमः । अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः' । सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रम्'इति ॥ यद्यपि केवलभार्गवेष्वार्ष्टिषेणादिषु केवलाङ्गिरसेषु च हारीतादिषु च नैतत् । भृग्वङ्गिरसोरुक्तेष्वनन्तर्गतेः ॥ तथाप्यत्रेष्टापत्तिरेवेति केचित् । अत एव स्मृत्यर्थसारे । प्रवरैक्यादेवात्राविवाह उक्तः ॥ यद्यपि वसिष्ठादीनां न गोत्रत्वं युक्तम् । तेषां सप्तर्षित्वेन तदपत्यत्वाभावात् ॥ तथापि तत्पूर्वभाविवसिष्ठाद्यपत्यत्वेन गोत्रत्वं युक्तम् अत एव पूर्वेषां परेषां चैतद्गोत्रम् । अत्र विशेषोऽस्मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयः ॥

माताके पांचवें और पितासे सातवेंसे आगे सपिण्डता निवृत्त होजाती है, यह सब वर्णोंमें विधि लिखी है, सम्बन्धतत्त्वमें सुमन्तुने कहा है फूफी मौसी मामा इन तीनोंकी पुत्री माताके गोत्रकी और अपने प्रवरकी कन्याके साथ विवाह करलेनेसे चान्द्रायण व्रत करै और पीछेसे माताकी तुल्य उनकी पालना करै, यह संक्षेपसे कहा ॥ अब संक्षेपसे गोत्रप्रवरका निर्णय लिखते हैं ये दोनों भिन्न २ निषेधके कारण है अर्थात् गोत्र और प्रवर दोनों ही विवाहमें निषिद्ध हैं, कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखा है कि, सगोत्रीको कन्या न देनी चाहिये, और गौतमने यह लिखा है कि, जिसके संग प्रवर एक हो उसके संग विवाह न करना चाहिये उन दोनोंमें गोत्रका लक्षण प्रवरमञ्जरीमें बौधायनजीने लिखा है कि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज, गौतम और आठवें अगस्त्य इनकी जो सन्तान उसको गोत्र कथन करते हैं ॥ यद्यपि भार्गव आर्ष्टिषेण और केवल आंगिरस तथा हारीत आदिकमें यह गोत्रका लक्षण नहीं घट सकता कारण कि, भृगु और अंगिरा उक्त सातोंमें नहीं आये हैं तोभी कोई इसमें इष्टापत्ति लिखते हैं अर्थात् वे गोत्र नहीं हैं इसी कारण स्मृत्यर्थसारमें उनमें एक प्रवरमें ही विवाहका निषेध कहा है यद्यपि वसिष्ठादिका गोत्र युक्त नहीं कारण कि, वे सप्तऋषि हैं ऋषियोंके सन्तान नहीं हैं, तोभी उनके सप्तर्षि होनेसे प्रथम जो सन्तान उससे गोत्र मानना युक्त है, इस कारणसे पिछले और प्रथमकेको गोत्र लिखते हैं इसकी विशेषता मेरे बनाये प्रवरदर्पणमें जाननी चाहिये, प्रवर तो उनको लिखते हैं कि, भली प्रकार

प्रवरास्तु प्रवरणानि प्रवराः । कल्पकारा हि वासिष्ठेति होता वसिष्ठवदित्यध्वर्युरित्यादिना येषां प्रवरणमामनन्ति ते प्रवराः । तच्च वरणं यद्यपि क्वचिद्दृश्यते । तथापि पूर्ववदृषिभेदो द्रष्टव्यः । अन्यथा तेषां त्र्यार्षेये एकार्षे इत्यादिनिर्देशानुपपत्तेः अन्ये तु तद्गोत्राणां त्र्यार्षेय इति भेदमाहुरिति दिक् ॥ तत्त्वं तु गोत्रभूतस्य पितृपितामहप्रपितामहा एव प्रवराः । 'पितैवाग्रेथ पुत्रोथ पौत्रः' इति शतपथश्रुतेः ॥ 'परं परम्प्रथमम्' इत्याश्वलायनोक्तेश्च । अत्र विशेषमाह बौधायनः—"एक एव ऋषिर्यावत् प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्र भृग्वंगिरसां गणात्" इति ॥ स्मृत्यर्थसारे—"प्रीयमाणा तया वापि सत्तया वानुवर्तनम् । एकस्य दृश्यते यत्र तद्गोत्रं तस्य कथ्यते ॥ " भृग्वङ्गिरोगणेषु तु माधवीये स्मृत्यन्तरे—"पञ्चार्षे त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः । भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥" शेषगोत्रेषु एकोपि समानः प्रवरो विवाहं वारयेदित्यर्थः ॥ बौधायनोपि—'भृग्वङ्गिरसांवधिकृत्यद्व्यार्षेयसन्निपाते विवाहास्त्र्यार्षेयसन्निपाते विवाहः पञ्चार्षेयाणाम्' इति ॥ भृग्वङ्गिरोगणेष्वपि जमदग्निगौतमभरद्वाजेष्वेकप्रवरसाम्ये सर्वेषामप्यसाम्ये वा सगोत्रत्वादेवाविवाह इति दिक् ॥ गोत्रप्रवरसं-

---

यज्ञमें वरणको प्रवर कहते हैं कारण कि, कल्पकार होता अध्वर्युके नामसे जिनका वरण कियाजाय उनकोही प्रवर कहते हैं वो वरण यद्यपि कहीं गोत्रकाभी होता है, तोभी पूर्वके तुल्य ऋषिका भेद जानना अन्यथा उनमें किसीके तीन प्रवर और किसीका एक प्रवर ये निर्देश न होगा, और तो यह कहते हैं कि, उन गोत्रोंकेही तीन आदि भेदको प्रवर लिखते हैं, सिद्धान्त तो यह है कि, गोत्र रूपके पिता पितामह प्रपितामह तीन प्रवर होते हैं कारण कि, शतपथ श्रुतिमें कहा है कि, प्रथम पिता दूसरा पुत्र तीसरा पौत्र ये तीन प्रवर होते हैं ॥ आश्वलायनने भी लिखा है कि, परला २ प्रथम होता है, इससे विशेष बौधायनने लिखा है कि, प्रवरोंमें जहांतक एक ऋषिका नाम हो वहांतक भृगु अंगिराको त्यागकर एक गोत्र होता है, स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, वरण करनेसे वा नामसे जहां एक एकका नाम चलाजाय उसे वहां एक गोत्र कहते हैं, भृगु और अंगिराओंके गणोंमें तो माधवीय और स्मृत्यन्तरमें यह कहा है कि, पांच प्रवरवालोंकी तीनमें और तीन प्रवरवालोंकी दोमें एकता प्राप्त हो जाय, तो विवाह नहीं होता यह वात भृगु और अंगिराओंमें है, और तो एकभी प्रवर विवाहको निषेध कर देता है, वौधायनने भी कहा है कि, भृगु और आंगिरा गोत्रियोंमें दो प्रवरवालोंके और दो प्रवर और तीन प्रवरवालोंके तीन प्रवर मिलजाँय तो विवाह नहीं होता, यह बात पञ्चार्षेये (पांच प्रवरवाले) में है । भृगु और अंगिराओंके समूहमें है और शेषगोत्रोंसे एक भी प्रवर विवाहको निषेध करता है, भृगु और अंगिराओंमें भी गौतम, भरद्वाज एक प्रवरके मिलनेमें और प्रवर नहीं भी मिलै, केवल गोत्रके ही मिलनेमें विवाह नहीं होता यह संक्षेप है ॥

ख्यानिर्णयः । अथ गोत्राणि प्रवराश्चोच्यन्ते ॥ तत्र बौधायनः–"गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात् ।" तत्र सप्त भृगवः । वत्सा बिदा आर्ष्टिषेणा यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनका इति । वत्सानां भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति । भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा । भार्गवच्यावनाप्नवानेति वा ॥ गोत्रप्रवरनिर्णयः । बिदानां–पञ्च, भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वबैदेति । भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा । एतौ द्वौ जामदग्न्यसंज्ञौ । आर्ष्टिषेणानां–भार्गवच्यावनाप्नवानार्ष्टिषेणानूपेति । भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति वा । एषां त्रयाणां परस्परमविवाहः ॥ वात्स्यानां भार्गवच्यावनाप्नवानेति ॥ वत्सपुरोधसयोः पञ्च । भार्गवच्यावनाप्नवानवात्स्यपौरोधसेति ॥ वैजवनिमथितयोः पञ्च, भार्गवच्यावनाप्नवानवैजवनमैथितेति । एते त्रयः क्वचित् । एषामपि पूर्वैरविवाहः अत्र तत्तद्गणस्था ऋषयोन्यश्च विशेषो मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयः ॥ यस्कानां–भार्गववैतहव्यसावेतसेति ॥ मित्रयुवानां–भार्गववाध्यश्वदिवोदासेति । भार्गवच्यावनदिवोदासेतिवा । वाध्यश्वेत्येको वा । वैन्यानां भार्गववैन्यपार्थेति । एत एव श्वेताः । शुनकानां शुनकेति वा । गार्त्समदेति द्वौ वा । भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति । त्रयो वा । वेदविश्वज्योतिषां भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति ॥ शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति । एतौ द्वौ क्वचित् । यस्कादीनां स्वगणं त्यक्त्वा सर्वैर्विवाहः ॥ तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे ।

अब गोत्र और प्रवरोंको लिखते हैं, उसमें बौधायनने यह लिखा है कि, गोत्र सहस्र दशसहस्र वा अर्बुद है, और उनके प्रवर ऊनपञ्चाशत् (उनंच्यास) हैं कारण कि, इतनेही ऋषि दीखते हैं उनमें ये सात भृगु हैं, वत्स, बिद, आर्ष्टिषेण, यस्क, मित्रयु, वैन्य, शुनक । वत्सोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान, और्व, जामदग्न्य वा भार्गव, और्व, जामदग्न्य वा भार्गव च्यावन, आप्नवान हैं ॥ बिदोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान, और्व, बैद ये पांच प्रवर हैं, वा भार्गव, और्व, जामदग्न्य ये दो जामदग्न्य कहाते हैं, आर्ष्टिषेणोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान, आर्ष्टिषेण, अनूप वा भार्गव, आर्ष्टिषेण, अनूप हैं इन तीनोंका परस्पर विवाह नहीं होता, वत्सोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान प्रवर हैं, वत्स और पुरोधा इन दोनोंके भार्गव, च्यावन, आप्नवान, वात्स, पौरोधस पांच हैं, और कहीं वैज, वैन, मथित ये तीन लिखे हैं, इनका भी प्रथमोंके संग विवाह नहीं होता यहां तिस २ गणके ऋषि और दूसरे विशेष मेरे निर्मित प्रवरदर्पणमें देख लेने यस्कोंके भार्गव, वैतहव्य, सावेतस हैं, मित्रयुवोंके भार्गव वा वाध्यश्व, दिवोदास वा भार्गवच्यावन दिवोदास हैं वा वाध्यश्व एकही प्रवर है वैन्योंके भार्गव, वैन्य, पार्थ हैं इनकोही श्वेतभी कहते हैं, शुनकोंका शुनक वा गार्त्समद ये दो, वा भार्गव शौनहोत्र गार्त्समद ये तीन प्रवर हैं, वेदविश्व ज्योतिषियोंके भार्गव वेदविश्व ज्योतिष प्रवर हैं शाठर माठरोंके भार्गव शाठर माठर ये दोहा लिखे हैं, यस्क आदिकोंका अपने गणको त्यागकर सबके संग विवाह होता है, यही स्मृत्यर्थसारमें लिखा है-

"यस्का मित्रयुवा वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः । स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः परावरैः" इति ॥ आङ्गिरोगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथाङ्गिरसः । ते गौतमा भरद्वाजाः केवलाङ्गिरसश्चेति त्रिधा ॥ अत्र गौतमा दश । आयास्याः । शरद्वताः । कौमण्डाः । दीर्घतमसः । औशनसः । कारेणुपालेयः । राहूगणाः । सोमराजकाः । वामदेवाः । बृहदुक्थाश्चेति ॥ तत्रायास्यानाम्-आङ्गिरसायास्यगौतमेति ॥ शरद्वतानाम्-आङ्गिरसगौतमशारद्वतेति ॥ कौमण्डानाम्-आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवन्तगौतमकौमाण्डेति वा ॥ आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति वा । आङ्गिरसौतथ्यागौतमौशिजकाक्षीवतेतिवा । आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेति त्रयो वा ॥ दीर्घतमसाम्-आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति । आङ्गिरसौतथ्यदैर्घतमसेति त्रयो वा ॥ औशनसाम्-आङ्गिरसगौतमौशनसेति त्रयः ॥ कारेणुपालेयानाम्-आङ्गिरसगौतमकारेणुपालेति त्रयः ॥ राहूगणानाम्-आङ्गिरसराहूगणगौतमेति ॥ सोमराजकानाम्-आङ्गिरससोमराजकगौतमेति । वामदेवानाम्-आङ्गिरसवामदेव्यगौतमेति ॥ बृहदुक्थानाम्-आङ्गिरसबार्हदुक्थगौतमेति । आङ्गिरसवामदेवबार्हदुक्थेति वा ॥ उतथ्यानाम्-आङ्गिरसौतथ्यगौतमेति ॥ औशिजानाम्-आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेत्यापस्तम्बः । आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति कात्यायनः ॥ एतौ द्वौ क्वचित् ॥ रघुवानाम्-आङ्गिरसराघुवगौतमेति केचित् ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ एषां सर्वेषां गौतमानामविवाहः ॥ भरद्वाजगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

कि, यस्क, मित्रयु, वैन्य, शुनक ये एक प्रवर होनेसे अपने २ गणको त्यागकर और प्रवरोंमें विवाह करैं ॥ अब आंगिरसोंके गोत्र प्रवर कहते हैं वे गौतम, भरद्वाज केवलांगिरस तीन हैं, उनमें गौतम दश हैं कि, आयास्य, शरद्वत, कौमण्ड, दीर्घतमस्, आशनस्, करेणुपालेय, राहुगण, सोमराजक, वामदेव, बृहदुक्थ, इन दशोंमें आयास्योंके आंगिरस, औतथ्य, आयास्य, गौतम तीन प्रवर हैं, शरद्वतोंके आंगिरस, औतथ्य, कावत, गौतम, कौमण्ड हैं, वा आंगिरसके औशिज, काक्षीवत, ये तीन प्रवर हैं, दीर्घतमसोंके आंगिरस औतथ्य हैं वा काक्षीवत् गौतम दैर्घतमस ये तीन हैं औशनसोंके आंगिरस, गौतम, औशनस य तीन प्रवर हैं कारेणुपालोंके आंगिरस, गौतम, कारेणुपाल तीन प्रवर हैं, राहूगणोंके आंगिरस, राहूगण, गौतम तीन प्रवर हैं, बृहदुक्योंके आंगिरस बार्हदुक्थ गौतम, वा, आंगिरस, वामदेव, बार्हदुक्थ प्रवर हैं, औशिजोंके आंगिरस औशिज काक्षीवत ये तीन प्रवर हैं आपस्तम्बने और आंगिरस आयास्य, औशिज, गौतम, काक्षीवत ये पांच कात्यायनने लिखे हैं, ये दो गोत्र कहीं २ लिखे हैं रघुवोंके आंगिरस राघुव गौतम ये तीन प्रवर हैं, यह किन्हींका कथन है उसमें प्रमाण नहीं है इन सब गौतमोंका परस्पर विवाह नहीं होता ॥ अब भरद्वाजोंके गोत्र

अथ भरद्वाजाः । ते चत्वारः । भरद्वाजा गर्गा ऋक्षाः कपय इति ॥ भरद्वाजानाम्– आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः । गर्गाणामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजसैन्यगार्ग्येति पञ्च ॥ आङ्गिरससैन्यगार्ग्येति वा अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा ॥ भारद्वाजगार्ग्यसैन्येति वा ॥ गर्गभेदानाम्–आङ्गिरसतैत्तिरकापिभुवेति ॥ ऋक्षाणां कपिलानां चाङ्गिरसबार्हस्पत्यभरद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्च ॥ आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयो वा ॥ कपिलानाम्–आङ्गिरसामहीयवोरुक्षयसेति ॥ आत्मभुवाम्–आङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यमन्त्रवरात्मभुवेति पञ्च ॥ अयं कचित् ॥ भरद्वाजानां सर्वेषामविवाहः ॥ केवलाङ्गिरोगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथ केवलाङ्गिरसः ॥ हारीतानाम्–आङ्गिरसांबरीषयौवनाश्वेति ॥ आद्यो मान्धाता वा ॥ कुत्सानाम्–आंगिरसमान्धातृकौत्सेति ॥ कण्वानामाङ्गिरसाजमीढकाण्वेति ॥ आङ्गिरसघोरकाण्वेति वा । रथीतराणामाङ्गिरसवैरूपराथीतरेति ॥ आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा । अष्टादंष्ट्रपार्षदश्ववैरूपेति वा ॥ अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा ॥ मुद्गलानामाङ्गिरसभार्म्यश्वमौद्गल्येति ॥ आद्यस्तार्क्ष्यो वा ॥ आङ्गिरसताविमौद्गल्येति वा॥ विष्णुवृद्धानामाङ्गिरसपौरुकुत्सत्रासदस्यवेति ॥ एषां स्वगणं विहाय सर्वैर्विवाहो भवति । हारीतकुत्सयोस्तु न भवति ॥ अत्रिगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथात्रयः । ते चत्वारः । आत्रेयाः । वाद्भुतकाः । गविष्ठिराः । मुद्गला इति ॥ आद्यानामात्रे-

---

प्रवर कहते हैं, वे चार हैं भरद्वाज, गर्ग, ऋक्ष, कपय, भारद्वाजोंके आंगिरस बार्हस्पत्य भरद्वाज ये तीन प्रवर हैं, गर्गोंके आंगिरस बार्हस्पत्य भारद्वाज, सैन्य गार्ग्य ये पांच है, वा आंगिरस सैन्य गार्ग्य हैं, वा पिछले दोनोंके व्यत्ययसे आंगिरस गार्ग्य सैन्य हैं, गर्गोंके दूसरे जो भेद हैं उनके आंगिरस तैत्तिर कापिभूत प्रवर हैं, ऋक्षोंके और कपिलोंके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भरद्वाज, वांदन, मातवचस, पांच प्रवर हैं, वा आंगिरस, वादन, मातवचस ये तीन हैं कपिलोंके आंगिरस, महीयव, ऋक्षयस, ये तीन प्रवर हैं, आत्मभुवोंके आंगिरस, भारद्वाज, बार्हस्पत्य, मन्त्रवर, आत्मभुव ये पांच प्रवर हैं, ये गोत्र क्वचित् हैं इन सब भरद्वाजोंका परस्पर विवाह नहीं होता ॥ अब केवल आंगिरसोंके गोत्र और प्रवर कथन करते हैं हारीतोंके आंगिरस, अम्बरीष, यौनवाश्व प्रवर हैं अथवा इनमें प्रथम मांधाता है, कुत्सोंके आंगिरस, मांधाता, कौत्स हैं, कण्वोंके आंगिरस, आजमीढ, काण्व हैं वा आंगिरस घोर काण्व कहे हैं रथीतरोंके आंगिरस वैरूप रथीतर हैं, वा आंगिरस वैरूप पार्षदश्व हैं, वा अष्टादंष्ट्र पार्षद वैश्वरूप हैं अन्त्य दोनोंके असनामी मौद्गल्य प्रवर हैं, विष्णुवृद्धोंके आंगिरस पौरुकुत्स त्रासदस्यव, इन सबका अपने २ गणको त्यागकर सबके संग विवाह होता है, हारीत कुत्सोंका प्रवर है ही नहीं ॥ अब आत्रेयोंके गोत्र और प्रवर लिखते हैं, वे चार हैं, आत्रेय, वाद्भुतक, गविष्ठिर, मुद्गल, प्रथमोंके आत्रेय आर्चनानस श्यावाश्व प्रवर हैं

यार्चनानसश्यावाश्वेति । वाद्भुतकानाम्–आत्रेयार्चनानसवाद्भुतकेति ॥ धनञ्जया-नाम्–आत्रेयार्चनानसधानञ्जयेति क्वचित् ॥ गविष्ठिराणामात्रेयार्चनानसगविष्ठि-रेति । आत्रेयगाविष्ठिरपौर्वातिथेति वा ॥ मुद्गलानामात्रेयार्चनानसपौर्वातिथेति ॥ वामरथ्यसुमङ्गलबैजवापनामात्रेयार्चनानसातिथेति ॥ आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति वा ॥ सुमङ्गलानाम्–अत्रिसुमङ्गलश्यावाश्वेति केचित् ॥ अत्रेः पुत्रिकापुत्राणाम् । आत्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति । अत्रीणां सर्वेषामविवाहः ॥ विश्वामित्रगोत्रप्रवरनि-र्णयः । अथ विश्वामित्राः ते दश ॥ कुशिकाः । लोहिताः । रौक्षकाः । कामका-यनाः । अजाः । अघमर्षणाः । पूरणाः । इन्द्रकौशिकाः । धनंजयाः । क्षीकता इति ॥ कुशिकानां–विश्वामित्रदेवरातौद्लेति । लोहितानां–विश्वामित्राष्टकलौहि-तेति । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाष्टकेति वा । विश्वामित्राष्ट-केति द्वौ वा । रौक्षकाणां–वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति । वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति वा ॥ कामकायनानां–वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति । अजानां–वैश्वामित्रमाधु-च्छन्दसाजेति । वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेति वा ॥ अघमर्षणानां–वैश्वामित्राघमर्ष-णकौशिकेति । पूरणानां–वैश्वामित्रपौरणेति द्वौ ॥ वैश्वामित्रदेवरातपूरणेति वा । इन्द्रकौशिकानां–वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ ॥ धनञ्जयानां–विश्वामित्रमाधुच्छन्द-सधानंजयेति । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाघमर्षणेति वा ॥ क्षीकतानां–वैश्वामित्रका-

---

वाद्भुतकोंके आत्रेय आर्चनानश वाद्भुतक हैं, धनंजयाके आत्रेय, आर्चनानश, धानंजय हैं यहभी गोत्र ? हैं, गविष्ठिरोंके आत्रेय, आर्चनानश, गविष्ठिर हैं, वा आत्रेय गाविष्ठिर पार्वातिथ हैं, मुद्गलोंके आत्रेय आर्चनानश पौर्वातिथ हैं, वामरथ्य और सुमंगल और बैजवापोंके आत्रय, आर्चनानश, आतिथ हैं, वा आत्रेय, आर्चनानश गविष्ठिर हैं, सुमंगलोंके अत्रि, सुमंगल, श्यावाश्व हैं, यह कोई कथन करते हैं. अत्रिकी पुत्री और पुत्रोंके आत्रेय, वामरथ्य पौत्रिक प्रवर है, इन सब अत्रियोंका विवाह परस्पर नहीं होता ॥ अब विश्वामित्रोंके गोत्र और प्रवर लिखतेहैं व दश हैं कि, कुशिक, लोहित, रौक्षक, कामकायन, अज, अघमर्षण, पूरण, इन्द्रकौशिक, धनञ्जय, क्षीकत । कुशिकोंके विश्वामित्र, देवरात, औदल प्रवरहै, लोहितोंके विश्वामित्र, अष्टक, लौहित है वा अन्त्यके दो प्रवरोंके व्यत्ययसे हैं, वा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, अष्टक हैं, वा विश्वामित्र अष्टक दो प्रवर हैं, रौक्षकोंके वैश्वामित्र, गाथिन रैवण हैं वा वैश्वामित्र रौक्षक, रैवण हैं, कामकायनोंके वैश्वामित्र, देवश्रवस, दैवतरस, हैं, अजोंके वैश्वामित्र, मधुच्छन्दस, अज हैं, वा वैश्वामित्र, वामरथ अश्मरथ वाधूल हैं, अघम-र्षणोंके वैश्वामित्र अघमर्षण कौशिक हैं, पूरणोंके वैश्वामित्र, पौरण ये दो हैं, वा वैश्वामित्र, देवरात, पूरण ये तीन हैं, इन्द्रकौशिकोंके वैश्वामित्र, इन्द्रकौशिक ये दो हैं, धनंजयोंके विश्वामित्र, माधुच्छन्दस, धानंजय है वा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, अघमर्षण हैं क्षीकतोंके वैश्वा-

त्यकीलेति ॥ एते बौधायनोक्ताः ॥ रोहिणानां–वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसरौहिणेति ॥ रेणूनां–वैश्वामित्रगाथिनरैणवेति ॥ वेणूनां–वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति ॥ जह्नूनां–वैश्वामित्रशालङ्कायनकौशिकेति ॥ आश्मरथ्यानां–वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति । उद्वेणूनां–वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति ॥ एते आश्वलायनमात्स्योक्ताः ॥ अन्यैस्त्वन्येपि षड्गणा उक्ताः। तेऽन्यत्र मत्कृतौ ज्ञेयाः ॥ एषां विश्वामित्राणामविवाहः ॥ काश्यपगोत्रप्रवरनिर्णयः। अथ काश्यपाः ते पञ्च ॥ निध्रुवाः । कश्यपाः । रेभाः। शाण्डिलाः। लौगाक्षयश्च ॥ निध्रुवाणां–काश्यपावत्सारनैध्रुवेति ॥ कश्यपानां–काश्यपावत्सारासितेति ॥ रेभाणां–काश्यपावत्साररैभ्येति ॥ शाण्डिलानां–काश्यपशाण्डिल्येति । अन्त्यस्थाने देवलो वा, सितो वा, शाण्डिलासितदेवलेति वा, कश्यपासितदेवलेति वा,- अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा, देवलासितेति द्वौ वा ॥ लौगाक्षीन् वक्ष्यामः एषां काश्यपानामविवाहः ॥ वसिष्ठगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथ वसिष्ठाः ते पञ्च ॥ वसिष्ठाः। कुण्डिनाः। उपमन्यवः। पराशराः । जातूकर्ण्याश्चेति ॥ वसिष्ठानां–वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति। वासिष्ठेत्येको वा ॥ कुण्डिनानां–वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्येति ॥ उपमन्यूनां–वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वसव्येति ॥ वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति वा। आद्ययोर्व्यत्ययो वा ॥ पराशराणां–वासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति ॥ जातूकर्ण्यानां–वासिष्ठात्रिजातूकर्ण्येति ॥ वासिष्ठानां सर्वेषाम-

मित्र, कात्यकील हैं, यह बौधायनने लिखे हैं, रोहिणोंके वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, रौहिण है। वेणुओंके वैश्वामित्र, गाथिन, वैणव हैं, जह्नुओंके वैश्वामित्र, शालंकायन, कौशिक है, आश्मरथ्योंके वैश्वामित्र, अश्मरथ, वाधूल हैं उद्वेणुओंके वैश्वामित्र, गाथिन, वैणव हैं, ये आश्वलायन सूत्र और मत्स्यपुराणमें लिखेहैं, औरोंने तो और भी छः गण लिखे हैं वे मेरे बनाये दूसरे ग्रन्थोंमें जानने, इन विश्वामित्रोंका परस्पर विवाह नहीं है॥ अब कश्यपोंके गोत्र और प्रवर कहतेहैं वे पांच हैं निध्रुव, कश्यप, शांडिल, रभ, लौगाक्षि, निध्रुवोंके कश्यप वत्सार नैध्रुव हैं, कश्यपोंके काश्यप, वत्सार, असित हैं, रेभोंके काश्यप, वत्सार, रैभ हैं, शांडिलोंके काश्यप वत्सार शांडिल्य हैं, वा अन्तके स्थानमें देवल असित हैं, वा शांडिल्य असित देवल हैं, वा काश्यप आसित देवल हैं, वा अन्त्यके दोका व्यत्यय वा देवल असित दो हैं, लौगाक्षियोंको लिखेंगे, इन कश्यपोंका परस्पर विवाह नहीं होता ॥ अब वसिष्ठोंके गोत्र प्रवर लिखते हैं। वे पांच हैं वसिष्ठ, कुण्डिन, उपमन्यु, पराशर, जातूकर्ण्य। वसिष्ठोंके वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद आभरद्वसु हैं वा वसिष्ट एक प्रवर है, कुण्डिनोंके वासिष्ठ, मैत्रावरुण, कौंडिन्य हैं, उपमन्युओंके वसिष्ट, इन्द्रप्रमद आभरद्वसव्य है वा वसिष्ट आभरद्वसु इन्द्रप्रमद हैं वा पहिले दोका व्यत्यय है पराशरोंके वासिष्ठ, शाक्य, पाराशर्य हैं, जातूकर्ण्योंके वासिष्ठ, अत्रि, जातूकर्ण्य हैं, सम्पूर्ण वसिष्ठोंका परस्पर विवाह नहीं होता और पिछले कहोंका अत्रियोंके संगभी विवाह

विवाहः । अन्त्यस्यात्रिभिश्च ॥ अगस्त्यगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथागस्त्याः ते चत्वारः ॥ इध्मवाहाः । सोमवाहाः । साम्भवाहाः । यज्ञवाहाश्चेति ॥ आद्यानाम्—आगस्त्यदाढर्यच्युतेध्मवाहेति आगस्त्येत्येको वा॥ सोमवाहानाम्—आगस्त्यदाढर्यच्युतसोमवाहेति ॥ साम्भवाहानां—साम्भवाहोन्त्यः । यज्ञवाहानां यज्ञवाहोऽन्त्यः ॥ आद्यौ पूर्वोक्तावेव ॥ सारवाहानां तदन्तास्त्रयः ॥ दर्भवाहानां—तदन्तास्त्रयः । अगस्तीनामागस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति ॥ पूर्णमासानाम्—आगस्त्यपौर्णमासपारणेति ॥ हिमोदकानाम्—आगस्त्यहैमवर्चिहैमोदकेति ॥ पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति ॥ एते षट् क्वचित् ॥ आगस्त्यानां सर्वेषामविवाहः ॥ अथ द्विगोत्राः । शौङ्गशैशिरीणाम्—आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजकात्याक्षीलेति पञ्च । कात्याक्षीलयोः स्थाने शौङ्गशैशिरी वा । आङ्गिरसकात्याक्षीलेति त्रयो वा एषां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः ॥ एवं कपिलानां क्षीकतानां च संकृतिपूतिमाषादीनाम्—आङ्गिरसगौरिवीतसांकृत्येति । शाक्त्यगौरिवीतसाङ्कृत्येति वा ॥ एषां स्वगणस्थैर्वसिष्ठैः शौङ्गशैशिरैर्लौगाक्षिभिश्चाविवाहः ॥ काश्यपैरपीति प्रयोगपारिजाते ॥ लौगाक्षीणां—काश्यपावत्सारवासिष्ठेति । काश्यपावत्सारासितेति वा । एतेह्नर्वसिष्ठाः नक्तं कश्यपाः । एषां वसिष्ठैः कश्यपैः संकृताद्यैश्चाविवाहः ॥

नहीं होता ॥ अब अगस्त्योंके गोत्र और प्रवर लिखते है, वे चार हैं, इध्मवाह, सोमवाह, साम्यवाह यज्ञवाह इध्मवाहोंके आगस्त्य, दाढर्यच्युत, इध्मवाह है, वा एक अगस्त्य है, सोमवाहोंके आगस्त्य दाढर्यच्युत, सोमवाह हैं, साम्भवाहोंका सांभवाह, पिछला है, यज्ञवाहोंका यज्ञवाह पिछला है, और पहिले दो पूर्वोक्त हैं, सारवाहोंके सारवाहांत तीन और दर्भवाहोंके दर्भवाहांत तीन हैं, अगस्त्योंके आगस्त्य, माहेन्द्र, मायोभुव है, पूर्णमासोंके आगस्त्य, पौर्णमास, पारण हैं, हिमोदकोंके आगस्त्य हैमवर्चि हैमोदक हैं, पाणिकोंके आगस्त्य, पैनायक, पाणिक हैं, ये छः भी कहीं लिखे हैं, इन सब अगस्त्योंका परस्पर विवाह नहीं होता ॥ अब दो गोत्रवालोंको लिखते हैं शौंग शिशिरोंके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, कात्य, आक्षील ये पांच हैं, वा कात्याक्षीलोंके स्थानमें शौंग शैशिरि हैं वा आंगिरस कात्य: आक्षील ये तीन हैं, इनका भरद्वाज और विश्वामित्रोंका परस्पर विवाह नहीं होता इसी प्रकार कपिल और क्षीकतोंका परस्पर विवाह नहीं होता और संस्कृति पूतिमाष आदिकोंके आंगिरस, गौरिवीत, सांकृत्य हैं, वा शाक्त्य गौरिवीत सांकृत्य हैं, इन सबका अपने गणोंमें और वसिष्ठ शौंग शिशिरोंके संग और लौगाक्षियोंके संग विवाह नहीं होता, प्रयोगपारिजातमें काश्यपोंके संग भी नहीं होता यह कहा है, लौगाक्षियोंके काश्यप आवत्सार वासिष्ठ हैं, वा काश्यप आवत्सार असित हैं ये दिनमें वसिष्ठ और रात्रिमें काश्यप हैं, इनका विवाह वसिष्ठ कश्यप, संकृतिआदिकोंके

देवरातस्य जामदग्न्यैर्विश्वामित्रैश्चाविवाह इति प्रयोगपारिजाते ॥ तदयुक्तम् ॥ बह्वृचश्रुतौ । "यथैवाङ्गिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रताम् । आंगिरसो जन्मनस्याजीगर्तिः श्रुतः कविः" इत्यङ्गिरोगणस्थत्वेन भार्गवजामदग्न्यत्वस्मृतेर्बाधात् । तेन प्रत्यक्षश्रुत्या हरिवंशादिस्मृतेश्च बाधात् ॥ तेन द्वौ देवरातौ ॥ एक आङ्गिरसः श्रुत्युक्तः । अन्यो भार्गवः । तयोः कल्पभेदेप्याङ्गिरसेन देवरातेन जामदग्न्यैर्भवत्येव विवाहः ॥ भार्गवेण तु नेति तत्त्वम् ॥ धनञ्जयानां विश्वामित्रैरात्रिभिश्चाविवाहः ॥ जातूकर्ण्यानां वसिष्ठैरात्रिभिश्चाविवाहः ॥ एवं दत्तक्रीतकृत्रिमस्वयंदत्तपुत्रिकापुत्रादीनाम्–उत्पादकपालकयोः पित्रोर्गोत्रप्रवरा वर्ज्या इति प्रवरमञ्जरीनारायणवृत्तिप्रयोगपारिजातादयः अत्र सर्वत्रोपपत्तयः, मूलं च मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयमिति दिक् ॥ क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरावेवेति सर्वसिद्धान्तः॥ यद्यपि बह्वृचपरिशिष्टे कपिभारद्वाजयोर्विवाह उक्तः । तथापि–"भरद्वाजाश्च कपयो गर्गा रौक्षायणा इति। चत्वारोपिभरद्वाजगोत्रैक्यान्नान्वयुर्मिथः ॥ कपिगर्गभरद्वाजा मिथो रौक्षायणा द्विजाः। नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात्प्रवरैक्याच्च कुत्रचित्"॥२॥ इति स्मृत्यर्थसाराद्युक्तेरविवाह एव तयोरिति प्रवरमञ्जर्यां यद्यपीदमुक्तं तथापि भृग्वङ्गिरोगणेषु भवत्येव ॥ तथा बह्वृचपरिशिष्टे बौधायनः–"एक एव ऋषिर्याव-

---

संग नहीं होता, प्रयोगपारिजातमें यह कहाहै कि, देवरातका जामदग्न्य और वैश्वामित्रोंके संग विवाह नहीं होता सो उचित नहीं, कारण कि, जैसे आंगिरसभी मैं तेरा पुत्र हूंगा, जन्मसे आंगिरस अजीगर्त श्रुतिके बलसे कविनामसे अंगिराओंके गणमें लिखेहैं इससे भार्गव और जामदग्न्य है, इस स्मृतिका बाध हैं तिससे प्रत्यक्ष श्रुतिसे हरिवंश आदि स्मृतिकाभी बाध है, तिससे दो देवरात हैं, एक श्रुतिमें लिखाहुआ अंगिरस देवरात, और दूसरा भार्गव, कल्पभेदसे भी अंगिरस देवरातके संग जमदग्नि देवरातका विवाह होही सकताहै, भार्गवके संग नहीं होता यही सिद्धान्त है ॥ धनंजयोंका विवाह विश्वामित्र और अत्रियाके संग नहीं होता जातूकर्ण्योंका वसिष्ठ और अत्रियोंके संग विवाह नहीं हाता इसी प्रकार दत्तकको क्रीत, कृत्रिम, स्वयंदत्त, पुत्रिकापुत्र आदिकोंके उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले मातापिताके गोत्रोंमें और प्रवरोंमें विवाह करनेका निषेध है, यह प्रवरमंजरी नारायणवृत्ति प्रयोगपारिजात आदि लिखतेहैं, इन सबकी उपपत्ति और मूल मेरे निर्मित किये प्रवरदर्पणमें देखलेने यह संक्षेपसे कहाहै, क्षत्रिय और वैश्योंके तो गोत्र प्रवर पुरोहितोंके होतेहैं यह सबहीका सिद्धान्त है, यद्यपि बह्वृचपरिशिष्टमें कपि और भरद्वाजोंका परस्पर विवाह लिखाहै तथापि इस स्मृत्यर्थसार आदिके कथनसे विवाह नहीं होता और कपि गर्ग रौक्षायण इन चारोंको भरद्वाज गोत्रके संग एक होनेसे इनका परस्पर विवाह नहीं होता और कपि गर्ग भरद्वाज रौक्षायण द्विज ये विवाह कहीं भी प्रवर और गोत्रके एकसे परस्पर विवाह न करें, यद्यपियह प्रवरमंजरीमें लिखाहै तथापि भृगु और

त्प्रवरेष्वनुवर्तत । तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात् ॥" माधवीये स्मृत्यन्तरे–"पञ्चानां तु त्रिसामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ॥ भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥ इति देशाचाराच्च ॥ सोप्याभीरदेशे प्रसिद्धः ॥ चतुर्विंशतिमते–"यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत् ॥ नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते" इति दिक् ॥ तथा च भृगुः–"यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचालयेत्" इति ॥ पुनश्चतुर्विंशतिमते–"यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां किल सर्वेषां सदाचारः स उच्यते ॥" स्वगोत्राद्यज्ञाने सत्यापाढः–'अथाज्ञातबन्धो पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेण वात ॥' "आचार्यगोत्रप्रवरानभिज्ञस्तु द्विजः स्वयम् । दत्वात्मानं तु कस्मैचित्तद्गोत्रप्रवरो भवेत् ॥ यद्वा स्वगोत्रप्रवरविधुरो जमदग्निजः । विवाहं च व तेनैव गोत्रेण तु समाचरेत् ॥ २ ॥ " इति कश्चित् ॥ दिवोदासीयेपि–'स्वगोत्रप्रवराज्ञाने जमदग्निमुपाश्रयेत् ॥' अथ मातृगोत्रनिर्णयः । शातातपः–" मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ " यद्यपि–"सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि ।

अंगिरागणोंमें तो परस्पर विवाह होताहीहै, इसी प्रकार बहृचपरिशिष्टमें बौधायनका वाक्य है कि, जहांतक प्रवरोंमें एकही ऋषि चलाजाय वहांतक वे सब भृगु और अंगिरागणोंको त्यागकर समान•गोत्री रहते हैं, माधवीयमें स्मृत्यंतरका कथन है कि, पांचकी तीन प्रवरोंमें समानता प्राप्त होनेसे विवाह नहीं होता, यह बात भृगु और अंगिरागणोंमें जाननी शेष गोत्रोंमें तो एकही योग विवाहको निषेध देता है, यह देशका आचार है वहभी आभीर देशमेंही प्रसिद्ध है ॥ चतुर्विंशतिका कथन है कि, जो मनुष्य देशरीतिके अनुसार वा कुलमार्गके अनुकूल विवाह करताहै वह निरन्तर व्यवहार करने योग्य है, कारण कि, वेदसे भी यही बात दीखती है (इति संक्षेपः) सोई भृगुने लिखाहै कि, जिस देश पुर ग्राम तीन विद्यावाले नगरमें जो धर्म कर रक्खाहै उनको न डिगावे, फिर चतुर्विंशतिका मत है कि, जिस देशमें जो आचार परंपरासे चला आयाहै, वही सब वर्णोंका सदाचार लिखा है, अपने गोत्र आदिका ज्ञान न होय तो सत्यपाढने यह लिखा है, कि जिसमें बन्धुओंका ज्ञान न हो, उसका विवाह पुरोहित वा आचार्यके प्रवरसे होताहै और जिस द्विजको आचार्यके गोत्रका ज्ञान न हो वह अपनेको किसीको देकर उसीके गोत्र प्रवरोंको स्वीकार करले, अथवा अपने गोत्र और प्रवरोंसे रहित परशुराम थे उनकेही गोत्रसे वह विवाह करै यह किन्हीका मत है । दिवोदासीयमें अपने गोत्रप्रवरके अज्ञानमें जमदग्निका आश्रय करै ॥ अब माताके गोत्रका निर्णय लिखते हैं, शातातपने कहाहै कि, मामाकी पुत्री और माताके गोत्रकी कन्याका और अपने प्रवरकी कन्याका संग करके चान्द्रायण व्रत करै, यद्यपि कोई विवाहमें माताके गोत्रको भी इच्छा नहीं करते, यदि जन्म और नामका जहां ज्ञान न होय तो

जन्मनाम्नोरविज्ञातेष्युद्वहेदविशंकितः '' इति व्यासोक्तेरज्ञातनामत्वेन सगोत्रत्वादोषस्तथापि नेदं कलौ प्रवर्तते ॥ ' गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा ' इति कलिवर्जत्वोक्तेः ॥ इदं मातृगोत्रवर्जनं माध्यन्दिनीयानामेव । 'मातृगोत्रं माध्यन्दिनीयानामपुत्रायाश्च' इति सत्याषाढोक्तेरिति कश्चित् । महाराष्ट्रकल्पितं तन्निर्मूलम् ॥ अन्यथा गुर्जरादेः कातीयस्य कुतो न निषेधः । अत एव प्रवरमञ्जरीकारः ' दोषस्यातिगुरुत्वात् सर्वेषां मातृगोत्रं वर्जम्' इति ॥ यत्तु गुर्जरादीनां माध्यन्दिनीयानामप्याचरणाच्च-" एकस्मिन् प्रवरे तुल्ये मातृगोत्रे वरस्य च ॥ तमुद्वाहं न कुर्वीत सा कन्या भगिनी स्मृता॥" इति मातृकुले प्रवरचिन्तनमुक्तम् । तदासुरादिविवाहोढापरमिति दिक् ॥ विस्तरस्तु ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयः ॥ सगोत्रविवाहे प्रायश्चित्तम् । सगोत्रादिविवाहे प्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थसारे-" इत्थं सगोत्रसंबन्धविवाहविषये स्थिते । यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्यामूढ्वोपगच्छति ॥ गुरुतल्पव्रताच्छुद्ध्येद्गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत्। भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव ॥ अज्ञानादैन्दवैः शुद्ध्येत्त्रिभिर्गर्भस्तु कश्यपः ॥ २ ॥ " एवं सापिंड्येपि-'सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते '

शंकाको त्यागकर विवाह करले, इस व्यासके कथनसे नामका ज्ञान न होय तो समान गोत्रका दोष नहीं, तथापि यह प्रचार कलियुगमें नहीं चलता ॥ कारण कि, कलियुगमें जिनका निषेध है उनमें माताके गोत्र और सपिंडकी कन्या भी वर्जितोंमें गिनी है यह माताके गोत्रका त्याग माध्यंदिनी शाखावालोंके निमित्त ही है, कारण कि, सत्याषाढने यह लिखाहै कि, माध्यंदिनियोंको माताका गोत्र निषिद्ध है यह किसी महाराष्ट्रकी कल्पना की हुई निर्मूल है, अन्यथा गुर्जर आदि और कातियोंका निषेध क्यों न होता ? इसीसे प्रवरमंजरीकारने लिखाहै कि अत्यन्त (भारी) दोष होनेसे माताका गोत्र त्यागने योग्य है जो किसीने गुर्जर आदि माध्यंदिनियोंके किये आचारसे वरके एक प्रवरकी समानता और वरकी माताका गोत्र होय तो उस कन्याको विवाहमें अंगीकार न करै, कारण कि, वह कन्या बहन लिखीहै इस कथनसे जो माताके गोत्र और प्रवरका विचार लिखाहै वह उस कन्याके विषयमें जानना है, जो आसुर आदि विवाहोंसे विवाहीगई हो, यह संक्षेपसे कहाहै, विस्तार तो दूसरे ग्रन्थोंमें जानना चाहिये ॥ अपने गोत्र आदिकी कन्याके विवाहमें प्रायश्चित्त स्मृत्यर्थसारमें यह लिखाहै कि, इसी प्रकार अपने गोत्रकी कन्याके सम्बन्ध और विवाहके विषयमें जो कोई उस कन्याको विवाह करके गमन करताहै उसको गुरुशय्याके गमन करनेके व्रत करनेसे शुद्धि होती है और उससे उत्पन्न हुआ गर्भ चाण्डाल होता है, उस कन्याके संग भोगको छोडकर माताके तुल्य उसकी पालना करै, और अज्ञानसे विवाही हो तो तीन ऐन्दवव्रतोंके करनेसे उसका गर्भ शुद्ध होता है, इसी प्रकार सपिंड कन्याके विवाहमें जानना चाहिये, कारण कि, बृहद्यमने

इति वृद्धयमोक्तेः ॥ तिथितत्त्वे बौधायनः--'सपिण्डां सगोत्रां चेदमत्योपयच्छे-न्मातृवदेनां बिभृयात्' ॥ कन्याविवाहे कालः । कन्याविवाहकाल उक्तो ज्योतिर्निबन्धे-"षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्यावर्षद्वयं यतः । सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च तथाऽनलः ॥" राजमार्त्तण्डः- "अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे तु विधवा भवेत् । तस्माद्गर्भान्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥ मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षे युग्मेपि मासत्रयमेव यावत् । विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तो वात्स्यादयः स्त्रीजनिजन्ममासात् ॥ २ ॥" पराशरमाधवीये तु-"जन्मतो गर्भाधानाद्वा पञ्चमाब्दात्परं शुभम् । कुमारीवरणं दानं मेखलाबन्धनं तथा" इत्युक्तम् ॥ सम्बन्धतत्त्वे यमः-"कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे । ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥" भारते-"त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्यां विन्देत नग्निकाम् । दशवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ अतो प्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात् पिता सकृत् ॥" तत्रैव-"सप्तसंवत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः । कन्यायाः शस्यते राजन्नन्यथा धर्मगर्हितः ॥" राजमार्तण्डः--"राहुग्रस्ते तथा युद्धे पितॄणां प्राण-

यह लिखाहै कि, अपने सपिंडकी सन्तान और स्त्री होय तो प्राण त्यागदे, तिथितत्त्वमें बौधायनने यह लिखाहै कि, यदि अज्ञानसे सपिंड और गोत्रकी कन्यासे विवाह होजाय तो मानाके तुल्य उसकी पालना करै ॥ कन्याके विवाहका काल ज्योतिर्निबन्धमें लिखाहै कि, छः वर्षकी कन्याके संगमें विवाह न करै, कारण कि उसको दो संवत्सरतक चन्द्रमा गन्धर्व और अग्नि भोगतेहैं, राजमार्तण्डमें कहाहै कि, अयुग्मवर्षमें विवाही कन्या दुर्भागिन और युग्ममें विधवा होतीहै, तिससे गर्भसे युक्त युग्म वर्षमें विवाह होनेसे वह कन्या पतिपरायण होती है, स्त्रीके जन्ममहीनेसे अयुग्म वर्षोंमें तीन महीनेसे पीछे और युग्मवर्षोंमें तीन महीनेतक विवाहकी शुद्धिको वात्स्य आदि सन्त लिखतेहैं । पराशरमाधवीयमें यह लिखाहै कि, जन्म वा गर्भाधानसे पांच वर्षसे उपरान्त कन्याकी सगाई दान और यज्ञोपवीत करना शुभ है ॥ सम्बन्धतत्त्वमें यमने कहाहै कि, बारहवर्षतक बिना दीहुई कन्याके घरमें रहनेसे उस कन्याके पिताको ब्रह्महत्या लगती है, वह कन्या स्वयं वरले. भारतमें कहा है कि, तीस वर्षका मनुष्य सोलह वर्षकी, और सोलह वर्षका मनुष्य आठ वर्षकी कन्याको अग्निकी साक्षीसे विवाहै, शीघ्रता करनेसे धर्मसे पतित होताहै, इससे पिताको चाहिये, रजोधर्म न होनेसे प्रथम कन्याको देदे भारतमें भी कहाहै कि, हे राजन् सात वर्षसे उपरान्त कन्याका विवाह सब वर्णोंमें उत्तम है अन्यथा हे नृप ! धर्मसे निन्दित है, राजमार्तण्डमें कहाहै कि, ग्रहण युद्ध, पितरोंके प्राणोंका संशय होय

१ व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम् । पयोधरैस्तु गन्धर्वो रजसाग्निः प्रकीर्तितः। तस्मादव्यञ्जनोपेतामरजामपयोधराम् । अभुक्ता चैव सोमाद्यैः कन्यका तु प्रशस्यते । तुरीयस्ते मनुष्यजः इति श्रुतेः ॥ अर्थात्--गृह्यसंग्रहमें लिखाहै चिह्न प्रगट होनेसे चन्द्रमा, पयोधर होनेसे गंधर्व, रज होनेसे अग्नि कन्याको भोगतेहैं इससे इन देवताओंसे अभुक्तकन्याको दान करै ॥

संशये। अतिप्रौढा च या कन्या चन्द्रलग्नबलेन तु ॥'' चकारादतिबाला। प्राणसंशय इत्युक्तेः। मनुः-''त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्। त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥'' यद्यपि-'विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायाः शस्यते बुधैः' इति संवर्तोक्तेः 'अत ऊर्ध्वं रजस्वला' इत्यादेश्च दशवर्षादूर्ध्वं विवाहो निषिद्धः॥ तथापि दातुरभावे द्वादशषोडशाब्दे ज्ञेये-'त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम्' इति पराशरमाधवीये बौधायनोक्तेश्च॥ मनुः-''स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्। हीनक्रियं निःपुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्॥ क्षय्यामया-व्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च। नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम्॥ २॥'' यमः-'तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्।' तथा मूलजादीनां फलं प्रागुक्तम्। तथा वर्णवश्यग्रहमै-त्र्यादिघटितविचारो ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयः विस्तरात्तु नोच्यते॥ गुर्वर्कबलम्। अथ गुर्वर्कबलं ज्योतिर्निबन्धे गर्गः-''स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम्। तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण भाषितम्॥ जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया शुभदो

तो अत्यन्त बडी कन्याको चन्द्रबलसे देदेना चाहिये, विवाहको उत्तम नहीं लिखते, चकारसे प्राणके संशयमें अत्यंत बालिकाका विवाह भी करदे, पर उत्तम नहीं॥ मनुने कहाहै कि, तीस वर्षका मनुष्य बारह वर्षकी और सोलह वर्षका आठ वर्षकी कन्यासे विवाह करै, और शीघ्रता करै तो धर्मसे पतित होताहै यद्यपि आठ वर्षकी कन्याका विवाह पंडितोंने उत्तम लिखाहै इस संवर्तके कथनसे और इससे आगे कन्या रजस्वला होजातीहै इत्यादि वाक्योंसे दश वर्षके उपरान्त विवाह करना निषिद्ध है, तथापि दाताके अभावमें बारह और सोलह वर्ष जानने चाहिये, कारण कि, पराशरमाधवीयमें बौधायनने यह लिखाहै कि, ऋतुमती कन्या तीन वर्ष-तक पिताकी आज्ञाकी बाट देखे. मनुने कहाहै कि, स्त्रीके सम्बन्धमें इन दश कुलोंको छोडदे, कि, क्रियासे हीन, पुरुषोंसे रहित, वेदहीन, जिन पुरुषोंके शरीरपर बहुत रोम हों अर्श (बवासीर) रोगवाली, क्षयीरोग, मन्दाग्नि, मिरगी, दाद, कुष्ठरोगवाली उस कन्याको न विवाहै तथा जिसका नक्षत्र वृक्ष वा नदीका वा पर्वतोंपर नाम वा भयानक नाम हो उसे न विवाहै, यमने कहाहै कि, तिससे तबतक कन्याको विवाहदे जबतक ऋतुमती न हो इसी प्रकार मूल आदिमें उत्पन्न हुई कन्याओंका फल प्रथम कह आये हैं इसी प्रकार वर्ण वश्य ग्रहोंकी मित्रता आदिसे युक्त विचार ज्योतिषियोंसे जानना चाहिये, विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखते॥ अब बृहस्पति और सूर्यका बल लिखतेहैं ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने यह लिखाहै कि, स्त्रियोंको बृहस्पतिका बल और पुरुषोंको सूर्यका बल, और दोनोंको चन्द्रमाका बल देखना चाहिये और जन्मका तीसरा छठा बृहस्पति पूजासे अच्छा होताहै और चौथा, आठवां, बारहवां निराट

गुरुः । विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः ॥ २ ॥" देवलः--"नष्टात्मजा धनवती विधवा कुशीला पुत्रान्विता हतधवा सुभगा विपुत्रा । स्वामिप्रिया विगतपुत्रधवा धनाढ्या वन्ध्या भवेत्सुरगुरौ क्रमशोभिजन्मा ॥ " बृहस्पतिः-- "झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः । अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु॥" लल्लः--"द्वादशदशमचतुर्थे जन्मनि षष्ठाष्टमे तृतीये च । प्राप्ते पाणिग्रहणे जीवे वैधव्यमाप्नोति ॥" गर्गः--"सर्वत्रापि शुभं दद्याद्द्वादशाब्दात्परं गुरुः । पञ्चषष्ठा-ब्दयोरेव शुभगोचरता मता ॥ सप्तमात्पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो यदि । अशुभोपि शुभं दद्याच्छुभक्षेषु किं पुनः ॥ रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत् । अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥ अर्कगुर्वोर्बलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता । कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतो बला ॥ अष्टवर्षा भवेद्गौरी नव-वर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ९ ॥ " अथ बृह-स्पतिशान्तिः । शौनकः--"कन्यकोद्वाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते । ब्राह्मणस्यो-पनयने गुरास्तद्विधिरुदाहृतः ॥ सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् । ईशान्यां धवलं कुम्भं धान्योपरि निधाय च ॥ दमनं मधुपुष्पं च पलाशं चैव सर्षपान् ।

मृत्यु करताहै, देवलने कहाहै कि जन्मसे बृहस्पतिसे बारहवेंतक क्रमसे यह फल होता है कि, संतानका नाश, धनवाली, विधवा, कुशीला, पुत्रोंसे युक्त, पतिमृत्यु, सुहागिन, पुत्रोंसे हीन, पतिकी प्यारी, पुत्र और पतिसे हीन, धनसे युक्त और वन्ध्या होती है, बृहस्पतिने कहा है कि; मीन, धन, कर्कका बृहस्पति अशुभ भी होय तो विवाह और यज्ञोपवीतमें श्रेष्ठताको करता है। लल्लने कहा है कि, विवाहमें बृहस्पति बारहवां दशवां चौथा जन्मका छटा आठवां तीसरा होय तो वह कन्या विधवा होती है ॥ गर्गने कहा है कि, बारह वर्षकी अवस्थासे आगे बृहस्पति सब स्थानोंका शुभदायी है, पांचवें और छठे वर्षमें ही शुभ गोचर देखना कहा है सातवर्षसे पांच वर्षतक अशुभभी बृहस्पति अपने उच्च और अपनी राशिका होय तो फिर मंगल देता है, और अच्छी राशिका होय तो फिर क्या कहना है, रजस्वलाकन्याके गुरु शुद्धि करनेकी चिन्ता न करे आठवें बृहस्पतिमें भी तिगुना पूजन कर विवाह करले, गौरी कन्याको सूर्य गुरुका बल रोहिणी कन्याको सूर्यका बल, और कन्याको चन्द्रमाका बल और रजस्वलाको लग्नका बल देखलेना चाहिये; आठ वर्षकी कन्या गौरी नौवर्षकी रोहिणी और दशवर्षकी कन्या और इससे आगे रजस्वला होती है ॥ अब बृहस्पतिकी शान्ति लिखते हैं, शौनकने कहाहै कि, कन्याके विवाह और ब्राह्मणके यज्ञोपवीतमें बृहस्पति श्रेष्ठ न होय तो यह विधि लिखी है; कि, सुवर्णकी बृहस्पतिकी मूर्ति बनाय पीले वस्त्रसे लपेटे ईशान दिशामें श्वेत घट, धान्यके ऊपर रखकर, दमन, मधुपुष्प, पलाश, सर्षप, मांसी, गुडूची, अपामार्ग,

मांसी गुडूच्यपामार्गी विडङ्गी शंखिनी वचा ॥ सहदेवी हरिक्रान्ता सर्वौषधिश्शतावरी । बला च सहदेवी च निशाद्वितयमेव च ॥ कृत्वाज्यभागपर्यंतं स्वशाखोक्तविधानतः । ग्रहोक्तमण्डलेभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः ॥ देवपूजोत्तरे काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम् । अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषा युतम् ॥ यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः । अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं समापयेत् ॥ पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् । कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रतः॥ प्रतिमाकुम्भवस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः ॥ ९ ॥ ।" इति बृहस्पतिशांतिः ॥ सिंहस्थगुरौ निर्णयः । शौनकः–गुर्वादित्ये व्यतीपाते वक्रातीचारगे गुरौ । नष्टे शशिनि शुक्रे वा बाले वृद्धेऽथवा गुरौ । पौषे चैत्रेऽथ वर्षासु शरद्यधिकमासके । केतूद्गमे निरंशेऽर्के सिंहस्थेऽमरमन्त्रिणि । विवाहव्रतयात्रादिपुरहर्म्यगृहादिकम् ॥ क्षौरं विद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ३ ॥ " मदनपारिजाते ज्योतिःसागरे–"बाले शुक्रे वृद्धे शुक्रे वृद्धे जीवे नष्टे जीवे । बाले जीवे जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये ॥ तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येऽतिचारगे । वापीकूपविवाहादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ सिंहस्थं मकरस्थं च गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥ " लल्लः–

विडंग, शंखपुष्पी, वच, सहदेवी, विष्णुक्रांता, सर्वौषधी, शतावरी, बला दोनों हल्दी इन सबको एकत्र करके आज्यभाग आहुति पर्यन्त अपनी शाखामें लिखी हुई विधिसे नवग्रहोंके मण्डलमें, पीछे फूल और अक्षतोंसे बृहस्पतिका पूजन करके देवपूजाके उपरान्त घटकी प्रार्थना करे, और ढाककी समिधा घी और घीसहित खीर और जौ चावल तिलमें घी मिलाकर बृहस्पतिके मन्त्रसे एकसौ आठ आहुति देकर शेष होमकी पूर्ति करे पुत्र और स्त्रीसहित यजमानको अभिषेक करे, कुम्भकी प्रार्थनाके मन्त्र ' समुद्रज्येष्ठ ' इस मन्त्रको अभिषेकमें पढे वह बृहस्पतिकी प्रतिमा घट और वस्त्र आचार्यको देने चाहिये, पीछेसे ब्राह्मणोंको जिमावे इस विधिके करनेसे बृहस्पति मंगलदायी होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ इति बृहस्पतिशांतिः ॥ अब सिंहस्थगुरुके निर्णय कहते हैं शौनकने कहा है कि, गुर्वादित्य व्यतीपात बृहस्पतिका वक्र और अतिचार नष्टचन्द्र और बृहस्पतिका बाल्य और वृद्धत्व इनमें और पौष चैत्र वर्षा शरद् और अधिक मास केतु तारेका निकलना मासान्त सिंहके बृहस्पतिमें विवाह व्रत यात्रा आदि पुर और महल निर्माण क्षौर विद्या और उपविद्याको यत्नसे त्यागदे, मदनपारिजातमें ज्योतिस्सागरका कथन है कि, शुक्र और बृहस्पति बालक हों वा वृद्ध हों सिंहका बृहस्पति हो वा सूर्य हो वा गुर्वादित्य हो मलमास बृहस्पतिके अतिचारमें पूर्वोक्त बापी कूप विवाह आदि कर्म न करे, सिंह और मकरके बृहस्पतिको यत्नसे त्यागदे । लल्लने कहा है कि, अतिचारमें प्राप्त हुआ बृहस्पति फिर

"अतिचारगतो जीवस्तं राशिं न व्रजेत् पुनः । लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥" सिंहस्थगुरोरपवादमाह पराशरः—"गोदाभागीरथीमध्ये नोद्वाहः सिंहगे गुरौ । मघास्थे सर्वदेशेषु तथा मीनगते रवौ ॥" वसिष्ठोऽपि—"विवाहो दक्षिणे कूले गौतम्यां नेतरत्र तु ॥ भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा ॥ विवाहो व्रतबन्धश्च सिंहस्थेऽज्ये न दुष्यति ॥" कन्यादातारः । कन्यादातृक्रममाह याज्ञवल्क्यः—"पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ । गम्यं त्वभावे दातृणां कन्या कुर्यात्स्वयं वरम् ॥२॥" भ्रातॄणां संस्कृतानामेवाधिकारमाह । स एव याज्ञवल्क्यः—"असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम् ॥" अत्र चकारेण पूर्वसंस्कृतैरित्यस्याहृत्तेर्विवाहपर्याप्तद्रव्यदाने स्वांशसमांशचतुर्थभागदाने वा संस्कृतग्रहणं व्यर्थं स्यात् । अतः कर्तृनियमोऽयम् । तेनानुपनीतभ्रातृमात्रादिसत्त्वे मात्रादेरेवाधिकारो न भ्रातुरित्युक्तं सम्बन्धतत्त्वादौ ॥ कन्यास्वयंवरे मातृदातृत्वे च ताभ्यामेव नान्दीश्राद्धं कार्यम् । तत्र च स्वयं प्रधानसंकल्पमात्रं कृत्वाऽन्यब्राह्मणद्वारा कारयेदिति

यदि उस राशिपर न आवै तो वह वर्ष लुप्त हुआ जानना वह सब कर्मोंमें छोडने योग्य है। सिंहके बृहस्पतिका अपवाद पराशरने लिखा है कि, गोदावरी और भागीरथीके बीचमें सिंहके बृहस्पतिमें विवाह न करै, और मघाके बृहस्पति और मीनके सूर्यमें सब देशोंमें विवाह त्यागदे. वसिष्ठने कहा है कि, गौतमीके दक्षिण तटमें विवाह होता है और स्थानमें नहीं. भागीरथीके उत्तर और गौतमीके दक्षिणतटमें सिंहके गुरुमें विवाह और यज्ञोपवीत करनेका दोष नहीं है । कन्याके दाताओंका क्रम याज्ञवल्क्यने यह लिखा है कि, पिता, पितामह, भाई, कुलका मनुष्य माता इनमें पूर्व २ अभावमें अगला २ स्वस्थचित्त कन्याका देनेवाला होता है यदि कन्याका दान न करै तो ऋतु २ में भ्रूणहत्या करता है यदि कोई दाता न होय तो अपने गमन करने योग्य वरको कन्याको स्वयं वरलेना चाहिये. उन्हीं भ्राताओंका कन्यादानमें अधिकार है जिनका संस्कार होचुकाहो, कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, जिन भाइयोंका संस्कार न हुआहो उनका संस्कार प्रथम संस्कृत भाई करैं, और भगिनियोंका भी विवाह अपने अंशमेंसे चतुर्थ अंशको देकर करै, इस श्लोकमें चकारसे पूर्वसंस्कृत पदकी अनुवृत्तिसे विवाहके योग्य द्रव्य देनेमें या अपने अंशके तुल्य वा चौथाई द्रव्य देनेमें संस्कृतका ग्रहण व्यर्थ हो तो माताओंका कन्यादानमें अधिकार है भाइयोंका नहीं. यह सम्बन्धतत्त्वआदिमें लिखा है ॥ जहां कन्या स्वयं वरै और माता कन्यादान करै, वहां दोनोंहीको नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये, और वहां प्रधान संकल्प मात्रको करके

प्रयोगपारिजाते ॥ वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नान्दीम् ।' अत्र— न माता । 'पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत्स्वधाम् ' इति त्यागे इडविलायां नयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाच्चेति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ माधवरापरार्कयोर्नारदः—"पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वानुमते पितुः । मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवस्तथा ॥ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते । तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः॥ सकुल्यः पितृवंशीयो बान्धवो मातृवंशजः" ॥ ३ ॥"मदनपारिजाते कात्यायनः--"स्वयमेवौरसीं दद्यात्पितृभ्रावे स्वबान्धवः। मातामहस्ततोन्यां हि माता वा धर्मजां सुताम् ॥ " ततोन्यामौरसीभिन्नां धर्मजां नियोगात् क्षेत्रजां मातामहो भ्राता मातुलो वा दद्यात् । तेनौरसीदाने पितृबन्धुषु सत्सु मातामहादीनां नाधिकारः अनुमतिं विना ॥ अस्यापवादस्तत्रैव "दीर्घप्रवासयुक्तेषु पौगण्डेषु च बन्धुषु । माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम् ॥ " मनुः—"यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् ॥" परकीयकन्यादाने विशेषः । परकीयकन्यादाने विशेषो मदनरत्ने स्कान्दे— "आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम् । धर्मेण विधिना दानमसगोत्रोपि

दूसरे श्राद्ध ब्राह्मणसे करावे, यह प्रयोगपारिजातमें लिखा है, वर तो संस्कृत भाइयोंके न होनेपर स्वयं नान्दीमुख श्राद्ध करै, वरकी माता न करै, पुत्रोंके विद्यमान होते औरसे स्वधा न करावे इस त्यागसे और यज्ञोपवीतसे पुत्रोंको कर्मका अधिकार होनेसे माताका अधिकार नहीं है यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है माधवीय और अपरार्कमें नारदके वाक्य इस प्रकार लिखे हैं कि, पिता स्वयं कन्यादान करै वा पिताकी अनुमतिसे भाई करै, नाना, मामा, सकुल्या वा बांधव करै इन सबके अभावमें सावधान होय तो माता करै यदि वह सावधान न होय तो सजातीय मनुष्यको कन्यादान करना चाहिये पिताके वंशीको सकुल्य और माताके वंशीको बांधव लिखा है॥ मदनपारिजातमें कात्यायनने कहा है कि, अपनेसे उत्पन्न हुई कन्याको पिता स्वयं दे और पिता न होय तो अपने बांधव दें, यदि वह भी न होयँ तौ नाना विवाहे अथवा धर्मसे उत्पन्न हुई कन्याको माता दे और औरसीसे भिन्न नियोगधर्मसे उत्पन्न क्षेत्रज कन्याको मातामह वा मामा दे, तिससे औरसी कन्याके दानमें पिताआदिके होते अनुमतिके विना औरका अधिकार नहीं है इसका अपवाद भी वहांही कहा है यदि बन्धु बहुत दिनसे परदेशमें हों वा पौगंड अवस्थाके हुए होयँ तो औरसी कन्याको स्वयं माता भी दे, मनु कहते हैं कि, जब कोई देनेवाला न होय तो कन्या राजाके निकट चलीजाय ॥ पराई कन्याके दानमें मदनपारिजातमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखा है सुवर्ण देकर दूसरेकी कन्याको अपनी करके धर्मकी विधिसे अपने

"अतिचारगतो ? प्रकृतिग्रहणादप्रकृतिस्थेन कृतमकृतमेव । "स्वतन्त्रो यदि बहिष्कृतः ॥" प्रकृतिं गतः । तदप्यकृतमेव स्यादस्वातन्त्र्यस्य हेतुतः ॥" इत्यपरार्कधृते ... ॥ यदि तु सप्तपदीविवाहहोमादिप्रधानं जातं तदङ्गवैकल्येपि दक्षिणे कूलेऽहस्य। गौडा अप्येवमाहुः । तत्रैव मरीचिः "गौरीं ददन्नाकपृष्ठे वैकुण्ठं विवाहो ददत् । कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलाम्" ॥ अथ विवाहे याज्ञवल्क्यनिर्णयः । तत्र जन्ममासे विशेषः प्रागुक्तः ॥ ज्योतिःप्रकाशे व्यासः– "माघफाल्गुनवैशाखे यदूढा मार्गशीर्षके । ज्येष्ठे चाषाढमासे च सुभगा वित्तसंयुता ॥ श्रावणे वापि पौषे वा कन्या भाद्रपदे तथा । चैत्राश्वयुक्कार्त्तिकेषु याति वैधव्यतां लघु ॥ २ ॥" नारदः–"माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः । कार्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ निन्दिताः परे ॥" वसिष्ठः–"पौषेपि कुर्यान्मकरस्थितेर्के चैत्रे भवेन्मेषगतो यदा स्यात् । प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वदन्ति गर्गा मिथुनस्थितेर्के ॥" आचार्यचूडामणौ ज्योतिर्गर्गराजमार्तण्डौ–"माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च । दशमासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः ॥" आपस्तम्बः–

गोत्रमें भी कन्याका दान हो सकता है, यहां प्रकृतिस्थ (सावधान) के ग्रहणसे विना सावधानीमें किया न किया जानना कारण कि, अपरार्कमें नारदने यह कहा है कि, असावधान मनुष्य स्वतन्त्र होके उस कार्यको करै तो उसको अस्वतन्त्र हेतुसे विना किया जानना यदि सप्तपदी होम आदि प्रधान कार्य होगये होयँ तो किसी अंगकी न्यूनतामें भी विवाह फिर नहीं हो सकता, गौडोंने भी इसी प्रकार कहा है वहांही मरीचिने कहा है कि, गौरीका देनेवाला स्वर्गलोकमें रोहिणीका दाता वैकुण्ठमें, कन्याका दाता ब्रह्मलोकमें तथा रजस्वलाका दाता रौरव नरकमें गमन करता है ॥ विवाहमें मासको लिखते हैं, तहां जन्ममहीनेमें विशेष निर्णय पूर्व लिखआये हैं, ज्योतिःप्रकाशमें व्यासने कहा है कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशिर, ज्येष्ठ, आषाढमें विवाही हुई कन्या सौभाग्यवती तथा धनवती होती है, और श्रावण, पौष, भाद्रपद, चैत्र, आश्विन तथा कार्तिकमें विवाही कन्या शीघ्रही विधवा हो जाती है, नारदने कहा है कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख तथा ज्येष्ठ मास ये विवाहमें श्रेष्ठ हैं और कार्तिक मार्गशिर मध्यम है शेष सम्पूर्ण मास विवाहमें निन्दित हैं, वसिष्ठनेभी कहा है कि, यदि मकरकी संक्रांति पौषमें होय तो पौषमें और मेषकी संक्रान्ति चैत्रमें होजाय तो चैत्रमें भी विवाह करनेके दोष नहीं आषाढ तथा मिथुनकी संक्रान्तिमें किया हुआ विवाह बहुत उत्तम होता है यह गर्गका कथन है, आचार्यचूडामणि ज्योतिर्गर्ग और राजमार्तण्डने कहा है कि, मंगलके सब कर्मोंमें और विवाह और कन्याके सम्बन्धमें चैत्र और पौषको छोडकर दशमासोंकी बढाई करते हैं, आपस्तम्बने कहा है कि, विवाहकी

'सर्वऋतवो विवाहस्य । शैशिरौ मासौ परिहाप्योत्तमं च नैदाघम् ।' अत्र—"माघफाल्गुनाषाढवर्जं नव मासा मुख्यः कालः" इति सुदर्शनभाष्ये इडविलायां ब्रह्मतीर्थैश्चोक्तम् ॥ बौधायनसूत्रेऽपि—'सर्वे मासा विवाहस्य शुचितपस्तपस्यवर्जम्' इत्येके । तेन 'पूर्वोत्तरौ शिशिरसंबन्धिनौ मासौ पौषचैत्रौ विहाय' इति निर्णयामृतव्याख्यानं मौर्ख्यकृतमित्युपेक्ष्यम् । 'निशि चेत्सर्वेषु द्वादशस्वपि मासेषूद्वहेत्' इति कालादर्शः ॥ ये तु ज्योतिषे माघादिविधयस्ते गृह्यसूत्राणां द्विजपरत्वेन प्राबल्याच्छूद्रादिपराः ॥ ज्योतिषे—"वात्स्यो वर्षमनूनमिच्छति तथा रैभ्योऽयनं चोत्तरं श्रीवासन्तमृतुं विहाय मुनयो माण्डव्यशिष्या जगुः ॥ चैत्रं प्रोज्झ्य पराशरः परिणयेत्पौषं च दौर्भाग्यदं ह्याषाढादिचतुष्टयं न निरतं कैश्चित् प्रदिष्टं बुधैः ॥" चण्डेश्वरः—'मार्गे मासि तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम् । ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोस्तु यत्नेन परिवर्जयेत् ॥ कृत्तिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठपुत्रस्य कारयेत् । उत्सवादिषु कार्येषु दिनानि दश वर्जयेत् ॥ २ ॥" रत्नकोशे—"जन्मर्क्षे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत् । ज्येष्ठे मासाद्यगर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि ॥" पराशरः—" अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो

सब ऋतु हैं, शिशिरके दो मास पौषको छोडकर श्रेष्ठ हैं, और यहां माघ फाल्गुन आषाढको छोडकर नौ महीने मुख्यकाल है, यह सुदर्शनभाष्य और इडविलामें ब्रह्मविद्यातीर्थोंने लिखा है बौधायनसूत्रमें कहा है कि, विवाहके सब महीने हैं और कोई यह लिखते हैं कि, आषाढ, माघ, फाल्गुन हैं, इससे शिशिरसम्बन्धी प्रथम और पिछले पौष और चैत्रको विवाहमें त्याग दे ॥ यह निर्णयामृतकी व्याख्या मूर्खतायुक्त है इससे छोडने योग्य है, कालादर्शमें यह कहा है, कि, रात्रिमें लग्न होय तो द्वादश महीनेमें विवाह करै, और जो ज्योतिषमें माघ आदि महीनोंकी विधि है वह शूद्रोंके निमित्त, इससे हैं कि, गृह्यसूत्र द्विजोंको मानने योग्य है, ज्योतिषमें कहा है कि, वात्स्यमुनि सम्पूर्ण वर्षको और रैभ्यमुनि उत्तरायणको और मान्डव्यके शिष्य मुनि वसन्तको त्यागकर सब वर्षको त्यागकर और पराशर चैत्रको त्यागकर सब महीनोंको विवाहमें उत्तम कहते हैं, दुर्भाग्यके देनेवाले पौष और आषाढ आदि चार महीने किसी भी विद्वान्ने नहीं लिखे, चण्डेश्वरने कहा है कि, मार्गशिर और ज्येष्ठ मासमें क्षौर विवाह और व्रतको और ज्येष्ठमें ज्येष्ठ पुत्र और ज्येष्ठी कन्याके विवाहको यत्नसे त्याग दे, कृत्तिकाके सूर्यको त्यागकर ज्येष्ठमें ज्येष्ठ पुत्रका विवाह करलेना चाहिये, और उत्सवके कार्योंमें ज्येष्ठके दश दिन त्याग दें, रत्नकोशमें कहा है कि, जन्मके नक्षत्र जन्मके महीने जन्मके दिनमें शुभ कर्म छोड दे, और ज्येष्ठ पुत्र और ज्येठी कन्याका शुभ कार्य ज्येष्ठमें न करै ॥ पराशरमें कहा है कि, यदि कन्या ज्येठी न होय और वर ज्येठा होय अथवा वर ज्येठा न

श्रद्दि । व्यत्ययो वा तयोस्तत्र ज्येष्ठमासः शुभप्रदः" ॥ मिहिरः-"ज्येष्ठस्य ज्येष्ठ-कन्याया विवाहो न प्रशस्यते । तयोरन्यतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठो मासः प्रशस्यते ॥ द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्येष्ठं शुभावहम् । ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम् ॥ २ ॥" यत्तु-'सार्वकालमेके विवाहम्' इति, तदासुरादिविषयम् । 'धर्म्येषु विवाहेषु कालपरीक्षणं नाधर्म्येषु' इति गृह्यपरिशिष्टात् ॥ रत्न-मालायामप्येवम् ॥ तेनासुरादयो माघचैत्रादिनिषिद्धकालेष्वपि भवन्ति ॥ मासाः सौराः । 'सौरो मासो विवाहादौ' इत्युक्तेः । 'झषो न निन्द्यो यदि फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः' इति त्वपवादः ॥ अथ दश दोषाः । व्यवहा-रोच्चये-"वेधश्च लत्ता च तथैव पातः खर्जूरवेधो दशयोगचक्रम् । यतिश्च जामि-त्रमुपग्रहश्च बाणाख्यवज्रे च दशैव दोषाः ॥" एषां लक्षणं ज्योतिषे ज्ञेयम् ॥ अतिचारगे गुरौ तु वसिष्ठः-"अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । विवाहा-दिषु कार्येषु अष्टाविंशतिवासरान् ॥" रत्नमालायाम्-"एकपञ्चनवयुग्मषड्दश-त्रीणिसप्तचतुरष्टलाभगः । द्वादशाजवृषभादिराशितो घातचन्द्र इति कीर्तितो बुधैः ॥" नारदः-भूबाणनन्दहस्ताश्च रसदिग्वह्निशैलजाः ॥ वेदा देवशिवा-

होय और कन्या ज्येठी होय तो ज्येष्ठमास श्रेष्ठ है, मिहिरने कहा है कि, ज्येठेका ज्येठी कन्याके संग ज्येष्ठमें विवाह श्रेष्ठ नहीं है उनमें एक ज्येष्ठ होय तो ज्येष्ठ मास उत्तम है दो ज्येष्ठ मध्यम लिखे हैं, और एक ज्येष्ठ सुखदाता है विवाहमें तीन ज्येष्ठ न करै इस बातमें सबकी एक सम्मति है, जो किसीने यह कहा है, कि, कोई सब कालमें विवाहकी इच्छा करते हैं, वह आसुरआदि विवाहके विषयमें है, कारण कि, गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि, धर्मके विवाहोंमें समयकी परीक्षा है अधर्म विवाहोंमें नहीं, रत्नमालामें भी इसी प्रकार कहा है तिससे आसुर आदि विवाह माघ चैत्र आदि निषिद्ध मासोंमें भी होते हैं, यह सौर मास विवाहादिमें सौर मास लेने ऐसा कहा है । फाल्गुनमें होय तो मीन निंद्य नहीं है, वैशाखमें होय तो मेष निंद्य नहीं है ऐसा अपवाद है ॥ अब दश दोषोंको कहते हैं व्यवहारो-च्चयमें कहाहै कि, वेध, लत्ता, पात, खर्जूरवेध, (एकार्गल) दश योगचक्र, यति, जामि-त्र उपग्रह बाण और वज्र ये दश दोष हैं, इनके लक्षण ज्योतिष ग्रन्थोंमें देखलेने चाहिये, । अतिचारके बृहस्पतिमें वशिष्ठने कहाहै कि, अतिचारका बृहस्पति होय तो विवाह आदि में अट्ठाईस २८ दिन छोडदे, रत्नमालामें कहाहै कि, मेषआदि राशिसे पण्डितोंने घात क्रमसे यह कहा है कि, एक १ पांच ५ नौ ९ दो २ छः ६ दश १० तीन ३ सात चार ४ आठ ८ ग्यारह ११ बारह १२ ॥ नारदनेभी कहाहै कि, मेष आदि राशिके यह घातचन्द्र समझना कि, भू १ बाण ५ नन्द ९ हस्त २ रस ६ दिक् १० वां

दित्या घातचन्द्रो यथाक्रमम् ॥ यात्रायां युद्धकार्येषु घातचन्द्रं विवर्जयेत् । विवाहे सर्वमांगल्ये चौलादौ व्रतबन्धने ॥ घातचन्द्रो नैव चिन्त्य इति पाराशरो-ऽब्रवीत् ॥ २ ॥" ज्योतिर्निबन्धे--"विवाहचौलव्रतबन्धयज्ञे पट्टाभिषेके च तथैव राज्ञाम् । सीमन्तयात्रासु तथैव जाते नो चिन्तनीयः खलु घातचन्द्रः ॥" नारदः--"अकालजा भवेयुश्चेद्विद्युन्नीहारवृष्टयः । प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्रचापाभ्रध्वनयो यदि ॥ दोषाय मङ्गले नूनं न दोषायैव कालजाः ॥" अकालवृष्टिस्वरूपमाह लल्लः--'पौषादिचतुरो मासाः प्रोक्ता वृष्टिरकालजा' इति ॥ शार्ङ्गधरः--" निर्घाते क्षितिचलने ग्रहयुद्धे राहुदर्शने चैव । आपञ्चदिनात्कन्या परिणीता नाशमुपयाति ॥ उल्कापातेन्द्रचापप्रबलपवनरजोधूमनिर्घातविद्युद्वृष्टिप्रत्यर्कदोषादिषु सकलबुधैस्त्या-ज्यमेवैकरात्रम् । दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते ह्यशुभफलदृशो दुर्मनोभ्रान्तबुद्धौ चौले मौञ्जी-निबन्धे परिणयनविधौ सर्वदा त्याज्यमेव ॥ २ ॥" ज्योतिःप्रकाशे--"अर्वाक्षो-डशनाड्यः संक्रान्तेः पुण्यदाः परतः । उपनयनव्रतयात्रापरिणयनादौ विवर्ज्याः-स्ताः ॥" गर्गः--" दिग्दाहे दिनमेकं च ग्रहे सप्तदिनानि तु ॥ भूकम्पे च समु-त्पन्ने त्र्यहमेव तु वर्जयेत् ॥ उल्कापाते त्रिदिवसं धूमे पञ्च दिनानि च । वज्रपाते

मातृका ७ वेद ४ वसु ८ रुद्र ११ आदित्य १२ यात्रा युद्ध आदि कार्योंमें घातचन्द्रमाको छोडदे अर्थात् घात चन्द्रमामें न करै, और विवाह सब मङ्गल कर्म चूडा आदि तथा व्रतव-न्धन (यज्ञोपवीत) इनमें घातचन्द्रमाका विचार नहीं करना, ये पराशरने लिखाहै, ज्योतिर्नि-बन्धमें भी कहाहै कि, विवाह, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, राज्याभिषेक, सीमन्त, यात्रा तथा जात-कर्ममें घातचन्द्रमाका विचार नहीं करना चाहिये, बिजली, नीहार (कौल), वृष्टि, सूर्यके चारोंओरका मण्डल, इन्द्रधनुष, मेघध्वनि ये मंगलमें दूषित हैं ऐसा नारद कहते हैं और समयकी दूषित नहीं है ॥ अकालवृष्टिका स्वरूप लल्लने यह लिखाहै कि, पौष आदि चार महीनोंमें हुई वृष्टिको अकालवृष्टि लिखते हैं, शार्ङ्गधरने कहाहै कि, वज्रपात, भूमिकम्प, ग्रहोंका युद्ध, राहुदर्शन इनमें पांच दिनतक विवाह न करना चाहिये, कारण कि, इनमें विवाही हुई कन्या मृत्युको प्राप्त होती है, उल्काका पात, इन्द्रधनुष, प्रबल वनकी धूरि, तथा धूमदर्शन, वज्रपात, विद्युत्पात, वृष्टि, सूर्यका मण्डल इत्यादि दोषोंमें एक घडी वर्जदे दुष्ट स्वप्न, दुष्ट हेतु, अशुभ फलका दर्शन, दुष्ट मन तथा चित्त भ्रान्त ये चूडाकर्म, मौंजीबन्धन, विवाह आदिमें निरन्तर त्यागने योग्य है, ज्योतिःप्रकाशमें कहाहै कि, संक्रान्तिकी आदिकी सोलह घडी यज्ञोपवीत, व्रत, यात्रा, विवाह आदिमें पुण्यदायक होती है और सम्पूर्ण घडी वर्जित है ॥ गर्गने कहाहै कि, दिशाओंके दाहमें तो एक दिन, ग्रहोंके युद्धमें सात दिन, भूकम्प होय तो तीन दिन, उल्काका पात होय तो तीन दिन, धूम दर्शनमें पांच दिन, वज्रपातमें एक दिन,

चैकदिनं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ दर्शनादर्शनाद्राहुकेत्वोः सप्तदिनं त्यजेत् । यावत्केत्वोद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत् ॥ ३ ॥ " अस्यापवादोऽद्भुतसागरे-" अथ दिवसत्रयमध्ये मृदु पानीयं यदा भवति ॥ उत्पातदोषशमनं तदैव संमाहुराचार्याः ॥" सम्बन्धतत्त्वे-'भूकम्पादेर्न दोषोऽस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति ॥' दुष्टयोगे कुम्भविवाहः । अथापरिहार्ये कन्यावैधव्ययोगे विशेष उच्यते मार्कण्डेयपुराणे-"बालवैधव्ययोगे तु कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः । कृत्वा लग्नं ततः पश्चात्कन्योद्वाहेति चापरे ॥" अत्र पुनर्दोषाभाव उक्तो विधानखण्डे-"स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी । तया सह विवाहे तु पुनर्भूत्वं न जायते ॥" सूर्यारुणसंवादे-" विवाहात्पूर्वकाले च चन्द्रतारावलान्विते । विवाहोक्ते च तां कन्यां कुम्भेन सह चोद्वहेत् ॥ सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः । कुंकुमालंकृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे ॥ ततः कुम्भं च निःसार्य प्रभज्य सलिलाशये । ततोऽभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपल्लववारिभिः ॥" कुम्भप्रार्थना तत्रैव-"वरुणाङ्गस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय । पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥ देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः । ततोऽलंकारवस्त्राढ्यां वराय प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥ " इति कुम्भविवाहः ॥ मूर्तिदानमपि तत्रैवोक्तम्-"ब्राह्मणं

सब कर्मोंमें त्यागाहै राहुकेतुका दर्शन होय वा न होय तो भी सात दिन त्यागदे कारण कि, जबतक केतु उदय हो तबतक अशुभ समय होताहै अद्भुतसागरमें इसका अपवाद यह लिखाहै कि, तीन दिनके बीचमें जब जलमें स्वच्छता हो जाय तबही उत्पात दोषकी शान्ति होतीहै यह आचार्यजन कहतेहैं सम्बन्धतत्त्वमें कहाहै कि, वृद्धिश्राद्धके करनेपर भूकम्प आदिका दोष नहीं होताहै ॥ अनिवार्य वैधव्य योगमें मार्कण्डेय पुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखतेहैं कि, यदि कन्याका बालवैधव्य योग होय तो कुम्भ, वा वृक्षकी प्रतिमा आदिसे लग्नको करके पीछे कन्याका विवाह करै, यह कोई कहतेहैं, तहां पुनर्भू (दुबारा विवाही) दोषकी शांति विधानखण्डमें यह कहा है कि, सुवर्णका जल पिप्पलकी विष्णुकी प्रतिमा निर्माण कर फिर उसके संग विवाह करनेसे पुनर्भू दोष नहीं लगता, सूर्यारुणसंवादमें कहाहै कि, चन्द्रताराके वलसे युक्त विवाहसे पूर्व कालमें कन्याका घडेके संग विवाह करै, विधिसे एकान्त गहमें उसके अंगको कुंकुम आदिसे शोभित करके दश तन्तुओंसे वेष्टित करे, फिर उस कुम्भको घरसे निकालकर किसी जलाशयमें उसको भग्न करके पञ्चपल्लवोंसे उसका अभिषेक करै ॥ वहांही कुम्भकी प्रार्थनाके मन्त्र ये लिखेहैं कि, वरुणके अंगका स्वरूप जलोंसे आश्रयवान् तुम इस कन्याके पतिको चिरकालतक जीवित करो तथा चिरकालतक पुत्रके सुखको करो विष्णुरूपी वरको दे दुःखसे इस कन्याकी रक्षा करो, इस प्रकार घटका विवाह कर भूषण वस्त्र आदिकोंसे युक्त कन्याको वरके निमित्त निवेदन करै, इति कुम्भविवाहः ॥ मूर्तिका दानभी वहांही

साधुमामन्त्र्य संपूज्य विविधार्हणैः । तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम् ॥ शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याथवा पुनः ॥ निर्मितां रुचिरां शंखगदाचक्राब्जसंयुताम् ॥ दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम् । सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेनमुदीरयेत् । यन्मया प्राक्षि जनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम् । विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया ॥ प्राप्यमानं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम् । वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय शुभलब्धये ॥ बहुसौभाग्यलब्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम् । सौवर्णां निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज । अनघाद्याहमस्मीति त्रिवारं प्रजपेदिति । एवमस्त्विति तस्योक्तिं गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् ॥ ततो वैवाहिकं कुर्याद्विधिं दाता मृगीदृशः ॥" अन्येप्यश्वत्थविवाहवृक्षसेचनादयस्तत्रैव ज्ञेयाः ॥ विस्तरभयान्नोच्यते ॥ अथ प्रतिकूलादिनिर्णयः । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः–"कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति कस्यचित् । तदा न मङ्गलं कुर्यात् कृते वैधव्यमाप्नुयात् ॥" ज्योतिर्मेधातिथिः–"वधूवरार्थं घटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहेप्यथ कन्यकायाः । मृत्युर्यदि स्यान्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु मङ्गलं बुधैः ॥" मङ्गलं विवाहः । स्मृतिचन्द्रिकायाम्–"कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्मर्त्यस्य

लिखा है, श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रयुक्त करके उसकी अनेक प्रकारोंसे पूजा करके विधिसे दक्षिणासहित इस प्रकारकी विष्णुकी मूर्तिदान करैं कि, जिसके चार भुजा हों, अतिशुद्ध वर्णवाले सुवर्णसे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार धनसे निर्मित्त कीहो, सुन्दर शंख, गदा, चक्र, कमल, पीत वस्त्र, कमलके फूलोंकी मालाको धारण कररही हो, और इस मन्त्रको उच्चारण करै, जो मने पूर्वजन्ममें विष उपविष तथा शस्त्र आदिके समागममें पतिको माराहै, उससे प्राप्त होनेवाला दुःख और धनके नाश करनेवाले महाघोर अपयशके तथा वैधव्यआदि अत्यन्त दुःखोंके समूहके नाशके निमित्त तथा सुखके प्राप्तिके निमित्त बहुत सौभाग्यकी प्राप्तिके निमित्त इस सुवर्णसे निर्मित हुई महाविष्णुकी प्रतिमाको हे ब्राह्मण ! शक्तिके अनुसार देता हूं, इस दिनसे अब मैं पापोंसे छूटती हूं इस मंत्रको तीन वार जप कर फिर एवमस्तु (इसी प्रकार हो) इस प्रकार ब्राह्मणके प्रत्यभिवादको स्वीकार करके अपने घरमें प्रविष्ट होय मृगलोचनी कन्याका दाता विधिसे वैवाहिक कर्मको करै, और भी पीपल आदिका विवाह, वृक्षसेचन आदि, विधि इस स्थलमें जाननी, विस्तारके भयसे हम नहीं लिखते ॥ अब प्रतिकूलादि निर्णय कहतेहैं । ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहाहै कि, निश्चय करनेपर यदि किसीकी मृत्यु होजाय तो विवाह न करै, करनेसे कन्या विधवा होती है, ज्योतिर्मेधातिथिका कथन है कि, वधू और वरके विवाहका निश्चय किये उपरान्त वधू अथवा वरके घर किसी मनुष्यकी मृत्यु होजाय तो उस समय बुद्धिमान् विवाह न करैं, स्मृतिचन्द्रिकामें कहाहै कि, वाग्दान (सगाई) के निश्चय

श्रोत्रिणः । तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम् ॥" भृगुः-"वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः। तदोद्वाहो नैव कार्यः स्ववंशक्षयदो यतः ॥" शौनकः-"वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः। एतेषां प्रतिकूलं च महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही । पितृव्यस्त्रीसुतो भ्राता भगिनी चाविवाहिता ॥ एभिरत्र विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् । अन्यैरपि विपन्नैस्तु केचिदूचुर्न तद्भवेत् ॥ २ ॥ " माण्डव्यः-"वाग्दानानन्तरं माता पिता भ्राता विपद्यते । विवाहो नैव कर्तव्यः स्ववंशस्थितिमिच्छता ॥" संकटे तु मेधातिथिः-"वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदा संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत् ॥"स्मृतिरत्नावल्याम्-"पितुरब्दमशौचं स्यात्तदर्धं मातुरेव च । मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ अन्येषां तु सपिण्डानामशौचं मासमीरितम् । तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते ॥" ज्योतिःप्रकाशे-"प्रतिकूलेपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परः । शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत् पुनः ॥" शान्तिं विनायकशान्तिम् । तथा च मेधातिथिः-"संकटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना । शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत्" इति ॥ "प्रतिकूले न कर्तव्यो गच्छेद्यावदृतुत्रयम् । प्रतिकूलेपि कर्तव्य-

होनेपर पीछे किसी सगोत्री मनुष्यकी मृत्यु होजाय तो तब विवाह न करै कारण कि, वह विवाह निश्चय स्त्रीवैधव्यकारी होता है भृगुने कहा है कि, वाग्दानके उपरान्त कन्या वा वरके कुलमें मृत्यु होजाय तो उस समय मंगलको न करै, कारण कि, वह कुलका नाशक होता है, शौनकने कहा है कि, वर वा वधूका पिता, मामा, चाचा, सगा भाई, चाची, चाचाका पुत्र, विवाहित भगिनीकी मृत्यु विवाहमें प्रतिकूल समझनी, और कोइ औरोंके मरनेको भी प्रतिकूल कहते हैं इससे इसमें विवाह न करना ॥ माण्डव्यने कहा है कि,वाग्दानके पीछे माता वा भाईकी मृत्यु होजाय तो अपने वंशके हितकी इच्छावाला विवाह न करै. संकट होय तो मेधातिथिने यह लिखा है कि वाग्दानके पीछे जहां दोनों कुलोंमें किसीकी मृत्यु होगई होय तो एक वर्षसे उपरान्त विवाह शुभदायी होता है, स्मृतिरत्नावलीमें कहा है कि, पिताके मरण उपरान्त एक वर्षतक अशौच होता है और माताकी मृत्युमें छः महीने, स्त्रीकी मृत्युमें तीन महीने और भाई और पुत्रकी मृत्युमें डेढ मासतक अशौच होता है और दूसरे सपिंड मनुष्योंका अशौच एक महीनेतक कहा है । तिससे पीछेमें शांतिको करके फिर लग्न (विवाह) को करै. ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि, प्रतिकूल (मरण) के होने पर भी एक महीनेसे उपरान्त विवाह करना और गणेश, विनायकशान्ति तथा गोदान करके फिर वाग्दान आदि करना चाहिये, इसी प्रकार मेधातिथिने लिखा है कि, कोई संकट प्राप्त हो तो याज्ञवल्क्य मुनिने गणेशकी शांति लिखी है तिसको करके फिर मंगल कार्यको करै, तथा प्रतिकूल होजाय तो तीन ऋतुतक मंगल न करै, यदि बहुतसे उपद्रव उठैं तो

मित्याहुर्वधूवरयोः ॥ प्रातिकूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत् ॥" ज्योतिःसारे-"दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये । प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते ॥" मेधातिथिः-"पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम् । प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मण्डनमुण्डने ॥ प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् । आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ॥ २ ॥" अथ रजोदोषे निर्णयः । माधवीये-"प्रारम्भात् प्राग्विवाहस्य माता यदि रजस्वला । निवृत्तिस्तस्य कर्तव्या सहस्रश्रुतिचोदनात् ॥" आरम्भात् नान्दीश्राद्धात् ।'नान्दीमुखं विवाहादौ' इत्यादिना तस्यैव प्रारम्भोक्तेः ॥ मेधातिथिः-"चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि । भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् ॥ वधूवरान्यतरयोर्जननी चेद्रजस्वला । तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरब्रवीत् ॥ २ ॥" वृद्धमनुः-"विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला ॥ तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः ॥" गर्गः-"यस्योद्वाहादिमाङ्गल्ये माता यदि रजस्वला । तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः ॥" नान्दीश्राद्धोत्तरं रजोदोषे तु कपर्दिकारिकासु-"सूतिकोदक्ययोः शुद्ध्यै गां दद्याद्धोमपूर्वकम् । हैमीं माङ्गलितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनार्चयेत् ॥ प्रत्यृचं पायसं हुत्वा

प्रतिकूलमें भी करै और सपिंडके प्रतिकूलमें एक महीना त्यागदे. ज्योतिःसारमें कहा है कि, दुर्भिक्ष राष्ट्रभंग माता पिताके प्राणसंशयमें प्रौढा कन्याके विवाहमें भी अनुकूलता नहीं प्राप्त होती. मेधातिथिने कहा है कि, तीन पुरुषपर्यन्त सगोत्रियोंको प्रतिकूल होता है, इसी प्रकार प्रवेश निष्क्रमण तथा मुण्डन मण्डन (मण्डप) में भी प्रतिकूलता समझनी चाहिये। चतुर्थ मनुष्य पर्यन्तके प्रतिकूलमें प्रेतकर्म (पिण्डदान आदि) के किये विना अभ्युदय कर्मको न करना चाहिये, इससे पांचवेंका प्रतिकूल दोष चौथेतक जानना पांचवेंमें निवृत्त होजाताहै ॥ अब रजोदर्शनके दोषका निर्णय कहते हैं । माधवीयमें लिखा है कि, यदि विवाहके प्रारम्भसे पहिले माता रजस्वला होजाय तो उसकी शांति सहस्र श्रुतिकी प्रेरणासे करनी चाहिये । यह विवाहके आरम्भमें नान्दीमुख श्राद्ध करना इत्यादि वाक्योंसे प्रारम्भशब्दसे नान्दीमुखका ग्रहण करते हैं. मेधातिथिने कहा है कि, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, विवाह, यज्ञकर्ममें जिसकी स्त्री रजस्वला होजाय तिसको शुभ नहीं जानना, वधू वा वरकी माता रजस्वला होजाय तो उसकी शुद्धिके होनेपर मंगलकार्य करै यह मनुने लिखा है. वृद्धमनु कहते हैं कि विवाह, यज्ञोपवीत, चूडाकर्ममें यदि माता रजस्वला होजाय तो कि, जिसके विवाह आदि मंगलकार्यको कल्याणकी इच्छावाले शुद्धि होनेपर करैं. गर्गने कहा है कि जिसके विवाह आदि मंगलकार्योंमें यदि माता रजवाली होजाय तो वह कार्य आयुको क्षीण करता है इससे उसको उस समय न करै ॥ नान्दीमुख श्राद्धके उपरान्त रजोदर्शनमें कपर्दिकारिकाओंके अनुसार यह लिखाहै कि, सूतिका तथा (रजस्वला) की शुद्धिके निमित्त

-भिषेकं समाचरेत् ॥ " इति । सूतकादिसंकटे तु–"कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा पयस्विनीं गां च दत्त्वा विवाहादि कुर्यात् " इति च प्रागुक्तम् ॥ अथैकक्रियानिर्णयः ॥ ज्योतिर्निबन्धे वृद्धमनुः--"एकमातृजयोरेकवासरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥ " एतेन एकस्य पुंसो विवाहद्वयमेकदिने निषिद्धं मातृभेदाभावात् ॥ नारदः--"पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मण्डनादपि मुण्डनम् ॥ " वराहः--"विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि । असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥ " मदनरत्ने वसिष्ठः--"न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात् । न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः । एकोदरभ्रातृविवाहकृत्यं स्वसुर्न पाणिग्रहणं विधेयम् । षण्मासमध्ये मुनयः समूचुर्न मण्डनं मुण्डनतोपि कार्यम् ॥ २ ॥ " एतदपवादस्तत्रैव--"ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम् । तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते ॥ " सारावल्याम्--"फाल्गुनचैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहो

होमपूर्वक गौ दान करै, तिससे प्राप्त हुए कर्मके निमित्त शुद्धि उनकी होतीहै दूसरोंके निमित्त नहीं, यदि अच्छा मुहूर्त न मिले और रजोदर्शन होजाय तो लक्ष्मीका पूजन करके विवाहरूप मंगल करै, मासेभर सोनेकी बनाई हुई लक्ष्मीका पूजन लक्ष्मीसूक्तसे विधिपूर्वक करै, तथा ऋचा १ के प्रति खीरकी आहुतियोंसे होम करके अभिषेक करै, यदि सूतकआदि संकट प्राप्त होयँ तो कूष्माण्डों (ऋचा विशेषों) से घीका होम कर दूध देतीहुई गौको दे, फिर विवाह आदि कर्म करै, यह पूर्व कह आयेहैं ॥ अब एकके कर्मका निर्णय लिखतेहैं ज्योतिर्निबंधमें वृद्धमनुकाकथन है कि, एक मातासे उत्पन्न हुए पुरुष स्त्रीका एक वर्षमें तुल्य कर्मको न करै, यदि माताका भेद न होय तो इससे एक मनुष्यके एक दिनमें दो विवाह न होने चाहिये. कारण कि, यहां माताका भेद नहीं । नारदने कहाहै कि, पुत्रके विवाहके उपरान्त तीन ऋतुतक पुत्रीका विवाह तथा व्रत तथा मण्डन (मण्डप) किये उपरान्त मुण्डनको न करै. वाराहने कहाहै कि, एकसे उत्पन्न हुई सन्ततिका छः महीनेके भीतर यदि विवाह होजाय तो उनमें एक कन्या तीन वर्षके भीतर वैधव्यको प्राप्त होतीहै, इसमें कुछ सन्देह नहीं. मदनरत्नमें वसिष्ठने कहा है कि, पुरुषके विवाह उपरान्त सगोत्री कन्याका विवाह तथा मण्डन करनेपर मुण्डनको तीन ऋतुतक न करै, यदि वर्षका भेद न होय तो सगे भाईके विवाहकर्ममें भगिनीका विवाह तथा मण्डन करनेपर मुण्डन छः महीनोंके भीतर न करे, यह मुनियोंका कथन है ॥ इसका अपवादभी वहांही यह लिखाहै कि, यदि तीन ऋतुके मध्यमें द्वितीय वर्ष लगजाय तो एक पेटसे पैदा हुएका भी विवाह उत्तम है. सारावलीमें कहा है कि, फाल्गुन चैत्रमासमें सहोदरका विवाह होजाय तो उसके पीछे वर्षके भेदसे विवाह करना चाहिये । तीन ऋतुओंका

पनायने। भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलंघनम् ॥" संहिताप्रदीपे-"ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्धम्॥ अप्राप्य कन्यां श्वशुरालयं च वधूः प्रवेश्या स्वगृहं च नादौ॥" मदनरत्ने वसिष्ठः-"द्विशोभनं त्वेकगृहेपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु॥ आवश्यकं शोभनमुत्सवो वा द्वारेथवाचार्यविभेदतो वा॥ एकोदरप्रसूतानां नाग्निकार्यत्रयं भवेत्। भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽब्रवीत्॥ २॥" ज्योतिर्निबन्धे कात्यायनः-"कुले ऋतुत्रयादर्वाङ्मुण्डनान्न तु मण्डनम्। प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम्॥ कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिन्वत्सरे लघु॥ लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत्॥ पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः॥ मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मंगलम्॥ चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मण्डनात्परम्। मौञ्जी चोभयतः कार्या यतो मौञ्जी न मुण्डनम्॥ अभिन्नवत्सरेपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत्। अभेदे तु विनाशः स्यान्न कुर्यादेकमण्डपे॥ संकटे तु कपर्दिकारिकासु वराहमिहिरश्च-"उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात्पुत्र्यन्तरस्योद्वहनं कदाचित्। यावच्चतुर्थं दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्वहनं विदध्यात्॥" कश्यपः-"मौञ्जीबन्धस्तथोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेपि वा। पुन्युद्वाहं न कुर्वीत

विलम्ब न जानना. संहिताप्रदीपमें कहाहै कि, पुत्रके विवाह होनेपर छःमासतक पुत्रीका विवाह नहीं करना, कन्याको पूर्व (पहिले) श्वशुरके घर भेजकर फिर अपने घर लावे, विना भेजे पूर्व अपने घरमें न लावे, मदनरत्नमें वसिष्ठने कहा है कि, एक घरमें दो, शोभन कार्य उत्तम नहीं होते किन्तु एकको करके फिर नौ दिन पीछे शोभन कार्य उत्तम है, यदि आवश्यक कोई श्रेष्ठ कार्य तथा उत्सव होय तो द्वारपर वा भिन्न २ आचार्योंसे करावे, अर्थात् दोनों कार्य एकसेही न करावे, एक उदरसे उत्पन्न हुये मनुष्योंके तीन अग्निकार्योंको एक साथ न करै, भिन्न उदरसे उत्पन्न हुओंको दोष नहीं यह शातातपने लिखा है॥ ज्योतिर्निबन्धमें कात्यायनका कथन है कि, एक कुलमें मण्डनसे उपरान्त मुंडन तथा प्रवेशसे उपरान्त निर्गम ये तीन ऋतुसे प्रथम इष्ट नहीं। तथा तीन मंगलोंको न करै, और कोई मुनि तो भिन्न वर्षमें लघुकार्यको करलेना कहतेहैं, लघु, वा गुरुकार्य हो, जिसका निमित्त प्राप्त हो उस पुत्रके विवाह और प्रवेशको कन्याके विवाहके निर्गम और चूडाकर्मको मुण्डन तथा व्रत और विवाहको मंगल लिखतेहैं। मुण्डनको मण्डन उपरान्त न करै, मौंजीबन्धनको दोनों (मण्डन मुण्डन) से पीछे करै किन्तु इन दोनोंमें वर्षके भेद नहीं लेना किन्तु दिनका भेद लेतेहैं. कारण कि, दिनका भेद न हो अथवा एक मण्डपमें करनेसे नाश होताहै॥ संकटमें तो कपर्दकारिकाओंमें वराहमिहिरने यह लिखाहै कि, पिता पुत्रीका विवाह करके दूसरे पुत्रका फिर कभी भी विवाह न करै, चौथे दिनतक प्रथम विवाहको पूर्ण करके दूसरे विवाहको करले, तो कुछ दोष नहीं। कश्यपने कहा है कि, मौंजीबन्धन, विवाह, पुत्रीका विवाह यह छः महीनेके भीतर न करै, और जो विभ-

विभक्तानां न दोषकृत् ॥ " ज्योतिर्निबन्धे–"विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात्। वैधव्यमाप्नोति तदाशु कन्या जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥ तथा–"विवाहमध्ये यदि चेत्क्षयाहस्तत्र स्वमुख्याः पितरो न यान्ति। वृत्ते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धं स्वधाभिर्नतु दूषयन्ति ॥ " 'स्वधाभिः' इति श्रुतेश्च ॥ मासिकविषये कालहेमाद्रौ शाठ्यायने–"प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा। अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुर्नान्दीमुखं द्विजः ॥ " वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाह तत्रैवोशनाः–"वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत्। स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति" ॥इति। मेधातिथिः–"प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ॥ " स्मृत्यन्तरे–"सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि। पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात् ॥ " स्मृतिसारावल्याम्–"भ्रातृयुग्मे स्वसृयुग्मे भ्रातृस्वसृयुगे तथा। एकस्मिन्मण्डपे चैव न कुर्यान्मण्डनद्वयम् ॥ " सोदरविषयमेतत् ॥ यमः– "एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन् वासरे पुनः। विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम् ॥" गार्ग्यः–"भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा। न कुर्यान्मङ्गलं किंचिदेकस्मिन्मण्डपेऽहनि ॥

कहीं उनको दोष नहीं लगता ॥ ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, विवाहसे लेकर चतुर्थी कर्मके मध्यमें श्राद्धका दिन वा अमावस्याका दिन प्राप्त हो जाय तो कन्याके शीघ्रही विधवापन प्राप्त होता है, यदि पति जीवे तो संतति नहीं चलती, तथा विवाहके बीचमें यदि क्षयाँ (श्राद्धविशेष) का दिन आ पडे तो उसमें स्वतन्त्र पितर नहीं आते इससे विवाहके बीतनेपर स्वधाओंसे श्राद्ध करै, स्वधाओंसे उस विवाहको दूषित न करना चाहिये। कारण कि श्रुतिमें कहा है कि, जो कि स्वधाओंसे मंगलकार्यको दूषित करते हैं इत्यादि ॥ मासिकश्राद्ध विषयमें हेमाद्रिमें शाठ्यायनिका यह कथन है कि, प्रेतश्राद्ध तथा सपिण्डीकी विधिको वह द्विज अपकर्ष (भिन्नकालमें) करके भी करै, जो नान्दीमुख करनेको उद्यत हुआ हो वृद्धिके बिना श्राद्धके अपकर्षमें वहांही उशनाने यह दोष कथन कियाहै कि, जो कि, वृद्धिश्राद्धसे रहित पितृश्राद्धोंको करता है वह श्राद्धकर्ता पितरों सहित नरकमें पडता है। मेधातिथिने कहा है कि प्रेतकर्मके किये विना आभ्युदयिक कर्म न करै यह चौथे गोत्रपर्यंत जानना पांचवेंमें तो उत्तम होता है. स्मृत्यंतरमें भी कहा है कि, सपिण्डीकरणसे प्रथम जो आपकर्षसे श्राद्ध किये गये हैं उनको फिर अपकर्ष करके करना कारण कि, वृद्धिश्राद्धके किये उपरान्त निषेध है ॥ स्मृतिसारावलीमें कहा है कि, दो भाई, दो बहन, तथा भाई बहन एक मंडपमें दो मण्डन न करै, यह वाक्य सहोदरोंके विषयमें हैं कारण कि, यमने कहा है कि, एक उदरसे उत्पन्न हुओंका विवाह तथा मुण्डनके पीछे मण्डन ये एक दिन न करने चाहिये गार्ग्यने कहा है कि, दो भाई, दो बहन तथा दो भाई बहनका एक मण्डपमें तथा एक दिनमें कोई मंगल कार्य

एकस्मिन्वासरे प्राप्ते कुर्याच्चमलजातयोः । क्षौरं चैव विवाहे च मौञ्जीबन्धनमेव च ॥ २ ॥ " ज्योतिर्विवरणे- "एकोदरयोरेकदिनोद्वहने भवेन्नाशः । नद्यन्तर एकदिने केप्याहुः संकटे शुभम् ॥ ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रयं स्यात् । नारीविवाहात्तदहेपि शस्तं नरस्य पाणिग्रहमाहुरार्याः ॥ २ ॥ " भिन्नमातृजयोर्निर्णयः । भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरे विवाहमाह मेधातिथिः- 'पृथङ्मातृजयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे । एकस्मिन्मण्डपे कार्यः पृथग्वेदिकयोस्तथा ॥ पुष्पपट्टिकयोः कार्यं दर्शनं न शिरस्थयोः । भगिनीभ्यामुभाभ्यां च यावत्सप्तपदी भवेत् ॥ २ ॥ " यमयोस्तु विशेषः । भट्टकारिकायाम्-"एकस्मिन् वत्सरे चैकवासरे मण्डपे तथा । कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥ " ज्योतिर्निबन्धे नारदः-"प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् । नैवैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥ नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम् । नैकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोरेकजन्ययोः ॥ न पुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचन ॥ ॥ २ ॥ " इति ॥ कन्यारजोदर्शने निर्णयः । कन्याया रजोदर्शने तु अपरार्के संवर्तः-"माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा

न करना और जो कि, एकवारही उत्पन्न हुए हों उनका क्षौर, विवाह, यज्ञोपवीत ये एक दिनमेंही करले ॥ ज्योतिर्विवरणमें कहा है कि, एक उदरसे उत्पन्न हुए दोका विवाह एक दिनमें होय तो नाश होताहै और कोई तो अन्यनदीके विषे तथा संकटमें उत्तम मानते हैं. पुरुषके विवाह करनेपर स्त्रीका विवाह तीन ऋतुतक अच्छा नहीं होता, स्त्रीके विवाहसे पुरुषका विवाह तो दिनके दिन भी उत्तम होता है यह आर्य कहते हैं ॥ भिन्न मातासे उत्पन्न हुओंका एक दिनमें भी विवाह होता है, यह मेधातिथि लिखते हैं कि, पृथक् २ माताओंसे उत्पन्न हुओंका विवाह एक दिन तथा एक मण्डप तथा पृथक् २ वेदिकाओंपर करै, और दो बहन जबतक सप्तपदी हो तबतक शिरपर रक्खी हुई फूल पट्टिका[1] (जाल) ओंको न देखैं, यमके जन्म (जो कि एक संग उत्पन्न हुए हों) को तो भट्टकारिकामें यह विशेष लिखा है कि, एक वर्ष, एक दिन तथा एकमंडपमें ही साथ उत्पन्न हुई बहन तथा भाइयोंका मंगल करै. ज्योतिर्निबन्धनमें नारदने कहा है कि, प्रतिविवाह (अदला बदलीसे) तथा एकके संग दो कन्याओंका तथा एकसे उत्पन्न हुए दो लडकोंका एकसे उत्पन्न हुई दो कन्याओंका विवाह न करै तथा इस प्रकार (बदला देकर) विवाह तथा एक वार दो मुण्डन तथा एकसे उत्पन्न हुए दो पुत्रोंको एकसे उत्पन्न हुई दो पुत्री तथा एकके निमित्त दो पुत्री कदाचित् भी न दे ॥ यदि कन्याका रजोदर्शन होय तो अपरार्कमें सम्वर्तने यह कहाहै कि, माता पिता तथा जेठाभाई

---

१ फूलका सेरा-और छोटा वस्त्र एक बिलस्तका ॥

कन्यां रजस्वलाम् ॥" हारीतः-"पितुर्गेहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥ " देवलात्रिकश्यपाः पूर्वार्धं तदेव ॥ "भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता । यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ अश्राद्धेयमपाङ्क्तेयं तं विद्याद्वृषलीपतिम् ॥" माधवीये बौधायनः- "त्रीणि वर्षाण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनम्' ॥ विष्णुः-"ऋतुत्रयमुपास्यैव कन्या कुर्यात्स्वयं वरम् ॥" अत्र वरस्य दोषाभावमाह यमः-"कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे । भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥ एवं चोपनतां पत्नीं नावमन्येत्कदाचन । न तु तां बन्धकीं विद्यान्मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥२॥" मनुः-"अलंकारं नाददीत पितृदत्तं स्वयंवरे । पितृदत्तं मातृदत्तं स्तेयी स्याद्यदि संहरेत् ॥ " वरं प्रत्याह-"पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् । स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥ "तत्र प्रायश्चित्तनिर्णयः । अथ प्रायश्चित्त-मुक्तमाश्वलायनेन-" कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मनः । शुद्धिं च कारयित्वा तामुद्वहेदानृशंस्यधीः ॥ पिता ऋतून् स्वकन्यायास्तु गणयेदादितः सुधीः । ज्ञात्वानाधि गृहे यत्नात् पालयेच्च रजोवतीम ॥ दद्यात्तदृतुसंख्या गाः शक्तः कन्या-

ये तीनों रजस्वला कन्याको देखकर नरकमें जाते हैं । हारीतने कहा है कि, जो क्वारीकन्या अपने रक्तको देखती है, वह वृषलीवत् होती है, और उसका पतिभी वृषलीपति कहाता है । देवल, अत्रि तथा कश्यपने कहा है कि, जो कांरी कन्या अपने रुधिरको देखती है उसके पिताको गर्भहत्या होती है, और वह वृषली होती है, जो ब्राह्मण अज्ञानी होकर उस कन्याको विवाहता है वह श्राद्धकर्मसे रहित वृषलीपति तथा पंक्ति बाह्य होता है ॥ माधवीय ग्रन्थमें बौधायनने लिखा है कि, रजस्वला कन्या तीन वर्षतक पिताकी आज्ञामें स्थित रहै. विष्णुने कहाहै कि, तीन ऋतुकी उपासना करके कन्या स्वयं पति वरण करै, इसमें पतिको दोषाभाव है, यम कहते हैं कि, कन्या जो बारह वर्षतक दाता (पिता) के घरमें रहती है, उसके पिता को गर्भहत्या होती है वह कन्या स्वयं पतिको वरले । वह पतिभी कभी उस कन्याका तिरस्कार न करै. वह कन्या बन्धकी (नीच व्यभिचारिणी) न जानती यह स्वायम्भूमनुने लिखा है । मनुने कहाहै कि, यदि कन्या स्वयंवरको वरण करै तो पिताके दिये हुए भूषण आदिको ग्रहण न करै कारण कि, पिता वा माताके दिये हुए धनको यदि ग्रहण करै तो वह चोरिणी होतीहै।वरके प्रतिभी इसप्रकारका वाक्य है कि,रजस्वला कन्याको विवाह करता हुआ वर उसके पिताको धन दे वह अपने स्वाम्यसे उस उसको उलंघदे ॥ इसमें प्रायश्चित्त आश्वलायनने लिखा है कि, रजस्वला कन्याको शुद्ध करके तथा अपनी प्रायश्चित्तसे शुद्धि करके उस कन्याके साथ विवाह करना चाहिये । पिता उस अपनी कन्याके ऋतुधर्मोंको प्रथमसे लेकर गिने तथा दान पर्यंत उस रजस्वला कन्याकी पोषणता करै, और विवाहके समय जितने उस कन्याके ऋतुधर्म

पिता यदि । दातव्यैकापि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ॥ दद्याद्वा ब्राह्मणेभ्योऽन्नमतिनिःस्वः सदक्षिणम् । तस्यातीतर्तुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् ॥ उपोष्य त्रिदिनं कन्या रात्रौ पीत्वा गवां पयः । अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूषणम् ॥ तामुद्वहन्वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद्द्विजः ॥ ६॥" इति ॥ मदनपारिजाते यज्ञपार्श्वः 'विवाहे वितते यज्ञे होमकाल उपस्थिते । कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥ स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि । युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ॥ २ ॥ " बौधायनसूत्रम्–" अथ यदि कन्योपसाद्यमाना वोह्यमाना वा रजस्वला स्यात्तामनुमन्त्रयेत् । पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विना वुभौ । पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमांसं च दधात्वियम्" इति ॥ अथ द्वादशरात्रमलंकृत्य प्राशयेत्पञ्चगव्यमथ शुद्धां कृत्वा विवहेत् ॥ विवाहभेदाः अत्र गान्धर्वाद्यष्टौ विवाहास्तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया मनुः–"षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् । विट्छूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् । चतुरः–आसुरगान्धर्वराक्षसपैशाचान् । तान्–राक्षसवर्ज्यान् । वैश्यशूद्रयोः स एव–'आसुरं वैश्यशूद्रयोः' ॥ हेमाद्रौ पैठीनसिः–'राक्षसो वैश्यस्य पैशाचः शूद्रस्य । प्रचेताः–'पैशाचोऽसंस्कृतप्रसुतानां प्रतिलोमजानांच ।' मनुः–

हुये हों उतनी गौओंका संकल्प करै यदि निर्धन होय तो एक गौ विधिपूर्वक दान करै, और यदि अत्यन्त निर्धन होय तो ब्राह्मणोंको दक्षिणा सहित अन्न दे फिर जिसका ऋतुधर्म व्यतीत होगया हो ऐसी कन्या वरको दे । कन्या रात्रिमें केवल गौका दुग्ध पान करके तीन दिनतक व्रत करती हुई रहै, रजोदर्शनसे रहित कन्याको रत्नोंके आभूषण दे उस कन्याको विवाहते हुए द्विजपतिको भी कूष्मांडी ऋचा विशेषसे होम करना चाहिये ॥ मदनपारिजातमें यज्ञपार्श्वने कहा है कि, विवाहमें यज्ञमें जब होम समय हो तब उस ऋतुमती कन्याको देखकर यज्ञ करनेवाला इस प्रकार करै कि उस कन्याको न्हवाय विधिपूर्वक पूजन करै फिर चौंटलियोंकी आहुति देकर विवाहका होम करै. बौधायनसूत्रमें कहा है कि, यदि कन्या विवाहके समयमें वा पतिके घर जानेके समयमें रजोवती होजाय तो उसके निमित्त यह मंत्र पढै कि, मित्र और वरुण दोनों पुरुष हैं, इंद्र सूर्यभी दोनों पुरुष हैं इससे यह स्त्री पुरुषको धारण करै फिर बारह राततक स्त्रीको अलंकृत कर पंचगव्य पिलावै फिर शुद्ध करके उसके संग विवाह करले ॥ यहां गांधर्व आदि आठों विवाह हैं उनकी व्यवस्था बडे २ दूसरे ग्रंथोंसे जाननी चाहिये. मनुने कहा है ब्राह्मणको क्रमसे छः विवाह उत्तम हैं और क्षत्रीको पिछले चार (आसुर गांधर्व राक्षस पैशाच) उत्तम कहे हैं और यही चारों राक्षसको त्यागकर वैश्य और शूद्रकोभी श्रेष्ठ हैं मनुने कहा है कि, वैश्य शूद्रको आसुरविवाह उत्तम है. हेमाद्रिमें पैठीनसिस्मृतिमें कहा है कि, वैश्यको राक्षस, शूद्रको पैशाच विवाह उत्तम है । प्रचेताने कहा है कि, जिनका संस्कार नहीं होता ऐसी प्रतिलोम जातिको पैशाचविवाह उत्तम है मनुने कहा है कि, क्षत्रियको

"राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः॥" क्षत्रियादेः संकटे पैशाचमाह माधवीये वत्सः—"सर्वोपायैरसाध्या स्यात्सुकन्या पुरुषस्य या । चौर्येणापि विवाहेन सा विवाह्या रहः स्थिता ॥ गान्धर्वादिविवाहेष्वप्युदकपूर्वकं दानमाह॥ तत्रैव यमः "नोदकेन न वा वाचा कन्यायाः पतिरुच्यते । पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे ॥" पराशरमाधवीये देवलोपि—" गान्धर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः । कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थेनाग्निसाक्षिकः॥ " त्रैवर्णोक्तेर्गान्धर्वादौ विप्रवर्जमधिकार उक्तः । तत्रैव परिशिष्टे—"गान्धर्वासुरपैशाचा विवाहा राक्षसश्च यः । पूर्वं परिश्रयस्तेषु पश्चाद्धोमो विधीयते ॥ अतो होमादावकृते भार्यात्वाभावाद्वरान्तराय देया। तथाच तत्रैव वसिष्ठबौधायनौ—"बलादपहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता । अन्यस्मै विधिवद्देया तथा कन्या तथैव सा"इति ॥ (अत्र मन्त्रसंस्काराभावेऽन्यस्मै दानस्य सर्वविवाहेषु साम्याद्बलादपहारे राक्षसपैशाचयोर्विशेषवचनं व्यर्थम् । तेन तयोर्यदि न संस्कृता संस्कृता वेत्यावृत्य कन्यानुमत्यभावेन्यस्मै देयेति व्याख्येयम्) ॥ मदनपारिजाते नारदः—"पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् । तेषां च निष्ठा

आसुर वैश्य और शूद्रको पैशाच विवाह निंदित है, और संकटमें क्षत्री आदिकोंको भी पैशाच विवाह माधवीयमें वात्सऋषिके वाक्योंसे लिखा है, जो सुंदर कन्या संपूर्ण उपायोंसे पुरुषको न प्राप्त होसके तो एकांतमें स्थित हुई उस कन्याको चोरीसे भी विवाह लेना गान्धर्व आदि विवाहोंमें भी संकल्पपूर्वक दान माधवीय आदि ग्रन्थोंमें लिखा है, जल वा वाणीसे दानसे कन्याका पति नहीं हो सकता किन्तु विवाहके संस्कारसे सप्तपदीपर ही पति होता है, ऐसा यमका कथन है ॥ पराशर माधवीयमें देवलने कहा है कि, गान्धर्व आदि विवाहोंमें भी तीनों वर्ण समर्थवान होंय तो विवाहकी विधिको अग्निकी साक्षीसे सम्पादन करैं, इस वाक्यमें तीन वर्णोंके कथनसे गान्धर्व आदि विवाहोंमें ब्राह्मणसे भिन्नकाही अधिकार लिखा है. वहांही परिशिष्टमें कहा है कि, गान्धर्व, आसुर, पैशाच और राक्षस जो विवाहमें कन्या प्रथम पतिका आश्रय ले पीछे हवन करैं, इससे होम आदिके बिना किये वह पतिके आश्रयमात्रसे भार्या नहीं हो सकती । इससे दूसरे वरको देदेनी चाहिये, सोई वहांही वसिष्ट और बौधायनके वाक्य हैं कि, बलसे हरी हुई कन्याका यदि मंत्रोंसे संस्कार न हुआ होय तो दूसरे वरको विधिपूर्वक देदेनी कारण कि, जैसे कन्या है तैसीही वह है, (यहांपर) मन्त्रोंसे संस्कारके अभावमें दूसरे वरको कन्याका दान सब विवाहमें तुल्य है । इससे बलसे हरण करनेमें और राक्षस पैशाचमें यह विशेष वाक्य प्राप्त हो जाता है इससे राक्षस और पैशाच विवाहमें संस्कार करी हुई वा न करी हुई कन्याकी सम्मतिके बिना औरको देदेनी यही अर्थ करना ॥ मदनपारिजातमें नारदने कहा है कि, विवाहके मन्त्रही नियमसे स्त्री बननेके लक्षण हैं

विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ " स्मृतिचन्द्रिकायामपरार्के चैवम् ॥ आशौचेतु याज्ञवल्क्यः—" दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे ॥ आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥ " केषामित्यपेक्षिते ब्रह्मपुराणे उक्तं—"दातुः प्रतिग्रहीतुश्च कन्यादाने च नो भवेत् । विवाहविष्णोः कन्याया लाजहोमादिकर्मणि " इति ॥ "व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे।आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥" इति विष्णुवचनाच्च ॥ प्रारम्भस्तेनैवोक्तः—"प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया" इति ॥ वरणमिति मधुपर्कपरम् ॥ "गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः । पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ मधुपर्कात्पूर्वं तु भवत्येवाशौचमिति शुद्धिविवेकः रामाण्डारभाष्येप्येवम् ॥ नान्दीमुखदिनावधिः । नान्दीमुखावधिश्च स्मृत्यन्तरे—"एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः। त्रिषट्चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते॥" आरम्भाभावेपि लग्नान्तराभावे गर्ग्यविष्णुः—'न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपि' इति ॥ अन्तरासूतके निर्णयः। अत्र प्रायश्चित्तमाह मदनपारिजाते विष्णुः—'अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् । गां दद्यात्पञ्चगव्याशी ततः शुध्यति

और उनकी पूर्ति विद्वानोंको विवाहके सातवें पदमें जाननी चाहिये । स्मृतिचन्द्रिका और अपरार्कमें भी इसीप्रकार लिखा है, विवाहकालमें अशौच होजाय तो याज्ञवाल्क्यने यह कहा है कि, दान, विवाह, यज्ञ, युद्ध, देशका उपद्रव और महाकठिन आपत्तिमें उसी समय शुद्धि लिखी है, यह अपेक्षा होय तो ब्रह्मपुराणमें यह कहा है कि कन्याके दानमें दाताकी और (वर) की और विवाहके लाजाहोम आदिकर्ममें कन्याकी उसी कालमें शुद्धि होती है, और यह विष्णुने कहा है कि, व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम पूजन, जपके प्रारम्भ करनेपर सूतक नहीं होता और आरम्भसे प्रथम सूतक होता है प्रारम्भभी विष्णुने यह लिखा है कि, यज्ञमें वरण व्रत और सत्रका संकल्प विवाह आदिमें नान्दीमुख श्राद्धमें पाक होजाना इनको प्रारंभ कहते हैं, यहां वरणसे मधुपर्क लेना चाहिये । ब्रह्मपुराणमें यह लिखा है कि जिस ऋत्विजने यजमानसे मधुपर्क ग्रहण किया हो, और पीछेसे अशौच होजाय तो वह अशौच नहीं प्राप्त होता और मधुपर्कसे प्रथम तो अशौच लगता है, यह शुद्धविवेकमें कहा है, रामाण्डार भाष्यमें भी इसी प्रकार लिखा है ॥ नांदीमुख श्राद्धकी अवधि दूसरी स्मृतिमें यह कही है कि, यज्ञमें २१ दिन विवाहमें १० दिन मुण्डनमें तीन ३ दिन यज्ञोपवीतमें छः ६ दिन प्रथम नान्दीमुख करना कहा है प्रारम्भके अभावमें विष्णुने जो यह कहा है कि, पहिले प्रारम्भ किएहुए देवप्रतिष्ठा और विवाहमें अशौच नहीं लगता ॥ इसमें मदनपारिजात ग्रन्थमें विष्णुने यह प्रायश्चित्त कहा है कि, प्रारम्भं किये कर्मकी शुद्धिके निमित्त कूष्माण्ड (काशीफल) और घृतसे हवन करै

सूतकी ॥" संग्रहेपि-"संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते । कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात् पयस्विनीम् ॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् ॥ यदैव सूतक-प्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया ॥ २ ॥" अन्नादिषु विशेषः षट्त्रिंशन्मते-"विवाहोत्सव-यज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके ॥ परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥" परैरस-गोत्रैः ॥ " ॥ भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरामृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे तु शुचयः स्मृताः॥ 'एतदाशौचात्पूर्वमपृथक्कृतान्नविषयम् ॥ तत्र शेषमन्नं त्याज्यमि-त्यर्थः । पृथक् कृतेषु तु बृहस्पतिराह-"विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके।पूर्वसं-कल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः ॥" इति ॥ धर्मार्थविवाहः । धर्मार्थं विवा-हकरणे फलमुक्तं महाभारते-"ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यादेकं चोद्वाहयेद्द्विजम् । तेना-प्याप्नोति तत्स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम् ॥" अपरार्के दक्षः-" मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः । यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ "मदन-रत्ने भविष्ये-"विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारणम् । यः प्रयच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥" कन्यागृहे भोजननिषेधः । कन्यागृहे भोजननिषेधोपि तत्रैव

और गोदान करै,और पञ्चगव्यको पान करै, फिर सूतकवाला पवित्र होता है, संग्रहमें भी कहा है कि, यदि संकटकी प्राप्तिमें सूतक हो जाय तो कूष्माण्डी ऋचाओंसे घृतका हवन करके दूध देती हुई गौका दान करै, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, प्रतिष्ठा आदि करनेके समय जो यदि एक सूतक होजाय तो नान्दीमुख श्राद्ध करै, अन्न आदिके स्पर्शमें षट्त्रिंशत्के मतसे यह विशेष लिखा है कि, विवाह उत्सव और यज्ञके मध्यमें यदि मरण और सूतक होजाय तो सूतकवालोंसे अन्य पुरुष, अन्नको दे तो ब्राह्मणोंके भोजन करनेमें दोष नहीं है यदि ब्राह्मणोंके भोजन करनेके समयही मरण और सूतककी प्राप्ति हो जाय तो दूसरेके घरके जलसे भोजनके उपरान्त आचमन करनेसे ब्राह्मणकी शुद्धि होती है, यह भी तब है जब अशौचसे प्रथम अन्न पृथक् न किया हो, उस समय वहां शेष अन्न त्यागने योग्य है, और पृथक् करनेमें तो बृहस्पतिने यह कहा है कि, विवाह उत्सव यज्ञके मध्यमें यदि मरणसूतक हो जाय तो प्रथम संकल्प किये अन्नमें दोष नहीं ॥ धर्मार्थ विवाह करनेमें तो महाभारतमें यह फल लिखा है कि, अपने धनकी शक्ति जानकर जो एकभी ब्राह्मणको विवाह करदे तो शिवजीका भक्त मनुष्य वैकुण्ठको जाता है, अपरार्कमें दक्षने कहा है कि, माता पितासे हीन बालकका जो संस्कार और विवाह करता है उसका पुण्य प्रमाण नहीं कहा जा सकता, मदनरत्नमें भविष्यपुराणका कथन है कि, विवाह आदि कर्म समयमें उसके सिद्ध होनेके निमित्त जो धर्मिष्ठ धन आदि देता है उसको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ कन्याके घरमें भोजन करनेका निषेधभी वहांही कहा है कि, जिस कन्याके संतान न हो उस कन्याके

"अप्रजायां तु कन्यायां न भुञ्जीत कदाचन । दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशोचति ॥" अपरार्के आदित्यपुराणे-"विष्णुं जामातरं मन्ये तस्य कोपं न कारयेत् । अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात्तस्य वै गृहे ॥ ब्रह्मदेयां न वै कन्यां दत्त्वाश्नीयात्कदाचन । अथ भुञ्जीत मोहाच्चेत्पूयाशे नरके वसेत् ॥" तत्रैव कश्यपः-"अहतं यन्त्रानिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयंभुवा । शस्तं तन्मांगलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा॥" यन्त्रनिर्मुक्तं नूतनम्। विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेपि न दोष इत्याह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे गालवः-"विवाहकाले यात्रायां पथि चौरसमाकुले । असहायो भवेद्विप्रस्तदा यं द्विजन्मभिः ॥ एकयानसमारोहमेकपात्रे च भोजनम् । विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक् ॥ अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३ ॥" मिताक्षरायामप्येवम् ॥ रत्नमालायां-"मूलमैत्रमृगरोहिणीकरैः पौष्णमारुतमघोत्तरान्वितैः । भौमसौररविवारवर्जिते पाणिपीडनविधिर्विधीयते ॥ अत्रानिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं ज्योतिषे-"विपत्तारे गुडं दद्यान्निर्धने तिलकाञ्चनम् । प्रत्यरे लवणं दद्याच्छागं दद्यात्रिजन्मसु ॥ चन्द्रे च शंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तन्दुलांश्च । धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं प्रदे-

---

घर भोजन कभी न करै, दौहित्रके मुखको देखकर तो किस निमित्त शोच करै, अपरार्कमें आदित्यपुराणका कथन है कि, जामाता (जमाई) को मैं विष्णु मानता हूं उसको कभी क्रोध न करावे, और जिस कन्याके संतान न हो उस कन्याके घर भोजन न करै, वेदके मंत्रोंसे कन्याका दान करके उसके घर भोजन न करै, जो मोहसे भोजन करता है उसको पूय नाम नरकमें जाना होता है वहांही कश्यपने कहा है कि, विना फटा नवीन वस्त्र ब्रह्माने मंगलके कार्योंमें कार्यके समयतक पवित्र. लिखा है, सदैव नहीं, विवाहके मध्यमें स्त्रीके संग भोजन करनेमें दोष नहीं, यह हेमाद्रिके प्रायश्चित्त खंडमें गालवने लिखा है कि, विवाहके समय, यात्रामें, मार्गमें, और चौरोंकी व्याकुलतामें ब्राह्मण असहाय (अकेला) होय तो द्विजातिको इस कृत्यमें दोष नहीं यह करै, एक यान (सवारी) में स्थिति एक पात्रमें भोजन करनेमें विवाह मार्ग और यात्रामें ब्राह्मण दोषभागी नहीं होता है, अन्यथा करै तो दोष लगता है और चान्द्रायण करनेसे पवित्र होता है ॥ मिताक्षरामें भी इसी प्रकार लिखा है रत्नमालामें कहा है कि मूल, अनुराधा, मृगशिर, रोहिणी, हस्त, रेवती, स्वाती, मघा, उत्तरा इन नक्षत्रोंमें, मंगल शनैश्चर सूर्य इनसे भिन्नवारोंमें विवाहका विधान किया है, अनिष्ट नक्षत्र आदिमें दान ज्योतिषमें लिखा है कि, विपत्तारा होय तो गुड, निर्धन होय तो तिल और सोना, प्रत्यरि होय तो लवण, तिथि विरुद्ध होय तो चावल, करण विरुद्ध होय तो धान्य (गेहू आदि); वार योग विरुद्ध होय तो सुवर्ण देना चाहिये ॥ विवाहमें मण्डप

यम् ॥ २ ॥" विवाहमंडपनिर्णयः । विवाहमण्डपमाह वसिष्ठः—"षोडशारत्निकं कुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभितम् । मण्डपं तोरणैर्युक्तं तत्र वेदिं प्रकल्पयेत् ॥ अष्टहस्तं तु रचयेन्मण्डपं वा द्विषट्करम् ॥" दैवज्ञमनोहरः—"चित्रा विशाखा शततारकाश्विनी ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् । हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम् ॥" हेमाद्रौ व्यासः—"कण्डनदलनयवारकमण्डपमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलम् । तत्संबन्धिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् ॥." यवारकं 'चिकसा' इति प्रसिद्धम् ॥ "वैवाहिके तु दिवसे शुभे वाथ तिथौ शुभे ॥ चातुर्थिकं प्रकुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ॥" वेदिमाह नारदः—"हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः । स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णां वामभागे तु सद्मनि ॥ समां तथा चतुर्दिक्षु सोपानैरतिशोभिताम् । प्रागुदक्प्रवणारम्भां स्तम्भहंसशुकादिभिः ॥ एवंविधामारुरुक्षेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥ २ ॥" इति ॥ सप्तर्षिमते—"मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः । कार्यः षोडशहस्तो वा द्व्यूनहस्तो दशावधि ॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता ॥" हस्तो वध्वाः । सोपानं पश्चिमतः उपरिभागे उक्तपरिमाणाद्भिन्नम् ॥ अथ मृदाहरणम् । ज्योतिर्निबन्धे नारदः—"कर्तव्यमङ्ग-

---

वसिष्ठने यह लिखा है १६ सोलह हाथका मण्डप रचै चार द्वार और वन्दनवारसे शोभित करै उसमें वेदी निर्माण करै, अथवा ८ वा १२ हाथका मण्डप रचै. दैवज्ञमनोहरने कहा है कि, चित्रा, विशाखा, शतभिषा, अश्विनी, ज्येष्ठा, भरणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा नक्षत्रोंको त्यागकर शेष नक्षत्रोंमें तैल, वेदी, दान, कण्डन, मंडप निर्माण करना उत्तम है. हेमाद्रिमें व्यासने कहा है छडना दलना (जौ काण्डवटना) मण्डप मृत्तिकाकी वेदी गृहके चित्राम और विवाह सम्बन्धी अन्यत्र जाना वा आना ये सब विवाहके नक्षत्रमें करै, विवाहके योग्य दिनमें शुभतिथि और शुभ मुहूर्तमें शास्त्रोंके अनुसार चतुर्थीकर्म करै ॥ नारदमुनिने वेदी इस प्रकार लिखीहै कि, एक हाथ ऊंची और चार हाथ लम्बी व चौडी चारों ओरसे चौकोर सुन्दर चार स्तंभोंसे युक्त गृहके वामभागमें वेदी निर्माण करै जो ऊपरसे तुल्य हो जिसकी चारों दिशाओंमें सीढी हों और जो पूर्व वा उत्तरकी ओरको ढलती हों, जिसमें केलेके स्तम्भ हों, चित्रामके हंस और शुक आदि चर्चित किए हों अग्निस्थापन की हुई उस वेदीपर कन्या और वर बैठैं. सप्तर्षिके मतमें यह कहाहै कि, सम्पूर्ण मंगल कर्मोंमें घरके प्रमाण (अनुसार) मंडप निर्माण करै, १६ सोलह हाथका वा दो २ हाथ कम दश हाथ पर्यंत मण्डपको निर्माण करना चाहिये, जिसके मध्यमें चार स्तम्भोंसहित वेदी निर्माण करै, और प्रमाणमें हाथ लडकीका ले, पश्चिमकी ओर सीढी बनावै, वह ऊपरके परिमाणसे भिन्न हैं ॥ अब मृत्तिकानयन कहतेहैं । ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहाहै कि, सम्पूर्ण मंगल कार्योंमें प्रथ

लेष्वादौ मंगलायाङ्कुरार्पणम् । नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेऽपि वा ॥ तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये । सम्यग्गृहाण्यलंकृत्य वितानध्वजतोरणैः ॥ सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् । तत्र मृत्तिकतां श्लक्ष्णां गृहीत्वा पुनरागतः ॥ मृन्मयेष्वथवा वैणवेषु पात्रेषु योजयेत् । अनेकबीजसंयुक्तां तोयपुष्पोपशोभिताम् ॥" शौनकः—"आधानं गर्भसंस्कारं जातकर्म च नाम च ॥ हित्वान्यत्र विधातव्यं मङ्गलेंकुरवापनम् ॥" बृहस्पतिः—"आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम् ॥" तत्रैव वाग्दानं हरिद्रावन्दनं च कार्यम् । ज्योतिःप्रकाशे—"चतुर्थो मण्डपः श्रेष्ठः सप्तमः पञ्चमस्तथा । नवमैकादशौ श्रेष्ठौ नेष्टौ षष्ठतृतीयकौ ॥ विवाहभे स्वोदये वा कन्यावरणमाचरेत् ॥" वरस्यापि वरणनिर्णयः । वरस्यापि वरणमाह चण्डेश्वरः—"उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि विविधानि च । देयं वराय वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वा ॥" इति ॥ वाग्दानोत्तरं वरमरणे । वाग्दानोत्तरं वरमरणेऽपरार्कस्मृतिचन्द्रिकायां वसिष्ठः—"अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेतोर्ध्वं वरो यदि । न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥" यत्त नारदः—"उद्वाहितापि सा कन्या न चेत्संप्राप्तमैथुना । पुनः संस्कारमर्हेत यथा कन्या तथैव

मंगलके निमित्त जौको बोवै, नौवें सातवें पांचवें तीसरे दिन बीजके नक्षत्र और अच्छे दिन और श्रेष्ठ लग्नके उदयमें चन्दोवा, ध्वजा, वन्दनवारसे घरको अलंकृत करके बाजे और नृत्यसहित पूर्व वा उत्तरदिशामें जाकर रेतकी चिकनी मृत्तिकाको लेकर फिर घरपर लौट आवे मिट्टी वा बांसके पात्रमें उसे स्थित करै अनेक बीज जल और फूल उसमें डाले ॥ शौनकने कहा है कि, गर्भाधान, पुंसवन आदि गर्भके संस्कार जातकर्म नामकर्मको त्यागकर मंगलसे संपूर्ण कर्मोंमें अकुंर बोवे, बृहस्पतिने कहाहै कि, आवश्यक कार्योंमें उसी काल अंकुरोंको बोवे. और इस पूर्वोक्त मुहूर्तमेंही सगाई और हल्दी लेपन करै, ज्योतिःप्रकाशमें कहाहै कि, चौथ सातवां पांचवां नववां ग्यारहवां मंडप[1] श्रेष्ट है, छठा तीसरा उत्तम नहीं विवाहके नक्षत्रमें वा उसके नक्षत्र उदयमें कन्याका वरण करे ॥ वरकाभी वरण चण्डेश्वरने यह लिखाहै कि, यज्ञोपवीत फल फूल अनेक प्रकारोंके वस्त्र करके वरण (सगाई) में कन्याका भ्राता वा ब्राह्मण वरको दे ॥ वाग्दानके उपरान्त वर मरजाय तो अपरार्कस्मृतिचंद्रिकामें वसिष्टने यह कहा है कि, जल वा वाणीसे वाग्दान करनेपर वर मरजाय तो वह कन्या मन्त्रोंसे नहीं विवाहीगई, इससे यह पिताकी कुमारी है, जो नारदने कहा है कि, विवाही गई कन्याके संग मैथुन (पतिका संग) न हुआ होय तो वह फिर संस्कारके योग्य है, कारण कि, जैसी वह कन्या वैसेही वह

---

१ आठ हाथसे लेकर वीस हाथ तक सात, पचीस हाथ, पचास हाथ, सौ हाथ, सहस्र हाथके ऐसे ग्यारह मण्डप होतेहैं, चौथा चौदह हाथका, पहले दोनों, और आठवां न विहित हैं न निषिद्ध हैं॥

सा ॥" इति ॥ यच्च कात्यायनः—"वरो यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव च । विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोपि वा ॥ ऊढापि देया सान्यस्मै सहावरणभूषणा ॥" इति ॥ इदं कलौ निषिद्धम् । 'देवरेण सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते' इत्यादिपुराणे कलौ निषेधात् दत्ताशब्द ऊढापरः 'ऊढायाः पुनरुद्वाहम्' इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ अत एव सगोत्रसपिंडादिविवाहेपि 'भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव' इत्युक्तम् ॥ देशान्तरगमने । देशान्तरगमने तु कात्यायनः—"वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा । ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेद्वरम् ॥" अपरार्के नारदोपि—"प्रतिगृह्य तु यः कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत् । त्रीनृतून् समतिक्रम्य कन्याऽन्यं वरयेद्वरम् ॥" शुल्कदाने तु मनुवसिष्ठौ—"कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते ॥" चन्द्रिकायां कात्यायनः—"प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा । धार्या सा वर्षमेकं तु देयान्यस्मै विधानतः ॥ अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै । पूर्वागतश्च सर्वेषां लभेताद्यवरस्तु ताम् ॥ पश्चाद्वरेण यद्दत्तं तस्याः प्रतिलभेत सः ।

है, और जो कात्यायनने यह कहा है कि, यदि वर भिन्न जातिका हो पतित हो नपुंसक हो कुकर्मी वा दीर्घरोगी हो अपने गोत्रका हो शूद्र होय तो विवाही हुई कन्याभी वस्त्र और अन्नसहित अन्यको देदेनी चाहिये, परन्तु यह बात कलियुगमें वर्जित है, क्योंकि आदित्यपुराणमें यह निषेध है कि, देवरसे सुतकी उत्पत्ति और दी हुई कन्याका दान कलियुगमें निषिद्ध है यहां दत्ताशब्दसे विवाही कन्याका ग्रहण है कारण कि, हेमाद्रिमें विवाही हुई कन्याके पुनर्विवाहका निषेध किया है इसीसे अपने गोत्रकी वा सपिंडकी कन्याके संग विवाह होजायतो भोगसे उसे त्यागकर माताके तुल्य उसकी पालना करै, यह लिखा है और कहींभी पुनर्विवाह नहीं लिखा॥ देशान्तर गमनमें कात्यायनने कहा है कि, जो वर कन्याको वरकर पीछे देशान्तरमें चलाजाय वा नष्ट होजाय तो तीन ऋतुओं (छः मास) ओंके बीतनेपर कन्या और वरको वरले, अपरार्कमें नारदनेभी कहाहै कि, जो वर कन्याका प्रतिग्रह लेकर देशान्तरमें चला जाय तो तीन ऋतुओंके अनन्तर कन्या और वरको वरले (यह वाग्दानमें जानना)॥ शुल्क (मोल) के दानमें मनु और वसिष्ठने यह लिखा है कि, जिस कन्याका शुल्क देदियाहो वहां यदि शुल्क देनेवाला मृतक होजाय और यदि कन्या स्वीकार करै तो वह कन्या उसके भाईको देदेनी चाहिये, चन्द्रिकामें कात्यायनने कहाहै कि, जो वर कन्याको शुल्क वा स्त्री धन देकर चलाजाय तो वह कन्या एकवर्षतक रखनी, फिर विधिसे दूसरेको देदेनी, जो कन्या अनेकोंको वाणीसे दीहो, और विवाह न किया होय तो जो सबमें सबसे प्रथम आवे और जो सबसे छोटा हो वह उसीको प्राप्त होती है, और पिछले वरने जो शुल्क दियाहो उस

अथागच्छेन्नवोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत् ॥ ३ ॥ " याज्ञवल्क्यः—"सकृत् प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक्। दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ॥ "पूर्वस्य दोषसत्त्वे इदमिति विज्ञानेश्वरः ॥ सम्बन्धतत्त्वे वसिष्ठः—"कुलशीलविहीनस्य पश्चाद्धि पतितस्य च। अपस्मारिविधर्मस्य रोगिणां वेषधारिणाम् ॥ दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च ॥" मनुः-"षण्ढान्धबधिरादीनां विवाहोऽस्ति यथोचितम्। विवाहासंभवे तेषां कनिष्ठो विवहेत्तदा ॥ पितृव्यपुत्रे सापत्ने परदारसुतेषु च। विवाहाधानयज्ञादौ परिवेदो न दूषणम् ॥ २ ॥ " अन्यद्वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते इति दिक् ॥ अत्र नान्दीश्राद्धे विशेष तदधिकारविशेषं चाग्रे वक्ष्यामः। इदं चाद्यविवाहे पिता कुर्याद्द्वितीयादौ वर एव। "नान्दीश्राद्धं पिता कुर्या-

---

शुल्कको वह कन्या दे दे, और विवाहके होनेपर पीछेभी पहिला वर अपने दिये शुल्कको ग्रहण करले ॥ "मनुने कहाहै कि, यह हमने पूर्वजन्मोंमें भी नहीं सुना कि, शुल्कके नामसे मोल लेकर और छिनकर कन्याको बेचना, औरको दिखाकर जो दूसरी कन्या वरको दीजाती है उन दोनों कन्याओंसे एक शुल्कसे वर विवाहले यह मनुने लिखा है कि, बुद्धिमान्को चाहिये किसीको कन्या देकर फिर औरको न दे जो देता है उसको पुरुषके निमित्त झूँठ बोलनेका पाप लगता है, और यह भी लिखा है कि, पशुके निमित्त झूँठ बोलनेमें पांच और मनुष्यके निमित्त असत्य बोलनेमें सहस्र हत्याको दोष होता है, यह न और आचार्योंने किया न साधुजन करते हैं कि, औरको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा करके औरको दे और राजा और पंडितका वाक्य और कन्याका दान ये तीनों एकवारही होते हैं भारतमें भी इसी प्रकार लिखा है ॥" याज्ञवल्क्यने कहा है कि, एकवारही कन्यादान होताहै उसको जो हटावे वह चोरके दण्डयोग्य होता है यदि प्रथम वरसे दूसरा वर उत्तम मिलजाय तो दीहुई कन्याको भी हरले इसमें विज्ञानेश्वर कहते हैं कि, प्रथम वरमें कोई दोष हो तब यह है. सम्बंधतत्त्वग्रंथमें वसिष्ठने कहा है कि, कुल और शीलसे हीनको और सगाइके उपरांत पतितको मिरगवाले और विधर्मीको और रोगीको और वेषधारी (योगी आदि) योंको और सगोत्रीको वाणीसे दीहुई कन्याको हरलेना चाहिये. मनुने कहा है कि, नपुंसक, अंधे, बहिरे आदिका यह उचित विवाह है कि, उनके विवाह असंभवमें उनके छोटे भ्राताको कन्या विवाहदे, चाचाका पुत्र हो, वा सौतका पुत्र हो, वा दूसरी स्त्रीका पुत्र होय तो भी विवाह अग्न्याधान, यज्ञ आदिमें परिवेदन (बडे भाईके विवाह होनेके पूर्व छोटेसे विवाह करना) करनेका दोष नहीं लगता, और जो कुछ यहां कहना है उसको विस्तारके भयसे नहीं कहते ॥ यह नान्दीमुख श्राद्धका विशेष और उसके अधिकारियोंकी विशेषता आगे लिखेंगे, यह नान्दीमुख श्राद्ध पहिले विवाहमें पिता करे, और दूसरे आदि विवाहोंमें वर स्वयं करे, कारण कि, यह स्मृतिमें

द्वाये पाणिग्रहे पुनः । अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम्' इति स्मृतेः ॥ त्रिकाण्डमण्डनोपि–"पित्रोस्तु जीवतोः कुर्यात्पुनः पाणिग्रहं यदा । पितुर्नान्दीमुखं श्राद्धं नोक्तं तस्य मनीषिभिः ॥" रेणुकाकारिकायाम्–"उक्तकाले विवाहाङ्गं कुर्यान्नान्दीमुखं पिता । देशान्तरे विवाहश्चेत्तत्र गत्वा भवेदिदम् ॥" लग्नघटी स्थापनम् । लग्नघटीस्थापनमाह नारदः–"षडंगुलमितोत्सेधं द्वादशांगुलमायतम् । कुर्यात्पातालवत्ताम्रपात्रं तद्दशभिः पलैः ॥ ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे मृत्पात्रे वाथवा शुभे । मण्डलार्धोदयं वीक्ष्य रवेस्तत्र विनिक्षिपेत् ॥ २ ॥" तत्र मन्त्रः–"मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । भव भावाय दंपत्योः कालसाधनकारणम् ॥" इति ॥ मधुपर्कः । वरस्य मधुपर्कमाह याज्ञवल्क्यः–"प्रतिसंवत्सरं त्वर्च्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः । प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः ॥" अत्र विशेषो गृह्यपरिशिष्टे–"वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखागृह्यचोदितः । मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेपि दातरि ॥" अत्र वरदातृशब्दौ ऋत्विगाद्युपलक्षणम् । तदाहुः–'अर्च्यशाखया मधुपर्कः' इति । 'अर्च्यस्य यच्छाखीयं कर्म तच्छाखया मधुपर्कः' इति याज्ञिकाः । जयन्तस्तु 'वरणवत्सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्कः' इत्याह । तत्त

है कि, प्रथम विवाहमें पिता नान्दीमुख श्राद्ध करै, और उससे आगेके विवाहोंमें वर स्वयं करै, त्रिकाण्डमण्डनमेंभी कहा है कि, पिता माताके जीते हुए फिर विवाह होय तो उसके पिताको नान्दीमुख श्राद्ध करना विद्वानोंने नहीं लिखा. रेणुकाकारिकामें कहा है कि, शास्त्रमें कहे समयमें विवाहका अंग नान्दीमुख श्राद्ध पिताको स्वयं करना चाहिये विदेशमें विवाह होय तो वहां जाकरही नान्दीमुख श्राद्ध करे ॥ नारदमुनिने लग्नघटीका स्थापन ऐसा लिखा है कि, छः अंगुल ऊंचा और बारह अंगुल चौंडा दशपल तांबेका पात्र पातालयंत्रके समान निर्माण करै, तांबेके पात्रको वा मृत्तिकाके पात्रको जलसे पूर्ण करदे जब सूर्यका मंडल अर्ध उदय हो तब उस पात्रको जलमें डालकर इस मन्त्रको पाठ करै कि तू यन्त्रोंमें मुख्य है ब्रह्माने तुझको प्रथम रचा है और वर कन्याके शुभाशुभके निमित्त लग्नसमयके साधनका तुमही कारण हो ॥ याज्ञवल्क्यने वरको मधुपर्क लिखा है कि, अपने घरपर आये हुए ये छः मनुष्य प्रतिवर्ष मधुपर्कसे पूजन करनेयोग्य हैं स्नातक (ब्रह्मचारी), आचार्य, राजा, मित्र, वर और यज्ञके ऋत्विज, इसमें विशेष गृह्यपरिशिष्टमें यह कहा है कि, वरकी जो शाखा हो उसीकी शाखासे कर्म और मधुपर्क करने चाहिये यह वर दाता शब्द ऋत्विगादिका उपलक्षण है सोई कहा है कि, अर्च्यकी जो शाखा हो उसीका मधुपर्क होता है यह याज्ञिक कहते हैं जयंत तो यह कहते हैं कि, वरणके तुल्य यजमानकी शाखासेही मधुपर्क होता है परन्तु वृद्ध

नाद्रियन्ते वृद्धाः । अत्र "पञ्चाशता भवेद्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः" इत्यादिगृह्यपरिशिष्टादेर्विष्टरादिलक्षणं मधुपर्कादिविधिश्च स्वगृह्यादेर्ज्ञेयः ॥ कन्यादाने प्रपितामहपूर्वकमित्युक्तं स्मृत्यर्थसारे-"नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ॥" नान्दीमुखे इति बह्वृचातिरिक्तविषयम् ॥ गृह्यपरिशिष्टे पित्राद्यानुलोम्याम्नानात् ॥ व्यासः-"भुक्त्वा समुद्वहेत्कन्यां सावित्रीग्रहणं तथा ॥ उपोषितः सुतां दद्यादर्चिताय द्विजाय तु ॥" भुक्त्वेति मधुपर्के वैधभोजनपरम् ॥ गृह्यपरिशिष्टे-"कन्यां वरयमाणानामेष धर्मो विधीयते । प्रत्यङ्मुखा वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्मुखाः ॥" मदनरत्ने ऋष्यशृङ्गः-"वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वान्कन्यायाश्चैवमेव हि ॥ तिष्ठन्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् । मधुपर्कार्चितायैनां तस्मै दद्यात्सदक्षिणाम् ॥ उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत् । गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम् ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय । भूमिं गां चैव दासीं च वासांसि च स्वशक्तितः ॥ महिषीं वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि ।ततः स्वगृह्यविधिना होमाद्यं कर्म कारयेत् ॥ यथाचारं विधेयानि माङ्गल्यकौतुकानि

इसका आदर नहीं करते, यहां पचास कुशाओंका ब्रह्मा उससे आधा विष्टर लिखा है इत्यादि विष्टर आदिका लक्षण और मधुपर्क आदिकी विधि अपने २ गृह्यसूत्रमें जाननी चाहिये ॥ स्मृत्यर्थसारमें यह लिखा है कि, कन्याके दानमें प्रपितामहका नाम प्रथम उच्चारण करै, नान्दीमुख विवाहमें प्रपितामह आदिका नाम लेना चाहिये और दूसरे कर्मोंमें पिता आदिका नाम लेना यह नान्दीमुखका कथन बह्वृचोंसे पृथकोंके निमित्त है, कारण कि, बह्वृचोंके गृह्यपरिशिष्टमें पिताआदि अनुलोम वर्णन किये हैं, व्यासने कहा है कि, कन्याके संग विवाह और गायत्रीका उपदेश ये दोनों भोजनके उपरान्त करै और पूजित करके व्रत करके कन्यादान करै यहां भोजन शास्त्रोक्त मधुपर्कको लेना चाहिये, गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि, कन्याके विवाहनेवालोंका यह धर्म लिखा है कि, पश्चिमकी ओर मुख करके बैठे मधुपर्कसे पूजे हुए उस वरको इस कन्याके निमित्त दे फिर जलके पात्रको ग्रहण कर इस मन्त्रसे कन्यादान करै कि, हे ब्राह्मण ! यथाशक्तिसे भूषित की हुई इस गौरी कन्याको इस गोत्र और इस नामवाले तुमको देताहूं दी हुई इस कन्याका तुम आश्रय हो, फिर अपनी शक्तिसे पृथ्वी, गौ, दासी, वस्त्र, भैंस, घोडे सुवर्णमणिको देना चाहिये, फिर अपने गृह्यसूत्रके अनुसार हवन आदि कर्म करै, और कुलरीतिके अनुसार मंगल और

---

१ किन्हींका कथन है यदि कन्यादान आधीरातसे पीछे हो तो पूर्वदिनमें दाता भोजन करले कारण कि, वह दान परदिनमें है ॥

च ॥६॥" एतत्कन्यादानं त्रिः कार्यमिति शौनकः ॥ गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषमाहाश्वलायनः—"अर्धरात्रे व्यतीते तु परेद्युः प्रातरेव हि । गृहप्रवेशनीयः स्यादिति यज्ञविदो विदुः" इति ॥ औपासनहोमे विशेषमाह शौनकः— "यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नः स्यात्तथा सति । उपक्रम्योत्तरस्याह्नः सायं परिचरेदमुम् ॥" यदि रात्रौ नवनाडीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा तदैव होमारम्भः । तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारम्भ इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥ अथ देवकोत्थापनम् । "समे च दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः । षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ ॥" निर्णयदीपे गार्ग्यः—"नान्दीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम् । दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च ॥ अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च । ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमातिलङ्घनम् ॥ उपवासं व्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च । नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि ॥ ३ ॥" बृहस्पतिः— 'तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे ॥ नगरग्रामदाहे च स्पृष्टा स्पर्ष्टा न दुष्यति ॥ " योगियाज्ञवल्क्यः—"न स्नायादुत्सवेऽतीते मङ्गलं विनिवर्त्य च । अनुव्रज्य सुहृद्बन्धूनर्चयित्वेष्टदेवताम् ॥" ज्योतिषे—"स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्म प्रेतानुयानं कलशप्रदानम् । अपूर्वतीर्था

कौतुक मंगलमें करै. यह कन्यादान तीन वार उच्चारण करके करना चाहिये, यह शौनकका कथन है ॥ विवाहाग्निके गृहप्रवेशके हवनमें आश्वलायनने यह विशेष लिखा है कि, विवाहके हवनमें अर्द्धरात्रि बीतनेपर तो परले दिन प्रातःकालके समय गृहप्रवेश हवन होता है, यह यज्ञके ज्ञाता कहते हैं, उपासनाके हवनमें शौनकने यह विशेष लिखा है कि, जो विवाहकी अग्नि रात्रिमें उत्पन्न हुई होय तो अगले दिन सन्ध्यासमय उस अग्निकी पूजा करै, और सुदर्शनभाष्यमें यह लिखा है कि, यदि रात्रिकी नौ घडीके बीचमें अग्नि उत्पन्न होय तो उसी समयमें होम करै, और नौ घडीके उपरान्त उत्पन्न हुई होय तो दूसरे दिन सायंकालमें हवन करै ॥ अब देवताओंका उत्थापन (विसर्जन) लिखतेहैं कि, विद्वान् मनुष्य समदिनमें कुलदेवताओंका विसर्जन करै, छठे दिन और पांचवें सातवेंको छोडकर विषम दिन श्रेष्ठ नहीं है. निर्णयदीपमें गार्ग्यने कहाहै कि, नान्दीमुख श्राद्धके उपरान्त जबतक मातृ (कुलदेवी) ओंकी विदा न हो तबतक अमावास्या और क्षयीका श्राद्ध, शीतल जलसे स्नान, अपसव्य होकर पितरोंको स्वधा, नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ (वाक्, वैश्वदेव) नदी और सीमाको लंघन, उपवास, व्रत, श्राद्धभोजनको सम्पूर्ण सपिंड मंडपके विसर्जनतक न करैं, बृहस्पतिने कहाहै कि, तीर्थ, विवाह, यात्रा, युद्ध, देशउपद्रव, नगर और संग्राम, दाह, इनमें स्पर्शसे स्पर्शकको दोष नहीं लगता. योगियाज्ञवल्क्यने कहाहै कि, उत्सवके बीतनेपर विना मंगल (मंडप आदि) की निवृत्ति और विना इष्टदेवके पूजन बन्धुओं सहित स्नान न करना चाहिये. ज्योतिषमें लिखाहै कि, मंगलके कार्यसे एक वर्षतक ये कार्य न करै कि, सचैलस्नान जो तिल मिलके हो वह

मरदर्शनं च विवर्जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम् ॥ '' जीर्णभाण्डादीनां त्याज्याभावादि । "मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारम्भणेन च । जीर्णभाण्डादि न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा ॥ ऊर्ध्वं विवाहात् पुत्रस्य तथा च व्रतबन्धनात् । आत्मनो मुण्डनं नैव वर्षं वर्षार्धमेव च ॥ अभ्यङ्गे सूतके नैव विवाहे पुत्रजन्मनि । माङ्गल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम् ॥'' विवाहप्रथमवर्षवर्ज्यामासाः। ज्योतिर्निबन्धे-"उद्वाहात् प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् ॥ पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत् ॥" निबन्धे-"विवाहात प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमासके । न सा भर्तुगृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा॥'' हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे-"विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ '' तथा अर्धं पूर्ववत् । "सपिण्डा नैव कुर्वीरन्नाद्भिः स्नानमृतुत्रये । तीर्थं संवत्सरे प्रेते पितृयज्ञं महालयं ॥ कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा ॥ '' अथ वधूप्रवेशः । जयतुङ्गे-मार्गशीर्षे तपसि माघे माधवे ज्येष्ठपञ्चके । सुप्रशस्ते भवेद्वेश्मप्रवेशो नवयोषिताम् ॥'' नारदः-"आरभ्योद्वाहदिवसात्षष्ठे वाप्यष्टमे दिने । वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमेऽथ समे दिने ॥ '' संग्रहे-"विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे तिथौ षोडशवासरान्तात् । ऊर्ध्वं ततोऽब्दे युजि पञ्चमान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति ॥ ''

अर्थ प्रेतके संग श्मशानगमन फलशका दान अपूर्वतीर्थ और देवताका दर्शन ॥ विवाहआदि और व्रतके प्रारम्भमें छः महीनेतक पुराने बरतन और घरका लीपना बुहारना न छोडे पुत्रके विवाह और यज्ञोपवीतके उपरान्त एक वर्षतक अथवा छः महीनेतक अपना मुण्डन न करावे, उबटना, सूतक, विवाह, पुत्रजन्म मंगलके सम्पूर्णकर्ममें गोपीचन्दन न लगावे ॥ ज्योतिर्निबन्धमें कहाहै कि, विवाहसे प्रथम आषाढमें यदि कन्या पतिके घर जाय तो अपनी सास और क्षयमासमें अपने शरीरको नष्ट करतीहै, ज्येष्ठमें ज्येठेको, पौषमें श्वशुरको, मलमासमें, पतिको और पहिले चैत्रमें अपने पिताके घर टिके तो अपने पिताको नष्ट करतीहै पूर्वोक्त महीने न हो तो किसीको कुछ दोष नहीं है. निबन्धमें लिखाहै कि, विवाहसे प्रथम और पौष आषाढ और अधिकमासमें कन्या पतिके घर और चैत्रमें पिताके घर न रहे, हेमाद्रिमें स्मृत्यन्तरका कथन है कि, विवाह यज्ञोपवीत, मुण्डन इनमें वर्ष छः महीने वा तीन महीनेतक पिंडदान मृत्तिकासे स्नान तिलोंसे तर्पण न करै ॥ अब वधूप्रवेश कहते हैं । जयतुंग कहते हैं कि, मार्गशिर माघ, वैशाख, ज्येष्ठमें और अच्छे श्रेष्ठ दिनमें नववधूस्त्रियोंका घरमें प्रवेश होता है. नारद कहते हैं कि, विवाहके दिनसे छठे वा आठवें दिन दशवें वा समदिनमें वधूप्रवेश होना चाहिये तो सम्पदा मिलती है. संग्रहमें लिखा है कि, विवाहसे लेकर सोलह दिनके मध्यमें युग्म तिथिमें वधूप्रवेश करना, इसके उपरान्त पांचवर्षतक विषम वर्षमें करै, इससे परे नियम नहीं है

नारदः–"समे वर्षे समे मासि यदि नारी गृहं व्रजेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत् ॥" तत्र फलानि । प्रयोगरत्ने तु–"वधूप्रवेशः प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पञ्चमकेऽथ वाऽह्नि । द्वितीयके वाऽथ चतुर्थके वा षष्ठे वियोगामयदुःखदः स्यात्" इत्युक्तं तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ वृद्धवसिष्ठोपि–" षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः । पञ्चाङ्गसंशुद्धदिनं विनापि विधावसद्गोचरगोपि कार्यः ॥ " लल्लः–"स्वभुवनपुरप्रवेशे देशानां विप्लवे तथोद्वाहे । नववध्वा गृहगमनं प्रति शुक्रविचारणा नास्ति ॥ " माण्डव्यः–"नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशनान्तेषु सप्तसु । वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥" ज्योतिःप्रकाशे–" वामे शुक्रे नवोढायाः सुखं हानिश्च दक्षिणे । धनं धान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरःस्थिते ॥ नवोढायास्तु वैधव्यं यदुक्तं संमुखे भृगौ । तदेव विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे ॥ पूर्वतोभ्युदिते शुक्रे प्रयायाद्दक्षिणापरे । पश्चादभ्युदिते चैव यायात्पूर्वोत्तरे दिशौ ॥ २ ॥ " व्यवहारतत्त्वे–"पौष्णात्कराच्च श्रवणाच्च युग्मे हस्तत्रये मूलमघोत्तरासु । पुष्ये च मैत्रे च वधूप्रवेशो रिक्तेतरे व्यर्ककुजे च शस्तः ॥ " गर्गः–"व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेपि मानवः ॥" तथा–'अमासंक्रांतिविष्टयादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत्॥'

नारदने कहा है कि, समवर्ष या सम महीनेमें यदि नारी पतिके घर जाय तो पतिकी अवस्था हरती है, और स्वयं मृत्युको प्राप्त होती है ॥ प्रयोगरत्नमें लिखा है कि, प्रथम तीसरे पांचवें दिन वधूप्रवेश मंगलकारी है, दूसरे चौथे छठे दिन वियोग रोग और दुःखदायी होता है, इसमें प्रमाण नहीं मिलता, वृद्धवसिष्ठने कहा है कि, विवाहसे छठे आठवें दशवें दिन पचांगसे शुद्ध दिनके विना और निषिद्ध चन्द्रमामें वधूप्रवेश करनेमें दोष नहीं है, लल्लने कहा है कि, अपना भवन और अपने पुरका प्रवेश देशोंके उपद्रव विवाह और नव्य वधूका गृहप्रवेश इनमें सन्मुख शुक्रका विचार नहीं है, माण्डव्य कहते हैं नित्यगमन जीर्णगृह अन्नप्राशनपर्यन्त सात कर्म और वधूप्रवशमें बृहस्पति और शुक्रके अस्तका विचार न करै ॥ ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि, नई विवाही वधूके शुक्र वामभाग होय तो सुख, दक्षिणमें होय तो हानि, पीठ पीछे होय तौ धनधान्य, सन्मुख होय तो सबका नाश करता है, सन्मुख शुक्रमें तो नव्य वधूको विधवायोग लिखा है, वही बुधमें जानना चाहिये, परन्तु यह केवल द्विरागमनमें है, यदि शुक्रका उदय पूर्वमें होय तो दक्षिण और पश्चिम दिशामें चला जाना पश्चिम दिशामें होय तो पूर्व और उत्तर दिशामें गमन करना. व्यवहारतत्वमें कहा है रेवती हस्त श्रवणसे दो और हस्तसे तीन मूल मघा और तीनों उत्तरा पुष्य अनुराधा रिक्तासे भिन्न तिथि रवि और मंगलसे भिन्न वारमें वधू-प्रवेश उत्तम है, गर्गने कहा है कि व्यतीपात संक्रांति ग्रहण वैधृति इनमें श्राद्धके विना शुभ कर्मको उत्तम मुहूर्तमें भी मनुष्य न करै इसी प्रकार अमावस्या संक्रांति और भद्रा आदिमें उत्तम मुहू-

इति ॥ द्विरागमनम्। ऋक्षोच्चये-"माघफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने। गुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः॥" बादरायणः-"नीहाराशुदिनोत्तरादितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनी शुक्रे भास्करवायुविष्णुवरुणत्वाष्ट्रे प्रशस्ते तिथौ। कुम्भाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्तोदये भार्गवे जीवज्ञास्फुजितां दिने नववधूवेश्मप्रवेशः शुभः॥" अथ पुनर्विवाहः। श्रीधरीये-"पुनर्विवाहं वक्ष्यामि दंपत्योः शुभवृद्धिदम्। लग्नेन्दुलग्नयोर्दोषे ग्रहताराादिसंभवे॥ अन्येष्वशुभकालेषु दुष्टरोगादिसंभवे। विवाहे चापि दंपत्योराशौचादिसमुद्भवे॥ तस्य दोषस्य शांत्यर्थं पुनर्वैवाह्यमिष्यते॥२॥" याज्ञवल्क्यः-"सुरापी व्याधिता धूर्ता बन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा। स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा॥" मनुः-"वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा। एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥" संग्रहे तु-"अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत्। मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम्॥" याज्ञवल्क्यः-"एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति। समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोढामपरां व्रजेत्। आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादि-

---

तेमें भी शुभकर्म न करै॥ अब द्विरागमनको कहते हैं। ऋक्षोच्चयमें कहा है कि, माघ, फाल्गुन वैशाखके शुक्लपक्ष और शुभदिनमें बृहस्पति और सूर्यकी शुद्धिमें पत्नीका द्विरागमन उत्तम है, बादरायण कहते हैं कि चन्द्रवार उत्तरा पुनर्वसु पुष्य रोहिणी अनुराधा अश्विनी ज्येष्ठा श्रवण स्वाति चित्रा श्रेष्ठ तिथि कुम्भ मेष वृश्चिकका सूर्य और लग्नका उदय शुक्र बृहस्पति बुध सोमवारमें नवीन वधूका गृहप्रवेश उत्तम है॥ अब पुनर्विवाहको लिखते हैं। श्रीधरीयमें कहा है कि, अब पुरुषके शुभ और वृद्धिके देनेवाले पुनर्विवाहको लिखताहूं। लग्न और चन्द्रमा और लग्नके और ग्रह वा तारा आदिका दोष वा दूसरे अशुभ समय होय तौ वा दुष्ट प्रथम विवाहमें होय तो वा प्रथम विवाहके समय स्त्रीपुरुषको अशौच आदि होय तो इन दोषोंकी शांतिके निमित्त द्वितीयविवाह इष्ट है, याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, मद्य पीनेवाली, रोगिणी, धूर्ता, वंध्यमा धनकी नाशक, कठोर वाक्य बोलनेवाली, जिसके कन्याही होती हो, जो पतिके संग वैर करतीहो, ऐसी स्त्रीके होनेपर पति दूसरा विवाह करसकता है, मनु कहते हैं कि, वन्ध्या स्त्री होय तो आठवें वर्ष, जिसके बालक होकर मरजाते होंय तो दशवें वर्ष, कन्याही होती होय तो ग्यारहवें वर्ष दूसरा विवाह करले, कठोर वाक्यवाली होय तो उसी समय विवाह करलै. संग्रहमें लिखा है कि, प्रजाहीन स्त्रीको दशवें वर्ष, जिसके कन्याही संतान हों उसे बारहवें वर्ष जिसकी संतान मृतक होजातीहो उसे पंद्रहवें वर्ष और कठोर वाक्यवालीको उसी समय शय्यासे त्याग देना चाहिये॥ याज्ञवल्क्य कहते हैं, जो मनुष्य एक स्त्रीको छोड करके विषयके निमित्त दूसरी स्त्रीके साथ विवाहकी इच्छा करता है वह समर्थ होय तो प्रथम स्त्रीको धनसे प्रसन्न

तीम् । त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥२॥ " मनुः-" अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात् । सा सद्यः संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ " इति॥ हेमाद्रौ कात्यायनः-"अग्निशिष्टादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया । कारयेत्तद्बहुत्वं चेज्ज्येष्ठया गर्हिता न चेत् ॥ " इति ॥ याज्ञवल्क्यः-"सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ॥ " द्वितीयविवाहहोमे अग्निनिर्णयः । द्वितीयविवाहहोमेऽग्निमाह कात्यायनः-"सदारोऽन्यान्पुनर्दारानुद्वोढुं कारणान्तरात् । यदीच्छेदग्निमान्कर्तुं क होमोऽस्य विधीयते ॥ स्वेग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥ " त्रिकाण्डमण्डनोपि-"आद्यायां विद्यमानायां द्वितीयामुद्वहेद्यदि । तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेग्निमान् ॥ " सुदर्शनभाष्ये तु-'द्वितीयविवाहहोमो लौकिक एव न पूर्वोपासने ' इत्युक्तम् ॥ इदं चासंभवे तत्र चाग्निद्वयसंसर्गः कार्यः ॥ तदाह शौनकः-" अथाग्न्योर्गृह्ययोगं तु सपत्नीभेदजातयोः । सहाधिकारसिद्ध्यर्थमहं वक्ष्यामि शौनकः ॥ अरोगामुद्वहे-

---

करके दूसरीको विवाह ले. याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, जो आज्ञाकारिणी, चतुर, पुत्रवती, प्रिय बोलनेवाली, पहिली स्त्रीको छोडता है उसे राजाको दूसरे विवाहके, तीसरे भाग धनका दण्ड देना चाहिये, यदि धन न होय तौ प्रथम स्त्रीके भरण पोषणका दण्ड देना चाहिये. मनुका वाक्य है कि, यदि दूसरे विवाह करनेपर पहिली स्त्री कुछ क्रुद्ध होकर घरसे चले तो उसको शीघ्र रोकना चाहिये, अपने कुलके संमुख त्यागदेना. हेमाद्रिमें कात्यायन कहते हैं कि, जिसके बहुत भार्या हों उस मनुष्यको सवर्णा स्त्रीसे अग्नि और शिष्ट मनुष्योंकी सेवा करानी चाहिये यदि अपने वर्णकी भी बहुत होंय तो जो सम्पूर्ण दोषोंसे रहित ज्येष्ठ स्त्री हो उससे करानी चाहिये, याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, यदि अपने वर्णकी स्त्री मिले तौ औरसे धर्मकार्यको न करना और यदि सवर्ण भी बहुत स्त्री होंय तो धर्मकार्यमें बडीकोही अधिकार है औरोंको नहीं ॥ अब द्वितीय विवाहकी अग्निका निर्णय लिखते हैं कात्यायन कहते हैं कि, यदि स्त्रीवाला मनुष्य किसी हेतुसे पुनर्विवाहकी इच्छा करै तो उसका पूर्वविवाहकी अग्निमेंही होम करना लौकिक अग्निसे कभीभी न करना चाहिये. त्रिकाण्डमण्डनमें लिखते हैं कि, प्रथम स्त्रीके जीते हुए यदि दूसरी स्त्रीको विवाह करले तो वैवाहिक हवन आदि कर्मको अपने घर करै सुदर्शनभाष्यमें तो यह लिखा है कि, दूसरे विवाहका हवन लौकिक अग्निमें करना चाहिये, पूर्व अग्निमें नहीं करना यह बात प्रथमकी अग्निके असंभवमें जाननी यदि पूर्वविवाहकी अग्निभी होय तो उन दोनोंका सम्बंध करना चाहिये ॥ सोई शौनकने लिखा है कि, अब जो कि, सपत्नी (सौत) पनेको प्राप्त हुई स्त्रियोंको हवन आदि कर्ममें सहाधिकार (साथ करने) के निमित्त गृह्य अग्नि (दोनों विवाहोंके अग्नि)

त्कन्यां धर्मलोपभयात्स्वयम् । कृते तत्र विवाहे च व्रतान्ते तु परेहनि ॥ पृथक् स्थण्डिलयोरग्निं समाधाय यथाविधि । तत्र कृत्वाज्यभागान्तमन्वाधानादिकं ततः॥ जुहुयात्पूर्वपत्न्यग्नौ तयान्वारब्ध आहुतिः । अग्निमीळे पुरोहितं सूक्तेन नवर्चेन तु ॥ समिध्यैनं समारोप्य अयं ते योनिरित्यृचा । प्रत्यवरोहेत्यनया कनिष्ठाग्नौ निधाय तम् ॥ आज्यभागान्ततंत्रादि कृत्वारभ्य तदादितः । समन्वारब्ध एताभ्यां पत्नीभ्यां जुहुयाद्घृतम् ॥ चतुर्गृहीतमेताभिर्ऋग्भिः षड्भिर्यथाक्रमम् । अग्नावग्निश्चरतीत्यग्निनाग्निः समिध्यते ॥ अस्तीदमिति तिसृभिः पाहि नो अग्न एकया । ततः स्विष्टकृदारभ्य होमशेषं समापयेत् ॥ गोयुगं दक्षिणा देया श्रोत्रियायाहिताग्नये । पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः ॥ आदधीतान्यया सार्द्धमाधानविधिना गृही ॥ २ ॥ " इति ॥ बौधायनसूत्रे तु-"अथ यदि गृहस्थो द्वे भार्ये विंदेत कथं तत्र कुर्यादिति यस्मिन् काले विंदेतोभावग्नी परिचरेदपराग्निमुपसमाधाय परिस्तीर्याज्यं विलाप्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽन्वारब्धायां जुहोति ' नमस्त ऋषेरादाव्यधायै त्वा स्वधायै त्वा मान इन्द्राभिनतस्त्वदृष्टारिष्टा

येंके सम्बन्धको लिखताहूँ कि, धर्मके लोप हो जानेके भयसे उत्तम लक्षणोंसें युक्त कन्यासे विवाह करै, विवाह करनेपर व्रतके उपरान्त प्रथम दिन पृथक् २ वेदियोंपर विधिसे अग्नि स्थापन करके अन्वाधानसे आज्यभागान्त आहुति देकर प्रथम पत्नी अग्निमें आहुति दे, और उस पत्नीके साथ ग्रन्थिवन्धन करनेपर पतिको भी " अग्निमीळे पुरोहितम् " इस सूक्तकी नौ ऋचाओंसे आहुति देनी चाहिये, फिर अग्निको प्रज्वलित करके " अयंतेयोनिः " इस मन्त्रसे और ' प्रत्यवरोह' इस ऋचासे कनिष्ठ (दूसरी) पत्नी चरुभक्षण आज्यभागान्त कर्म करके आहुति दे, फिर दोनों पत्नियोंसे पति ग्रन्थिबन्धन करके घीसे आहुति दे ' चतुर्गृहीत ' इन छः ऋचाओंसे और अग्निसे अग्नि भक्षण करती है और अग्निसे अग्नि प्रज्वलित होती है ' अस्तीदं ' इन तीन मन्त्रोंसे और ' पाहिनो अग्ने ' इस एक ऋचासे फिर स्विष्टकृत्के प्रारम्भसे शेष होमको पूर्ण करै, फिर अग्निके हितकारी वेदपाठीको दो गौ दक्षिणा दान करै, यदि दोनों पत्नियोंमें एक पत्नीकी मृत्यु होजाय तो उसी अग्निसे उसका दाह करके दूसरी पत्नीके संग शास्त्रोंमें कही विधिसे फिर अग्निका आधान करै ॥ बौधायनसूत्रमें तो यह कहा है कि, जो गृहस्थी दो स्त्रियोंको विवाह करै तो वहां किस प्रकार अग्निहोत्र आदि कर्म करै, जिस समय दो स्त्रियोंको विवाहै तब दोनों अग्निकी पूजा कर, एक अग्निका स्थापन करके और कुशाओंको अग्निके चारों ओर कुशण्डीकी विधिसे फैलाकर और घृतको तपाकर और स्रुवेमें चारवार लेकर एक पत्नीके संग ग्रन्थिबन्धन करके समिधापर "नमस्ते ऋषे ' इस ऋचासे आहुतिप्रदान करता हुआ उस घीको डाल दे, यदि प्रथम

स एव ब्रह्मन्नवेदसुस्वाहेत्यथाऽयंते योनिर्ऋत्विय' इति समिधि समारोपयेत् । पूर्वाग्निमुपसमाधायाजुह्वान उद्बुद्ध्यस्वाग्न इति समिधमाधाय परिस्तीर्य स्रुचि चतुर्गृहीत्वा द्वयोर्भार्ययोरन्वारब्धयोर्यजमानोऽभिमृशति ब्रह्मा ब्रह्मण इत्येतेन सूक्तेनैकं चतुर्गृहीतं जुहोत्यग्निमुखान् कृत्वा पक्वां जुहोति सम्मितं संकल्पेथा-मिति पुरोनुवाक्यामनूच्याग्ने पुरीष्ये इति याज्यया जुहोति पुरीष्यमस्तमित्य-न्तादनुवाक्स्य स्विष्टकृत्प्रभृतिसिद्धमाधेनुवरदानादथाग्रेणाग्निं दर्भस्तम्बे हुतं शेषं निदधाति ' ब्रह्मजज्ञानं ' ' पिताविराजम् ' इति द्वाभ्यां संसर्गविधिः कार्यः ॥ " तत्र : कालनिर्णयः । द्वितीयादिविवाहे काल उक्तः संग्रहे-"प्रमदा-मृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च । विषमे युगवत्सरे शुभो युगले चापि मृतिप्रदो भवेत् ॥ " तृतीयविवाहे निषेधः । तृतीयविवाहे निषेधो मात्स्ये-"उ-द्वहेद्रतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन । मोहादज्ञानतो वापि यदि गच्छेत्तु मानु-षीम् ॥ नश्यत्येव न संदेहो गर्गस्य वचनं यथा ॥ " इति । संग्रहे-"तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत् । चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत् ॥ " तद्विधिस्तु-"रविशन्योर्हस्ते वा वरः संकल्प्य स्वस्तिवाचनं नान्दीश्राद्धं कृत्वा-चार्यं वृत्वा आकृष्णेनेति छायायुतं सूर्यमर्कं संपूज्य गुडौदनं दत्त्वा वस्त्रेण तन्तु-

---

स्थापन कर हवन करै, तो ' उद्बुद्ध्यस्वाग्ने ' इस ऋचासे समिधको रखकर और अग्निस्थापन और कुशण्डी करके स्रुवेमें चारवार घृतको लेकर दोनों भार्योंका ग्रन्थिवन्धन करके यजमान स्पर्श करै, और ' यो ब्रह्मा ब्रह्मण ' इस सूक्तसे स्त्री चारवार ग्रहण किये घृतसे हवन करै, फिर अग्निको मुख करके कच्चा चरुसे हवन करै, ' सनिमित्तं संकल्पेयाः ' इस पहिले वाक्यको स्विष्टकृत् आदि सिद्ध करके धेनुके वरप्रदान हवन करै, फिर अग्निके आगे कुशाके स्तम्भपर हवनके शेषको ' ब्रह्मजज्ञानं ' ' पिता विराजं' इन दोनों मन्त्रोंसे रक्खै ॥ द्वितीय आदि विवाहका समय संग्रहमें लिखा है कि, स्त्रीके मृत्युके दिनसे वरके दूसरे विवाहकी विधि विषम वर्षमें श्रेष्ठ है, और युग्मवर्षमें मृत्यु देनेवाली है ॥ मत्स्यपुराणमें तीसरे विवाहका निषेध लिखा है कि, विषयभोग करनेके निमित्त तीसरी स्त्रीसे न विवाह करै, कारण कि, हो, वा अज्ञानसे जो तीसरी स्त्रीसे भोग करता है वह स्वयंही नष्ट होता है इसमें सन्देह नहीं, यही गर्गने कहा है, संग्रहमें लिखा है कि, यदि तीसरी स्त्रीसे विवाह करै, तो वह विधवा हो जाती है, यदि चतुर्थ आदि विवाह करना चाहै तो तीसरे विवाहमें आकके वृक्षके संग विवाह करै, उसकी विधि इस प्रकार है कि, रवि वा शनिवार हस्त नक्षत्रमें वर संकल्प तथा स्वस्तिवाचन तथा नान्दीमुख श्राद्ध करके आचार्यको वरण करै फिर "आकृष्णेन रजसा " इस मंत्रसे आकके वृक्षमें छायासहित सूर्यको पूजन कर तथा गुड और

---

१ यह सब मन्त्र पद्धतियोंमें पूरे लिखे हैं सो विवाहपद्धतिमें देख लेवे ॥

भिरावेष्ट्य । "त्रिलोकवासिन् सप्ताश्व छायया सहितो रवे । तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥ " इति संप्रार्थ्य जलेन त्रिःसिञ्चेत् । "मम प्रीतिकरा येयं माया सृष्टा पुरातनी । अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रति रक्षतु ॥ नमस्ते मङ्गले देवि नमः सवितुरात्मने । त्राहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं मे इहागता ॥ अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणहिताय च । वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धनः ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय ॥ ३ ॥ " इति ॥ तत आचार्यः—"काश्यपगोत्रामादित्यप्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीं मम पुत्रीमर्ककन्यामसुकगोत्राय वराय दास्ये" इति वाग्दानं कृत्वा वरस्य मधुपर्कं कृत्वाऽन्तःपटं धृत्वा ' स्वस्तिनः' इति सूक्तं जप्त्वा पूर्ववत्कन्यां दत्त्वा अर्ककन्यामिमामित्यूहेन कन्यादानमंत्रमुक्त्वा दक्षिणां दद्यात् । ततो गायत्र्या वेष्टितसूत्रेण बृहत्सामेति मन्त्रेण कंकणं बध्वाऽर्कस्य चतुर्दिक्षु कुम्भेषु विष्णुं संपूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते संगोभिरिति बृहस्पतये यस्मै त्वा कामकामायेत्यृचाऽग्नये व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिराज्यं हुत्वाऽऽचार्याय गोयुगं दत्त्वा । "मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ।

मातको देकर तंतु और वस्त्रको लपेटकर इस प्रकार प्रार्थना करै कि, हे त्रिलोकीके निवासी सात अश्ववाले सूर्य ! छायासहित आकर तीसरे विवाहसे उत्पन्न हुए दोषके निवारण तथा सुखको करो, फिर उस वृक्षको तीनवार जलसे सींचकर यह पढै कि, मेरी प्रसन्नता करनेवाली यह पुरातनी माया ब्रह्माने निर्मित की और सूर्यसे उत्पन्न हुई है सो तू हमारी रक्षा कर, हे कल्याणरूप देवि सविताकी पुत्री ! तुझे मेरा नमस्कार है कृपासहित मेरी रक्षाकर और इस लोकमें मेरी स्त्रीरूप हो, हे अर्क ! तुझे सब मनुष्योंके हितके निमित्त ब्रह्माने रचा है, सब वृक्षोंमें आदिभूत तथा देवताओंकी प्रीतिको बढानेवाला है तीसरे विवाहसे उत्पन्न हुए पाप तथा मृत्युका शीघ्र नाश कर ॥ फिर आचार्य काश्यपगोत्रमें उत्पन्न हुई आदित्यकी प्रपौत्री तथा सविताकी पौत्री और मेरी पुत्रीरूप इस आककी कन्याको असुक गोत्रमें उत्पन्न हुए वरको देताहूं इस प्रकार वाग्दान करै, फिर वरको मधुपर्क देकर अन्तरपट करके 'स्वस्तिन इन्द्रो' इस सूक्तको पढके पूर्वके अनुसार कन्यादान करके इस अर्ककी कन्याको प्रदान करताहूं इत्यादि वाक्यसहित कन्यादानके मंत्रको पढकर दक्षिणा दे, फिर गायत्रीमंत्रसे लपेटे सूतके वरके हाथमें 'बृहत्साम' इत्यादि मंत्रसे कंकणको बांधकर आककी चारों दिशाओंमें स्थापित घडोंपर विष्णुकी पूजा कर'अग्निका स्थापन करके आघारान्ते संगोभि' इस ऋचासे तथा 'बृहस्पतिये यस्मैत्वा कामकामाय ' इस मंत्रसे अग्निके निमित्त भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा इन व्यस्त समस्त आहुतियोंसे घृतकी आहुति देकर आचार्यको दो गौ देकर प्रणाम करै कि, जो मुझ जरायु (मनुष्य) ने स्थावरोंके विषे यह कर्म किया है, सो मुझे संतान दो और उस

अर्कोऽपत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि " इति नमेत् ॥ इति दिक् ॥ इति निर्णयसिंधौ विवाहः ॥ अथाग्न्याधानम् । रत्नमालायाम्–" प्राजापत्ये पूषभे सद्विदैवे पुष्ये ज्येष्ठास्वैन्दवे कृत्तिकासु । अग्न्याधानं ह्युत्तराणां त्रयेति चित्रादित्ये कीर्तितं गर्गमुख्यैः ॥ " आश्वलायनः–" अग्न्याधेयं कृत्तिकासु रोहिण्यां मृगशिरसि फाल्गुनीषु विशाखयोरुत्तरयोः प्रौष्ठपदयोरेतेषां कस्मिंश्चिद्वसन्ते पर्वणि ब्राह्मण आदधीत ग्रीष्मवर्षाशरत्सु क्षत्रियवैश्योपकृष्टा यस्मिन्कस्मिंश्चिदृतावादधीत सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रम् ॥" सोमाधाने ऋत्वाद्यनालोचनमार्त्तपरम् । 'अथो खलु यदैवैन श्रद्धोपनमेदथादधीत सैवास्य विधिः' इति ॥ 'सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रं तदेतदार्त्तस्यातिवेलं वा श्रद्धायुक्तस्य भवति' इति बौधायनोक्तेरिति ॥ मदनरत्ने वृद्धगार्ग्यः–"पुष्याग्नेयेष्युत्तरादित्यपौष्णज्येष्ठाचित्रार्कद्विदैवेन्दुभेषु।कुर्युर्वह्न्याधानमाद्यं वसन्तग्रीष्मोष्मान्तेष्वेव विप्रादिवर्णाः ॥" कालादर्शे–"अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावप्युत्तरायणे । उपक्रम्य यथाकालमुपासीरन् द्विजातयः ॥ सोमं च पशुबन्धं च सर्वाश्च विकृतीरपि । सौम्यायने यथाकालं विदध्युर्गृहमेधिनः ॥" अत्र विशेषः पूर्वमुक्तः ॥

अपराधको हे अर्क ! क्षमा करो यह संक्षेपसे कहा ॥ इति निर्णयसिन्धौ विवाहः ॥ अब अग्न्याधानको कहते हैं । रत्नमालामें कहा है कि, ब्राह्म (रोहिणी) धनिष्ठा द्विदैव (विशाखा) पुष्य ज्येष्ठा मृगशिर कृत्तिका तीनों उत्तरामें अग्निका स्थापन तथा चित्रा आदित्य (पुनर्वसु) में अग्निस्थापन शुभ है यह गर्गोंने कहाहै.आश्वलायन कहतेहैं, कृत्तिका रोहिणी मृगशिर पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी विशाखा उत्तराभाद्रपदा उत्तराषाढा नक्षत्रोंमें अग्निका स्थापन उत्तम है, इन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें ब्राह्मण वसंतऋतुके जिस किसी पर्वमें, क्षत्रिय वैश्य ग्रीष्म वर्षा शरद् ऋतुमें, और अपकृष्टा (शूद्र) मनुष्य जिस किसी पर्वमें, अग्निका आधान करै, सोमयज्ञको सम्पादन करता हुआ मनुष्य ऋतु तथा नक्षत्रको न पूछे ॥ यह सोमयज्ञमें ऋतुआदिका अविचार आर्त्त आदिकोंमें विषयमें कहा है कारण कि, मदनरत्नमें बौधायनने कहा है कि, जब इसको श्रद्धाहो तबही आग्न्याधान करै; तिससेही इसकी ऋद्धि होती है, सो यह आर्तको वा काल बीतगया हो तब जानना चाहिये, और श्रद्धायुक्तकोही आग्न्याधान होता है, यह मदनरत्नमें कहा है, वृद्धगार्ग्य कहते हैं कि, ब्राह्मण आदि वर्ण (प्रथम) अग्निका स्थापन पुष्य आग्नेय (कृत्तिका) तीनों उत्तरा धनिष्ठा पुन्नाम नक्षत्र ज्येष्ठा चित्रा द्विदैव (विशाखा) रोहिणी नक्षत्रमें तथा वसंत ग्रीष्म शरद् ऋतुओंमें करै कालादर्शमें कहाहै कि, उत्तरायणमें अमावास्य पौर्णमासीको भी अग्निहोत्रको करना चाहिये सब द्विजाती मनुष्य समयपर सोमीय पशुबंध तथा और यज्ञकी विकृति (अंग) योंका प्रारम्भ करके उसको सेवन करैं गृहस्थी मनुष्य उत्तराय-

अग्निहोत्रकालः। अग्निहोत्रकाल उक्तश्छन्दोगपरिशिष्टे-"उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥" एषां स्वरूपं तत्रैव-"रात्रेस्तु षोडशे भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते। कालं त्वनुदितं ज्ञात्वा होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ तत्राप्रभातसमये नष्टे नक्षत्रमण्डले। रविर्यावन्न दृश्येत समयाध्युषितं च तत् ॥ रेखामात्रं प्रदृश्येत रश्मिभिश्च समन्वितः। उदितं तद्विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥" आश्वलायनः-'उपोदयं व्युषित उदिते वा।' सायं तु स एव 'अस्तमिते होमः' इति ॥ गौणकालमाह स एव-'प्रदोषान्तो होमकालः संगवान्तः प्रातः' इति। छन्दोगपरिशिष्टे-"यावत्सम्यङ्न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः। न च लोहितमापैति तावत्सायं तु हूयते ॥" औपासनेप्येवम्। तस्य-'अग्निहोत्रेण प्रादुष्करणहोमकालौ व्याख्यातौ' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ अथावसथ्याधानम्। पारस्करः-"आवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यकाल एकेषाम्" इति। दायाद्यकालो विभागकालः। मदनरत्ने व्यासः-"अग्निर्वैवाहिको येन न गृहीतः प्रमादिना। पितर्युपरते तेन ग्रहीतव्यः प्रयत्नतः ॥ योऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते। अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥२॥"

णमें यथासमयपर करैं, इसमें विशेष प्रथम कह आये हैं ॥ अग्निहोत्रका समय छंदोगपरिशिष्टमें यह लिखा है कि, उदित अनुदित तथा अध्युषित समयपर सर्वथा यज्ञ सम्पादन करै यह वेदकी श्रुति है. इसके स्वरूपका निर्णय वहांही यह लिखा है कि, ग्रह और नक्षत्रोंसे भूषित रात्रिके सोहलवें भागको अनुदित लिखते हैं, उसको जानकर चतुर जनोंको होम करना चाहिये इसी प्रकार नक्षत्रोंका जब मंडल नष्ट होगया हो और प्रातःकाल वीतगया हो उस समय जबतक सूर्यदर्शन न हो समयाध्युषित कहाहै, तथा किरणोंसहित सूर्यका जब रेखामात्र दर्शन हो उसे उदित कहते हैं उसमें हवन करै. आश्वलायनने कहा है कि, उपोदय तथा व्युषित उदित समयपर और सायंकालको सूर्य अस्त होनेपर हवन करै गौणसमयभी उसनेही यह लिखा है कि, प्रदोषकी अन्त संध्याको और किरणोंके अंत प्रातःकालको हवनका समय है. छंदोगपरिशिष्टमें कहा है कि, जबतक आकाशमें चारों ओरसे तारागण न उदय हुए हों, और ललामी नष्ट हुई हो तबतकको संध्यासमय कहते हैं इसी प्रकार उपासनामें भी जानना कारण कि, आश्वलायनने लिखा है कि, उपासनाकी प्रकटता और हवनका समय अग्निहोत्रकी समान होते हैं ॥ अब गृहस्थके आवसथ्याधानका निर्णय लिखते हैं। पारस्करने लिखा है कि, गृहस्थको अग्निका आधान विवाह समयमें और कोई विभागकालमें कथन करते हैं, मदनरत्नमें व्यास कहते कि, जिस प्रमादीने विवाहकी अग्निको न ग्रहण किया वह पिताकी मृत्युके उपरान्त यत्नसे ग्रहण करै जो कि, विवाहकी अग्निके ग्रहण किये विना अपनेको गृहस्थी जानता है उसके यहां भोजन न करना कारण कि, उसे

ज्येष्ठभ्रातरि पितरि वा सामौ कनिष्ठस्य पुत्रस्य वाऽग्न्यभावेपि न दोषः । तदाह तत्रैव गार्ग्यः–"पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीवकः । ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना ॥" गृहस्थस्याध्ययनम् । गृहस्थस्याप्यध्ययनमाह सत्य-व्रतः–" अनधीत्य द्विजो वेदं स्नात्वोद्वाह्य यथा तथा । अधीते ब्रह्मचर्येण सांगं वेदं गुरोर्गृहे ॥" इदं चाधानं ज्येष्ठे कृताधाने न कार्यम् । " दाराग्निहोत्र-संयोगं कुरुते योग्रजे स्थिते । । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः " इति मनुशातातपोक्तेः ॥ स्मार्तेप्येवम् । " सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्दारसंग्रहम् । आवसथ्यं तथाधानं पतितस्तु तथा भवेत् ॥ " इति तत्रैव गार्ग्योक्तेः ॥ आज्ञायां त्वदोषमाह सुमन्तुः–"ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चाश्रयेत् । अनुज्ञा-तस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥" वृद्धवसिष्ठः–" अग्रजस्तु यदाऽनग्निराद-ध्यादनुजः कथम् । अग्रजानुमतं कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ " हारीतः– " सोद-राणां तु सर्वेषां परिवेत्ता कथं भवेत् । दारैस्तु परिविद्यन्ते नाग्निहोत्रेण नान्यथा॥" अधिकारिणोपि भ्रातुरनुज्ञया कुर्यादिति मदनपारिजातः ॥ विवाहस्त्वनुज्ञयापि

धृयापाक कहते हैं । ज्येष्ठ भ्राता तथा पिताने विवाहकी अग्निको ग्रहण किया होय तो छोटे भाई तथा पुत्र अग्निको ग्रहण न करें तो भी दोष नहीं है यहां गार्ग्य कहते हैं कि, पिताके पाकसे जो जीताहो, और जो भ्राताके पाकसे जीता और जो ज्ञान और अध्ययनमें तत्पर हो उसको अग्निके विना दोष नहीं होता ॥ गृहस्थीको अध्ययन करना सत्यव्रतने लिखा है कि, वेदको न पढकर जो ब्राह्मण स्नान करके विवाहको करता है वह ब्रह्मचर्य धारण कर अंगोंसहित वेदको गुरुके घरजा पढे, यह अध्ययन उसको करना चाहिये जिसके ज्येष्ठ भाईने अग्न्याधान (अग्निका ग्रहण) पहिले न किया हो कारन कि, शातातप और मनु कहते हैं कि, जो ज्येष्ठभाईके होते हुए प्रथम विवाह और अग्निहोत्र करता है. उसे परिवेत्ता कहा है, और ज्येष्ठको परिवित्ति जानना चाहिये. स्मार्तमें भी यही लिखा है कि, सहोदर ज्येष्ठ भाईके बैठे हुये आप प्रथम विवाह तथा आवसथ्याधान न करै, अन्यथा वह पतित हो जाता है ऐसा गार्ग्य कहते हैं ॥ आज्ञासे करनेमें सुमंतुने कहा है कि, दोष नहीं लगता है, जब ज्येष्ठभाई बैठाहो तब अग्न्या-धानमें स्थित न होना और आज्ञा लेकर स्थित हो जाय इसी प्रकार शंख कहते हैं. वृद्ध-वसिष्ठ कहते हैं, कि, यदि बडा भ्राता अग्निरहित होय तो छोटा किस प्रकार अग्निको ग्रहण करै, वह उससे आज्ञा लेकर विधिपूर्वक अग्निहोत्रको करले हरीतने कहा है कि, यदि सब सगे होंय तो परिवेत्ता किस प्रकार होय ? क्योंकि साथ विवाह करनेसे परिवेत्ता होता है अग्निहोत्र और यज्ञसे नहीं होता. पारिजातका कथन है कि, अधिकारीभी भ्राता हो

नेत्यर्थः ॥ सोदरोक्तेरसोदराणां सापत्नदत्तकादीनां न दोषः । दत्तकस्यापि सोदरविवाहाभावे दोष एव तदाह हेमाद्रौ वसिष्ठः—"पितृव्यपुत्रान् सापत्नान् परनारीसुतांस्तथा । दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥" परनारीसुताः दत्तकादयः ॥ देशान्तरे विशेषमाह स एव—'अष्टौ दश द्वादश वर्षाणि वा ज्येष्ठभ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः प्रायश्चित्ती भवति' इति । क्लीबादावप्यदोषमाह कात्यायनः—"देशान्तरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान् । वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनखञ्जकान् ॥ अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥ धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोकारिणस्तथा । कुटिलोन्मत्तचोरांश्च परिविंदन्न दुष्यति ॥१॥" आचारार्केपि "उन्मत्तः किल्बिषी कुष्ठी पतितः क्लीब एव वा । राजयक्ष्मामयवी च न न्याय्यः स्यात्प्रतीक्षितुम् ॥" एवं ज्येष्ठे छिन्नहस्तादावपि न परिवेत्तृत्वम् ॥ तदाह त्रिकाण्डमण्डनः—"दर्शेष्टिं पौर्णमासेष्टिं सोमेज्यामग्निसंग्रहम् । अग्निहोत्रं विवाहं च प्रयोगे प्रथमे स्थितम् ॥ न कुर्याज्जनके ज्येष्ठे सोदरे चाप्यकुर्वति । क्षेत्रजादावनीजाने विद्यमानेपि सोदरे ॥ नाधिकाराधिवा-

---

उसकी आज्ञासे करले, विवाह तो आज्ञासे नहीं करै, 'सोदराणां इस पदसे जो सगे नहीं हैं उन मौसीके पुत्र अथवा दत्तक आदि पुत्रोंको इसमें दोष नहीं है, सोदरके, विवाहके न होनेपर दत्तकको भी दोष प्राप्त होता है, इसी प्रकार हेमाद्रिमें वसिष्ठने कहा है कि, चाचाके पुत्र और मौसीके पुत्र और दत्तक आदिके स्त्री और अग्निहोत्रके संयोग प्राप्त होनेपर भी परिवेत्तृत्व दोष नहीं लगता ॥ देशान्तरमें बडा भाई होय तो उसमें यह विशेष लिखा है कि, जो आठ दश वा बारह वर्ष घर न आया हो ऐसे बडे भ्राताकी वाट न देखकर जो अपना विवाह करलेता है उसको प्रायश्चित्त लगताहै, क्लीबादिकोंमें कात्यायनने दोष नहीं कहा है कि, देशान्तरमें स्थित हो, नपुंसक, एक अण्डकोशवाला, असहोदर हो, वेश्यागामी, पतित, शूद्रकी समान, अत्यन्तरोगी, मूर्ख, गूंगा, अन्धा, बहिरा, कुबडा, बिलंदिया, लंगडा, अतिशय वृद्ध, स्त्रीहीन, कृषिकर्ममें आसक्त, राजाकी धनकी वृद्धिमें आसक्त, अपनी इच्छासे न करता चाहै, कुटिल, उन्मत्त, चोरको परिवित्ति करते हुएको दोष नहीं होता ॥ आचारार्कमें भी कहा है कि उन्मत्त, पापी कुष्ठी, पतित, नपुंसक, राजयक्ष्मा (रोगविशेष) से युक्त, मंदाग्निवाले पुरुषोंके विवाहकी वाट न देखे, इसी प्रकार जिसके हस्तआदि कटेहों ऐसे बडे भाईसे भी परिवेत्तृत्व दोष नहीं लगता, यही त्रिकांडमंडनने लिखा है कि, अमावस्याश्राद्ध, पूर्णिमाश्राद्ध, सोम यज्ञ, अग्निसंग्रह, अग्निहोत्र, विवाह सहोदर ज्येठे भ्राताके न करनेतक इसका स्वयं आरम्भ आप न करै, और यदि सहोदर भी ज्येष्ठ भाई अन्यसे उत्पन्न क्षेत्रज आदि हां अथवा अपने पितासेही उत्पन्न हुआ भिन्नौदर्य (मौसी आदिका पुत्र) होय तो इनके होनेपर अधिकार नष्ट

तोस्ति भिन्नोदर्येपि चौरसे । पंग्वन्धमूकबधिरपतितोन्मादवृषणे ॥ संन्यस्तच्छिन्नहस्तादौ यद्वा षण्ढादिदूषणे । जनके सोदरे ज्येष्ठे कुर्यादेवेतरः क्रियाम् ॥ ४ ॥" इति ॥ 'आरोहतं दशतं शक्करीर्मम' इत्याधाने मन्त्रवर्णनाच्च ॥ शक्करीरंगुलीः ॥ तन्त्ररत्नेप्युक्तम्-'अङ्गवैकल्यात्पूर्वमाहिताग्निरवेऽधिक्रियेतैव नित्येषु । आधानं तु न कुर्यात्तस्य नैमित्तिकत्वात्' इति ॥ एवं चतुरंगुलेपि । षडंगुलकाणविषर्णादेस्त्वस्त्येवाधिकारः । एकादशसु दशान्तर्गतेः । 'शरीरकार्श्यं वा विप्रतिपिद्धम्' इति हिरण्यकेशिसूत्रे कर्माशक्तिहेतोरेवाङ्गवैकल्यस्य निषेधात् ॥ अत एव द्राह्यायणसूत्रे-'याज्यश्च प्रथमैस्त्रिभिर्गुणैः' इति न्यूनाङ्गस्याप्यधिकार उक्तः ॥ अपरार्के उशनाः-" पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाथ कस्यचित् । तपोग्निहोत्रमन्त्रेषु न दोषः परिवेदने ॥ " पितुराज्ञायामप्यदोषमाह मदनरत्ने सुमन्तुः-"पित्रा यस्य तु नाधानं कथं पुत्रस्तु कारयेत् । अग्निहोत्रेऽधिकारोऽस्ति शंखस्य वचनं यथा ॥" इति । नाधानं कृतमित्यर्थः ॥ एतदाज्ञायामेवेति हेमाद्रिः । यत्तु-'पितुः सत्यप्यनुज्ञाते नादधीत कदाचन' इति ॥ तत्सत्यधिकारे ज्ञेयम् ॥ अथ शूद्रसंस्कारे

नहीं होता. और यदि सगा बडा भाई लंगडा, अंधा, गूंगा, बहिरा, पतित, उन्मत्त, संन्यासी, हस्त आदि कटाहुआ, तथा नपुंसक होय तो इतर छोटा भाई विवाहआदि कर्मको करले, और यह आधानका मंत्रभी कहा है कि, मेरी अंगुली दश स्थानमें उत्पन्न हुई बढी ॥ तंत्ररत्नमें भी कहा है कि, अंगके कमती बढती भावसे पहिले जिसने अग्न्याधान करलिया हो उसको नित्य कर्मोंके करनेका अधिकार है, वह नैमित्तिक होनेसे अग्निहोत्रको न करै, इसी प्रकार चतुरंगुलकोभी जानना एकादशमें दशोंको अन्तर्गत होनेसे जिसके छः अंगुली हों उसको अथवा काने और कानहीनको दोष नहीं है, कारण कि, अंगविकलताका निषेध इस हिरण्यकेशिसूत्रमें कर्म करनेकी अशक्तिसे ही लिखा है कि, शरीरका दुबला होना अग्न्याधानमें निषिद्ध नहीं, अर्थात् उसे कर्म करनेकी शक्ति है; इसीसे इस द्राह्यायणसूत्रमें न्यून अधिक अंगवालेकोभी अधिकार लिखा है कि, प्रथम तीन गुणों (सत्त्व) आदिसे यज्ञ करावे अपरार्कमें उशनाने: कहा है कि, जिसके पिता पितामह हों, और जो किसीका बडा भ्राता होय तो उसको परिवेदनमें तप अग्निहोत्रोंमें दोष नहीं लगता. पिताकी आज्ञाके विनाभी दोषभाव मदनरत्नमें सुमंतुने लिखा है कि, जिसके पिताने आधान न किया हो उसका पुत्र किस प्रकार करै, इससे शंखने कहा है कि उसको अग्निहोत्र करनेमें अधिकार है, यह पिताकी आज्ञासेही करना चाहिये, यह हेमाद्रि लिखते हैं और जो कि, किसीने यह लिखा है कि, पिताकी आज्ञा होनेपरभी अग्न्याधानको कभी भी न करै यह बात अधिकारके निषेधपरही जाननी ॥ अब शूद्रसंस्कारोंको कहते हैं कि, संस्कारको प्राप्त होनेपर शूद्र भी उसी

निर्णयः । यमः—"शूद्रोप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः । न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः ॥" छन्दसा मन्त्रेण । व्यासोपि—"गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च । नामक्रिया निष्क्रमोन्नप्राशनं वपनक्रिया ॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः । केशान्तस्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्काराः षोडश स्मृताः ॥ २ ॥" इत्युक्त्वाह—"नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं स्त्रियाः क्रियाः । विवाहे मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश" इति ॥ हिरण्यगर्भदाननिर्णयः । मदनरत्ने हिरण्यगर्भदाने तु—"गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः" इत्युक्त्वा 'जातकर्मादिकाः कुर्यात् क्रियाः षोडश चापराः' इत्यत्र 'स्त्रिया जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडाविवाहाः षट् । शूद्राणां तु षडेते पञ्चमहायज्ञाश्चेत्येकादश' इत्युक्तम् । रूपनारायणहरिहरभाष्ययोरप्येवम् । शार्ङ्गधरस्तु—'द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव हि । पञ्चैव मिश्रजा-

प्रकार मंत्रके विना कर्म करै: कारण कि, ब्रह्माने किसी मंत्रसे भी उसकी रचना नहीं की, व्यास कहते हैं कि, गर्भाधान, पुंसवन, सीमंत, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन मुंडन, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, केशांत, स्नान, विवाह, अग्निका संग्रह, त्रेता अग्निका संग्रह, यह सोलह संस्कार हैं, यह कहकर वह लिखा है कि, यह कर्णवेधतक नौ कर्म स्त्रियोंके विना मंत्रही होते हैं, और विवाह मंत्रोंसे होता है, शूद्रके ये[1] विवाह समेत दशकर्म मंत्रके विनाही होते हैं ॥ मदनरत्नमें हिरण्यगर्भदानमें तो गर्भाधान पुंसवन, सीमन्त ये कर्म द्विज, हिरण्यगर्भ, (शूद्र) के करै, यह कहकर लिखा है कि, जातकर्मसे लेकर और संपूर्ण षोडशकर्म करै, इसमें स्त्रीके जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडा, विवाह ये छः कर्म हैं, और शूद्रोंके छः ये और पञ्चमहायज्ञ इस प्रकार ग्यारह कहे हैं, इसी प्रकार रूपनारायण और हरिहरभाष्यमें देखलेना चाहिये, शार्ङ्गधर कहते हैं कि, द्विजातियोंके सोलह संस्कार हैं, और शूद्रोंके द्वादश और दूसरे वर्णसङ्कर जातियोंके पांच संस्कार हैं,

१ वैवाहिकोविधिः स्त्रीणामौपनायनिकः परः । पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया । नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते । तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥ इति मनूक्तौ संस्कृताज्ञातृत्वेनैव सिद्धेः ॥ अर्थात्—विवाह संस्कारके समयसे ही स्त्रीका गुरु पतीही होता है पतिकी सेवाही स्त्रीको गुरुकुलमें वास और गृहकार्यही अग्निकी सेवा है,इससे पतिके गायत्री जप वेदपाठभी मानो स्त्रीकेही किये हुए हैं और यथावकाश पतिही अध्ययन करा सकता है पतिके संस्कारोंसे स्त्री संस्कृत है कारण कि, मनुजी कहते हैं जो नामधेयका अभिवादन नहीं जानते वह मैं प्रणाम करता हूं इस प्रकार कहै और इसी प्रकार स्त्री कहै इससे सब स्त्रियोंका विशेषण कहनेसे संस्कृतज्ञाता भी आचार्यपत्नी इसी प्रकार कहै ॥

तीनां संस्काराः कुलधर्मतः ॥ देवव्रतोपनयनमहानाम्नीमहाव्रतम् ॥ ” द्वादश शूद्राणां संस्कारा नाममन्त्रतः इत्याह ॥ अपरार्कस्तु-'गर्भाधानमृतौ पुंसः' इत्यत्राह एतच्चातुर्वर्ण्यपरम् । न द्विजातिमात्रपरम् । तथात्सत्युपनयनं विधाय वाच्यं स्यात् इति तेन तन्मतेष्टौ भवन्ति ॥ ब्राह्मे तु-"विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोपि लभतां सदा" इत्युक्तम् । अत्र सदसच्छूद्रगोचरत्वेन देशभेदाद्व्यवस्था ॥ यत्तु मनुः-'न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति' इति ॥ तदर्थमाह मेधातिथिः-'यत्सामान्यतो निषिद्धं स्तेयानृतादि न तदतिक्रमेऽस्य पापं यथा द्विजानाम् । उपनयनरूपं संस्कारं च नार्हति ' इति ॥ ते च तूष्णीं कार्याः "शूद्रो वर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति । वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ " इति व्यासोक्तेः । 'अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते । ' इति मरीच्युक्तेश्च ॥ इयं परिभाषा सर्वार्था, तेन शूद्रधर्मेषु सर्वत्र विप्रेण मन्त्रः पठनीयः । सोऽपि पौराण एवेति शूलपाणिः ॥ एवं स्त्रीणामपीति दिक् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ संस्कारनिर्णयः ॥ अथ क्षुद्रकालाः । तत्र जलाशयकालो वाराहे-- "हस्ते चाम्बुपपौष्णकेशवमघामित्रोत्तरारोहिणीदेवे-

---

वे नाम मन्त्रसे होते हैं; यथा गणेशकी पूजामें ' गणेशाय नमः ' अपरार्कने तो ऋतुकालमें गर्भाधान तथा पुंसवन करनेमें यह लिखा है कि, यह बात चारों वर्णोंके विषयमें है, केवल ब्राह्मणजातिमात्रके विषयमें नहीं जानना । कारण कि, इसी प्रकार मानोगे तो यज्ञोपवीतको करके यह अर्थ होगा तिससे उसके मतमें आठ संस्कार लिखे हैं ॥ ब्रह्मपुराणमें तो यह कहा है कि, शूद्र भी विवाहमात्र संस्कारको सदा प्राप्त होसकता है, इसमें देशभेदसे अथवा यह श्रेष्ठ और अधम शूद्रके विषय होनेसे व्यवस्था लेनी है जो कि, मनुने यह लिखा है कि (न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति): इसका अर्थ मेधातिथिने यह लिखा है कि, जो चोरी अथवा झूँठ बोलना आदि सामान्यसे निषिद्ध हैं, इनके अतिक्रम (उलंघ) से जैसे द्विजोंको पाप लगता है, वैसे इस शूद्रको. नहीं होता, और यह शूद्र उपनयनरूप संस्कारके योग्य नहीं है, वे संस्कार मौन होकर करै कारण कि,व्यासने कहा है कि, चौथा वर्ण शूद्र वर्ण होनेसे वेदके मन्त्र स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदिके विना वेदविहित धर्मके योग्य होता है, और मरीचि लिखते हैं कि, मन्त्रोंसे रहित शूद्रोंके निमित्त ब्राह्मण मन्त्रोंको पढ़ै, यह वाक्य सबोंके निमित्त है इससे शूद्रके धर्मोंमें सर्वत्र ब्राह्मणको पौराणिक मन्त्र पढना चाहिये, यह शूलपाणिका कथन है स्त्रियोंके कर्ममें भी जानना चाहिये, यह संक्षेपसे कहा है ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां संस्कारनिर्णयः । अब क्षुद्रकाल कहते हैं इसमें प्रथम कूपादिका समय निरूपण करते हैं वराहमें लिखा है कि,

ज्येषु च शुक्रसौम्यशशभृद्वागीशवारांशके। रिक्तां छिद्रतिथिं विहाय वृषभे नक्रे कुळीरे घटे मीने कूपतडागकर्म मुनयः शंसन्ति शुद्धेऽष्टमे॥ हस्तो मघानुराधा-पुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः। शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः॥२॥" हेमाद्रौ भविष्ये-"तस्मिन् सलिलसंपूर्णे कार्तिके तु विशेषतः। मुनयः केचिदि-च्छन्ति व्यतीते चोत्तरायणे॥ न कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणम्॥" दीपिकापि-"मार्तण्डेन्दूडुशुद्धौ सुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्ले मूलाषाढो-त्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशुक्राज्यचन्द्रे। मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णा मदन १३ रवि १२ तिथौ सद्वितीयातृतीये कार्या तोयप्रतिष्ठाज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने॥" वराहः-"आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः। नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः॥ नैर्ऋत्ये बालभयं वनिताक्षयं च वायव्ये। दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषास्तु शुभावहाः कूपाः॥ २॥" वास्तुशास्त्रे-"भूतिं पुष्टिं पुत्रहानिं पुरंध्रीनाशं मृत्युं संपदं शत्रुबाधाम्। किंचित्सौख्यं शंभुकोणादि कुर्यात्कूपो मध्यगेहमर्थक्षयं च॥" उत्सर्गविधिश्चोक्तो बह्वृचपरिशिष्टे-'अथातो वापीकूपतडागयज्ञं व्याख्यास्यामः। पुण्येऽह्न्युदकसमीपेऽग्निं समाधाय वारुणं चरुं श्रपयित्वाज्यभागान्ते आज्याहुतीर्जुहुयात्॥ समुद्रज्येष्ठेति प्रत्यृचं ततो हविषाष्टौ

कुएको हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा नक्षत्रमें प्रारंभ करै, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, जलभरे कुएकी प्रतिष्ठा कार्तिकमें करनी, कोई मुनि उत्तरायणके बीतनेपर कहते हैं इसमें कारण जल है समयका नियम नहीं है अर्थात् जब जलसे पूर्ण हो तभी प्रतिष्ठा आरम्भ करै, दीपिकामें कहा है सूर्य, चन्द्र, ताराकी शुद्धि होनेपर विष्णुके शयनको छोडकर मावादि छः महीनोंमें शुक्लपक्ष, मूल, उत्तराषाढ, पूर्वाषाढ, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, हस्त, रेवती, ज्येष्ठा, रोहिणी, मृगशिर, अनुराधा इन नक्षत्रोंमें तथा पंचमी, दशमी, पूनो १३। १२। २। ३ तिथि, बुध, बृहस्पति, शुक्रवार श्रेष्ठ लग्न और पवित्र कालमें जलाशयकी प्रतिष्ठा करै वराहने कहा है ग्राम या घरसे अग्निकोणमें कूप होय तो नित्य भय, दाह तथा इनके तुल्य दुःखको करता है, नैर्ऋत्यमें बालकोंको भय वायव्यमें स्त्रीका क्षय होता है, इस कारण इन तीन दिशाओंको छोडकर और दिशाको कूप उत्तम होता है तथा अच्छा फल मिलता है॥ वास्तुशास्त्रमें लिखा है ईशानादि अष्टदिशाओंमें निर्मित कूप क्रमसे ऐश्वर्य, पुष्टि, पुत्रनाश, स्त्रीनाश, मृत्यु, सम्पत्ति, शत्रुकी पीडा, कुछ सुख करता है और मध्यमें बनवाया हुआ घर और धन नष्ट करता है, बह्वृच-परिशिष्टमें इसकी उत्सर्गविधि लिखी है अब बावडी, कूप, सरोवरका पूजन लिखते हैं, अच्छे दिन जलके निकट अग्न्याधान करै उसपर वरुणदेवतावाले चरुको पकावै, फिर 'तत्त्वा यामि' इत्यादि ऋचासे, 'इमं मे वरुण' इस मन्त्रसे तो आहुतियोंसे स्विष्टकृत् हवन करने

तत्त्वायामीति पञ्च त्वं नो अग्ने इति द्वे इमं मे वरुणेति च स्विष्टकृतं नवमम् । मार्जनांते धेनुं तारयेत् । अवतीर्यमाणामनुमन्त्रयेत् " इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूताः अमृताः सन्तु नित्यम् ॥ मां तारयन्ती कुरु तीर्थाभिषेकं लोकाल्लोकं तरते तीर्यते च इति पुच्छाग्रेऽन्वारब्ध उत्तीर्यापो अस्मान्मातरः शुन्धयन्त्वित्यथापराजितायां दिश्युपस्थापयेत्सूयवसाद्भगवतीति हि कृतं चेद्धिक्रुग्वतीत्यलंकृतां विप्राय दद्यादितरां नाशक्त्या दक्षिणां तत उत्सृजेद्देवपितृमनुष्याः प्रीयन्तामिति ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीत इति ॥ " विस्तरस्तु मात्स्योक्तोऽस्मत्कृते जलाशयोत्सर्गविधौ ज्ञेयः ॥ कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोष उक्तो भविष्ये-" सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम् ।कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्प्रष्टव्यमसंस्कृतम् ॥ तथा-" वापीकूपतडागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतम् ॥अपेयं तद्भवेत्सर्वं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" अथ वृक्षारोपणम् । चण्डेश्वरः-" आदित्यचान्द्रपितृतिष्यविशाखपौष्णमूलोत्तरात्रयतुरंगमवारुणाश्च । एतेषु तारकगणेषु हितं नराणां वृक्षादिरोपणमिहोपदिशंति धीराः ॥ " अथ मूर्तिप्रतिष्ठानिर्णयः । वसिष्ठः-"हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु । तिस्रोत्तराधातृशशांकभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥ "

उपरान्त मार्जन करै फिर गौको जलमें तैराय उससे यह प्रार्थना करै कि, हे गौ ! इस जलको तू शुद्ध और निर्मल कर यह जल सदा पवित्र अमृतरूप रहै, फिर मुझे तराती हुई तू तीर्थाभिषेक सम्पादन कर । तथा लोकसे लोक तरता तराता है इस मन्त्रसे पूंछका अग्रभाग थांमकर ' आपो अस्मा ' इस मन्त्रसे दक्षिणा और उस गौका गमन करावे तब " सूयवसाद्भगवती " इत्यादि तीन मन्त्रोंसे गौको आभूषण पहराय छोड दे उसे वा और दे उसे वा और गौको ब्राह्मणके निमित्त प्रदान करै फिर शक्तिसे दक्षिणा देकर कहै देवता और पितर प्रसन्न हों फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराय स्वस्तिवाचन करावे, इस विधिका विस्तार मत्स्यपुराणमें हमारी निर्मित कीहुई जलोत्सर्गविधिमें जानना चाहिये ॥ कूप आदिका उत्सर्ग न करै, तो उसमें दोष भविष्यपुराणमें यह लिखा कि, जल सदा पवित्र होता है पर संस्कारही जल अपवित्र होता है, हे राजन् ! असंस्कृत जलको कुशाके अग्रसे भी न छुए, तथा बावडी, कूप, सरोवर इनके असंस्कृत जलको न पान करै, यदि पीले तो चान्द्रायण व्रत करै ॥ अब वृक्षारोपण कहते हैं । चण्डेश्वर कहते हैं कि, पुनर्वसु, मृगशिर, मघा, पुष्य, विशाखा, रेवती, मूल, तीनों उत्तरा, अश्विनी, शतभिषा इन नक्षत्रोंमें वृक्ष लगाना मनुष्योंको हितकारी है यह पण्डित कहते हैं ॥ अब मूर्तिप्रतिष्ठाको कहते हैं वशिष्ठ कहते हैं कि, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा और श्रवणसे तीन, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा नक्षत्रोंमें सब देवताओंकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठफल देती है. मत्स्यपुराणमें

मात्स्ये-" चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥ " नारदस्तु चैत्रं निषेधति-' विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु ' इति ॥ तेनात्र विकल्पः । अत्र माघमासो विष्णुप्रतिष्ठाव्यतिरिक्तविषयः ' माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् ' इति विष्णुधर्मोक्तेरिति हेमाद्रिः ॥ मात्स्ये-" दृढा धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता । द्वितीयायां धनोपेता तृतीयायां धनप्रदा ॥ चतुर्थ्यां नाशमाप्नोति यमस्य स्यात्सुखावहा । विनायकस्य देवस्य तथा तत्र हितप्रदा ॥ पञ्चम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा भवेत् । षष्ठ्यां लक्ष्मीयुता नित्यं सप्तम्यां रोगनाशिनी ॥ अष्टम्यां धान्यबहुला नवम्यां च विनश्यति । भद्रकाल्याः कृता तत्र कर्तुर्भवति तुष्टये ॥ धर्मवृद्धिकरी ज्ञेया दशम्यां तु तथा तिथौ । एकादश्यां तथा युक्ता द्वादश्यां सर्वकामदा ॥ त्रयोदश्यां तथा ज्ञेया चतुर्दश्यां विनश्यति । कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत् ॥ पञ्चदश्यां तथा शुक्ले सर्वकामकरी भवेत् । आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा । हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरास्तथा ॥ अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते ॥ ९ ॥" श्रीपतिः-" रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनीवासवा-

लिखा है कि, चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख, माघमें सब देवोंकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है. नारदने तो प्रतिष्ठामें चैत्रमासको वर्जित किया है कारण कि, यह कथन है कि, चैत्रसे रहित माघ आदि पांच महीनोंमें प्रतिष्ठा करै, इस वाक्यसे यहां विकल्प है. हेमाद्रिने यहां माघमहीना विष्णुकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें कहा है कारण कि, विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, माघमासमें विष्णुकी प्रतिष्ठा करनेवालेको नष्ट करनेवाली है और फाल्गुनमें शुभ देती है, यह विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है ऐसा हेमाद्रि कहते हैं ॥ मात्स्यमें लिखा है कि, प्रतिपदाके दिन दृढ (सदा रहनेवाली), धनकी करनेवाली, स्फीत अर्थात् अतिशय वृद्धि करनेवाली होती है, तथा द्वितीया आदि पूर्णिमा पर्यंत पन्द्रह १५ तिथियोंमें कीहुई प्रतिष्ठा क्रमसे धनसे युक्त, धन देनेवाली, नाशकारक, लक्ष्मीसे युक्त, तथा कर्ताको वरदायक, लक्ष्मीयुक्त, रोगनाशक, बहुत धान्यकी समृद्धि कर्ता, नाशवान्, धर्मकी वृद्धिके करनेवाली, सर्व कामनाओंकी दाता, सर्व काम दाता, सर्वकामप्रद, नाशकारक, कर्ताकी नाशक, सम्पूर्ण कामनाओंकी दाता होती है और चतुर्थीमें यमराज तथा गणेशका प्रतिष्ठा सुख और हितदायी होती है, नौमीमें भद्रकालीकी प्रतिष्ठा करनेवालेको प्रसन्न करनेवाली है इससे इनसे सिवायकी प्रतिष्ठाओंमें पूर्वोक्त फल जानना; मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, मूल, तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिर, अनुराधा, स्वाति ये नक्षत्र प्रतिष्ठामें उत्तम हैं ॥ श्रीपति कहते हैं कि, रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, धनिष्ठा, अनुराधा,

नूराधैन्दवजीवभेषु गदितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम् । पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम् ॥ गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे । श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु ॥ तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाहविधायिनी स्याद्धनदा दृढा च । आनन्दकृत्कल्पविनाशिनी च सूर्यादिवारेषु भवेत्प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥ " माधवीये वैखानसः-" मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः । महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥ " वैशब्दोऽप्यर्थे ॥ लिङ्गप्रतिष्ठायां विशेषः हेमाद्रौ लक्षणसमुच्चये-" उत्तराशागते भानौ लिङ्गस्थापनमुत्तमम् । दक्षिणे त्वयने पूज्यं त्रिवर्षार्द्धं भयावहम् ॥ स्वगृहे स्थापनं नेष्टं तस्माद्वै दक्षिणायने । स्थापनं तु प्रकर्तव्यं शिशिरादावृतुत्रये ॥ प्रावृषि स्थापितं लिङ्गं भवेद्वरदयोगदम् । हेमन्ते-" ज्ञानदा चैव श्रेष्ठा स्यादयने मुक्तिमीहताम् । दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः॥" इति ॥ शैवसिद्धान्ते-" शेखरोक्तेर्मुक्तिकामं शिशिरे गर्वभूतिदम् । लक्ष्मीप्रदं वसन्ते च ग्रीष्मे च जयशान्तिदम् । यतीनां सर्वकाले च लिङ्गस्यारोपणं मतम् । " रत्नावल्याम्-

---

मृगशिर, पुष्य नक्षत्रोंमें विष्णुकी तथा पुष्य, श्रवण, अभिजितमें इन्द्र, ब्रह्मा, कुबेर, स्वामिकार्तिककी अनुराधामें सूर्यकी हस्त, मूलनक्षत्रमें दुर्गा आदिकी स्थापना उत्तम है, गणेश, रक्ष, यक्ष, भूत, असुर, प्रमथ, फणी, (शेष) सरस्वती आदिकी रेवतीमें, सुगत (जिन) की श्रवणमें अन्यलोकपालोंकी धनिष्ठामें स्थापना उत्तम कही है इनमें अखिल(सम्पूर्ण) देवताओंका स्थिरनक्षत्रोंमें स्थापना उत्तम है, सूर्यआदि वारोंमें कीहुई प्रतिष्ठा क्रमसे तेजस्विनी मंगलकारी, अग्निदाहकारक, धनदाता, बलवान्, आनन्दकर्ता, करप (सामर्थ्य) की नाशकारक होती है ॥ माधवीयमें वैखानस कहते हैं कि, माता, भैरव, वाराह, नृसिंह, विष्णु महिषासुरघातिनी, दुर्गा इनका दक्षिणायनमें स्थापन करै, यहां अपिके अर्थमें वैशब्द है, अर्थात् उत्तरायणमें भी स्थापन करै, लिंगप्रतिष्ठामें तो हेमाद्रिमें लक्षणसमुच्चयके वाक्यसे यह विशेष लिखा है कि, उत्तरायण सूर्यमें लिंगस्थापन श्रेष्ठ है, दक्षिणायनमें स्थापित किया लिंग डेढ॥१॥ वर्षतक भयदायी है, इससे दक्षिणायन सूर्यमें अपने घरमें शिवलिंगका स्थापन न करै, शिशिर आदि तीन ऋतुओंमें स्थापना करना चाहिये प्रावृट् ऋतुमें शिवलिंग स्थापन करनेसे वर और योग देताहै हेमन्तमें ज्ञानको प्रदान करता हैं और शैवसिद्धांतमें शेखरका तो यह कथन है कि, भोगकी इच्छावाला उत्तरायणमें और मोक्षका अभिलाषी दक्षिणायनमें लिंगकी प्रतिष्ठा करै, और मलमासमें लिंगकी प्रतिष्ठा त्याज्य है इससे मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्य गर्व और भूतिका दायक लिंग स्थापन शिशिर तथा हेमंतमें करै, वसंत तथा ग्रीष्म ऋतुमें लिंगका स्थापन क्रमसे लक्ष्मी और जयशांतिको देता है यति (संन्यासि) योंको तो लिंगका स्थापन

"माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु । मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापनमुत्तमम् ॥" विष्णुरप्याह ॥ तत्रैव वैखानसः—"मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ निन्दितौ ब्रह्मणा पुरा । मासेषु फाल्गुनः श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च ॥ वृषे चाप्याश्वयुङ्मासे श्रावणे मासि वा भवेत् ॥" बौधायनसूत्रे विष्णुप्रतिष्ठामुपक्रम्य—'द्वादश्यां श्रोणायां वा यानि चान्यानि पुण्यनक्षत्राणि' इति ॥ कृत्तिकादिविशाखान्तेष्वित्यर्थः ॥ सर्वदेवेषु मासविशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे—"माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् । लोकानन्दकरी चैत्रे वैशाखे धनसंयुता ॥ आज्ञाप्लुता सदा ज्येष्ठे आषाढे धर्मवृद्धिदा । श्रावणे धनहीना स्यात् प्रौष्ठपादे विनश्यति ॥ आश्विने नाशमाप्नोति वह्निना कार्त्तिके तथा । सौम्ये सौभाग्यमतुलं पौषे पुष्टिरनुत्तमा ॥ दोषान्विताधिमासे स्यात्कर्तुरात्मन एव च ॥ ४ ॥" इति ॥ अत्र श्रावणाश्विनयोर्निषेधो मार्गशीर्षविधिश्च विष्णुव्यतिरिक्तविषयः पूर्वोक्तवचनादिति हेमाद्रिः ॥ माघश्रावणभाद्रपदनिषेधः शिवव्यतिरिक्तविषयः ॥ तत्र तद्योक्तेः ॥ तत्रैव देवीस्थापननिर्णयः । देवीस्थापने तत्रैव विशेषो देवीपुराणे—'देव्या माघेऽश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदा ।' तथा—"न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोऽत्र कारणम् । सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥" अन्यश्चात्र विचारो हेमाद्रौ

सब कालमें करना ॥ रत्नावलीमें भी लिखा है कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ इन पांच मासोंके शुक्लपक्षमें लिंगस्थापन उत्तम है विष्णु तथा वैखानसका वाक्य है ब्रह्माने पूर्व मार्गशीर्ष पौष ये दो मास निन्दित कहे हैं, और फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आश्विन, श्रावण इन मासोंमें भी श्रेष्ठ है, बौधायनसूत्रमें तो विष्णुकी प्रतिष्ठाका आरंभ करके यह लिखा है कि, भादोंकी द्वादशी (श्रोणा) और कृत्तिकासे लेकर विशाखा पर्यन्त जो शुद्ध नक्षत्र हैं वे श्रेष्ठ हैं. हेमाद्रिमें विष्णुधर्मका कथन है कि, माघादि बारह महीनोंमें सब देवोंकी की हुई स्थापना क्रमसे यह फल देती है कि, कर्त्ताका नाश कल्याण, संसारको सुख, धनयुक्त, आज्ञामें तत्पर धर्मकी वृद्धि, धनका नाश, विनाश, हानि वह्निसे नाश, अतुल सौभाग्य, सर्वोत्तम पुष्टि, तथा मलमासमें की हुई प्रतिष्ठा कर्त्ता और अपनेको दोष देनेवाली होती है, इसमें श्रावण और आश्विनका निषेध और मार्गशीर्षकी विधि प्रथम कहेहुए वाक्योंसे विष्णुकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें है यह हेमाद्रिका कथन है, और माघ, श्रावण, भाद्रपदका निषेध शिवकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें है, कारण कि, इनमें शिवकी प्रतिष्ठा लिखी है ॥ वहांही देवीकी प्रतिष्ठामें देवीपुराणके कथनसे यह विशेष लिखा है कि, देवीका स्थापन आश्विन तथा माघ महीनेमें उत्तम और संपूर्ण इच्छाओंको देता है इसमें तिथि, नक्षत्र तथा व्रतका दिन कारण नहीं, अर्थात् समयका नियम नहीं संपूर्ण

ज्ञेयः ॥ नारदः—" हन्त्यर्थहीना कर्त्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम् । स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥[1] " अत्राधिकारिनिर्णयः । अत्राधिकारिण उक्ताः कृत्यकल्पतरौ देवीपुराणे—" वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा । ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः ॥ चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः । भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः ॥ मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः ॥ लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा ॥ " शिवसर्वस्वे भविष्ये—" यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादिं मां जगत्पतिम् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः ॥ तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभाँल्लोकानुत्तमान् ॥ " तिथितत्त्वे स्कान्दे—" शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये । तस्याहमर्चां गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्च सुव्रते । एवं दिनेदिने देवं पूजयेदम्बिकापतिम् ॥ संन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत् । नमोऽन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते ॥ ३ ॥ " एतच्च

समयमें करना और विशेषकर कृष्णपक्षमें करना, इसमें और विचार हेमाद्रिमें जानना चाहिये । नारदने लिखाहै कि, अर्थसे (धन) हीन प्रतिष्ठाके करनेवालेको, मंत्रसे हीन ऋत्विक्को लक्षणोंसे हीन स्त्रीको प्रतिष्ठा नष्ट करती है, निदान प्रतिष्ठाकी तुल्य और कोई भी वैरी नहीं है ॥ इसमें अधिकारी तो कृत्यकल्पतरु ग्रन्थमें देवीपुराणमें ये लिखे हैं कि, वर्ण और आश्रमोंके भेदसे देवताओंका स्थापन करना चाहिये अन्यथा न करै, ब्राह्मणको गायत्रीसहित ब्रह्माका स्थापन करना चाहिये, तथा सुखकी इच्छावाले चारों वर्णोंको विष्णुका स्थापन करना चाहिये, चारों वर्ण तथा अंत्यज (अतिशूद्रको) भैरवका स्थापन करना चाहिये, संपूर्णलोक सुरोंमें श्रेष्ठ मातृकाओंका स्थापन तथा अर्चन करैं, गृहस्थी और यति लिंगका स्थापन करके निरन्तर पूजन करै, शिवसर्वस्वमें भविष्यपुराणके मतसे लिखा है कि, जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य शूद्र मेरे तत्पर होकर देवताओंमें प्रथम तथा जगत्के स्वामी मेरा लिंगमें अर्चन करता है, उसको मैं प्रसन्न होकर उत्तमोत्तम सुंदर लोकोंका प्रदान करता हूँ ॥ तिथितत्त्वमें स्कंदपुराणमें लिखा है कि, हे प्रिये ! शूद्रभी जो मेरी पूजाके कार्मोंको सदैव करता है हे चन्द्रखंडसे विभूषित ! मैं उसकी पूजाको ग्रहण करता हूं, हे शोभन व्रतवाली ! हे देवि ! ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थको प्रतिदिन इसी प्रकार अम्बिकापतिका पूजन करना चाहिये, संन्यासी ॐकार मात्रसे महादेवका अर्चन करै, और स्त्री ' ॐनमः शिवाय ' इस मंत्रसे अर्चा करै, ये वाक्य पुराणोंमें प्रसिद्ध विश्वेश्वर आदि पुरातन लिंगोंके पूजाके विषयमें है ॥

---

१ अन्नहीन राष्ट्रको मन्त्रहीन ऋत्विक्को और श्रद्धाहीन यज्ञकर्ताको नष्ट करता है इससे यज्ञको समान शत्रु नहीं है ।

पुराणप्रसिद्धजीर्णलिङ्गपूजाविषयम् ॥ स्त्रीशूद्रस्थापितविग्रहादौ निर्णयः । यानि तु त्रिस्थलीसेतौ नारदीये–" यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः । न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ नमेद्यः शूद्रसंस्पृष्टं लिङ्गं वा हरिमेव वा । स सर्वयातनाभोगी यावदाचन्द्रतारकम् ॥ पाषण्डपूजितं लिंगं नत्वा पाषण्डतां व्रजेत् । आभीरपूजितं लिङ्गं नत्वा नरकमश्नुते ॥ योषिद्भिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेत्तु यः । स कोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं वसेत् ॥ ४ ॥" इत्यादीनि । तानि नूतनस्थापितलिङ्गादिविषयाणि ॥ " यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्भिर्यथाविधि । तदाप्रभृति शूद्रश्च योषिद्वापि न संस्पृशेत " इति तत्रैवोक्तेः ॥ स्त्रीशूद्राणां प्रतिष्ठाधिकारनिषेधनिर्णयः । प्रतिष्ठायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः– "स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर । स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य वा ॥ यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेन्नरः । इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु ॥ शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोपि वा । केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥ ३ ॥" इति वृहन्नारदीयस्कान्दोक्तेरिति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः ॥ चतुर्वर्णैरिति पूर्वोक्तवचनाद्विष्ण्वादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति युक्तं पश्यामः ॥ तत्रैव गौतमः–'शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः

और जो कि, त्रिस्थलीसेतुमें नारदपुराणके यह वाक्य हैं कि, जो मनुष्य शूद्रसे स्पर्श हुए लिंग तथा विष्णुकी मूर्तिकी अर्चा करताहै वह नरकोंके दुःखको सूर्य चन्द्रमातक भोगताहै, तथा पाखण्डियोंसे अर्चित लिंगको नमस्कार कर पाखण्डताको प्राप्त होताहै, और आभीरोंसे पूजित लिंगको प्रणाम करके नरकको गमन करताहै तथा जो कि, ये वाक्य है कि, छः (पूर्वोक्त शूद्र आदिकों) से पूजे हुए लिंगको तथा विष्णुको प्रणाम करताहै वह कोटिकुलसहित कल्पपर्यन्त नरकमें गमन करता है, वे नवीन स्थापन किएहुए लिंगोंके विषयमें जानना, कारण कि, वहांही यह लिखाहै कि, जबसे मन्त्रके जाननेवालोंने जिस लिंगकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करदी तबसे लेकर फिर उस लिंगका शूद्र और स्त्री स्पर्श न करैं ॥ प्रतिष्ठामें शूद्रआदिकोंका अधिकार नहीं है यह त्रिस्थलीसेतुमें पितामह (हमारे बबा) जीके चरणोंने लिखाहै कारण कि, बृहन्नारदीयपुराणमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, हे नृप ! स्त्री, यज्ञोपवीतरहित तथा शूद्र इनको विष्णु तथा शंकरकी प्रतिमाके स्थापन करनेका अधिकार नहीं है, जो कि, शूद्रसे स्थापित किये लिंग तथा विष्णुको प्रणाम करता है वह इस लोकमें ही अत्यन्त दुःखोंको प्राप्त होताहै परलोकका तो कहना क्या है शूद्र, यज्ञोपवीतरहित पुरुष, स्त्री, पतित ये विष्णु तथा शिवका स्पर्श करके नरकको गमन करते हैं, विष्णुआदिकी प्रतिष्ठाके विषयमें 'चतुर्वर्णैः' इत्यादि लिखेहुए पूर्व वाक्यसे शूद्रका विकल्प हैं अर्थात् शूद्रको अधिकार भी है, यह तो हमभी युक्तही देखते हैं, वहांही गौतमने लिखाहै कि, शूद्र मनुष्य उत्तमको

कुर्यादुदङ्मुखः ॥ ' वाचस्पतिमतम्-' प्राक्पश्चिमादगास्यस्तु प्रातः सायं निशासु च ' इति ॥ प्रयोगपारिजाते गृह्यपरिशिष्टे-'प्रतिमाः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखो यजेताऽन्यत्र प्राङ्मुखः ।' एतच्च स्थिरप्रतिमाविषयम् । अन्यत्र चलार्चासु ॥ प्रतिमानिर्णयः । अथ प्रतिमा मार्गार्चनदीपिकायां भविष्ये-"सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी च तथा भवेत् । पाषाणधातुयुक्ता वा रीतिकांस्यमयी तथा ॥" रीतिः-पित्तलम् ॥ शुद्धदारुमयी वापि देवतार्च्या प्रशस्यते । अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिं यावदेव तु ॥ गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥ २ " पञ्चरात्रे तु-'मृद्दारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टमयीं न तु' इति निषेध उक्तः ॥ भागवते-"शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती । मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥" काष्ठं मधुकस्यैव । "तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुंधरे । कृत्वा तत्प्रतिमां चैव प्रतिष्ठाविधिनार्चयेत् ॥" इति वराहोक्तेः ॥ देवीपुराणे-"सप्तांगुलं समारभ्य यावच्च द्वादशांगुलम् । गृहेष्वर्चा समाख्याता प्रासादे वाधिका शुभा ॥ " तिथितत्त्वे कालिकापुराणे-"प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना । प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्य देवस्य वा हरेः ॥ अन्येषामपि

मुख करके सदैव शिवजीका अर्चन करै. वाचस्पतिका तो यह कथन है कि, प्रातःकाल सायंकाल तथा रात्रिमें क्रमसे पूर्व पश्चिम तथा उत्तरकी ओर मुख करके पूजा करै प्रयोगपारिजातमें गृह्यपरिशिष्टका कथन है कि, जिन प्रतिमाओंका पूर्वको मुख है, उनका पूजन उत्तरको मुख करके करै, और दूसरोंका प्राङ्मुख होकर करै, यहभी स्थिरप्रतिमाके विषयमें है चलंदकी पूजाके विषे तो त्याग करै ॥ अब प्रतिमाओंको लिखतेहैं, मार्गार्चनदीपिकामें भविष्यपुराणका लेख है कि, सोना, चांदी, तांबा, मृत्तिका, पाषाण और धातुमें युक्त पीतल, कांसी, शुद्ध काष्ठकी प्रतिमा उत्तम होतीहै, अंगूठेके पर्वसे लेकर जितनी एक (बिलस्त) होतीहै उतनी प्रतिमा घरोंमें स्थापित करै, इतनेसे अधिक उत्तम नहीं होती यह पंडितोंका कहना है पंचरात्रमें तो यह निषेध लिखाहै कि, मृत्तिका, काष्ठ, लाख, गोमेद, मधूच्छिष्ट (मोम) की मूर्ति न बनावे. भागवतमें भी कहाहै कि, शिला काष्ठ लोहेकी तथा लेप्य लिपी लिखी हुई सिकता रेतीकी मनोमयी तथा मणिकी निर्मित हुई ये आठ प्रकारकी मूर्तियां होतीहै, यहां के काष्ठशब्दसे महुएका ही ग्रहण है कारण कि, वराहपुराणमें लिखाहै कि, हहो हे वसुन्धरे ! काष्ठोंमें मधुकको लाकर उसकी प्रतिमा निर्माण करै फिर उसकी प्रतिष्ठाविधिसे पूजन करै ॥ देवीपुराणमें भी कहाहै कि, सात अंगुलसे लेकर बारह अंगुलतक परिमाणकी घरोंमें प्रतिमा लिखी है, प्रासाद (मंदिर) में तो इससे अधिक उत्तम है. तिथितत्त्वमें कालिकापुराणका कथन है कि, प्रतिमाके दोनों कपोलोंको दाहिने हाथसे छूकर उसमें देवता वा विष्णुकी प्राणप्रतिष्ठा

देवानां प्रतिमासु च पार्थिव । प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥ वासुदेवस्य बीजेन तद्विष्णोरित्यनेन च । तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ॥ एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेपि समाचरेत् । अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥ ९ ॥ " हयशीर्षपञ्चरात्रे-"अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात् । आभिरूप्याच्च बिम्बानां देवः सान्निध्यमृच्छति ॥ " प्रयोगपारिजाते व्यासः-"प्रतिमापटयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् । कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम् ॥ " लिङ्गे विशेषस्तिथितत्त्वे भविष्ये-"मृद्भस्मगोशकृत्पिष्टताम्रकांस्यमयं तथा । कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि ॥ वार्क्षं वित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं सर्वकामदम् । कृत्वा पूजय विप्रेन्द्र लप्स्यसे वाञ्छितं फलम् ॥ २ ॥ " तत्रैव कालकौमुद्यां स्कान्दे-" अक्षादल्पपरीमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः । कुर्वीताङ्गुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचित्समाचरेत् ॥ " अक्षोऽशीतिर्गुञ्जाः । गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः ॥ ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री ' इत्यमरकोशात् । प्रयोगपारिजाते क्रियासारे-"नवाष्टसप्ताङ्गुलिकं लिङ्गं

करै, हे राजन् ! दूसरे देवताओंकी प्रतिमामें भी देवत्व (देवतापन) की सिद्धिके निमित्त प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये, मन्त्रको जाननेवाला प्रतिमाके हृदय पर वासुदेव मन्त्रके बीजसे वा "तद्विष्णोः' इत्यादि मंत्रसे अंगूठा रखकर इन मन्त्रोंसे हृदयमें प्राणप्रतिष्ठा करै, कि, इसके निमित्त प्राण स्थित हों, इसके निमित्त प्राण गमनागमनको प्राप्त हों, और इसमें जो कोई देव है पूजाके निमित्त देवत्वको प्राप्त हो ॥ हयशीर्षपंचरात्रमें भी कहाहै कि, अर्चकके तपके योगसे, तथा अतिशयपूजाके होनेसे, तथा प्रतिमाके रूपके तुल्य होनेसे देवता उसमें स्थित होतेहै । प्रयोगपारिजातमें व्यासने कहा है कि, पट्टे वा यन्त्रमें लिखी हुई प्रतिमाको सम्पूर्ण स्नान न कराना, किन्तु पर्वके दिन अथवा जब मृत्तिका आदिसे मलिन होजाय, तब स्नान करावे. तिथितत्त्वमें भविष्यपुराणके वाक्यसे शिवलिंगके विषे यह विशेषवर्णन किया है कि, मृत्तिका, भस्म, गोबर, चून, ताँबा, कांसीसे लिंगको निर्माण कर जो एकवारभी पूजा करता है वह दशसहस्र १०००० कल्प पर्यंत स्वर्गमें निवास करता है, हे विप्रेन्द्र ! धनदायक काष्ठके लिंगको तथा सम्पूर्ण कामनादायक स्फटिकके लिंगको तुम पूजो इससे तुमको वांछित फलकी प्राप्ति होगी ॥ वहांही कालकौमुदीमें स्कंदपुराणका कथन है कि, अक्षसे थोडे परिमाणका तथा अंगुष्ठसे छोटे परिमाणका लिंग कभीभी न बनावे, अस्सी ८० चौटलियोंको अक्ष कहते हैं कारण कि अमरकोषमें कहा है कि, पांच चौटलियोंको अद्यमाष और उन सोलह अद्यमाषोंको अक्ष तथा कर्ष कहते हैं. प्रयोगपारिजातमें क्रियासारका यह कथन है कि, नौ सात आठ अंगुलका लिंग श्रेष्ठ छः पांच तथा

श्रेष्ठमिहोच्यते । षट्त्र्यङ्कचतुर्मानं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ॥ त्रिद्व्येकाङ्गुलिमानं यत्त्रिविधं तत्कनीयसम् । एवं नवविधं प्रोक्तं चरलिङ्गं यथाक्रमम् ॥ २ ॥ " पञ्चसूत्रीनिर्णयः । अथ पञ्चसूत्रीनिर्णयः गौतमीतन्त्रे-" लिंगमस्तकविस्तारो लिंगोच्छ्रायसमो मतः । परिधिस्तत्र गुणितस्तद्वत्पीठं व्यवस्थितम् ॥ प्रणालिका तथैव स्यात्पञ्चसूत्रविनिर्णयः ॥ " अत्रेदं तत्त्वम् ॥ लिङ्गमस्तकविस्तारं लिङ्गोच्चतासमं कृत्वा तत्त्रिगुणसूत्रवेष्टनार्हं लिङ्गस्थौल्यं कृत्वा तत्समं वृत्तं चतुरस्रं वा पीठं विस्तारमधश्चोर्ध्वं च कुर्यात् ॥ पीठोच्चता तु लिङ्गोच्चतातो द्विगुणा । पीठमध्ये लिङ्गाद्द्विगुणस्थूलं पीठोच्चतातृतीयांशेन कण्ठं कृत्वा तस्योर्ध्वं अधश्च समं वप्रद्वयं त्रयं वा कृत्वा लिङ्गविस्तारषष्ठांशेन पीठोपरि बाह्यमेखलां कृत्वा तदन्तः संलग्नतत्समं खातं कृत्वा पीठाद्बहिर्लिङ्गप्रमदीर्घां पीठार्धदीर्घां वा मूले दैर्घ्यसमविस्तारां तृतीयांशेन मध्ये खातां पीठवत्समेखलां प्रणालिकां कुर्यादिति ॥ " अत्र मूलं सिद्धान्तशेखरे शैवागमे च ज्ञेयम् ॥ तिथितत्त्वे ब्राह्मे-' सर्वत्र प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्या-

---

चार अंगुलका लिंग मध्यम, तीन दो तथा एक अंगुलका लिंग कनिष्ठ होता है इस प्रकार यथाक्रम नौ प्रकारका चर लिंग होता है ॥ अब पंचसूत्रीका निर्णय लिखते हैं । गौतमीतन्त्रमें कहाहै कि, लिंगके मस्तकका विस्तार लिंगके ऊँचाईकी तुल्य करना और परिधि (गोलाई) तथा जलहरी और प्रणालिका (मोरी) ये उससे तिगुने प्रमाणकी निर्माण करनी यह पंचसूत्रीका निर्णय कहाहै । इसमें तत्त्व तो यहां है कि, लिंगका मस्तक लिंगकी ऊंचाईकी तुल्य बनाकर फिर उससे तिगुना जिसमें सूत लिपट सके, इतना स्थूल लिंग निर्माण करे फिर उसनाही नीचे ऊपरसे चौडा हो इस प्रकार गोल वा चौकोरही जलहरीको निर्माण करे उसकी ऊँचाई लिंगकी ऊँचाईसे दुगनी करनी चाहिये उसका मध्यभाग उसकी स्थूलतासे दुगुना हो, आसनकी ऊंचाईके तीसरे भाग तितना कण्ठ बनाकर और उसके नीचे ऊपर बराबरके दो परकोट निर्माण कर लिंगके विस्तारके छठे भाग तितनी आसनके ऊपर बाह्यमेखला (कगर) को बनाकर वह उसके भीतर लगी हो, अथवा उसके समान खुदी हो, आसनसे बाहर लिंगके तुल्य लम्बी हो अथवा आसनसे आधे प्रमाणकी हो, और मूलमें दीर्घताके समान चौडी हो आगेसे उससे आधे विस्तारकी हो, और मध्यमें उसके तीसरे भागकी समान खोदी हो ऐसी पीठके तुल्य मेखलासहित प्रणालिकाको निर्माण करै, इसमें प्रमाण सिद्धान्तशेखर तथा शैवागममें लिखे देखलेने चाहिये ॥ तिथितत्त्वके विषय ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, शिव सूर्यकी पूजाके विना सब पूजाओंमें कमल उत्तम है,

---

१ पञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत् । यथाकथंचिद्विधिना रमणीयं प्रकल्पयेदिति सिद्धान्तशेखरे ॥ अर्थात्-पंचसूत्रका विधान पार्थिवमें न विचारे जैसे हो वैसे मनोहर कल्पना करे ॥

र्चनं विना॥' तत्रैव वाराहपाद्मयोः–"गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा। द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा॥ शक्तित्रयं तथा नार्च्यं गणेशत्रयमेव च। द्वौ शंखौ नार्चयेच्चैव भग्नां च प्रतिमां तथा॥ नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं तथा। गृहेऽग्निदग्धा भग्नाश्च नार्च्याः पूज्या वसुंधरे॥ एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद्गृही॥ शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि॥ विषमा नैव पूज्यास्तु विषमेष्वेक एव हि। शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रका॥ खण्डिता स्फुटिता वापि शालग्रामशिला शुभा॥ ९॥" वाराहे–"दद्याद्भक्ताय यो देवि शालग्रामशिलां नरः। सुवर्णसहितां दिव्यां पृथ्वीदानफलं लभेत्।" तत्रैव–"यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम्। तत्फलं नैव शक्तोऽहं वक्तुं वर्षशतैरपि॥" देवीपुराणे–"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते। स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा॥" अविभक्तानां पृथग्देवपूजामाह प्रयोगपारिजाते आश्वलायनः–"पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम्। अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेद् पृथक्॥" तत्रैव विष्णुधर्मे–"शालग्रामशिलां वापि चक्रांकितशिलां तथा। ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत्॥" इदं स्पर्शसहितपूजाविषयम्॥ "शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोपि वा।

वहांही वाराह तथा पद्मपुराणमें लिखा है कि, हे वसुंधरे! घरमें दो लिंग, दो शालिग्राम, दो द्वारकाचक्र, दो सूर्य, तथा तीन शक्ति, तीन गणेश, दो शंख, खण्डित प्रतिमा, मत्स्यकूर्म आदि दशों अवतार, अग्निसे दग्ध, भग्न प्रतिमाओंको न पूजै, कारण कि, इतनोंके पूजनसे गृहस्थी नित्य उद्वेगको प्राप्त होताहै, शालिग्राम सम (चार छः आदि) पूजने और सममें भी दोकी पूजा न करे, विषममें एकके सिवाय तीन आदि न पूजने, द्वारावतीचक्र सहित शालिग्राम भग्न भी हो तो भी उनकी पूजा करनी कारण कि, शालिग्रामकी शिला भग्न हुई भी सब उत्तम होती हैं. वाराहपुराणमें भी कहा है कि, जो भक्तके निमित्त सुवर्ण सहित शालिग्रामको देता है, हे देवि! उसको पृथ्वीदानका फल प्राप्त होता है, वहांही यह कहा है कि, जो कि, शालिग्रामकी सौ शिलाओंका भक्तिसे अर्चन करता है उसके फलको कहनेको मैं सौ वर्षमेंभी समर्थ नहीं हूँ, देवीपुराणमें कहाहै कि, हे राजन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये निज धर्ममें तत्पर हुए विष्णुकी आराधना करै अन्यथा न करै॥ अविभक्तों (इकट्ठों) को भी प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनने भिन्न २ देवपूजा लिखी है कि, एकपाकवाले भी द्विजातियोंको ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र, देवपूजा तथा सन्ध्या भिन्न २ नित्य करनी चाहिये। तहांही विष्णुधर्ममें कहा है कि, शालिग्रामकी शिला, द्वारावतीचक्र शिलाका ब्राह्मणको नित्य पूजन करना चाहिये, क्षत्रिय आदिको न पूजनी यह वाक्य स्पर्शसहित पूजाके

केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥ ब्राह्मण्यपि हरं विष्णुं न स्पृशेच्छ्रेय इच्छती । सनाथा मृतनाथा वा तस्या नास्तीह निष्कृतिः । स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणाञ्च जनेश्वर । स्पर्शने नाधिकारोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥ ३ ॥" इति स्कान्दात् ॥ स्पर्शरहिता तु तयोर्भवत्येव ॥ "शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुंधरे । स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः ॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन । स्वपते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥ यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुंधरे । दूरादेवास्पृशन् पूजां कारयेत्सुसमाहितः ॥ २ ॥" इति वाराहोक्तेः ॥ शालग्रामशिलामात्रे निर्बन्धो न प्रतिमादौ । " सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः । लिङ्गान्यपि तु पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च " इति तत्रैवोक्तेः । "चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः । वैश्यैर्द्वावेव संपूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः ॥" इति स्कान्दात् अन्ये तु दीक्षितविषयत्वेन व्यवस्थामाहुः ॥ विष्णुधर्मे-" तयोरसंभवेऽर्चा ये सा चेह नवधा स्मृता । रत्नजा हेमजा चैव राजती

विषयमें है; कारण कि, स्कन्दपुराणमें कहा है कि, शूद्र, यज्ञोपवीत रहित पुरुष, स्त्री तथा पतित ये महादेव और विष्णुका स्पर्श करनेसे नरकमें जाते हैं, कल्याणकी इच्छावाली ब्राह्मणी भी विधवा अथवा सुहागिन हो उसे भी विष्णु और शिवको न छूना चाहिये कारण कि, फिर उसको इस लोकमें प्रायश्चित्त नहीं हो सकता, हे राजन् ! स्त्री, यज्ञोपवीतरहित पुरुष, तथा शूद्रको विष्णु तथा शिवके स्पर्श करनेका अधिकार नहीं है ॥ स्पर्शरहित पूजा तो विष्णु शिवकी करनी चाहिये, कारण कि, वाराहपुराणमें लिखा है कि, हीन वर्णको शालिग्रामका स्पर्श करना न चाहिये, कारण कि, स्त्री शूद्रके हाथका स्पर्श वज्रके स्पर्शसे भी अधिक होता है और जो शूद्र वा स्त्री यदि मोहसे स्पर्श करले तो वह प्रलयपर्यन्त घोर नरकमें जाते है यदि शूद्र वा स्त्रीकी अधिक भक्ति हो तो हे वसुन्धरे ! स्पर्शके विना दूरसेही भली प्रकार सावधान होकर पूजन करै, यह स्पर्शमें शालग्राम मात्रके निषेधमें है और प्रतिमा आदिमें नहीं कारण कि, वहांही कहा है कि, संपूर्ण देवताओंकी प्रतिमा प्राणियोंसे रचे लिंग सब वर्णोंको पूजन करने योग्य है स्कंदपुराणमें भी कहाहै कि, चार ४ लिंग ब्राह्मणोंको, तीन क्षत्रियोंको दो वैश्योंको तथा एक शूद्रको पूजन करने योग्य है, और तो दीक्षितके और अदीक्षितके विषयसे व्यवस्था लिखते हैं ॥ विष्णुधर्ममें कहा है कि, उन दोनोंके न मिलनेसे प्रतिमाका अर्चन करै, वह नौ प्रकारकी

॥१ यथा-कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता । प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी । वाल्मी० पवित्राण्यघमर्षणानि जपन्त्यां महाश्वेतायामिति कादम्बर्याम् । अर्थात्-रामायणके अयोध्याकाण्डमें कौसल्याने विष्णुकी पूजा की है महाश्वेताने अघमर्षण जपा है यह उन्हीं स्त्रियोंके निमित्त है जो उपनीतवत् हो वही अगले श्लोकमें खोलदिया है स्त्रीणामनुपनीतानामिति ॥

ताम्रजा तथा ॥ रैतिकपर्वा तथा लौही, शैलजा द्रुमजा तथा। अधमाधमा च विज्ञेया मृण्मयी प्रतिमा च या॥२॥" एषां फलानि तत्रैव ज्ञेयानि॥ "नाच्यां गृहे ऽश्मजा मूर्तिश्चतुरंगुलतोऽधिका। न वितस्त्यधिका धातुसंभवा श्रेय इच्छता॥ एवं लक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता। उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा॥२॥" तत्रैव पाद्मे शालग्रामं प्रक्रम्य-"तत्राप्यामलकीतुल्या पूज्या सूक्ष्मैव या भवेत्। यथायथा शिला सूक्ष्मा तथा स्यात्तु महत्फलम्॥" तथा-"यवमात्रं तु गर्तः स्याद्यवार्धं लिङ्गमुच्यते। शिवनाभिरिति ख्याता त्रिषु लोकेषु दुर्लभः॥" तत्रैव "शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित्। वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम्॥ यो मृतस्तत्समीपे तु मृतो वा नीयतेऽन्तिकम्। स वै मोक्षमवाप्नोति सत्यं सत्यं न चान्यथा॥२॥" तत्रैव-"चक्रा मिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्कमर्चयेत्। चक्राङ्कमिथुनात्सार्द्धं शालग्रामं प्रपूजयेत्॥" तत्रैव वाराहे-"म्लेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति। योजनानां तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुंधरे॥" तत्रैव शालग्रामं प्रक्रम्य-'क्रयक्रीता परिज्ञेया मध्यमा याचिताऽधमा॥' प्रयोगपारिजाते वाराहे-"एवंलक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता। उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा॥" पार्थिवपूजानिर्णयः॥ अथ पार्थिवपूजा नन्दि-

---

है रत्न, सुवर्ण, चांदी, ताँवा, पीतल, लोहा, पाषाण, काष्ठ, मृत्तिका इनकी निर्मित हुई, जो मृत्तिकाकी प्रतिमा है वह अधमसे भी अधम जाननी इनके फल वहांही लिखे हैं, वहांही ब्रह्मपुराणमें शालिग्रामके प्रकरणका आरम्भ करके यह कहा है कि, तिसमें आमलेकी समान जो कि, सूक्ष्महीं हो ऐसी शालिग्रामकी शिला पूजनीय है, कारण कि, जैसी २ शिला सूक्ष्म होगी वैसाही उत्तम फल होगा, तैसेही जो यवमात्रको गर्त कहते हैं, यवके आधेको लिंग कहते हैं, वह शिवनाभि नामसे प्रसिद्ध हैं तीनों लोकोंमें दुर्लभ है॥ वहांही कहा है कि, शालिग्रामकी शिला जहां कहीं स्थित हो वह क्षेत्र चारों ओरसे तीन योजन वाराणसीसे भी एक जौ अधिक होता है, जो उस क्षेत्रके निकट मृत्युको प्राप्त होता है अथवा मरेहुएको जो वहां लेजाय तो उन सबको मोक्ष प्राप्त होता है यह सत्य है, अन्यथा नहीं है। तहांही लिखा है कि, द्वारावतीचक्रके मिथुनको पूजै एककी पूजा न करै, और उसके साथ शालिग्रामका पूजन करना चाहिये। तहांही वराहपुराणमें कहा कि, म्लेच्छदेशमें अथवा शुद्ध देशमें जहां कहीं द्वारावती चक्र विद्यमान हो हे वसुन्धरे! तहां तीन योजनतक मेरा क्षेत्र है, वहांही शालिग्रामका प्रारम्भ करके जो मूल्य देकर लीहो वह श्रेष्ठ और जो मांगी हो वह अधम होती है, यह लिखा है. प्रयोगपारिजातमें वराहपुराणका लेख है कि, इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त परम्पराके क्रमसे आई और गुरुकी दीहुई उत्तम जाननी॥ अत्र पार्थिव-

पुराणे-" आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी । वरमिष्टं लभेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत् ॥ तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥ " तत्रैव-" गोभूहिरण्यवस्त्रादिबलिपुष्पनिवेदने । ज्ञेयो नमःशिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः । सर्वमन्त्राधिकश्चायमोंकाराद्यः षडक्षरः ॥" भविष्ये-'मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः । आग्नेय्यन्ताः प्रपूज्यास्तु वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत् ॥ " अत्र 'न प्राचीमग्रतः शंभोः' इति रुद्रयामले निषेधात् नान्तरालं प्राची किंतु प्रसिद्धैव । तिथितत्त्वे देवीपुराणे-"मृदाहरणसंघट्टे प्रतिष्ठाह्वानमेव च । स्नपनं पूजनं चैव विसर्जनमतः परम् ॥ हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक् । शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमः ॥ २ ॥" स्कान्दे-'शुष्काण्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य निवेदयेत्॥' तत्रैव भविष्ये-'धत्तूरकैश्च यो लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः । स गोलक्षफलं प्राप्य शिवलोके महीयते ॥ " योगिनीतन्त्रे-" शिवागारे मल्लकं च सूर्यागारे च शङ्खकम् । दुर्गागारे वंशवाद्यं मधूरीं न च वादयेत् ॥ " श्राद्धहेमाद्रौ स्कान्दे-'स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं वाससा आप्लुतः शुचिः ॥ ' प्रयोगपारिजाते क्रियासारे-"मध्यमाना-

---

लिंगकी पूजा लिखते हैं । नंदिपुराणमें कहा है कि, जो पार्थिवलिंगको पूजन करता है उसको आयु, बल, लक्ष्मी, पुत्र, धन, सुख तथा मनइच्छित वर मिलते हैं इससे पार्थिवलिंगको संपूर्ण अर्थोंका साधक जानना चाहिये । वहांही कहा है गौ, भूमि, सोना, वस्त्र आदिके तथा बलि और फूलके निवेदनमें ' ॐ नमः शिवाय ' यह मंत्र सब अर्थोंका साधन करनेवाला जानना, आदिमें ओंकारयुक्त यह षडक्षर मंत्र सब मंत्रोंमें श्रेष्ठ है, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, पूर्वआदि क्रमसे आठ मूर्ति शिवजीकी हैं वे आग्नेयीदिशातक पूजन करने योग्य हैं, वेदीपर लिंगमें शिवजीकी पूजा करै, शिवजीकी मूर्त्ति जिस दिशामें हो वह यहां प्राची (पूर्व) जाननी यह रुद्रयामलमें निषेध होनेसे प्रसिद्ध ही पूर्वदिशा लेनी चाहिये तिथितत्त्वमें देवीपुराणका वाक्य है कि, मृत्तिकाके निर्मित किये लिंगमें प्रतिष्ठा, आवाहन, स्नान, पूजन, विसर्जन करै, हर, महेश्वर, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति, महादेव यह क्रमसे जानने । स्कन्द पुराणमें लिखा है कि, बिल्वपत्रके सूखे पत्तोंकोभी निवेदन करना चाहिये ॥ तहांही भविष्यपुराणमें लिखा है कि, जो मनुष्य धतूरोंसे शिवलिंगको एकवारभी पूजता है उसको लक्ष गोदानका फल प्राप्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठा होती है । योगिनीतंत्रमें कहा है कि, महादेवके मंदिरमें मल्लक (बाजेका भेद), सूर्यके मंदिरमें शंख, दुर्गाके मंदिरमें वंशी तथा वीणाको न बजावै. श्राद्धहेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, महादेवके निर्माल्यको स्पर्श कर वस्त्रोंसहित जलमें स्नानसे पवित्र होता है. प्रयोगपारिजातके क्रियासारमें कहा है कि, मध्यमा और. अनामिकाके मध्यमें फूलको

मिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत्। अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ अपनीतं च निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्। अशून्यमस्तकं लिङ्गं सदा कुर्वीत पूजकः ॥ २ ॥ " शूलपाणौ लैङ्गे-" वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्तनम् ॥ न चैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गे महेश्वरम् ॥ सूतके मृतके चैव न त्याज्यं शिवपूजनम् ॥ " तिथितत्त्वे लैङ्गे-" विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया। पूजितोपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम् " रुद्राक्षधारणे निर्णयः रुद्राक्षधारणे विशेषः शिवरहस्ये-" एकवक्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति। अवध्यत्वं प्रतिस्रोतो वह्निस्तम्भं करोति च ॥ द्विवक्रो हरगौरी स्याद्गोवधाद्यघनाशकृत् ॥ त्रिवक्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥ चतुर्वक्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति। पञ्चवक्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यपापनुत् ॥ षड्वक्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यादि नाशयेत्। सप्तवक्रस्त्वनन्तः स्यात्स्वर्णस्तेयादि-पापहृत् ॥ विनायकोष्टवक्रः स्यात्सर्वानृतविनाशकृत्। भैरवो नववक्रस्तु शिवसा-युज्यकारकः ॥ दशवक्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः ॥ एकादशमुखो रुद्रो

लेकर पूजन करै, अंगुष्ठ और तर्जनीके अग्रसे निर्माल्यको अलग करै, फिर उस दूर करी निर्माल्यको चण्डेशके निमित्त निवेदन करदे, पूजन करनेवाला लिंगके मस्तकको कभी खाली न रक्खे ॥ शूलपाणिमें लिंगपुराणका कथन है कि, प्राणोंका त्याग, तथा शिर छेदन होना उत्तम है, परन्तु शिवलिंगमें शिवको पूजे विना भोजन करना उत्तम नहीं निदान मृतकसूतकमें भी शिवके पूजनको न छोडै. तिथितत्त्वमें लिंगपुराणका वाक्य है कि, भस्मके त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षमालाके धारण किये विना पूजेभी महादेव पूजन करनेवालेको फल नहीं देते। तिससे मृत्तिकाका भी त्रिपुण्ड्र मस्तकपर चढाले ॥ रुद्राक्षके धारणमें विशेष शिवरहस्यमें कहा है कि, एकमुखी हो वह साक्षात् शिव होते हैं, वे ब्रह्महत्याको दूर करते हैं तथा सब स्रोतोंको अवध्य और अग्निको रोकते हैं, दोमुखवाले रुद्राक्षको हरगौरी लिखते हैं, वे गोहत्या आदि पापको दूर करते हैं, तीनमुखवालेको अग्निजन्मा लिखते हैं वह पापोंके समूहोंको दूर करता है, चारमुखवाले ब्रह्मा हैं, उनसे मनुष्यकी हत्या दूर होती है, पांच मुखवाले कालाग्नि हैं वह गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके साथ गमन तथा अभोज्यके भोजनके पापको दूर करते हैं, छः मुखवालेको गुह कहते हैं, वह सब भ्रूणहत्याके पापको दूर करते हैं, सातमुखवाले अनंत कहाते हैं उनसे सोनेकी चोरीका पाप नष्ट होता है, आठमुखवाले विनायक वह सब असत्यको नाश करते हैं, नौमुखवाले भैरव शिवकी सायुज्य मोक्षको करते हैं, दशमुखवाले विष्णु वह प्रेतभूतके भयको हरते हैं, ग्यारहमुखवाले रुद्र अनेक यज्ञके फल देते हैं, वारहमुखवालेको आदित्य कहते हैं वह

नानायज्ञफलप्रदः । द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः । त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः । चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ॥६॥" इति ॥ तथा-"विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः । स याति नरकान् घोरान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् । रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥ त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत् ॥२॥" यद्वा ॐ अघोर ॐ हूं अघोरतर ॐ ह्रीं ह्रां नमस्ते रुद्ररूप हूं स्वाहा'अनेनाभिमंत्र्य धारयेत् । तथा-"अष्टोत्तरशतं कार्या चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिमाना वा ततो हीनाधमाः स्मृताः ॥" प्रजापतिः-"मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् । पुत्रार्थी पञ्चविंशत्या पञ्चदश्याभिचारके ॥ सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया । यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सन्मुखम् । तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदं च प्रयच्छति ॥३॥" इति ॥ पदार्थादर्शे बोपदेवः-"रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनवतिमितान् मस्तके विंशती द्वे षट्षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ॥ बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥ १॥" हेमाद्रौ शिवधर्मे-" स्नानं पलशतं ज्ञेपमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः । पलानां द्वे

सब रोगके निवारक हैं, तेरहमुखवाले काम हैं, वह सब कामना और फल देते हैं, चौदहमुखवाले श्रीकण्ठ हैं, वह वंशके उद्धार करनेवाले हैं, तैसेही जो मंत्रके विना भूमिलोकमें रुद्राक्षको धारण करता है, वह जबतक चौदह इन्द्र भोगते हैं तबतक नरकोंमें जाता है, स्नानके समय पञ्चगव्य और पञ्चामृत ग्रहण करै, और रुद्राक्षकी प्रतिष्ठामें पञ्चाक्षरी मंत्र तथा ' त्र्यंबकं यजामहे ' इस मन्त्रको जपै ॥ अथवा (ॐ अघोर ॐ हूं अघोरतर ॐ ह्रीं ह्रां नमस्ते रुद्ररूप हूं स्वाहा) इस मंत्रसे प्रार्थना करके धारण करै, तैसेही माला एकसौ आठकी १०८ हो वा चौवन ५४ दानेकी हो अथवा सत्ताईस २७ दानेकी हो तिससे हीन अधम लिखी है, प्रजापतिने कहा है कि, मोक्ष वा पुष्टिका अभिलाषी पचीस २५ दानोंसे, धनका अभिलाषी ३० से, किसीके मारनेका अभिलाषी १५ दानोंसे जपै, रुद्राक्षके २७ दानोंकी मालाको धारण करके पूजन करता है उसको कोटिगुणा फल होताहै, जो मनुष्य पृथ्वीपर रुद्राक्षको शिवके सन्मुख ब्राह्मणको प्रदान करता है उसपर शिव प्रसन्न होते हैं तथा अपने पदको प्राप्त करते हैं, पदार्थादर्शमें बोपदेवने कहा है कि, कंठमें बत्तीस ३२ रुद्राक्ष और मस्तक पर ४० और दोनों हाथोंमें बारह २ और दोनों बाहोंमें सोलह २ और दोनों नेत्रोंमें चार २ शिखामें एकको और छातीमें १०८ एकसौ आठ रुद्राक्षोंको धारण करनेसे वह प्राणी स्वयं शिवरूप होता है ॥ हेमाद्रिमें शिवधर्ममें लिखाहै कि, सौपलसे स्नान, पचीस पलसे शरीरमें लेपन लगाना

सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ॥ पञ्चविंशत्पलं लिङ्गे अभ्यङ्गं कारयेदथ । शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन च ॥ तावता मधुना चैव दध्ना चैव ततः पुनः । तावतैव च क्षीरेण गव्येनैव भवेत्ततः ॥ भूयः सार्द्धसहस्रेण पलानामैक्षवेण च । रसेन कारयेत्स्नानं भक्त्या चोष्णांबुना ततः ॥ विष्ण्वादौ तु स्कान्दे–" क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम् ॥ घृताद्दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राच्चैक्षवजं तथा ॥ " ब्राह्मे–" देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यंगक्षमा भवेत् । पलानि तत्र देयानि श्रद्धया पञ्चविंशतिः ॥ " इदं क्रोडीकृताभिप्रायेण । तत्रैव संग्रहे–" विष्वक्सेनाय दातव्यं नैवेद्यस्य शतांशकम् । पादोदकं प्रसादं च लिङ्गे चण्डेश्वराय तु ॥ " पंचायतनसन्निवेशनिर्णयः । पंचायतनसंनिवेशमाह बोपदेवः पदार्थादर्शश्च– " शंभौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शंकरे भास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः ॥ देव्यां विष्णुहरेभवक्त्ररवयो लम्बोदरेऽजेश्वरेनाम्बाः शंकरभागतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु हानिप्रदाः ॥ १ ॥ " शंकरभागतः–ईशानकोणादारभ्य प्रदक्षिणमित्यर्थः । अत्र दिक्स्वरूपमुक्तं प्रयोगपारिजाते मन्त्रशास्त्रे– " देवस्य मुखमारभ्य दिशं प्राचीं प्रकल्पयेत् । तदादि परिवाराणामङ्गाद्यावर-

---

और दो सहस्र २००० पलसे महास्नान लिखा है प्रथम पच्चीस पल घीसे लिंगके विषय शिवजीका उबटना करै, फिर सौ पल घी, सौ पल शहत, सौपल दही, सौपल गौका दूध१५०० डेढ सहस्र पल ईखके रससे क्रमसे भक्तिपूर्वक स्नान करावे, फिर गरमजलसे स्नान करावै । विष्णु आदिके स्नान करानेमें स्कन्दपुराणमें यह कहा है कि, दूधसे दशगुणा दही और उससे दशगुणा अधिक घी और घीसे दशगुणा शहत और शहतसे दशगुणा ईखका रस मिलावै ॥ ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, जहां देवताओंकी प्रतिमा हो वहां श्रद्धासे पचीस २५ पल घृतसे उबटन करावै, यहभी सबके मेलके अभिप्रायसे कहा है वहांही संग्रहमें कहा है कि, नैवेद्य (मिष्ट) के सौभाग करके और लिंगके विषय महादेवको विष्णुका चरणामृत तथा प्रसाद दे ॥ पांच मंदिरोंका निर्माण बोपदेवने कहा है और पदार्थादर्शमेंभी है कि, शिवजी जहां बीचमें हों वहां विष्णु, सूर्य, गणेश, दुर्गा, जहां विष्णु बीचमें हों वहां शिव, गणेश, सूर्य, दुर्गा; सूर्य मध्यमें होय तो महादेव, गणेश, दुर्गा, विष्णु; और जहां दुर्गा मध्यमें हो वहां विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य, ये ईशान कोणसे लेकर परिक्रमासे स्थापन किए हुए सुख देते हैं और यदि अस्तव्यस्त होयँ तो हानि करते हैं, यहां प्रयोगपारिजातके मंत्रशास्त्रमें दिशाओंका स्वरूप यह लिखा है कि, देवताके मुखसे लेकर सन्मुखकी दिशाको प्राची दिशा समझे, तिससे लेकर परिवार

---

१ शिवजीके मध्य होनेमें विष्णु, सूर्य, गणेश, देवी; विष्णुके मध्य होनेमें शिव, गणेश सूर्य, देवी; सूर्यके मध्य होनेमें शिव, गणेश, विष्णु, देवी; देवीके मध्य होनेमें विष्णु, हर, गणेश, सूर्य; गणेशके मध्य होनेमें विष्णु, शिव, सूर्य देवी; प्रदक्षिणाक्रमसे ईशानसे आरंभ करके स्थापन करै॥

णस्थितिः ॥ " तत्र क्रमः पाद्मे--" रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तु पञ्चमः । अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमे तु महद्भयम् ॥ " तथा पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची प्रोक्ता विचक्षणैः ॥ अथ केशवादिमूर्तयः । बोपदेवः--"केविगोवादापुहृउ प्रजाच्युकृमत्रिना । वाऽधोनृहसाऽनिश्रीपाशाचगे विगपे चपे ॥ " अत्र केविग-इत्याद्यैः केशवविष्ण्वादिचतुर्विंशतिमूर्तयोऽभिधीयन्ते ॥ शात् शंखात् चगे चक्रगदे ज्ञेये इत्यर्थः । शिष्टे भुजे पद्मं त्वर्थतः सिद्धम् ॥ अत्र दक्षिणाधः करक्रमेण ज्ञेयम् । 'दक्षिणाऽधःकरक्रमात्' इति हेमाद्रौ वचनात् । तेन हेमाद्रिणा संवादः । विशब्देन विपरीतं गचे इत्यर्थः । अत्रापि शादित्यनुवृत्तिः । शंखाद्गदाचक्रे इत्यर्थः । गपे इत्यत्रापि शादनुवर्तते । शंखाद्गदापद्मे इत्यर्थः । विपरीते पद्मगदे इत्यत्रापि शंखाज्ज्ञेये । चपे चक्रपद्मे । शंखाच्चक्रपद्मे इत्यर्थः । वि इत्यत्रापि पद्मचक्रे इति । तेन चक्रगदे इत्यष्टौ मूर्तयः । गचे इत्यष्टौ मूर्तयः । चपे इत्यत्र च । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् । लिङ्गार्चाप्रतिष्ठानिर्णयः ।

तथा अंग आदि आवरणोंकी स्थिति करै॥ पद्मपुराणमें लिखा है कि, सूर्य, गणेश, देवी, महादेव और पांचवें विष्णुका क्रमसे पूजन करै, कारण कि, विना क्रम करनेसे अतिशय भय होता है, इसी प्रकार यह भी कहा है कि, पूज्य (प्रतिमा आदि) और पूजककी मध्य दिशाको पंडितजन प्राची लिखते हैं ॥ अब केशव आदि मूर्तियोंको लिखते हैं केशव, विष्णु, गोविंद, वामन, दामोदर, पुरुषोत्तम, हृषीकेश, उपेन्द्र, प्रद्युम्न, जनार्दन, अच्युत, कृष्ण, मधुसूदन, माधव, त्रिविक्रम, नारायण, वासुदेव, अधोक्षज, नृसिंह, हरि, संकर्षण, अनिरुद्ध, श्रीधर, पद्मनाभ, ये चौवीस मूर्ति हैं, इस श्लोकमें 'केवि' इत्यादि पदसे केशव विष्णु आदि चौवीस मूर्तिका ग्रहण है, शचगसे शंखचक्रगदा जानने चाहिये, शेष पद्म भुजाके विषे अर्थासिद्ध हैं, ये सब नीचके दाहिने हाथके क्रमसे जानने चाहिये, कारण कि, हेमाद्रिमें यही कहाहै तिसीसे हेमाद्रिके संगभी सम्मति है, विशब्दका विपरीत अर्थ है, और उसमें भी शात्को मिलाना, तिससे शंख पद्म चक्र वा शंख चक्र पद्मसे ये अष्टमूर्ति सिद्ध होती हैं, इसका मूल हेमाद्रिमें जानना चाहिये । इसमें हेमाद्रिग्रन्थनिष्ठ लिखाहुआ प्रमाण जानना चाहिये ॥ अब बौधायन तथा त्रैविक्रमके

---

१ शंख, चक्र, गदा, पद्म, युक्त केशव सूर्यके समान कान्तिमान् हैं । कमल शंख चक्र गदा युत विष्णु रवि प्रभा युक्त हैं । गदा कमल शंख चक्रयुक्त गोविन्द भास्करवत् हैं । वामन चक्र गदा पद्म शंखयुक्त रविवत् हैं । दामोदर शंख गदा पद्म चक्रधारी सूर्यद्युति है । पद्म शंख गदा चक्रधारी सूर्यवत्पुरुषोत्तम हैं चक्र पद्म शंख गदाधर हृषीकेश सूर्यमें हैं । उदित सूर्यवत् उपेन्द्र गदा चक्र कमल शंखधारी हैं । प्रद्युम्न सूर्यवत् शंख गदा कमल चक्रधारी विभु हैं । जनार्दन चक्र शंख गदा कमलधारी सूर्याभ हैं । सूर्याभ अच्युतनामा कमल चक्र

बौधायनसूत्रे-त्रैविक्रमीं चानुस्मृत्य लिङ्गार्चाप्रतिष्ठोच्यते । यजमानः पूर्वोक्तकाले पूर्वेद्युः दशद्वादशषोडशान्यतरहस्तं मण्डपं कृत्वाऽग्नेये हस्तमात्रं चतुरस्रं कुण्डं स्थण्डिलं वा पूर्वतो हस्तमात्रां वेदिं नैर्ऋते वास्तुमंडलमध्ये वेदिं तदुपरि सर्वतोभद्रं कृत्वा प्राणानायम्यास्यां मूर्तौ देवस्य सान्निध्यसिद्ध्यर्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्ध्यक्षय्यसुखकामोऽमुकमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये इति संकल्प्य। गणेशपूजापुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानि कृत्वा आचार्यं चतुर ऋत्विजश्च वृत्वा वस्त्राद्यैः पूजयेत्॥ अथाचार्यः-"यदत्र संस्थितमिति सर्षपान् विकीर्यापोहिष्ठेति कुशोदकेन भूमिं प्रोक्ष्य । देवा आयांतु, यातुधाना अपयान्तु । विष्णो देवयजनं रक्षस्वेति भूमौ प्रादेशं कृत्वाऽस्मत्कृततुलापद्धतिमार्गेण मण्डपप्रतिष्ठां कृत्वाऽकृत्वा वा पूर्वरात्रौ हिरण्योपधानं देवं पञ्चगव्यहिरण्ययवदूर्वाश्वत्थपलाशपर्णैरापोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतसृभिः

अनुसार लिंगकी पूजा तथा प्रतिष्ठाको लिखते हैं। यजमान प्रथम दिन पूर्वोक्त समयपर दश, बारह वा सोलह हाथका मढा बना करके उसमें आग्नेय दिशामें एक हस्तमात्रका कुण्ड अथवा पृथ्वीपर वेदी तथा पूर्वदिशामें एक हाथकी वेदी तथा नैर्ऋत्य दिशामें वास्तुचक्र और मध्यमें वेदी निर्माण कर उसके ऊपर सर्वतोभद्रकी रचना करै, फिर प्राणोंको रोककर यह संकल्प उच्चारण करै कि, मैं इस मूर्तिमें देवताके स्थापन करनेको तथा बडी आयु, लक्ष्मी और संपूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके निमित्त अक्षय सुखकी इच्छावाला अमुकनाम्नी इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा करताहूं, फिर गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, नान्दीमुखश्राद्ध करके आचार्य और चार ऋत्विजोंका वरण करके वस्त्र आदिकोंसे उनको प्रसन्न करे॥ फिर आचार्य 'यदत्र संस्थितं' इस मन्त्रसे सरसोंको बखेरकर (आपोहिष्ठामयोभुव) इस ऋचासे पृथ्वीको कुशाके जलसे छिडकै, फिर 'देवा आयांतु यातुधाना अपयांतु विष्णो देव यजनं रक्षस्व' इस मंत्रसे पृथ्वीके ऊपरको बिलस्त भर रेखा करके हमारी रचीहुई तुलापद्धतिके अनुसार मण्डपकी प्रतिष्ठा करै, वा न करै, पूर्वरात्रिमें सोनेकी प्रतिमाको पंचगव्य, सुवर्ण, यव, दूव, पीपल तथा पालाशके पत्तोंसे 'आपोहिष्ठा' ये तीन और 'हिर-

---

शंख गदाधारी हैं। उदितसूर्यवत् कृष्ण गदा पद्म चक्र शंखधारी हैं। शंख कमल गदा चक्रधारी सूर्यवत् मधुसूदन हैं। माधव चक्र शंख कमल गदाधारी सूर्याभ हैं। त्रिविक्रम गदा चक्र शंख पद्मधररविप्रभ हैं नारायण कमल गदा शंख चक्रधर रविप्रभ हैं। शंख चक्र पद्म गदाधर वासुदेव रविवत् कान्तिमान् हैं। गदा शंख चक्र कमलधर रविवत् अधोक्षज हैं। नृसिंह सूर्याभ पद्म गदा शंख चक्र संयुक्त हैं। चक्र पद्म गदा शंख युक्त हरि उद्यत रविवत् हैं। शंख कमल चक्रगदायुक्त सूर्यप्रभ संकर्षण विभु हैं। अनिरुद्ध गदा शंख पद्मचक्रधारी रविवत् हैं। श्रीधर चक्र गदा शंख पद्मधर सूर्यद्युति हैं। पद्मनाभ कमल चक्र गदा शंख युक्त अब्ज सयुंत है॥

पवमानः सुवर्चन इत्यनुवाकनाभिषिच्य व्याहृतिभिरिदं विष्णुरिति फलयवदूर्वाः समर्प्य रक्षोहणमिति हस्ते कंकणं बद्ध्वा वाससाच्छाद्य । अवतेहेड उदुत्तममिति जलेऽधिवासयेत् । " इदं बौधायनोक्तम् ॥ ततश्चललिङ्गार्चायां वा अत्राग्निं प्रतिष्ठाप्य गोक्षीरनीवारचरुं कृत्वा विष्णुश्चेत् कृसरमपि श्रपयित्वाज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्भिः आज्येन चरुणा तिलैर्वा प्रत्येकमष्टाविंशतिमष्टौ वाहुतीर्लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिभ्यो हुत्वा स्थाप्यदेवमन्त्रेण पूर्वोक्तसमित्तिलनैवारचर्वाज्यैरष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा हुत्वा अग्निर्यजुर्भिरित्यनुवाकेन दशाहुतीर्जुहुयात् ॥ प्रतिद्रव्यहोमान्ते देवं पादनाभिशिरस्सु स्पृशेत् । आज्यहोमे चोत्तरतः सजलकुम्भे संपातान्नयेत् ॥ तत्र मन्त्राः । तेषां मन्त्राः । इन्द्रायेन्दो इतीन्द्रस्य । स्योनेति पृथिवीमूर्तेः । अघोरेभ्य इति तत्पतेः सर्वस्य । अग्न आयाहीत्यग्नेः । अग्निं दूतमित्यग्निमूर्तेः । नमः शर्वाय च पशुपतये चेति पशुपतेः । यमाय सोमं यमस्य । असिहिवीरिति यजमानमूर्तेः । स्तुहि श्रुतं तत्पतेः उग्रस्य । असुन्वन्तन्निर्ऋतेः । आकृष्णेन सूर्यमूर्तेः ॥ यो रुद्रो अग्नौ इति तत्पते रुद्रस्य ।

व्यवर्णो' ये चार तथा 'पवमानःसुवर्चन' सूक्त, तथा व्याहृतियोंको उच्चारण करता हुआ अभिषेक करै, फिर इदं विष्णुर्विचक्रमे, इस मन्त्रसे फूल, फल, यव, दूबको समर्पण करके 'नमस्ते रुद्र मन्यव'[1] इस मत्रसे स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करै, फिर 'रक्षोणहणं' इस मंत्रसे हाथमें कंकणको बांधकर वस्त्रसे ढककर 'अवतेहेडो, उदुत्तमं' इस मंत्रसे जलमें अधिष्ठान करावै, यह बौधायनने लिखा है॥ फिर लिङ्गकी अर्चामें तो अग्निस्थापन करके गौके दूधमें सट्ठीके चावलोंको करके घृत भागके पीछेमें पलाश, गूलर, पीपल, छोंकर, अपामार्ग (चिरचिटा) और ढाककी समिधासे घृत वा चरु वा तिलोंसे एकएककी लोकपाल, मूर्ति, तथा मूर्तियोंके पतियोंको (एका एकके निमित्त) २८, १८ अथवा ८ आहुति देकर स्थापन करै फिर देवमंत्रसे पूर्वोक्त समिध, तिल, साठी, चावल, चरु, घी इनसे आठ हजार, ८०००वा ८०० आठसौ अथवा अट्ठाईस २८ आहुति दे, 'अग्निर्यजुर्भिः इस सूक्तसे दशाहुतिक हवन करै, हवनके पीछेमें देवताकी नाभी तथा चरण और शिरका स्पर्श करै, फिर घृतके होममें उत्तर दिशाके जलसहीत कुम्भमें जल डाले ॥ अब उनके मन्त्रोंको दिखातेहैं कि, 'इन्द्रायेन्दो'[2] इस मन्त्रसे इन्द्रको, 'स्योना' इससे पृथ्वीमूर्त्तिको, 'अघोरेभ्यो' इससे उसके स्वामी शिवको, 'अग्नआयाहि' इससे अग्निको 'अग्निदूतं' इससे अग्निकी मूर्त्तिको, 'नमः शर्वाय च पशुपतये च' इससे पशुपतिको, 'यमाय सोमं' इससे यमको, असिहि वीरीति यजमानकी मूर्ति, 'स्तुहि श्रुतं' से उसके पति उग्रको, 'असुन्वंत' से नैर्ऋतिको

१ नमस्ते रुद्रमन्यवे उतो त इषवे नमः ॥ बाहुभ्यामुत ते नमः प० १६।१॥ २ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ऋ० ७ । १ । ४० ॥

इमंमे वरुणस्य। शंनो देवीति जलमूर्तेः। नमो भवायेति भवस्य। आनो नियुद्भिरिति वायोः। वात आवातु वायुमूर्तेः। तमीशानं तत्पतेरीशानस्य। आप्यायस्वेति कुबेरस्य। वयं सोमेति सोममूर्तेः। तत्पुरुषाय महादेवस्य। अभित्वा ईशानस्य। आदित्प्रत्नस्येत्याकाशस्य। नम उग्राय चेति तत्पतेर्भीमस्य। ततो देवस्य पादौ स्पृशेत्। एवं द्वितीये हुत्वा नाभिं तृतीये मध्यं चतुर्थे उरः पञ्चमे शिरः स्पृष्ट्वा प्रतिपर्यायं संपातजलेन देवं अभिषिञ्चेत्। ततः स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्यार्चां शोधयेत् ॥ स्थिरलिङ्गार्चादौ तु नेदानीमग्निस्थापनहोमादि कार्यम्। ततो देवं नत्वा "स्वागतं देवदेवेश विश्वरूप नमोस्तु ते। शुद्धेपि त्वदधिष्ठाने शुद्धिं कुर्मः सहस्व ताम् ॥" इति संप्रार्थ्य उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इति सऋत्विगुत्थाप्य पूर्वमकृतेग्न्युत्तारणे अधुना वा कार्यम् 'अग्निः सप्तिम्' इति सूक्तमग्निपदहीनं पठित्वा तत्सहितं पुनः पठेत् एवमष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पठन् जलं पातयेत्। ततोर्चां द्वादशवारं मृदा जलेन च प्रक्षाल्य मन्त्रवत् पञ्चगव्यं कृत्वा 'पयः पृथिव्यामापोराजानम्' इति

'आकृष्णेन' से सूर्यमूर्तिको, 'यो रुद्रो अग्नौ' से उसके पति रुद्रको, 'इमंमे' वरुणको 'शन्नोदेवी'[1] से जलमूर्तिको, 'नमो भवाय' से भवको, 'आनो नियुद्भि' से वायुको 'वात आवातु' से वायुमूर्तिको, 'तमीशानं' से उसके पति ईशानको, 'आप्यायस्व' से कुबेरको, 'वयं सोमस्य' से सोममूर्तिको, 'तत्पुरुषाय' से महादेवको, 'अभित्वा' से ईशानको, 'आदित्प्रत्नस्य' से आकाशको, 'नम उग्राय च' से उसके स्वामी भीमको, आहुतिदे, फिर देवताके चरणोंको छुए, इसी प्रकार दूसरी आहुति देकर नाभिको तीसरेमें मध्यभागको, चौथेमें उरस्थल, पांचवेमें शिरको, स्पर्श करके क्रमसे संपात जल अर्थात् शेषचरु जिस पात्रमें धराहै उसमें डालकर लिंग वा प्रतिमामें देवका अभिषेक करना चाहिये, फिर स्विष्टकृत आदि शेष हवनको पूर्ण करके प्रतिमाको पवित्र करै ॥ यदि लिंग वा मूर्ति स्थिर होय तो अग्निका स्थापन और देवताओंका हवन आदि कर्म यहां न करै, देवको प्रणाम करके प्रार्थना करै कि, हे देव। देवेश! हे विश्वरूप! आपको प्रणाम है। आपका आगमन बहुत उत्तम है, आपका स्थान पवित्र है तौभी मैं पवित्र करताहूं, उसे आप सहन करो, उत्तिष्ठब्रह्मणस्प० इस मन्त्रसे ऋत्विजों सहित मूर्तिको उठाय यदि प्रथम अग्निमें मूर्तिको न तपाया होय तो अब अग्न्युत्तारण करे, फिरः 'अग्निः सप्ति' सूक्तको अग्निपदके विना उच्चारण कर फिर अग्निपदसहित पढै। इसी प्रकार आठ सहस्र वा आठसौ वा अट्ठाईस बार जपता हुआ जल डाले फिर प्रतिमाको द्वादशवार मृत्तिका और जलसे धोकर मन्त्रसे पंचगव्य बनाकर

1 शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंय्योरभिस्रवन्तु नः। यजु० ॥

संस्नाप्य । "आप्यायस्व, दधिक्राव्णः, तेजोसि, मधुवाता, आयंगौः" इति पञ्चामृतैः संस्नाप्य । लिंगं चेत् 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' इत्यष्टाभिः संस्नाप्य । घृतेनाभ्यज्योद्वर्तनेनोद्वर्त्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य गन्धं दत्त्वा संपातोदकेनाभिषिच्य सपल्लवैः चतुर्भिः कुम्भैरापोहिष्ठेति त्रिभिः 'आकलशेषु' इति च प्रत्येकं 'समुद्रज्येष्ठा' इति चतुर्भिः 'आकलशेषु' इति च मिलितैः संस्नाप्यौदुम्बरादिपीठेऽर्चामुपवेश्य परितोऽष्टदिक्षु सजलकुम्भान् संस्थाप्य तेषु गन्धपुष्पदूर्वाः क्षिप्त्वाद्ये सप्तमृदः द्वितीये पुष्करपर्णशमीविकंकताश्मन्तकत्वचः पल्लवांश्च, तृतीयादिषु सप्तधान्यं पञ्चरत्नफलपुष्पाणि कुशदूर्वागोरोचनसम्पातोदकगन्धफलसर्वौषधीः क्षिप्त्वा । क्रमेण 'आपोहिष्ठा' इति तिसृभिः 'हिरण्यवर्णाः' इति चतुर्भिः पवमानानुवाकेन चाभिषिच्यैककुम्भे शमीपलाशवटखदिरबिल्वाश्वत्थविकंकतपनसाम्रशिरीषोदुम्बराणां पल्लवान् कषायांश्च क्षिप्त्वा । 'अश्वत्थेवः' इत्यभिषिच्य पञ्चरत्नोदकेन 'हिरण्यवर्णा' इति संस्नाप्य वाससी दत्त्वा । उपवीतादि दीपान्तं कृत्वा 'हिरण्यगर्भः । 'य आत्मदा' । 'यः प्राणतः' । 'यस्येमे' । 'येन द्यौः' । 'यं क्रन्दसी' । 'आपोहयन्' । 'यश्चिदापो' । इत्यष्टौ पिष्टदीपान् दत्त्वा । सुवर्णशलाकया तैजसपात्रस्थं मधु घृतं च गृहीत्वा 'चित्रं देवानां' ।

'पयः पृथिव्यां' मन्त्रोंसे अथवा 'आपोराजन्' मन्त्रसे स्नान करावे आप्यायस्व० दधिक्राव्णः० तेजोसि० मधुवाता० आयंगौः० इन मन्त्रोंसे पंचामृतसे स्नान करावे, यदि लिंग होय तो नमस्ते रुद्र मन्यव० इन आठों मन्त्रोंसे स्नान करावे, फिर घृतसे अभ्यंग, और उबटनेसे उबटन करके और गरम जलसे धोकर गन्ध देकर, जलधारासे अभिषेक करै, फिर पंच पल्लवों सहित घडोंके जलसे अपोहिष्ठामयो भुव इन तीन मन्त्र तथा समुद्रज्येष्ठा इन चार आकलशेषु ऋचासहित पढता हुआ प्रत्येकको स्नान कराय गूलरआदिके आसनपर प्रतिमाको बैठाय चारों ओर आठों दिशाओंमें जल सहित घटोंको स्थापन कर उनमें गन्ध पुष्प दूबको डालकर प्रथममें सात प्रकारकी मट्टी, दूसरेमें पुष्करके पत्ते, छोंकर विकंकत (कंकपत्र) अश्मतक (बहेडे) की छाल तथा पत्तोंके और तीसरे आदिमें सतनजा, पंचरत्न, फल, पुष्प, कुशा, दूब, गोरोचन, सम्पातजल, सब औषधियोंको डालकर क्रमसे 'आपोहिष्ठा' इन तीनोंसे 'हिरण्यवर्णा' इन, चारोंसे अथवा 'पवमानः सुवर्चन' इस सूक्तसे अभिषेक विधिसे करै, फिर एक घडेमें छोंकर, ढाक बड, खदिर, बेल, पीपल, विकंकत, पनस, आम, शिरीष (.शिरस), गूलरके पत्ते, और रसको डालकर 'अश्वत्थे' इस मन्त्रसे पञ्चरत्नसे जलके अभिषेक करके और 'हिरण्यवर्णा हरिणीम्' मन्त्रसे स्नान कराके वस्त्रोंको देकर तथा उपवीतसे दीपक पर्यन्त सामग्रियोंका प्रदान कर हिरण्य गर्भ, ये आत्मदा यः प्राणतः यस्येमेयेनद्यौः यंक्रंदसी आपोहयन् यश्चिदापो इन मन्त्रोंसे आठ चूनके दीपक निर्माण करदे, सुवर्णकी सलाईसे सुवर्णके पात्रमें रक्खे हुए मधु और घृतको लेकर

'तेजोसि' इति मन्त्राभ्याम्-" ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः । हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः" इति च दक्षिणसव्ये देवनेत्रे मन्त्रावृत्त्या लिखेत्॥ ' अञ्जन्ति त्वा ' इत्यञ्जनेन मधुना चाङ्क्त्वा तु ' देवस्य त्वा ' इति मध्वाज्यशर्कराभिरङ्क्त्वा तेनैवाञ्जनेन पुनरञ्जयेत्। अत्रानञ्मीति शेषः। स्थिरलिङ्गे तु स्वर्णसूच्या गन्धेन । 'ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नमः ' इत्यङ्क्त्वाञ्जनादिनाञ्जयेत् ॥ तत आदर्शभक्ष्यादि दर्शयेत् ॥ ततः कर्ता आचार्याय गामृत्विग्भ्यश्च दक्षिणां दद्यात् ॥ अथाचार्यः प्रत्यृचमादौ प्रणवं वदन् पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा ॥ वंशपात्रे पंचवर्णोदनेन देवस्य नीराजनं कारयित्वा रुद्राय चतुष्पथादौ दद्यात् ॥ मन्त्रस्तु–' ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमोनमः । ' शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहेति ॥ अश्वत्थपर्णे भूतेभ्यो नम इति । केचिदेतद्रात्रौ स्थिरप्रतिष्ठायामिच्छन्ति ॥ अथाचार्यः सर्वतोभद्रे देवानावाहयेत् । मध्ये ब्रह्माणम् । पूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिलोकपालान् । ईशानेन्द्राद्यन्तरालेषु वसून् । रुद्रान् । आदित्यान । अश्विनौ । विश्वान् देवान् । पितॄन् । नागान् । स्कन्दवृषौ । ब्रह्मेशानाद्यन्तरालेषु दक्षविष्णु-

---

'चित्रं देवानां' इत्यादि तथा तेजोसीत्यादि मन्त्रसे 'ॐनमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः' इस मन्त्रको तथा 'हिरण्यरेतसे विष्णो विष्णुरूपाय ते नमः' इस मन्त्रको देवताके दक्षिण नेत्रमें दोवार लिखै ॥ अंजंति, त्वा इस मंत्रसे अंजनत्वा मधुको और ' अन्त्यादेवस्य त्वा ' इस मंत्रसे, मधु घृत, शर्कराको आंजकर उसी अंजनको फिर आंजे, यदि स्थिर लिंग होय तो सुवर्णकी शलाकासे शहतको ' ॐनमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नमः ' इस मंत्रसे आंजकर अंजनआदिसे आंजे, फिर दर्पण भोगादिको दिखावै, फिर यजमान आचार्यको गौ और ऋत्विजोंको दक्षिणा दे, आचार्य ॐकारपूर्वक पुरुषसूक्तकी ऋचाओंसे स्तुति करके बांसके पात्रमें पंचपल्लवके जलसे देवताकी आरती कराय चौराहे आदिमें रुद्रको बलि दे, उसका मन्त्र ' ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमोनमः शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहा ' पीपलके पत्तेपर रात्रिमें भूतेभ्यो नमः इस मन्त्रसे भूतोंको बलि दे, कोई आचार्य इस बलिको स्थिरप्रतिष्ठाके विषय इच्छा करते हैं ॥ इसके उपरान्त आचार्य सर्वतोभद्रमें देवताओंका आवाहन करे कि मध्यमें ब्रह्माका, पूर्व आदिदिशाओंमें इन्द्र आदिलोकपालोंका, ईशान और पूर्व आदि मध्यकी विदिशाओंमें वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, पितर, नाग, स्वामिकार्तिक और वृष; ब्रह्मा और ईशान आदिके अन्तरालमें दक्ष, विष्णु, दुर्गा, स्वधा, मृत्यु, रोग, समुद्र, नदी, मरुत्, गणपतिका आवाहन करे,

दुर्गास्वधाकारमृत्युरोगान् समुद्रान् । सरितः । मरुतः । गणाधिपं चेति । मध्ये एव पृथिवीं, मेरुं संस्थाप्य देवं चावाह्य । प्रागादिषु वज्रं, शक्तिं, दण्डं, खड्गं, पाशं अंकुशं, गदां, शूलम् । तद्बाह्ये गौतमं, भरद्वाजं, विश्वामित्रं, कश्यपं, जमदग्निं, वसिष्ठम्, अत्रिम्, अरुंधतीं चातद्बाह्ये नवग्रहान् । तद्बाह्ये ऐन्द्रीं, कौमारीं, ब्राह्मीम्, वाराहीं, चामुण्डां, वैष्णवीं, माहेश्वरीं, वैनायकीमिति । एता नामभिवाराह्य संपूज्य ॥ अर्चायां देवं तन्मन्त्रेणावाह्य । मण्डलमध्येऽर्चा सुप्रतिष्ठो भवेति निवेश्य संपूज्य । वह्नौ मण्डलदेवतानां नामभिस्तिलाज्येन दशदशाहुतीर्हुत्वा शय्यायां देवमाराध्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा देवे न्यासं कुर्यात् ॥ तद्यथा-पुरुषात्मने नमः ॥ प्राणात्मने न० प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० अहंकारतत्त्वाय० मनस्तत्त्वाय० इति सर्वांगे ॥ प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० हृदि ॥ शब्दतत्त्वाय० शिरसि ॥ स्पर्शतत्त्वाय० त्वचि । रूपतत्त्वाय० हृदि ॥ एवं रसगन्धश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसत्त्वरजस्तमोदेहतत्त्वानि विन्यसेत् ॥ ततः पुरुषसूक्तस्याद्यमृग्द्वयं करयोः ॥ तदुत्तरं जान्वोः ॥ तदुत्तरं कट्योः ॥ ' तं यज्ञम् ' इति तिस्रः नाभिहृत्कण्ठेषु 'तस्मादश्वा' इति द्वयं

मध्यमें ही पृथ्वी और मेरुकी स्थापना करके और देवका आवाहन करके पूर्वआदि दिशाओंमें वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, शूलका आवाहन करै और इनके वाहिर गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ, अत्रि, अरुन्धतीका आवाहन करै; उसके बाहिर नवग्रहोंको, उसके बाहिर ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी, वैनायकीका नामसे आवाहन और पूजन करके ब्रह्मा आदिकी पूजामें देवका भी मन्त्रसे आवाहन करके, मण्डलके मध्यकी पूजामें भली प्रकार प्रतिष्ठित हो, इस मन्त्रसे देवकी प्रतिष्ठा करके और पूजा कर अग्निमें मण्डलके देवताओंके नाममंत्रोंसे तिल और घृतसे दश २ आहुति देकर शय्यामें देवकी पूजा कर पुरुषसूक्त और उत्तरनारायणके मंत्रसे देवकी स्तुति करके देवताके अंगोंमें न्यास करै ॥ यथा पुरुषात्मा प्राणात्माको, प्रकृतितत्त्वको, बुद्धितत्त्वको, अहंकारतत्त्वको, मनस्तत्त्वको प्रणाम है, इस मंत्रसे सर्वांगमें, प्रकृतितत्त्वको, बुद्धितत्त्वको प्रणाम है इस मन्त्रसे हृदयमें, शब्दतत्त्वको प्रणाम है, इससे शिरमें, स्पर्शतत्त्वको प्रणाम है, इससे त्वचामें रूपतत्त्वको प्रणाम है इससे हृदयमें न्यास करै, इसी प्रकार रस, गंध, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, वाणी हस्त, चरण, गुदा, लिंग, भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, सत्त्व, रज, तम, देह, इन तत्त्वोंका भी न्यास करै, फिर पुरुषसूक्तकी आदिकी दो ऋचाओंसे हाथोंका तिससे उत्तरकी ऋचाओंसे जंघाओंका तिससे उत्तरकी दो ऋचाओंसे कमरका 'तं यज्ञं' इत्यादि तीन ऋचाओंसे नाभि, हृदय, कण्ठका 'तस्मादश्वा' इत्यादि दो ऋचाओंसे भुजाओंका

बाह्वोः ॥ ' ब्राह्मणोऽस्य ' इति द्वयं नासयोः ॥ ' नाभ्या ' इति द्वयमक्ष्णोः ॥ अन्त्यां शिरसि । केचित्तत्त्वन्यासमन्यथैवाहुः ॥ पुरुषप्रकृतिमहदहंकारतत्त्वानि । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणि । आकाशवायुतेजोऽप्पृथिवीश्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनस्तत्त्वानीति ॥ केचिदेतानि स्थिरलिङ्गादावेवेच्छन्ति ॥ ततः सुखशायी भवेति शय्यायां देवं स्वापयित्वा मण्डलशय्ययोरन्तराले न गन्तव्यमिति प्रैषं दत्त्वा मण्डलदेवताभ्यो नामभिः पायसेन चरुणा वा बलिं दद्यात् । नीवारचरुशेषेण दिग्बलिम् । नेदं स्थिरप्रतिष्ठायाम् ॥ स्थिरलिङ्गार्चादौ विशेषः । स्थिरलिङ्गार्चादौ त्वयं विशेषः—''अग्निस्थापनहोमवर्ज्यं सर्वं पूर्ववत् कृत्वा इदानीमग्निस्थापनं कृत्वा पूर्वोक्तहोमं कुर्यात् ॥ नात्र नैवारश्चरुः ॥ विष्णुश्चेत्पूर्वोक्तहोमं कृत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा इदंविष्णुरिति पादौ स्पृष्ट्वा पुनस्तावेव हुत्वा ' विष्णोर्नुकम् ' इति नाभिं स्पृष्ट्वा पुनस्तावेव हुत्वा । ' अतो देवा ' इति शिरः स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा, पुरुषसूक्तेन सर्वाङ्ग स्पृशेत् ॥ स्थिरलिङ्गं चेदग्निस्थापनादि पूर्वोक्तसमिदाज्यतिलाहुतीर्हुत्वा । या त इषु इत्यनुवाकान्तं ' द्रापे ' ' सहस्राणि ' इत्यनुवाकाभ्यां च प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा ' सर्वो वै रुद्रः ' इति मूलं

' ब्राह्मणोस्य ' इत्यादि ऋचाओंसे नासिकाका ' नाभ्या ' इत्यादि दो ऋचाओंसे नेत्रोंका अंत्यकी ऋचासे शिरका न्यास करै कोई आचार्य इस तत्त्वन्यासको दूसरे प्रकारसे कहते हैं पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, तत्त्व और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांचों भूतोंकी मात्राका और आकाश, वायु, तेज, पृथिवी, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, वक्, हस्त, पाद, गुदा, लिंग, मन इन तत्त्वोंका न्यास करै कोई आचार्य इनको स्थिर लिंगमेंही इच्छा करते हैं तिसके उपरान्त सुखशायी हो इस मन्त्रसे शय्यापर देवका स्थापन करके मण्डल और शय्याके बीचमें न जाओ यह मनुष्योंको प्रेरणा करके मण्डलके देवताओंको नाममन्त्रोंसे खीर वा चरुकी बलि दे और शेष नीवारके चरुसे दिशाओंको बलि दे यह बलि स्थिर प्रतिष्ठामें नहीं होती ॥ स्थिरलिंगमें तो यह अधिक है कि, अग्निस्थापन और हवनके विना सब पूर्वकार्यको पूर्ववत् सम्पादन करके और उसी समय अग्निका स्थापन करके पूर्वोक्त हवन करै, इसमें नीवारका चरु ग्रहण नहीं करते यदि विष्णुकी प्रतिष्ठा होय तो पूर्वोक्त हवन करके पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचाओंसे घृतकी आहुति देकर ' इदं विष्णुर्विचक्रमे ' मन्त्रसे चरणोंको छुऐ, फिर उन्हीं ऋचाओंसे आहुति देकर ' विष्णोर्नुकं ' इस मन्त्रसे नाभिको छुए, फिर उन्हीं आहुतियोंको देकर ' अतो देवा ' मन्त्रसे शिरको स्पर्श करै फिर उन्हीं आहुतियोंको देकर पुरुषसूक्तसे सब अंगको छुए, यदि स्थिरलिंग होय तो अग्निस्थापनसे लेकर पूर्वोक्तसमिधा और घृततिलोंकी आहुतियोंसे हवन करके यातेइषु इस अनुवाकतक, द्रापे, सहस्राणि, इन अनुवाकोंसे प्रत्येक ऋचा पढकर घृतसे हवन करके सम्पूर्ण रुद्ररूप है यह

स्पृशेत् । पुनस्ता एव हुत्वा ' कद्रुद्राय ' इति मध्यम् । पुनस्ता एव हुत्वा । ' नमो हिरण्यबाहवे ' इत्यग्रम् । पुनस्ता एव हुत्वा सर्वरुद्रेण सर्वाङ्गं स्पृशेत् । ततो ' धामन्त ' इति पूर्णाहुतिं जुहुयान्नवा एवमधिवासनं कृत्वा परेद्युः सद्यो वा पीठिकां स्नापयित्वा ' महीमूषु ' इत्यावाह्य । 'अदितिर्द्यौः ' इति स्तुत्वा । ह्रीं नमः इति संपूज्य तेनैव पूर्णाहुतिं हुत्वा ।' उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ' इति देवमुत्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दत्वा । पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा ' उदुत्यम् ' इत्युत्थाप्य । ' कनिक्रदत् ' इति सूक्तेन विष्णुं ' सद्योजातम् ' इति पञ्चानुवाकैर्लिङ्गं गृहं प्रवेश्य पीठिकायां इन्द्रादिनामभिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्यरूप्यवृषमनःशिलाः क्षिप्त्वा पायसेन संलिप्य प्रणवेनाङ्गन्यासं कृत्वा सुवर्णशलाकामन्तरितां कृत्वा ' ॐ सुलभे प्रतितिष्ठ परमेश्वर ' इत्युक्त्वा ' अतो देवा ' इति विष्णुं रुद्रेण च लिङ्गं स्थापयेत् ॥ ततः प्राणप्रतिष्ठा ॥ चलार्चायां त्वधिवासनान्ते परेद्युरुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति देवमुत्थाप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा घृते व्रीहिचरुं कृत्वा तद्देवतामन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा नामभिर्जुहुयात् । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वै स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नयेऽन्नादाय स्वाहा । अग्नयेऽन्नपतये स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । भूर्भुवः

कहकर देवके चरणोंका स्पर्श करै, फिर वेही आहुति देकर ' सर्वोवै रुद्र ' इस मन्त्रसे देवताके सब अंगोंको छुए, फिर ' धामंन ' मंत्रसे पूर्णाहुति हवन करै, वा न करै, इस प्रकार अधिवासन (सुशय) कर अगले दिन वा उसी समय देवके पट्टेको स्नान कराय, ' महीमूषु ' इस मंत्रसे आवाहन ' अदितिर्द्यौं ' मन्त्रसे स्तुति करके, ह्रीं नमः मन्त्रसे अर्चन करके, और उसी मन्त्रसे पूर्णाहुतिके हवनको सम्पादन कर उत्तिष्ठ ब्राह्मणस्पते० मंत्रसे देवको उठाय पुष्पांजलि दे, फिर पुरुषसूक्तसे स्तुति और ' उदुत्यं ' मंत्रसे देवको उठाय ' कनिक्रदत् ' मंत्रसे विष्णुको और सद्योजातके पांच अनुवाकोंसे लिंगको घरमें प्रवेश करायकर पट्टेपर इंद्रादिनामोंसे आठ दल बनाय, सतनजा, चांदी, वासां, मनसिल, पट्टेपर डालकर और खीरसे पट्टेको लीपकर ओंकारसे अंगन्यास करके सुवर्णकी शलाकाको पीठिकामें डालकर हे देव ! हे परमेश्वर ! श्रेष्ठ लग्नमें भलीप्रकार प्रतिष्ठित हूजिये यह कहकर, ' अतो देवा ' मन्त्रसे वा विष्णु रुद्र मंत्रसे देवकी प्रतिष्ठा करै, फिर प्राणप्रतिष्ठा करै ॥ चलमूर्तिकी पूजामें तो शयनके पीछेमें परले दिन उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इस मन्त्रसे देवको उठाकर पुरुषसूक्त और उत्तरनारायण मन्त्रसे स्तुति करके घृतमें व्रीहि और चरुको मिश्रित कर उसे देवताके मन्त्रसे दश आहुति हवनकर इन नामोंसे हवन करै कि, अग्नि, सोम, धन्वन्तरि, कुहू, अनुमति, प्रजापति, परमेष्ठी, ब्रह्मा, अग्नि, सोम, अग्नयेन्नाद, अग्नयेन्नपति, प्रजापति, विश्वेदेवा,

स्वाहा । अग्नये स्विष्टकृते इति ॥ ततः 'सप्त ते' पुनस्त्वेताभ्यां पूर्णाहुतिः ॥ ततः आचार्यो 'या ओषधीः' इति सर्वौषधीः समर्प्य ॥ संपातोदकं देवमन्त्रेण शतवारमभिमन्त्र्य तेनैवाभिषिञ्चेत् । तत उत्तिष्ठेति देवमुत्थाप्य । 'विश्वतश्चक्षुः' इत्युपस्थाय देवं ध्यात्वा जपेत्–'ब्रह्मणे नमः । एवं विष्णवे रुद्राय इंद्राद्यष्टभ्यो वसुभ्य रुद्रेभ्य आदित्येभ्योऽश्विभ्यां मरुद्भ्यः कुबेराय गङ्गादिमहानदीभ्योऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वन्तरये सर्वेशाय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे नमः' इति॥ ततः संपातोदकेन यजमानमभिषिच्य । देवं ध्यात्वा 'प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इति पुष्पाञ्जलिं निवेद्य । सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं, करचरणाद्यवयविनं, शंखचक्राद्यायुधवन्तं, निजवाहनाद्युपेतं, निजहृत्कमलेऽवस्थितं, सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं 'परमेष्ठ्यसि परमां श्रियं गमय' इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलावागतं विभाव्याऽर्चायां विन्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । यथा–प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः । ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि । क्रियामयवपुः । प्राणाख्या देवता । आं बीजम् । क्रों शक्तिः । प्राणम-

---

सम्पूर्ण देव, इनको (स्वाहा) श्रेष्ठ वचन है इन मन्त्रोंसे आहुति दे, फिर भूर्भुवः स्वः अग्नये स्विष्टकृते इस मन्त्रसे आहुति दे फिर 'सप्त ते पुनस्त्वा' मन्त्रोंसे पूर्णाहुति दे, फिर आचार्य या औषधी इस मंत्रसे सर्व औषधियोंको समर्पण करे ॥ फिर धाराके अर्थात् हवनमें जिस पात्रमें शेष चरु डाला जाता है उसका जल संपातोदक है जलको देवके मंत्रसे सौवार अभिमंत्रित करके उसी मंत्रसे देवका अभिषेक करे, फिर उत्तिष्ठमन्त्रसे देवको उठाय विश्वतश्चक्षुः मंत्रसे देवकी स्तुति और ध्यान करके यह जपै, कि, ब्रह्मरूपको प्रणाम है फिर इसी प्रकार विष्णु, रुद्र, इंद्र, आदि आठ दिक्पाल, वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, मरुत्, कुबेर, गंगा आदि महानदी, इन्द्र, अग्नि, द्यावापृथिवी, धन्वन्तरि, सबके ईश्वर विश्वेदेव, ब्रह्माको नमस्कार है । यह जप करै फिर उसी धाराके जलसे यजमानका अभिषेक करके और देवका ध्यान करके हे परमात्मन् ! तुम इस मूर्तिमें प्रतिष्ठित हो, इस मंत्रसे पुष्पांजलिको निवेदन करके और सच्चिदानंद ब्रह्मही भक्तोंके अनुग्रह करनेको शरीर धारण करते हैं और कर चरण आदि अंग, शंख चक्र आदि आयुध धारण करनेवाले होते हैं और अपने वाहनोंसे युक्त अपने कमलरूपी हृदयमें स्थित सब लोकके साक्षी अनुरूप होते है, हे परमात्मन् ! तुम ब्रह्मरूप हो श्रेष्ठ लक्ष्मी प्रदान करो इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलिमें आये हुए देवकी भावना करके पूजनमें न्यासादि करके प्राणप्रतिष्ठा करना चाहिये, जिस प्रकार प्राणप्रतिष्ठा मंत्रके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ऋषि हैं, ऋग् यजु साम छन्द हैं, कर्मरूपी शरीर है प्राण देवता आं बीज क्रों शक्ति

तिष्ठायां विनियोगः । ततः ऋष्यादीन् क्रमेण शिरोमुखहृदयगुह्यपादेषु विन्यस्य ॥ ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः ॥ ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा ॥ ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट् ॥ ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम् ॥ ॐ पं फं बं भं मं ॐ वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट् ॥ एवं आत्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत् ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं सं हं सः देवस्य जीव इह स्थितः ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य सर्वेंद्रियाणि ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहेति ॥ ततोऽर्चाहृदयंगुष्ठं दत्त्वा जपेत् अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु ह्यस्यै प्राणाः क्षरन्तु च । अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन " इति ॥ ततः प्रणवेन संरुध्य, सजीवं ध्यात्वा । ' ध्रुवा द्यौः ' इति तृचं

प्राणकी प्रतिष्ठामें इसका विनियोग अर्थात् (प्रयोजन) है फिर इन ऋषि आदिकोंका क्रमसे शिर, मुख, हृदय, गुदा, चरणमें न्यास करके पुनः इस प्रकार अपने शरीर और देवांगमें न्यास करके और देवताको छूकरके पूजा करै॥ फिर ॐ कं, खं, गं, घं, ङं, अं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश रूपको प्रणाम है, आं हृदयाय नमः, इस मन्त्रसे हृदयको स्पर्श करै, ॐ चं, छं, जं, झं, ञं, इं, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श रूपको प्रणामहै, ईं शिरसे स्वाहा, इस मन्त्रसे शिरको स्पर्श करैं, ॐ, टं, ठं, डं, ढं, णं, उं श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राणरूप आत्माको प्रणाम है ऊँ शिखायै वषट् इस मन्त्रसे शिखाको स्पर्श करै, ॐ, तं, थं, दं, धं, नं, एं वाणी हाथ चरण गुदा लिंग रूपको प्रणाम है ऐं कवचाय हुं इस मन्त्रसे भुजाओंको छुए, ॐ पं, फं, बं, भं, मं, ओं बोलना, ग्रहण, विहार, त्याग, आनन्द रूपको प्रणाम है, औं नेत्रत्रयाय वौषट् इस मन्त्रसे नेत्रोंका स्पर्श करै, ॐ यं, रं, लं, वं, शं, षं, हं, ळं, क्षं, अं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूपको प्रणामहै, अः. अस्त्राय फट् इस मन्त्रसे हाथसे हाथको ताडन करै, (ताली वजावै) इस प्रकार अपने और देवमें करसे स्पर्श करके जपै ॐ आं ह्रीं क्रों यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं, सः देवस्य प्राणा इह प्राणा पूजाके पीछे इस मन्त्रसे प्राणप्रतिष्ठा करै, ॐ आं ह्रीं, क्रों, यं, रं, लं, वं, शं, पं, सं, हं, सः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि ॐ आं, ह्रीं, क्रों, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं, सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणाः इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा पुनः आचार्य देवताके हृदयपर अंगुष्ठ रखकर यह मन्त्र जपै । अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठंतु अस्यै प्राणाः क्षरंतु च । अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन । इसका अर्थ प्रथम लिख आये हैं ॥ फिर ॐकारसे

जप्त्वा, कर्णे गायत्रीं देवमन्त्रं च जप्त्वा, पुरुषसूक्तेनोपस्थाय, पादनाभिशिरः स्पृष्ट्वा । 'इहैव एधि' इति त्रिर्जपेत् ॥ ततः कर्ता-"स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः । प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत् परिपालय ॥ धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शुभाय नः । सांनिध्यं तु सदा देव स्वार्चायां परिकल्पय ॥ यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिघातिनः । तावत्त्वयाऽत्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्पया ॥ भगवन् देवदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम् ॥ येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम् ॥ तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधौ भव ॥ ९ ॥" इति नमेत् ॥ एतदन्तं सर्वदेवानां समानम् ॥ देवमन्त्रश्च मूलमन्त्रो वैदिको वा ग्राह्यः ॥ अथाचार्यः कर्ता वा लिङ्गमर्चा वा ॐ भूः पुरुषमावाहयामि । ॐ भुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ सुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ भूर्भुवः सुवः पुरुषमावाहयामीत्यावाह्य ॥ प्रणवेनासनं दत्त्वा, तेनैव दूर्वाश्यामाकविष्णुक्रान्तापद्ममिश्रं-"इमा आपः शिवतमाः पूताः पूततमाः मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवे नमः" इति पाद्यं दद्यात् । 'भगवान् महादेवो रुद्राय नमः' इति लिङ्गे ॥ इमा आप आचमनीयास्ता जुष-

---

प्राणोंका निरोधकर और जीवसहित देवका ध्यान और ध्रुवाद्योः मन्त्रका जप और देवके कर्णमें गायत्री और देवमन्त्रको जपकर और पुरुषसूक्तसे स्तुति करके चरण, नाभि, शिरको स्पर्श करके यहांही वृद्धिको प्राप्त हो यह तीन बार जप करै, फिर यजमान इन मन्त्रोंसे देवको प्रणाम करै कि, हे देवदेवेश ! आपका आगमन उत्तम है मेरे भाग्यसे आप प्राप्त हुये हो, मुझे प्राकृत मनुष्य जानकर बालकके तुल्य मेरी पालना करो, हमारे मंगल कल्याण और धर्म, अर्थ, कामनाकी सिद्धिके निमित्त स्थिर रहो, और हे देव ! अपनी पूजामें सदा निकट रहो यावत् चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वीपर रहैं तावत् भक्तोंपर दया करते हुए इस मूर्तिमें स्थित रहो, हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! तुम सब देहधारियोंके पिता हो, हे भगवन् ! जिस रूपसे चर अचर आपसे व्याप्त है तिसी रूपसे पूजाके निकट रहियो, यहांतक जो कर्म कहा वह सब देवताओंको तुल्य है, और देवताका मन्त्र मूलमन्त्र लेना. अथवा वैदिक लेना ॥ फिर आचार्य वा यजमान, ॐभूः पुरुषका आवाहन करताहूं, ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषका आवाहन करताहूं, इन मंत्रोंसे आवाहन करके और ॐकारसे आसन प्रदान कर और ॐकारसेही, समा विष्णुक्रांता, पद्म, दूर्वासे मिले पाद्यको दे और यह मंत्र पढ़े, यह जल मंगलरूप पवित्र, और अत्यन्त पवित्र है, अमृत और अमृतके तुल्य इनमें रस है, इनको भगवान् महाविष्णु स्वीकार करो, भगवान् विष्णुको प्रणाम है लिंगकी प्रतिष्ठामें भगवान् महादेव स्थिति स्वीकार करो रुद्रको प्रणाम है अन्तमें प्रणाम है, यह जल आचमनके निमित्त उनको स्वीकार

तामिति एलालवंगकंकोलकर्पूरमिश्रमाचमनीयम् ॥ " आपः क्षीरकुशाग्रैश्चाक्षतैर्य-वतण्डुलैः । यवैः सिद्धार्थकैश्चैवार्घ्योयं ते प्रतिगृह्यताम् ॥ " अर्घ्या इत्यर्घ्यम् ॥ ततो वेदमन्त्रैः प्रणवेन च रत्नाम्बुकलशेन संस्नाप्य । 'इदं विष्णुः' इति विष्णौ । ' नमो अस्तु नीलग्रीवाय ' इति लिङ्गे प्रतिसरं विन्यस्य । " इमे गन्धाः शुभा दिव्याः सर्वगन्धैरलंकृताः । पूता ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ " पूता इत्यादि पूर्ववत् । इति गन्धम् ॥ ' इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यै-रलंकृताः ॥ ' पूता इत्यादिमाल्यम् ॥ ' इमे पुष्पाः शुभा ' इत्यादि पुष्पम् ॥ " वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो धूप उत्तमः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रति-गृह्यताम् ॥" प्रतिगृह्णात्वित्यादि धूपम् ॥ "ज्योतिः शुक्रं च तेजश्च देवानां सततं प्रियः । प्रभाकरः सर्वभूतानां दीपोयं प्रतिगृह्यताम् ॥ " इति दीपं दत्त्वा ॥ " विष्णो संकर्षण वासुदेव प्रद्युम्नानिरुद्ध पुरुषोत्तमाधोक्षज नृसिंहाच्युतजनार्द-नोपेंद्रहरिश्रीकृष्णेति " द्वादशनामभिः केशवादिद्वादशनामभिर्वा पुष्पाणि समर्प्य ॥ तैरेव तर्पणं कृत्वा ॥ पायसगुडौदनचित्रौदनानि । ' पवित्रं ते वित-

---

करो इस मंत्रसे इलायची, लौंग, कंकोल, कपूरसे मिले हुए आचमनको दे यह जल दूध कुशाका अग्र, अक्षत, यव तण्डुलसे युक्त है इनको स्वीकार करो इस मन्त्रसे अर्घ्य दे, फिर वेदके मंत्र ॐकारसे रत्नसहित कलशके जलसे देवताको स्नान कराकर विष्णुकी प्रतिष्ठामें इदं विष्णु० यह मंत्र और शिवकी स्थापनामें ' नमोऽस्तु नीलग्रीवाय ' इस मंत्रको पढकर और जलमेंसे निकालकर और देवताको प्रणाम करके इस प्रकार पूजन करै, कि, यह शुभ और दिव्य गंध है सब गंध इनमें मिश्रित हैं, ब्रह्मपवित्री और सूर्यकी किरणोंसे पवित्र हैं इन्हें स्वीकार करो, इस मंत्रसे गंध दे, यह माला शुभ हैं और दिव्य हैं इनमें सब माला मिली हैं आप लीजिये इस मंत्रसे मालाओंको दे यह फूल शुभ और दिव्य हैं, सब फूल इनमें मिले हैं, ब्रह्मपवित्री और सूर्यकी किरणोंसे पवित्र है, इस मंत्रसे फूल चढादे, इस धूपमें वनस्पतियोंका रस है, और गंधसे युक्त और उत्तम देवके सूंघनेके योग्य है, इसको स्वीकार करो इस मंत्रसे धूप देना, यह ज्योति, वीर्य और तेजरूप है और देवताओंको निरंतर प्रिय है सब भूतोंको प्रकाश करनेवाले इस दीपकको स्वीकार करो, इस मंत्रसे दीपकको देकर विष्णुकी मूर्तिमें संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, कृष्ण इन द्वादश नामोंसे वा केशवादि बारह नामोंसे फूलोंको समर्पण करके और इन्हीं नामोंसे तृप्त करै ॥ फिर खीर घृतसे युक्त पूर्ण और शर्करासे युक्त गुड भात और हरिद्रौदन (हरदीका भात) इनको 'पवित्रन्ते' इस मंत्रसे निवेदन करके घृतसे मिले कृशर (मिश्रित) अन्नसे इन मन्त्रोंके

तम् ' इति नैवेद्यकृसरं पूर्वोक्तनामभिर्हुत्वा तेनैव शार्ङ्गिणे, श्रियै, सरस्वत्यै, विष्णवे इति हुत्वा । ' विष्णोर्नुकं वीर्याणि ' ' तदस्य प्रियमभिपाथो ' । ' प्रतद्विष्णुस्तवतवीर्येण ' ' परोमात्रया तन्वावृधान ' । ' विचक्रमे पृथिवीमेष एताम् ' ' त्रिर्देवः पृथिवीमेष एताम् ' ॥ इति द्वादशनामभिश्चामुष्मै स्वाहेति जुहुयात् ॥ लिङ्गे तु दीपान्तं कृत्वा । भवाय० देवाय० शर्वाय० ईशानाय० पशुपतये० रुद्राय० उग्राय० भीमाय० महते देवाय नम इति पुष्पाणि दत्त्वा । तैरेव तर्पणं कृत्वा । ' पवित्रं ते ' इति पायसं गुडौदनं च निवेद्य पूर्वोक्तनामभिः कृसरं हुत्वा । ' भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा ' इत्याद्यष्टभिर्गुडौदनं हुत्वा । ' भवस्य देवस्य सुताय स्वाहा ' इत्याद्यैर्हरिद्रौदनं हुत्वा । ' त्र्यम्बकं यजामहे० । ' ' मानो महान्तमुत मानो० ।' ' मानस्तोके तनये० । ' ' आरात्तेगोघ्नमुतपूरुषघ्ने० । ' ' विकिरिदविलोहित० ।' सहस्राणि सहस्रशो '. इति द्वादश । एतैर्हुत्वा । ' शिवाय शंकराय सहमानाय शितिकण्ठाय कपर्दिने ताम्राय अरुणाय अपगुरमाणाय हिरण्यबाहवे ससिंपजराय बभ्लुशाय हिरण्याय ' इति च जुहुयात् ॥ ततः स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य पूर्वोक्तसर्वहविर्भिर्विष्णवे लिङ्गाय वा बलिं दद्यात् । मन्त्रस्तु—" त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे । त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन् प्रतिगृह्णीष्व हव्यम् " इति ॥ लिङ्गे तु—नारायणपदे रुद्रं शिवमिति

पढकर आहुति प्रदान कराय वासुदेवाय, संकर्षणाय, प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय, शांत्यै, श्रियै, सरस्वत्यै, पुष्ट्यै विष्णवे स्वाहा इन मन्त्रोंसे आहुति देकर इन वेदमन्त्रोंसे आहुति दे, विष्णोर्नुकं० तदस्य प्रियं० प्रतद्विष्णुः परोमात्रया विचक्रमे त्रिर्देव० फिर द्वादशनामोंसे देवके निमित्त हवन करै लिंगकी प्रतिष्ठामें तो दीपदानपर्यन्त कर्म समापन करके इन नामोंसे फूलोंको दे, कि, भव, देव, शर्व, ईश, पशुपति, रुद्र, उग्र, भीम, महान् देवको प्रणाम है और इन्हीं मन्त्रोंसे तर्पण करके पवित्रं ते० इस मंत्रसे खीर और गुडौदनको निवेदन करके पूर्वोक्त नामोंसे कृशरका हवन करके भव महादेवकी पत्नीके अर्थ आहुति है इत्यादि आठ मन्त्रोंसे गुडौदनका हवन करके भव महादेवके पुत्रके लिये स्वाहा इत्यादि ऋचाओंसे हलदीभातका हवन कर त्र्यंबकं मानोमहान्तं, मानस्तोके, आरात्ते, गोघ्नं, विकिरिदविलोहित, सहस्राणि सहस्रशः, इन सब बारह मंत्रोंसे हवन करके शिव, शंकर, सहमान, शितिकंठ, कपर्दी, ताम्र, अरुण, अपगुरमाण, हिरण्यबाहु, ससिंजर, बभ्लुश, हिरण्यके निमित्त स्वाहा आहुती है इस प्रकार इन मंत्रोंसे हवन करै, फिर स्विष्टकृत आदि शेषहवन पूर्ण करके पूर्वोक्त सब हवियोंसे विष्णु वा लिंगको बलि दे अर्थात् प्रदान करै, उसका यह मंत्र है कि, आद्यपुरातन पुरुष नारायण सृष्टिके रचनेवालेका पूजन करते है आपही यज्ञरूप विधान करनेके योग्य हो हे परमात्मन् ! अपनी आत्मासे इस हविको स्वीकार करो, यदि लिंग हो तो नारायणके स्थानमें रुद्रपदको जपै फिर पीपलके पत्ते-

वदेत् । ततोऽश्वत्थपर्णे भूर्भुवः स्वरोमिति हुतशेषं निधाय, प्रदक्षिणीकृत्य, 'विश्वभुजे आत्मने परमात्मने नमः' इति नत्वा, आचार्याय शतं तदर्धं तदर्धं द्वादश तिस्र एकां वा गां दत्त्वा, ऋत्विग्भ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा, शतं द्वादश ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः ॥ प्रासादमात्रे नूतने तु मात्स्योक्तजलाशयप्रतिष्ठाविधिमेव कुर्यात् ॥ गोरुत्तारणपात्रीप्रक्षेपादि तु न भवति द्वारलोपात् । वारुणहोमस्थाने वास्तुहोमः । अन्यत्तद्वदेव । इति भट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ लिङ्गार्चाप्रतिष्ठाविधिः ॥ अथ पुनः प्रतिष्ठा । तामधिकृत्य हयशीर्षपञ्चरात्रे–" चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूषिता वह्निनाथवा । अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदूषिता ॥ " संस्कार्येति शेषः । पदार्थादर्शे ब्राह्मे–" खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते । यागहीनैः पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥ अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते । दशस्वेतेषु नो चक्रुः सन्निधानं दिवौकसः ॥२॥ " यागः पूजा ॥ पशुर्गर्दभादिः ॥ पञ्चरात्रे–" खण्डिता स्फुटिता दग्धा यस्मादर्चा भयावहा । तस्मात्समुद्धरेत्तां तु पूर्वोक्तविधिना नरः ॥ " अर्चाभङ्गादावुपवासः र्यः–" न राज्ञो विप्लवेऽश्री-

---

पर भूर्भुवः स्वः ॐ इससे तीन वा चार बार शेष हविको रखकर अग्निसहित देवकी परिक्रमा करके विश्वभुक्, सर्वभूक् आत्मा और परमात्माको प्रणाम है, इस मन्त्रसे प्रणाम करै, फिर आचार्यकी अगुठी, दो कुण्डल, दो वस्त्रसे पूजा करै, सौ वा पचास वा पचीस वा बारह वा तीन या एक गौओंको दे और ऋत्विजोंको भी दक्षिणा देकर सौ वा बारह वा दश ब्राह्मणोंको भोजन करावै, इति संक्षेपः । नवीन प्रासाद (मंदिर) मात्रमें तो मत्स्यपुराणमें वर्णन कीहुई जलाशयप्रतिष्ठाविधिको ही करना चाहिये, गौका उत्तारण और पात्रोंका प्रक्षेप आदि कर्म द्वारके लोपके भयसे नहीं होते वरुणहवनके स्थानमें वास्तुहवनको करै और सम्पूर्ण उसी प्रकार समझना चाहिये ॥ इति कमलाकरभट्टकृतनिर्णयसिन्धुभाषाटीकायां लिंगार्चाप्रतिष्ठाविधिः समाप्तः ॥ अब फिर दूसरीवारकी प्रतिष्ठा लिखते हैं । फिर प्रतिष्ठाके प्रकरणमें हयशीर्षपञ्चरात्रमें यह लिखा है कि, चाण्डाल मद्यके स्पर्श अग्नि तथा अपवित्र मनुष्यके स्पर्शसे चाहैं वे ब्राह्मण क्षत्रिय भी हों इनसे दूषित हुई प्रतिमा भी फिर संस्कारके योग्य होती है, पदार्थादर्शमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, खण्डित, टूटी, जलीहुई, भ्रष्टमान (सत्कार) से हीन याग (पूजा) से हीन, पशु गर्दभादिसे छुईहुई जो दुष्ट भूमिमें गिरगई हो, जो औरके मंत्रोंसे पूजित हो, जिसे पतितने स्पर्श कीहो, ऐसी दश प्रतिमाओंमें देवता नहीं आते, पंचरात्रमें कहा है कि, खण्डित, फटी, चलायमान मूर्तिकी पूजा भयदायक है, तिससे बुद्धिमान् मनुष्य उस मूर्तिका पूर्वोक्तविधानसे पुनः उद्धार करै, यदि पूजामें कोई भंग होजाय तो व्रत करना कारण कि, विष्णुधर्ममें यह लिखा है, कि, राज्यका भंग और देव पूजनका नाश इनमें मनुष्यको भोजन न करना चाहि । नि ई-

यात्सुरार्चाविप्लवे तथा" इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ सिद्धान्तशेखरे-"चौरचण्डालपतितश्वोदक्यास्पर्शने सति । शवाद्युपहते चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत् ॥" पञ्चरात्रे-"अङ्गादङ्गादिसंधाने प्रतिष्ठां पुनराचरेत् । जलाधिवासविहितनेत्रोन्मीलनवर्जिताम् ॥" शुद्धिविवेके विष्णुः-'द्रव्यवत् कृतशौचानां देवतार्चानां भूयः प्रतिष्ठापनेन शुद्धिः' इति ॥ अर्चाः-प्रतिमाः ॥ तद्द्रव्यस्य ताम्रादेरुक्तशौचं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः ॥ स्मृत्यर्थसारेप्येवम् । तद्विधिर्बौधायनसूत्रे-"पूर्वप्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वमेकरात्रं द्विरात्रमेकमासं द्विमासं वार्चनादिविच्छेदे शूद्ररजस्वलाद्युपस्पर्शने पूर्वोक्तकाले पुण्याहं वाचयित्वा, युग्मान् ब्राह्मणान् भोजयित्वा, निशायां जलाधिवासं कृत्वा, श्वोभूते कलशपूर्णेन पञ्चगव्येन तत्तन्मन्त्रैः स्नापयित्वाऽन्यं कलशं शुद्धोदकेनापूर्य, तस्मिन्नवरत्नानि प्रक्षिप्य, तं कलशं तत्तद्गायत्र्याष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिवारं वाभिमंत्र्य, तेनोदकेन देवं स्नापयेत्। ततः शुद्धोदकेन स्नापयेदष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पुरुषसूक्तेन मूलमन्त्रेण च । ततः पुष्पाणि दत्त्वा, यथासंभवमर्चयित्वा गुडौदनं निवेदयेत्" इति ॥ बुद्धिपूर्वं तु विच्छेदे पूर्वोक्तां प्रतिष्ठां पुनः कुर्यात् ॥ पूर्वोक्तविष्णुवचनात् । इदं मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च ॥ देवार्चाप्रासादभेदने तु शूलपाणौ काश्यपः-'वा-

न्तशेखरमें कहा है कि, चोर, चांडाल, पतित, रजस्वलाका स्पर्श और शिव आदिकी मूर्तिके भंगमें फिर प्रतिष्ठा करनी चाहिये, पंचरात्रिमें लिखा है कि, यदि अंगमें दूसरा अंग लगाया जाय यथा दूसरे नेत्र चढाने इत्यादि हों तो फिर प्रतिष्ठा करनी चाहिये,परन्तु जलके अधिवासमें नेत्रोंके मीचनेको त्याग दे, अर्थात् फिर प्रतिष्ठा न करै, शुद्धिविवेकमें विष्णुने कहा है कि, जिनका द्रव्यके तुल्य शौच किया है उन देवप्रतिमाओंकी फिर प्रतिष्ठासे शुद्धि होती है, अर्थात् तांबे आदि उस प्रतिमाके द्रव्यका उक्तके तुल्य शौच करके फिर प्रतिष्ठा करनी ॥ स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखा है फिर प्रतिष्ठाकी विधि बौधायनसूत्रमें इस प्रकार कथन की है कि पहले प्रतिष्ठा कीहुई मूर्तिकी अज्ञानसे एकरात्र दो रात्र एकमहीने दो महीने तक पूजा आदिका भंग होजाय या शूद्र, रजस्वला आदिका स्पर्श होजाय तो पूर्वोक्त समयमें स्वस्तिवाचन कराय (दो आदि) युग्म ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और रात्रिमें जलाधिवास करके, प्रातःकाल कलशमें भरे पंचगव्यसे उन २ मंत्रोंसे स्नान करायकर और दूसरे कलशको शुद्ध जलसे भरकर और उस घडेमें नवरत्न डालकर उस कलशका तिस २ देवताका आठ सहस्र, आठ सौ वा अट्ठाईस वार अभिमंत्रण करके उस जलसे देवको स्नान करावे, फिर शुद्धजलसे न्हवावे, और आठ सहस्रदलोंसे पूजन कर दाल और भात निवेदन करै. यदि जानकर भंगता होजाय तो पूर्वोक्त प्रतिष्ठाको पूर्वमें कहे विष्णुके वाक्यसे फिर करै, यह प्रतिष्ठा मलमास और शुक्रास्त आदिमें भी करलेनी, यह मदनरत्न और हेमाद्रिमें भी कहा है देवताकी प्रतिमा और मंदिरके टूटनेमें

पीकूपारामसेतुसभातडागवप्रदेवतायतनभेदने प्रायश्चित्तं चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात् । 'इदं विष्णुः ' 'मानस्तोके' 'विष्णोः कर्माणि ' 'पादोस्य' इति यां देवतामुत्सादयति तस्यै देवतायै ब्राह्मणान् भोजयेत् इति ॥ शंखलिखितौ-'प्रतिमारामकूपसंक्रमध्वजसेतुनिपातभङ्गेषु तत्समुत्थानं प्रतिसंस्कारोऽष्टशतं च निपातितानाम्' इति ॥ समुत्थानं-प्रतिक्रिया । प्रतिसंस्कारः-पुनःप्रतिष्ठा । अष्टशतं पणा दण्डश्चेत्यर्थः ॥ अथ जीर्णोद्धारनिर्णयः । स च लिङ्गादौ दग्धे भग्ने चलिते वा कार्यः । अयं चानादिसिद्धप्रतिष्ठितलिङ्गादौ भङ्गादिदुष्टेपि न कार्यः । तत्र तु महाभिषेकं कुर्यादिति त्रिविक्रमः ॥ कर्तामुकदेवस्य जीर्णोद्धारं करिष्ये इत्युक्त्वा पुण्याहं वाचयित्वा आचार्यमृत्विजश्च वृत्वा । लिङ्गे ॐ व्यापकेश्वरहृदयाय नमः । ॐ व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहेत्येवं षडङ्गं कृत्वाऽघोरमन्त्रं शतं जप्त्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघोरेण घृतसर्षपैः सहस्रं हुत्वा । इन्द्रादिभ्यो नाम्ना बलिं दत्त्वा जीर्णदेवं प्रणवेन संपूज्य ब्रह्मादिमण्डलदेवतानां होमं पूर्वोक्तं कृत्वा देवं प्रार्थयेत् । " जीर्णभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम् । अस्योद्धारे कृते शांतिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता त्वया ॥ जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम् । तदधस्तिष्ठतां देव प्रहरामि तवाज्ञया ॥ २ ॥"

तो शूलपाणिमें काश्यपने कहा है कि, बावडी, कूप, बाग, पुल, सभा, तालाव, परकोटा, देवमंदिरके तोडनेमें यह प्रायश्चित्त है कि, इन चार मंत्रोंसे चार आहुति दे कि इदं विष्णु० मानस्तोके० विष्णोः कर्माणि० पादोस्य० और उसी देवताके निमित्त ब्राह्मणभोजन करावे. शंख लिखितने कहा है कि, प्रतिमा, कूप, मार्ग, ध्वजा, पुल, चौवचे‌के भंगमें उनको फिर बनवावे और फिर प्रतिष्ठा करे. और जो प्रतिमा आदिको गिराताहो उसको आठसौ पण दण्डभी दे ॥ अब जीर्ण मंदिरादिका उद्धार कहते हैं वह उद्धार लिंग आदिके जलने टूटने वा चलनेपर करना चाहिये और यह उद्धार अनादिसिद्ध लिंगके भंगआदि होनेपर भी न करना चाहिये, वहां तो महास्नानविधि करे, यह त्रिविक्रमका कथन है इस देवमंदिरका जीर्णउद्धार करता हू करनेवाला यह कहकर और स्वस्तिवाचन कराय आचार्य और ऋत्विजोंका वरण करके लिंगमें ॐ व्यापक ईश्वर हृदयाय नमः ॐ व्यापक ईश्वर शिरसे स्वाहा इस प्रकार षडंग न्यास करके और अघोर मंत्र सौवार जपकर और अग्निका स्थापन करके घृत और सरसोंसे एक सहस्र आहुति देकर और नाममंत्रोंसे इंद्र आदिको बलिदान देकर, जीर्ण देवकी ॐकारसे पूजा करके ब्रह्मा आदि मण्डलदेवताओंका पूर्व कहे अनुसार हवन करके देवकी प्रार्थना करे कि, जीर्ण और भंग हुआ यह देव मनुष्योंको सब दोषोंका दाता है, इसके उद्धारकी शांति इस शास्त्रमें आपनेही कही है, जीर्णका उद्धार राजा और प्रजाको हित करनेवाला है हे देव ! तिससे इस मूर्तिमें आप नीचे स्थित हो आपकी आज्ञासे शस्त्रका प्रहार करता हूं अर्थात्

इति ॥ ततः क्षीराज्यमधुदूर्वाभिः समिद्भिश्चाष्टोत्तरसहस्रं शतं वा देवमन्त्रेण हुत्वाऽङ्गानां दशांशेन लिङ्गचालनार्थं सहस्रं शतं वा पायसेन हुत्वा लिङ्गं प्रार्थयेत् ॥ " लिङ्गरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम् ॥ यायास्त्वं संमितं स्थानं संत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥ अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता । शिवेन सह संतिष्ठ" इति मन्त्रितजलेनाभिषिच्य विसर्जयेत् ॥ ततोऽस्त्रमन्त्रितेन खनित्रेण खात्वा लिङ्गमादाय नद्यादौ वामदेवेन लिङ्गं प्रणवेन मूर्तिं क्षिपेत् । दारुजं तु मधुनाऽभ्यज्याघोरेण दहेत् । हेमरत्नादिमयं तु दग्धं चलितं वा पुनस्तत्रैव स्थापयेत् ततः शान्त्यै अघोरेण तिलैः सहस्रं हुत्वा प्रार्थयेत् । " भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते । जीर्णलिङ्गसमुद्धारस्त्वाज्ञया ते मया कृतः ॥ अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले । प्रायश्चित्ताय देवेश अघोरास्त्रेण तर्पितम् ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं यदि । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३ ॥ " इति ॥ ततो यजमानः प्रार्थयेत् । " गोविप्रशिल्पिभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः ॥ शान्तिर्भवतु देवेश ह्यच्छिद्रं जायतामिदम् ॥ " मूर्तौ तु विशेषः—त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं

फिर निर्माण करता हूं ॥ फिर दूध, घृत, शहत, दूब, समिधसे देवमंत्रको पढकर एक सहस्र आठ १००८ वा एक सौ आठ १०८ आहुति देकर और अंग (परिवार) देवोंके निमित्त दशांशसे और लिंगके चलानेके निमित्त खीरकी सहस्र वा सौ आहुति देकर लिंगकी प्रार्थना करै, कि, इस लिंगरूपमें आकर जो देवता स्थित हैं वह देव शिवकी आज्ञासे संमित (श्रेष्ठ) स्थानको गमन करैं, और इस स्थानमें सम्पूर्ण विद्याके ईश्वरोंसे युक्त जो विद्या है वह शिवके संग स्थित हो इस मंत्रसे मंत्रित जलसे अभिषेक करके देवताका विसर्जन करै फिर अस्त्रसे अभिमन्त्रित कियेहुए खनित्र (कुदालादि) से खोदकर और लिंगको लेकर वामदेव मंत्रसे लिंगको और प्रणव पांच ओंकारसे मूर्तिको नदी आदिमें सिरा दे, काष्टके लिंगमें तो शहत लगाय अघोर मंत्रको पढकर होमदे सुवर्ण रत्न आदिके लिंग दग्ध वा चल योग्य होय तो ठीककर वहां ही स्थापन करदे, फिर शांतिके निमित्त तिलोंकी अघोर मंत्रसे १००० सहस्र आहुति देकर प्रार्थना करै कि, हे भगवन् ! हे भूत और भाविके अधिपति ! हे लोकनाथ ! हे जगत्के ईश्वर ! आपकी आज्ञासे मैंने जीर्ण लिंगका उद्धार किया है सो क्षमा करना और काष्टके निर्मितको अग्निसे भस्म करै, और पाषाणकी मूर्ति जलमें सिरादे हे देवेश ! जो अघोर अस्त्रसे तर्पित किया है वह सब प्रायश्चित्तके निमित्त है इसमें जो यथोक्त कर्म ज्ञान अथवा भूलसे न किया हो वह सब आपके प्रसादासे परिपूर्ण हो फिर यजमान स्तुति करै कि, हे देवेश ! गौ, ब्राह्मण, शिल्पी, राजा आचार्य तथा यज्ञ करनेवालेकी शांति हो, और यह पूर्ण हो, मूर्तिमें तो यह विशेष कहा है कि, हे सुरश्रेष्ठ ! आपके प्रसादसे विघ्नरहित मूर्तिको निर्माण

देहं निर्मापयत्यसौ । वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे ॥ वसन् क्लेशं सहित्वेह मूर्तिं वै तव पूर्ववत् । यावत्कारयते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम् ॥ ॥ २ ॥ " इति ततो नवां मूर्तिं लिङ्गं वा कृत्वोक्तविधिना स्थापयेत् । मूलं त्वग्निपुराणे स्पष्टम् ॥ इति जीर्णोद्धारः ॥ अथ तुलसीग्रहणम् । देवयाज्ञिककृते स्मृतिसारे-" वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु । पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये ॥ तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥ " विष्णुधर्मोत्तरे-" रविवारं विना दूर्वां तुलसीं द्वादशीं विना ॥ जीवितस्य विनाशाय प्रविचिन्वीत धर्मवित् ॥ " तथा-" संक्रान्तावर्कपक्षान्ते द्वादश्यां निशिसन्ध्ययोः । यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तैश्छिन्नं हरिमस्तकम् ॥ " पाद्मे-" द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं च कार्त्तिके । लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥ " रुद्रयामले-" द्वादश्यां च दिवास्वापस्तुलस्यवचयस्तथा । विष्णोश्चैव दिवास्नानं वर्जनीयं सदा बुधैः ॥ " विष्णुधर्मे-" न छिन्द्यात्तुलसीं विप्रो द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित् । देवार्थे तुलसीच्छेदो होमार्थं समिधां तथा ॥ इन्दुक्षये न दुष्येत गवार्थे तु तृणस्य च ॥ " ग्रहणमन्त्रस्तु पाद्मे-" तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ।

करताहूँ इससे जवतक और अल्प स्थानके विषय आप विराजिये, और जवतक यह भक्त आपकी मूर्ति निर्माण करे तवतक यहां क्लेशसहित वसतेहुये उसके मनोवाञ्छित कर्मको करो, फिर नवीन मूर्ति वा लिंगको निर्माण कर विधिपूर्वक स्थापन करे, इसमें प्रमाण अग्निपुराणमें कहाहै इति जीर्णोद्धारः ॥ तुलसीके ग्रहण करनेको लिखते हैं, देवयाज्ञिकके निर्माण किये स्मृतिसारमें कहा है कि, वैधृति, व्यतिपात, मंगल, शुक्र, रविवार, दोनों पर्व पूर्णिमा, अमावस, (१९।३०) संक्रान्ति, द्वादशी, दोनों सूतक (मरण जन्य) में जो तुलसीको तोडते हैं वे मानो भगवान्के शिरको छेदते हैं. विष्णुधर्मोत्तरमें कहाहै कि, धर्मात्मा पुरुष रविवारके विना दूर्वा, और द्वादशीके विना तुलसीको अपने जीवनके निमित्त न तोडै; तैसेही कहाहै कि, संक्रांति, रविवार, अमावास्या, पूर्णिमा, द्वादशी, रात्रि, सन्ध्यामें जिन्होंने तुलसीपत्रको तोडा मानो उन्होंने हरिका मस्तकही तोडा है पद्मपुराणमें कहा है कि, जो मनुष्य द्वादशीको तुलसीपत्र और कार्तिकमें आंवलेका पत्ता तोडता है वह महा निंदित नरकोंमें गमन करता है. रुद्रयामलमें कहा है कि, द्वादशीको दिनमें शयन, और तुलसीका तोडना, और दिनमें विष्णुको स्नान कराना इनको बुद्धिमान् मनुष्य सदा त्यागदे. विष्णुधर्ममें कहा है कि, वैष्णव ब्राह्मणको द्वादशीको कभी भी तुलसी न तोडनी चाहिये, देवताके निमित्त तुलसीका और होमके लिये समिधोंका और गौके निमित्त तृणका छेदन अमावास्याकाभी दूषित नहीं है. ग्रहण करनेका मन्त्र पद्मपुराणमें यह लिखा है हे तुलसी ! तुम अमृतरूपा हो और सदा भगवान्की

कशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने " इति ॥ अथ पुष्पादेः पर्युषितत्वम् । पारिजाते दक्षः—' समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः प्रहरो मतः ॥ ' भार्गवार्चने भविष्ये—" प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् । तुलस्यां बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च ॥ न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेपि च ॥ " बृहन्नारदीये—वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ॥ न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥ " तत्रैव पाद्मे—" तुलसी पर्युषिता नैव बिल्वं तु त्रिदिनावधि । पद्मं पञ्चदिनात्त्याज्यं शेषं पर्युषितं विदुः ॥ " स्कान्दे—" पालाशं दिनमेकं तु पंकजं च दिनत्रयम् । पञ्चाहं बिल्वपत्रं च दशाहं तुलसीदलम् ॥ " पदार्थादर्शे बोपदेवस्त्वन्यथाह—" बिल्वापामार्गजातीतुलसिशमिशतार्केतकीभृङ्गदूर्वामन्दाम्भोजाहिदर्भा मुनितिलतगरब्राह्मकह्लारमल्लयः । चम्पाश्वारातिकुम्भीदमनमरुवकाबिल्वतोहानिशस्तास्त्रिंश ३० त्र्ये ३ का १ र्य ६ री ६ शो ११ दधि ४ निधि ९ वसु ८ भू १ भू १ यमा २ भ्रूय एवम् ॥ " अस्यार्थः—शता शतावरी । मन्दः मन्दारः । अहिर्नागकेशरः । मुनिरगस्त्यः । अश्वारातिः करवीरः । कुम्भी पाटलेति कैदवनिघण्टुः ॥ अरयः षट् । ईशा एकादश । उदधयश्चत्वारः । निधयो नव । वसवोऽष्टौ । भूः एकः । यमौ द्वौ । बिल्वमारभ्याऽहिपर्यन्तं गणयित्वा दर्भमारभ्य पुनस्त्रिंशदादिगणयेदित्यर्थः ॥ एतद्दिनोत्तरं पर्युषि-

---

प्यारी हो, कृष्णके निमित्त तुझे तोडताहूँ, हे शोभने ! तुम वरदाता हो ॥ अब फूल आदिके बासीपनको कहते हैं, पारिजातमें दक्षने लिखाहै कि, समिध फूल और कुशा आदिके तोडनेका दूसरा प्रहर माना है । भार्गवार्चनमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, जातीका फूल एक प्रहर कनेरका एक रातदिन स्थित रहता है, तुलसी, बेलपत्र, और सब जलमें और मालीके घरके फूलोंमें बासीपनका दोष नहीं है बृहन्नारदीयमें कहा है कि, फूल और जल ये बासी त्यागने योग्य है परन्तु तुलसी पत्र और गंगाजलका त्याग नहीं है वहांही पद्मपुराणमें लिखा है कि, तुलसी बासी नहीं होती, और तीन दिन तक बेलपत्र बासी नहीं होता पांचदिन तक कमल बासी नहीं है शेष पर्युषित होते हैं ॥ स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, ढांक एक दिन, कमल तीन दिन, बेलपत्र पांच दिन, तुलसीपत्र दशदिनतक बासी नहीं है, पदार्थादर्शमें बोपदेवने तो और लिखा है कि, बेल तीस दिन, अपामार्ग (चिरचिटा) तीन दिन, जाती एक दिन, तुलसी छः दिन, समिधा ग्यारह दिन, शतावरी चार दिन, केतकी नौ दिन, भंगरा आठ दिन, दूर्वा एक दिन, मन्दार एक दिन, कमल दो दिन, नागकेशर एक दिन, कुशा तीस दिन, अगस्त्य तीन दिन, तिल एक दिन, तगर छः दिन, ब्राह्मी ग्यारह दिन, कह्लार चार दिन, चमेली नौ दिन, चम्पा आठ दिन, कनेर एक दिन, पाटल एक दिन, मौलसिरी एक दिन, मरवा दो दिन,

तानीत्यर्थः ॥ टोडरानन्दे स्कान्दे दमनमुपक्रम्य—" तस्य माला भगवतः परम-प्रीतिकारिणी । शुष्का पर्युषिता वापि न दुष्टा भवति कर्हिचित् ॥ " तिथितत्त्वे मात्स्ये—" बिल्वपत्रं च माध्यं च तमालामलकीदले । कह्लारं तुलसीं चैव पद्मं च मुनिपुष्पकम् ॥ एतत्पर्युषितं न स्यात्कुशाश्च कलिकास्तथा ॥ " स्मृतिसाराव-ल्याम्—" जलजानां च सर्वेषां पत्राणामहतस्य च । कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृत-योरपि ॥ न पर्युषितदोषोऽस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि । मुकुलैर्नार्चयेद्देवं पंकजैर्जल-जैर्विना ॥ २ ॥ अथ शिवनिर्माल्यनिर्णयः । सिद्धान्तशेखरे—" धराहिरण्यगोरत्न-ताम्ररौप्यांशुकादिकान् । विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥ अन्यदन्नादि पानीयं ताम्बूलं गन्धपुष्पकम् । दद्याच्चण्डाय निर्माल्यं शिवभुक्तं तु सर्वशः ॥ आचा-र्यशिवचण्डानामाज्ञाभङ्गे तु लक्षकम् । धनस्य भक्षणे तेषां पादोनं लक्षमीरितम् ॥ निर्माल्ये भक्षिते लक्षपादतः शुद्धिरीरिता । दानं च भक्षणसमं तदर्धं तदुपेक्षणे ॥ अकामाद्भक्षणे यद्वा निर्माल्यस्य जपेत्सुधीः । ब्रह्मपञ्चकसाहस्रमर्धेन सहितं ततः ॥ कामतो भक्षणे दीक्षा प्रायश्चित्तं न चान्यतः । निर्माल्यलंघनेऽघोरं प्रजपेदयुतं ततः । स्पर्शश्च लंघनसमो विक्रयो भक्षणेन च ॥ ७ ॥ " स्मृत्यर्थसारेऽपि—" शैव-

---

वकुल एक दिन पर्यन्त बासी नहीं होते ॥ टोडरानन्द ग्रन्थमें स्कन्दपुराणके दमनके प्रकरणमें कहाहै कि, मौलसरीकी माला भगवान्को अत्यन्त प्रिय करती है सूखी वा बासीमी कदाचित् मौल-सरी दूषित नहीं होती है. तिथितत्त्वमें मत्स्यपुराणका लेख है, कि, बिल्वपत्र, कुन्द, तमाल और आँवलेके पत्ते, कह्लार, तुलसी, पद्म, अगस्त्य, कुशा और कलियें बासी नहीं होते. स्मृतिसारावलीमें कहाहै कि, जलके सब फूल पत्ते, और बिना टूटे (स्वच्छ) फूल कुशाके फूल, चांदी और सोनेके फूल और तीर्थका जल, इनमें पर्युषितका दोष नहीं, कमल और जलसे उत्पन्न हुए फूलोंको त्यागकर मुकुलों (कली) से देवताका पूजन न करे ॥ अब शिव-निर्माल्यका निर्णय लिखतेहैं, सिद्धान्तशेखरमें कहाहै कि, पृथ्वी, सुवर्ण, गौ, रत्न, चांदी वस्त्रको त्यागकर शेषनिर्माल्यको चण्डेश्वरको निवेदन करे, अन्य जो अन्न आदि जल, पान, गन्ध, फूल हैं उन सबको शिवजीको निवेदन करनेके उपरान्त चण्डको देदे, आचार्य शिव-चण्डकी आज्ञा भंग करै तो लक्ष और उनके धनके भक्षणमें पौन लक्ष और निर्माल्यके भक्ष-णमें २५ सहस्र जपसे शुद्धि लिखी है, और भक्षण तुल्य दान और उपेक्षा करनेमें अर्द्धदान करै, और अज्ञानसे भक्षणमें बुद्धिमान् मनुष्य पांच सहस्र गायत्रीको जपै,[1] जानकर भक्षण करै तो दीक्षा (मन्त्रका उपदेश) ले और प्रायश्चित्त नहीं है और निर्माल्यके लंघनेमें दशसहस्र अघोरमन्त्र जपै, स्पर्श लंघनके तुल्य और बेचना भक्षणके तुल्य होता है ॥ स्मृत्यर्थसारमें भी

---

१ जहां ' अर्द्धेन सहितम् ' पाठ है वहां साढे पांच सहस्रका अर्थ करना.

सौरनिर्माल्ये नैवेद्यभक्षणे चान्द्रम्, अभ्यासे द्विगुणम्, अत्यभ्यासे प्रतपनम् ॥ अन्यनिर्माल्येऽप्यनापद्येवम् " इति ॥ इदं च ज्योतिर्लिङ्गाद्यतिरिक्तविषयम् । तथा च पुरुषार्थप्रबोधे भविष्ये-" ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति सत्तमः । तस्य नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तप्तकृच्छ्रकम् ॥ शालग्रामोद्भवे लिङ्गे बाणलिङ्गे स्वयंभुवि ॥ रसलिङ्गे तथार्षे च सुप्रसिद्धप्रतिष्ठिते ॥ हृद्ये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरौप्यादिनिर्मिते । शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते ॥ ६ ॥" तथा-" बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते । चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शंभोर्नैवेद्यभक्षणम् । लिङ्गे स्वयं भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते ॥ सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चंडाधिकृतिर्भवेत् ॥ यत्र चण्डाधिकारोस्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः ॥ चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः ॥ २ ॥" त्रैविक्रम्याम्-"बाणलिंगे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि । प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥" अत्र-"ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् । तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते ॥" इति स्कान्दादशुचिना न ग्राह्यं शिवनिर्माल्यम् ॥ किंतु स्नात्वेति स्मार्ताः ॥ अनुपनीतेन ग्राह्यमिति श्रीदत्तः ॥ शिवदीक्षाहीनैर्न ग्राह्यमिति शैवाः । तिथितत्त्वे हेमाद्रौ

कहाहै कि, शिवजी और सूर्यके निर्माल्य नैवेद्य (मिष्टान्न) के भक्षणमें चान्द्रायण व्रत करै, और बारम्बार करै तो दूना व्रत करै, अत्यन्त अभ्यास करनेसे तो प्रतपन करै, और देवताओंके निर्माल्य भक्षणमें भी विना आपत्ति यही प्रायश्चित्त है, यहभी ज्योतिर्लिंग आदिसे भिन्न विषयमें जानना सोई पुरुषार्थप्रबोधमें भविष्य पुराणका वाक्य है कि, जो श्रेष्ठ मनुष्य ज्योतिर्लिंगके विना लिंगकी पूजा करताहै उसको निर्माल्य और नैवेद्यके भक्षणमें तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त लगताहै शालग्रामसे निर्मित और बाणके लिंग और स्वयं निकसे लिंगमें रसके लिंगमें और ऋषि देवता सिद्धके प्रतिष्ठित लिंगमें, हृदय और चन्द्रकान्त मणि सोने चांदीसे निर्मित लिंगमें शिवदीक्षावाला भक्त निर्माल्यका भक्षण करै, यह कहाहै ॥ तैसेही लिखा है कि, बाणलिंग, स्वयं प्रादुर्भूत लिंग, चन्द्रकान्तमणिका, हृदयका लिंग इन शिवमूर्तिके नैवेद्यका भक्षण चान्द्रायणके तुल्य पवित्र करनेवाला है स्वयं प्रादुर्भूत बाण वा रसका वा रत्नका सिद्धोंके प्रतिष्ठित लिंगोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, जिसमें चण्डका अधिकार है मनुष्य उस देवताके नैवेद्यको भक्षण न करै, और जिसमें चण्डका अधिकार नहीं है, उसको भक्तिसे भोग लगाय भक्षण करै ॥ त्रैविक्रमीमें कहाहै कि, बाण, लोहेका और सिद्धोंका प्रतिष्ठित और स्वयंभूलिंग और सम्पूर्णप्रतिमामें चण्डका अधिकार नहीं है, ब्रह्महत्यारा भी जो शुद्ध होकर निर्माल्यको धारण करै, हे महाव्रते ! उसके महापापको भी मैं शीघ्र नाश करता हूं इस स्कन्दपुराणके वाक्यसे अशुद्धमनुष्य ग्रहण न करै यह शैवोंका कथन है. तिथितत्त्व और हेमाद्रि-

परिशिष्टे-"अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥" पञ्चायतनपूजायां तन्त्रेण च निवेदितमित्यर्थः ॥ शिवपुराणे-"ये वीरभद्रशमिताः शिवभक्तिपराङ्मुखाः । शंभोरन्यत्र देवेषु ये भक्ता ये न दीक्षिताः ॥ तेषामनर्हमीशस्य तत्प्रसादचतुष्टयम् ॥" काशीखण्डे-"जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः । एप जालंधरो बन्धः समस्तसुरवल्लभः ॥" तथा-"स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् । त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ॥ लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् । गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः ॥ २ ॥" इदं पूर्ववाक्यवशाद्विश्वेश्वरविषयमिति केचित् ॥ काशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिङ्गविषयम् ॥ काशीखण्डे रत्नेश्वराख्याने तथैव दर्शनादित्यन्ये ॥ कृषिनिर्णयः । राजमार्तण्डः-"ऋक्षेषूत्तरपौष्णववैष्णवमघामूलानुराधाश्विनीप्राजापत्यकरद्विदैवतगुरुप्रालेयपादेषु च । निर्दोषैर्वृषभैर्हलैश्च सुमनोमालाभिरभ्यर्चितैर्दत्त्वा क्षेत्रपतेर्बलिं हलधरः क्षेत्रं ततः कर्षयेत् ॥ प्राजेशश्रवणोत्तरादितिमघामार्तण्डतिष्याश्विनी पौष्णात्तुष्णमरीचयः शतभिषक्स्वाती विशाखा तथा । जीवार्केन्दुसितेन्दुनन्दनदिने लग्ने च सौम्यो-

परिशिष्टमें वाराहपुराणका लेख है कि, शिवका नैवेद्य, पत्र, पुष्प, जल, फल ये सब ग्रहण करनेयोग्य नहींहै और शालग्रामकी शिलाके सम्बन्धसे सब पवित्र होजाते हैं, अर्थात् पंचायतन (पांच देवताओंकी) पूजामें जो एक समय निवेदन कियाहो शिवपुराणमें कहाहै कि, जिनको वीरभद्रका शाप लगा है और जो शिवकी भक्तिसे रहित हैं और जो शिवके सिवाय दूसरे देवताओंके भक्त हैं, उनको शिवजीके चारों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होती ॥ काशीखण्डमें कहा है कि, विश्वेश्वरके स्नानजलको मस्तकपर धारण करना चाहिये यह जालंधरबन्ध (जलोंका धारण) सब देवताओंको अतिप्रिय है तैसेही कहा है कि, जो विधिपूर्वक शिवके लिंगको स्नान करायकर स्नानके जलको पान करता है उसका तीन प्रकारका पाप शीघ्र दूर होता है, जो लिंगके स्नानजलको शिरपर छिडकता है पापहीन होकर उसकी गंगास्नानका फल प्राप्त होता है, ये वाक्य पूर्व वाक्यके वशसे विश्वेश्वरके विषयमें हैं यह कोई लिखते हैं कि पुराणोंमें प्रसिद्ध काशीके सब लिंगोंके विषयमें है, और कहते हैं कि काशीखण्डके रत्नेश्वर लिंगके आख्यानमें इसी प्रकार देखा है ॥ अब कृषिका निर्णय लिखते हैं । राजमार्तण्डमें कहा है कि, तीनो उत्तरा, रेवती, श्रवण, मघा, मूल, अनुराधा, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, विशाखा, पुष्य, मृगशिर, नक्षत्रोंमें निर्दोष और फूलोंकी मालासे पूजित बैल और हलोंसे क्षेत्रके पति देवताको बलि देकर कृषक खेतको जोते, और रोहिणी, श्रवण, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मघा, मार्तण्ड (हस्त), पुष्य, अश्विनी, रेवती, मृगशिर, शतभिषा, स्वाति, विशाखा, नक्षत्र बृहस्पति, सूर्य, चंद्र, शुक्र, बुधवार और सौम्योदय लग्न ये सब खेतीके बोने

दये सस्यानां वपने तथैव लवने शस्तास्तथा रोपणे ॥ २ ॥" चण्डेश्वरः- "हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्यां श्रवणत्रये। स्थिरलग्ने गुरौवारे बीजं धार्यं ज्ञशुक्रयोः ॥ ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा इमं मन्त्रं लेखयित्वा धान्यागारे निधापयेत् । सस्यवृद्धिं परां कुर्यात्पूजितं प्रतिपूजयेत् ॥ दक्षिणदिङ्मुखगमनं गमनमभिनवासु नारीषु । व्ययमपि सस्यधनानां न बुधा बुधवासरे कुर्युः ॥ शनिवारे च नो कार्यो धनधान्यव्ययो बुधैः ॥ ३ ॥" अथ वस्त्रनिर्णयः । श्रीपतिः-" रोहिणी च करपञ्चकेऽश्विमे ह्युत्तरासु च पुनर्वसुद्वये । रेवती च वसुदैवते च भे नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते ॥ जीर्णं रवौ सततमम्बुभिरार्द्रमिन्दौ भौमे शुचे बुधदिने तु भवेद्धनाय । ज्ञानाय मन्त्रिणि भृगौ प्रियसंगमाय मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात् ॥ रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या बिभर्ति नववस्त्रभूषणे । सा न योषिदवलंबते पतिं स्नानमाचरति वारुणेपि या ॥ ३ ॥" अथालंकारवलयादिनिर्णयः । दैवज्ञवल्लभः-" नासत्यपूषवसुभिः करपञ्चके न मार्तण्डभौमगुरुदानवमन्त्रिवारे । मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशंखदन्तरक्ताम्बराणि विधृतानि भवन्ति सिद्धयै ॥" ज्योतिर्निबन्धे-" हस्तानुराधमृगपूषधनिष्ठयुक्तचित्रोत्तरासु च पुनर्वसुरोहिणीषु । लग्ने स्थिरे रविसुतेन्दुजजीववारे हेमादिधारणविधिः कथितो

और लगाने, काटनेमें उत्तम हैं। चंडेश्वर कहते हैं कि, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाति, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा ये नक्षत्र स्थिरलग्न, बृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें बीज बोवे, ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय नमः देहि मे धन्यं स्वाहा ' धन देनेवाले सब लोकके हितकारीको प्रणाम है मुझे अन्न दो इस मंत्रको लिखकर कोठारमें रखदे तो पूजितको भी अर्चित करता है, बुद्धिमान् मनुष्य दक्षिणका गमन और नवीन स्त्रीका दक्षिण दिशाको गमन, और खेत और धनका खर्च बुधवारमें न करै वा शनिवारको भी धन और अन्नको न दे ॥ अब वस्त्रका निर्णय लिखते हैं । श्रीपति कहते हैं कि, रोहिणी और हस्तसे पांच और तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य रेवती, धनिष्ठा नक्षत्रमें नवीन वस्त्रको धारण करना उत्तम है, जीर्ण वस्त्र रविवारको जलसे भीगा वस्त्र चन्द्रवारको धारण करै और नवीन वस्त्रको मंगलवारको पहरै तो अशुद्धि, बुधवार धन, बृहस्पतिवारको ज्ञान, शुक्रवारको प्रियमिलन, शनैश्चरको मलिनता होती है, जो स्त्री रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरामें नये वस्त्र और गहनेको पहरती है वा शतभिषा नक्षत्रमें न्हाती है उसको पतिका संग प्राप्त नहीं होता ॥ अब भूषण और कंकण आदिका निर्णय लिखते हैं । दैवज्ञवल्लभ कहते हैं कि अश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, हस्तसे पांच नक्षत्र सूर्य, मंगल, शुक्र, बृहस्पतिवार इनमें मोती, सुवर्ण, मणि, मूगा, शंख, दांत, लाल वस्त्रको धारण करै तो सिद्धि होती है. ज्योतिर्निबंधमें कहा है कि, हस्त, अनुराधा मृगशिर रेवती, धनिष्ठा, चित्रा, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी नक्षत्र स्थिरलग्न, शनैश्चर, बुध, बृहस्पति

नराणाम् ॥ " तत्रैव श्रीपतिः-" पौष्णाश्विनीवसुकरादिषु पञ्चकेषु कौसुम्भहे-ममणिविद्रुमकाचशंखाः । नार्या धृताः सुतसुखार्थकरा भवन्ति ब्राह्मोत्तरादिति-गुरुष्वसुखाय भर्तुः ॥ " तत्रैव-" शंखादिवररत्नानि पुष्यादित्युत्तरासु च । रोहिण्यां नैव गृह्णीत भर्तुर्जीवितकांक्षिणी ॥ " अथ सूचीकर्म । " वासवादिति-भत्वाष्ट्रमैत्रचन्द्राश्विनीषु च । सूचीकर्मतनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते ॥ " अथशय्या । "हस्तादितिब्रह्मगुरूत्तराणि पौष्णाश्विमूलेन्दुभचित्रभानि ॥ वारेषु जीवेन्दुसिते-न्दुजानां शय्यासनारम्भणमुत्तमं स्यात् ॥ " अथ शस्त्रधारणम् " पुष्ये चादिति-चित्रपद्मतनये शक्रोत्तरारेवतीस्वातीवाजिविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ भार्गवे । कुम्भे कीटगृहे वृषे मृगपतौ चेन्दौ शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुन्तछुरिका धार्या नृपाणां हिताः ॥" अथ स्वामिसेवा । चण्डेश्वरः-"रोहिण्युत्तरपौष्णेषु वसुवारुणयो-रपि । सेवेत स्वामिनं भृत्यः शुभवारोदये तथा ॥" ज्योतिर्निबन्धे-"दासीदासा-दिभृत्यानां कुर्यात्संग्रहणं बुधैः । स्थिरलग्ने शुभैर्दृष्टे मन्दवारे विशेषतः ॥ " गजा-श्वदोलारोहणनिर्णयः । स एव-"पौष्णप्रजेशादितिभद्वयानि हस्तादिषट्कश्रवणो-त्तराणि । दोलादिमातङ्गतुरंगमाणामारोहणेभीष्टफलप्रदानि ॥ " अथ नृत्यम् ।

वारमें मनुष्य सुवर्ण आदिको पहरे । वहांही श्रीपति कहते हैं कि रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त आदि पांच नक्षत्रमें स्त्री कुसुंभी रंगका वस्त्र सुवर्ण, मणि, मूंगा, कांच, शंखको धारे तो सन्तानको मंगलकारी होते हैं और रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्यमें धारे तो पतिके सुखकारी होते हैं वहांही लिखा है कि, शंखआदि श्रेष्ठरत्नको पतिके जीवनकी इच्छा करती हुई स्त्री पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा रोहिणीमें धारण करै ॥ अब सूचीकर्म (सीने) का निर्णय लिखते हैं । धनिष्ठा, पुनर्वसु, चित्रा, मृगशिर, अश्विनीमें सीना और (कवच) संजोवलका बनना अति उत्तम है ॥अब शय्याका निर्णय लिखते हैं । हस्त, पुनर्वसु, रोहिणी, पुष्य, तीनों उत्तरा, रेवती, अश्विनी, मूल, मृगशिर, चित्रा नक्षत्र बृहस्पति सोम, शुक्र, बुधवारमें खाटकाआरम्भ श्रेष्ठ है ॥ अब शस्त्रका धारण लिखतेहैं पुष्य, पुनर्वसु, चित्रा, मृगशिर, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा, रेवती, स्वाति अश्विनी, विशाखा, अनुराधा ये नक्षत्र सूर्य, बृहस्पति, शुक्रवार, कुंभ और वृश्चिक लग्न मकरका चन्द्रमा और लग्नमें शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो तनुत्राण (बख्तर) बाण, तलवार, भाला, छुरिका धारण करना मनुष्योंके निमित्त हित है ॥ अब स्वामिकी सेवा कहतेहैं चण्डेश्वर लिखते हैं कि, रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा और शुभवारमें सेवक स्वामी-की सेवा आरंभ करै ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, बुद्धिमान् मनुष्य, दासी, दास, और भृत्य इनके संग्रहको शुभग्रहोंसे देखे अच्छे शुभ लग्नमें और शनिवारको विशेषतासे करै ॥ अब हाथी घोडोंके चढनेको लिखते हैं । ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, रेवती, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्तसे छः श्रवण, तीनों उत्तरा इनमें हिंडोला, हाथी, घोडा, इनपर चढता यथेच्छ फलको

"हस्तः पुष्यो वासवं रोहिणी च ज्येष्ठा पौष्णं वारुणं चोत्तराश्च । पूर्वाचार्यैः कीर्तित श्चक्रवर्ती नृत्यारम्भे शोभनोऽयं भवर्गः ॥" अथ राजदर्शनम् । श्रीपतिः– 'मृगाश्विपुष्यश्रवणश्रविष्ठाहस्तध्रुवत्वाष्ट्रभपूष्भानि । मैत्रेण युक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि शुभप्रदानि ॥" अथ क्रयविक्रयौ । "भाद्रद्वयात्रिदशमंत्रिदिवाकरेषु मूलानिलोत्तरतुरंगमरेवतीषु । सारङ्गपाणिरजनीकरमित्रभेषु लाभः सदैव भवति क्रयविक्रयाभ्याम् ॥" वस्त्रे तु–"चित्रा शतभिषा स्वाती रेवती चाश्विनी शुभा । श्रवणश्च तथा प्रोक्ता वस्त्राणां क्रयणे शुभाः ॥" अथ सेतुनिर्णयः । "स्वातीयुक्ते मन्दवारे वृषलग्ने शुभे दिने । सेतूनां बन्धनं कार्यं ध्रुवभे चार्कजीवयोः ॥" अथ पशुकृत्यम् । श्रीपतिः–"चित्रोत्तरावैष्णवरोहिणीषु चतुर्दशीदर्शदिनाष्टमीषु । स्थानप्रवेशो गमनं विदध्यात्पुमान् पशूनां न कदाचिदेव ॥" चण्डेश्वरः–"हस्तमूलविशाखासु रेवत्यां श्रवणे तथा । मैत्रे च वारुणे श्रेष्ठं पशुक्रयणमुच्यते ॥" पूर्वात्रयामृतमयूखहुताशनेषु इन्द्राग्निवाजिवसुवारुणशंकरेषु एतेषु गोमहिषदन्तितुरंगमादिनानाप्रकारपशुजातिगतिः प्रशस्ता ॥ २ ॥" अथ गजदन्तच्छेदः । ज्योतिर्निबन्धे–"त्वाष्ट्रे वैष्णव अश्विन्यामादित्ये वसुदैवते

दता है ॥ अब नृत्यको लिखते हैं, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, रेवती, शतभिषा, तीनों उत्तरा पूर्व आचार्योंका लिखा हुआ यह नक्षत्रोंका समूह नृत्यके आरम्भमें उत्तम है और यह चक्रवर्ती योग है ॥ अब राजाके दर्शनको लिखते हैं श्रीपति कहते हैं कि, मृगशिर, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, तीनों उत्तरा, रोहिणी, चित्रा, रेवती, अनुराधा, नक्षत्र राजाके दर्शनमें मंगलदायक हैं ॥ अब क्रयविक्रयको लिखते हैं । पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, बृहस्पति और रविवार, मूल, स्वाति, तीनों उत्तरा, अश्विनी, रेवती, श्रवण, मृगशिर, अनुराधामें, क्रयविक्रय (लेनदेन) करै, तो निरन्तर लाभ होता है, वस्त्रमें तो यह लिखा है कि, चित्रा, शतभिषा, स्वाती, रेवती, अश्विनी, श्रवण नक्षत्र वस्त्रोंके क्रय करनेमें शुभ हैं ॥ अब सेतुको लिखते हैं । स्वातिनक्षत्रसे युक्त शनिवार वृषलग्न और शुभदिन तीनों उत्तरा और रोहिणी रवि और बृहस्पतिवारमें पुलोंका बांधना उत्तम उत्तम है ॥ अब पशुके काम वर्णन करते हैं । श्रीपति कहते हैं कि, चित्रा, तीनों उत्तरा, श्रवण, रोहिणी, चतुर्दशी अमावास्या, अष्टमी इनमें मनुष्य पशुओंके स्थानमें गमन और प्रवेश न करै, चंडेश्वर कहते हैं कि, हस्त, मूल, विशाखा, रेवती, श्रवण, अनुराधा, शतभिषामें पशुओंका लेना उत्तम है, और तीनों पूर्वा, मृगशिर, कृत्तिका, विशाखा, अश्विनी धनिष्ठा, स्वाती, आर्द्रा नक्षत्रोंमें गौ भैंस हाथी घोडा आदि नानाप्रकारके पशुओंका गमन बेचना उत्तम है ॥ अब हाथीके दांतका छेदन लिखते हैं । ज्योतिर्निबन्धमें कहा है चित्रा श्रवण अश्विनी पुनर्वसु धनिष्ठा

दन्तिनां शुभदं कर्म पुष्ये हस्ते च कर्तनम् ॥ " अथ निक्षेपः । " भरणी त्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषामघा तथा । चित्रा ज्येष्ठाविशाखा च मूलं मृगपुनर्वसू ॥ एभि-र्दत्तं प्रयुक्तं च यच्चन्निक्षिप्यते धनम् । पृष्ठतो धावमानस्य तद्धनं नोपपद्यते ॥ २ ॥ " अथ ऋणमोक्षः । श्रीधरः–" वागीशमन्ददिवसांशकलग्नयुक्ते रिक्तासु मन्ददिवसे कुलिकोदये च । मैत्रद्वितीयपदमैत्रमुहूर्तयुक्ते राश्युद्गमे च ऋणमोक्षमुशन्ति सन्तः ॥ " अथ राजमुद्रा । " मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचन्द्र-वर्ज्यम् । वारे तिथौ पूर्णजयाह्वये च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा हि राज्ञाम् ॥ " अथ नौकानिर्णयः । चण्डेश्वरः–" पौष्णाश्विनीतुरगवारुणमित्रचित्राशीतोष्णरश्मिवसवोनलवंत्यमूनि । वारे च जीवभृगुनन्दनके प्रशस्ते नौकादिसंघटनवाहनमेषु कुर्यात् ॥ " अथ भोगः । " गुरुभरविभानुराधाविधातृपौष्णाश्विरोहिणीषु स्यात् । स्वात्युत्तरासु कुर्याच्छयनासनभोगभोगादि ॥ " अथ श्मश्रुकर्म । श्रीपतिः–" पुष्ये पौष्णे चाश्विनीज्यैंदवे च शाक्रे हस्ताद्ये त्रिकेभेष्वादित्याः । क्षौरं कार्यं वैष्णवादित्रये च मुक्त्वा भौमादित्यपातङ्गिवारान् ॥ न स्नानभुक्ता-त्कटभूषितानामभ्यक्तयात्रासमरोत्सुकानाम् । क्षौरं विदध्यान्निशि संध्ययोर्वा

पुष्य और हस्तमें हाथियोंका कर्म उत्तम फलदायक है । अर्थात् हाथीदांतका कर्तन आदि ॥ अब निक्षेप (धरोहर) को लिखते हैं । भरणी, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखा, मूल, मृगशिर, पुनर्वसुमें दिया वा किसी कार्यमें लगाया अथवा जो धन रक्खाजाता है वह पीछे दौड़ते हुए भी धनीको प्राप्त नहीं होता ॥ अब ऋणमोक्षको लिखते हैं श्रीधर कहते हैं कि, बृहस्पति, शनैश्चरसे युक्त नवांशके लग्नमें रिक्ता और शनिवार कुलिकके उदयमें अनुराधाके दूसरे चरण वा योगमें और राशिके उदयमें सज्जनोंने ऋणके मोक्षका करना लिखा है ॥ अब राजमुद्रा (सिक्का) को लिखते हैं । मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चर संज्ञक नक्षत्र शनिश्चर और चन्द्रवारसे भिन्न श्रेष्ठ जय देनेवाले वार और तिथिमें राजाओंकी मुद्राका खुदवाना उत्तम है ॥ अब नौकाको लिखते हैं । चण्डेश्वर कहते हैं कि, रेवती, अश्विनी, शतभिषा, अनुराधा, चित्रा, मृगशिर, हस्त, धनिष्ठा, कृत्तिका नक्षत्र, बृहस्पति, शुक्रवारमें नौका निर्माण और चलाना करे ॥ अब भोगको लिखते हैं । पुष्य हस्त, अनुराधा, अभिजित्, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, तीनों उत्तरामें शयन और भोगोंको करना चाहिये ॥ अब श्मश्रुकर्म (हजामत) कहते हैं । श्रीपति लिखते हैं कि, पुष्य, रेवती अश्विनी, मृगशिर, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्रोंमें भौम, रवि, शनैश्चर, वारोंको वर्ज्य कर क्षौर वनावें, स्नान भोजनके उपरान्त, श्रेष्ठ भूषणोंका भूषित, उबटना, यात्रा और संग्राममें उद्यत, रात्रि संध्या और नौवें दिन जीवनके अभिलाषी

राजजीविषूर्णां नवमे न चाह्नि ॥ २ ॥ त्रिस्थलीसेतौ वृद्धगार्ग्यः–रव्यारसौरवारेषु रात्रौ पाते व्रताहनि । श्राद्धाहः प्रतिपद्रिक्ताभद्राः क्षौरेषु वर्जयेत् ॥ " गार्ग्यः–" षष्ठ्यमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमीं तथा । आसु सन्निहितं पापं त्रिषु तैले भगे क्षुरे ॥ " राजमार्तण्डः–"देवकार्ये पितुः श्राद्धे रवेरंशपरिक्षये । क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ॥ " बृहस्पतिः–राजकार्ये नियुक्तानां नराणां भूपजीविनाम् । श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम् ॥ " तथा–" क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् । पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्ते च तीर्थके ॥ " केचिन्तूत्तरार्धमन्यथा पठन्ति–'मुण्डनस्य निषेधेपि कर्तनं तु विधीयते ॥ ' नारदः–नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे । उद्वाहेखिलवारर्क्षे तिथिषु क्षौरमिष्टदम् ॥" भारते–" प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयीत समाहितः । उदङ्मुखो वाथ भूत्वा तथायुर्विन्दते महत् ॥ " अपरार्के–"उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः । केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत् । दक्षिणं

मनुष्यको क्षौर न करानी चाहिये । त्रिस्थलीसेतुमें वृद्ध गार्ग्य कहते हैं कि, रवि, मंगल, शनैश्चर, रात्रि, व्यतीपात, व्रत और श्राद्धके दिन प्रतिपदा, रिक्ता, भद्राको क्षौर न करावै ॥ गार्ग्य कहते हैं कि, छठ, अमावस, पूर्णिमा, व्यतीपात, चतुर्दशी और अष्टमीको तेल, उवटना रतिकर्म और क्षौरको करै तो शीघ्रही पापयुक्त होता है । राजमार्तण्डमें लिखा है कि, देवकार्य, पितृश्राद्ध, सूर्यकी अंशकी घटती, जन्ममास और जन्मनक्षत्रमें क्षौर न करावै । बृहस्पति कहते हैं कि, राजाके कार्यमें लगे और राज्यसे जीविकावाले मनुष्योंकी डाढी और रोम नखके छेदनेमें समयकी शुद्धि नहीं देखनी तैसेही लिखा है कि, नैमित्तिकक्षौर और पिता आदिकी मृत्यु दीक्षा और प्रायश्चित्त तीर्थका क्षौर निषेधके दिनमें भी निश्चयसे प्राप्त होता है । कोई तो इस श्लोकके पिछले दो पदोंको और प्रकार पढते हैं कि, मुण्डनके निषेधमें भी बालोंको कतरवाले ॥ नारद कहते हैं कि, राजा और ब्राह्मणकी आज्ञा, यज्ञ, मरण बंधनसे छुटकारा, विवाह इनमें क्षौर संपूर्ण वार नक्षत्र और तिथियोंमें भी मनोरथदाता है । भारतमें कहा है पूर्व वा उत्तरको मुख करके सावधानतासे मनुष्य हजामत करावे तो उसकी बडी आयु प्राप्त होती है । अपरार्कमें कहा है बुद्धिमान् मनुष्य उत्तर वा पूर्वको मुखकर हजामत करावे और उत्तरकेही केश रोम नखोंको प्रथम

१ यथा च, आनर्तोहिच्छत्रः पाटलिपुत्रोऽदितिर्दितिः श्रीशः । क्षौरे स्मरणादेषां दोषा नश्यन्ति निःशेषाः । अर्थात्--जो निषिद्धदिनमें क्षौर कराली हो तो उसके दोषशान्तिके निमित्त शुभदिनमें क्षौर कराले, आनर्त, अहिच्छत्र, पाटलिपुत्र, अदिति, दिति श्रीश क्षौर कराते समय इनके नामस्मरणसे दोष नष्ट होता है ॥

कर्णमारभ्य धर्मार्थं पापसंक्षये । शिखाद्ये नवसंस्कारे शिखाद्यन्तं शिरो वपेत् ॥२॥" तत्र यतीनां विशेषः । यतीनां तु विशेषो निगमे—' कक्षोपस्थशिखावर्जं मृतुसंधिषु वापयेत्, इति ॥ अन्येऽपि विधिप्रतिषेधाः प्रागुक्ताः ॥ अथेन्धनसंग्रहः । "ब्रह्मानिलार्कमघमूलत्रिपूर्वरौद्रपौष्णानुराधगुरुविष्णुविशाखयुक्ते । वारे कुजार्क-भृगुनन्दनसोमजानां श्रेष्ठेन्धनस्य करणं भवति प्रशस्तम् ॥ " अथ नवान्नम् । श्रीपतिः—"रेवतीश्रुतिपुनर्वसुहस्तब्राह्मतः पृथगपि द्वितये च । ज्युत्तरेषु गदितं पृथुकानां प्राशनं नवनवान्नविधानम् ॥ " अथ नवभोजनपात्रम् । ज्योतिर्नि-बन्धे—"भोज्यपात्रं सुधासिन्धौ घटयेद्वा समाहरेत् । तत्रान्नप्राशनप्रोक्ते काले भोजनमाचरेत् ॥ " अथ नवपर्णफलादिभक्षणम् । चण्डेश्वरः—"मूलाश्विमैत्रकर-तिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णोत्तरैन्दवपुनर्वसुवासवेषु । वारेषु भूमितनयार्कजवारवर्जं ताम्बूलनूतनफलाद्यशनं हिताय ॥ " अथ होमे आहुतिपातः । ज्योतिषे—"तर-णिविद्भृगुभास्करिचन्द्रसः कुजसुरेज्यविधुंतुदकेतवः । रविभतो दिनभं गणयेत्क्र-मात् प्रतिखगं त्रितयं त्रितयं न्यसेत् ॥ दिनकरार्किंतमःकुजकेतवो हुतभुजेन शुभास्त्वितरे शुभाः । हवनचक्रमिदं प्रविलोक्यतां हवनकर्मणि सर्वसमृद्धये॥२॥"

मुंडवावे दक्षिण कानसे लेकर धर्म और पापनाशके निमित्त और करावे और नये संस्कारमें शिखासे लेकर और शिखासहित मुंडन करावे ॥ संन्यासियोंके निमित्त तो वेदमें विशेष लिखा है कि, कुक्षि, लिंग, शिखाको त्यागकर ऋतुकी संधियोंमें मुण्डन करावे और भी विधि और निषेध प्रथम कह आये हैं ॥ अब इन्धनसंग्रह लिखतेहैं । रोहिणी, कृत्तिका, हस्त, मघा, मूल, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, रेवती, अनुराधा, पुष्य, श्रवण, विशाखा नक्षत्र, मंगल, रवि, शुक्र, बुधवारमें इन्धनका संग्रह करना उत्तमहै ॥ अब नवान्न भक्षण लिखते हैं । श्रीपति कहते हैं कि, रेवती, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, रोहिणी, मृग-शिर, आर्द्रा, तीनों उत्तरामें बालकोंको नया अन्न प्राशन करावे ॥ अब नये भोजनपात्रको वर्णन करतेहैं । नये भोजनपात्रको अमृतसिद्धके निमित्त अन्नप्राशनमें लिखे मुहूर्तमें बनवावे और लावे और उसी मुहूर्तमें उस पात्रमें भोजन करे ॥ अब नये पत्ते और फल आदिके भक्षणको लिखते हैं । चण्डेश्वर कहते हैं कि, मूल, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, पुष्य, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती तीनों उत्तरा, मृगशिर, पुनर्वसु, धनिष्ठा, मंगल शनैश्चरवारको त्यागकर इन नक्षत्रोंमें ताम्बूल और फलका भक्षण हितार्थी मनुष्यको करना चाहिये ॥ अब होममें आहुतिके पात्रको लिख-तेहैं, सूर्य, बुध, शुक्र, शनैश्चर, चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति, राहु और केतु इन ग्रहोंके मुखमें आहुति तब जाती है कि, सूर्यके नक्षत्रसे हवनदिनके नक्षत्रको गिने और एक २ ग्रहके निमित्त सूर्यके नक्षत्रसे तीन तीन नक्षत्र रखदे, उनमें सूर्य, शनिश्चर, राहु, मंगल, केतुके मुखमें आहुति जाय तो शुभकी नष्टता होती है सम्पूर्ण समृद्धिके निमित्त होमकर्ममें इस आहुतिचक्र के

अत्र शान्तिरुक्ता विष्णुधर्मे–"क्रूरग्रहमुखे चैव संजाते हवने शुभे । शान्तिं विधाय गां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । आयसीं प्रतिमां कृत्वा निक्षिपेत्तामधोमुखीम् । गोमूत्रमधुगन्धाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः ॥ स्वस्थां निधाय संपूज्य तत्र होमो विधीयते ॥ " अत्रापवादः क्रियासारे–'नित्ये नैमित्तिके दुर्गाहोमादौ न विचारयेत् ॥ " अथ ज्वरादौ फलम् । श्रीपतिः–"स्वात्याश्लेषारौद्रपूर्वासु शाक्रे रोगोत्पत्तिर्जायते यस्य पुंसः । तद्वैद्यव्यापृतो निष्प्रयत्नः स्याद्दुग्धाब्धेर्लब्धजन्मापि वैद्यः ॥ व्याध्युत्पत्तिर्यस्य पौष्णे समैत्रे प्राणत्राणं जायते तस्य कृच्छ्रात् । वैश्वे सौम्ये रोगमुक्तिस्तु मासाद्विंशत्या स्याद्वासराणां मघासु ॥ पक्षाद्धस्ते वासवे सद्द्विदैवे मूलाश्विन्योरग्निधिष्ण्ये नवाहात् । याम्ये त्वाष्ट्रे वैष्णवे वारुणे च नैरुज्यं स्यान्नूनमेकादशाहात् ॥ आहिर्बुध्न्ये तिष्यसंज्ञे यमाख्ये प्राजापत्यादित्ययोः सप्तरात्रात् ॥ रोगान्मुक्तिर्जायते मानवानां निःसंदिग्धं जल्पितं गर्गमुख्यैः॥४॥" ज्योतिषे–"एकाहो निधनं दशाहमनिलाद्वाणा वियत्पर्वताः सप्ताङ्का विलयश्च मासयुगलं मासो मृतिः पक्षकः । द्वौ मासावथ विंशतिर्दश निशाः पक्षान्तपक्षा नखा मासौ पक्षदशान्तपक्षकक्रमः पीडादिनान्यश्विभात् ॥ " दैवज्ञः–" उरगवरुणरौद्रा वासवेन्द्रत्रिपूर्वा यमदहनविशाखाः पापवारेण युक्ताः । तिथिषु

देखे; इसकी शांति विष्णुधर्ममें लिखी है कि, जो क्रूर ग्रहके मुखमें हवन होजाय तो शांति-द्वारा कुटुम्बी ब्राह्मणको गौ देनी चाहिये, लोहेकी प्रतिमा बनाकर उसको अधोमुख रक्खै, गोमूत्र, मधु और गन्धआदिसे प्रतिमाकी पूजाकर फिर सीधी रक्खै, पूजनकर हवन करै, इसका अपवाद क्रियासारमें लिखा है कि, नित्य और नैमित्तिक कर्म और दुर्गा हवन आदिमें हवनके मुहूर्तको न विचारै ॥ अब ज्वरादिमें फल लिखते हैं ॥ श्रीपति कहते हैं कि, स्वाति, आश्लेषा, आर्द्रा, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा इन नक्षत्रोंमें रोग प्रारम्भ हो, वह चाहै अमृतकेही समुद्रसे उत्पन्नहुआ वैद्य क्यों न होय तो भी उसके निमित्त औषधियोंका व्यापार निष्फल है, जिस मनुष्यको रोगकी उत्पत्ति अनुराधा, रेवतीमें होय तो उसके प्राणोंकी रक्षा बडे कष्टसे होती है, और उत्तराषाढ और मृगशिरमें होय तो एक महीनेमें, मघामें होय तो बीसदिनमें, हस्त, धनिष्ठा, विशाखामें होय तो एक पक्षमें, मूल, अश्विनी, कृत्तिकामें होय तो नौदिनमें, भरणी, चित्रा, श्रवण, शतभिषामें होय तो ग्यारह दिनमें, उत्तराभाद्रपद, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, पुनर्वसुमें रोग होय तो सातरात्रिमें अवश्य रोग निवृत्त होजाताहै गर्गादिका ऐसा कथन है ॥ ज्योतिषमें कहा है कि, अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें रोग होय तो क्रमसे यह फल प्राप्त होताहै कि, एकदिन, मरण, दशदिन, तीन दिन, पांच दिन, शून्य, सात दिन, नौ दिन, मरण, मास, मरण, दो मास, एक पखवारा, दो मास, बीसदिन, दश रात्र, एक पक्ष, दश दिन, सप्तदिन दैवज्ञ कहते हैं कि, अश्विनी, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा, भरणी, कृत्तिका,

नवमिषष्ठीद्वादशी वा चतुर्थी भवति मरणयोगो रोगिणां कालहेतुः ॥ " अत्र कुम्भे हैमीं नक्षत्रदेवताप्रतिमां संपूज्य द्वादशदलेषु संकर्षणादिद्वादशमूर्तीर्द्वादशा- दित्यान् वा संपूज्य दूर्वासमित्तिलक्षीराज्यैर्गायत्र्या तद्देवतायै अष्टोत्तरशतं हुत्वा दध्योदनं बलिं दत्त्वाचार्याय गां प्रतिमां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति संक्षेपः ॥ विशेषस्तु व्रतहेमाद्रौ पदार्थादर्शे च ज्ञेयः ॥ अथ भेषजम् । चण्डेश्वरः-"मूलानुराधमृगतिष्यपुनर्वसौ च पौष्णाश्विनीश्रवण- शुक्रकरत्रये च । वारेषु वाक्पतिदिनेषु सितेंदुशस्ते भैषज्यभक्षणममीषु हितं नराणाम् ॥ " अथारोग्यस्नानम् । श्रीपतिः-" इन्दौवारे भार्गवे च ध्रुवेषु सार्पादित्यस्वातियुक्तेषु भेषु । पित्र्ये चान्ते वापि कुर्यात्कदाचिन्नैव स्नानं रोगनि- र्मुक्तजन्तुः ॥ चरे विलग्ने रविभौमवारे रिक्ते तिथौ स्याद्गहुले च पक्षे । धिष्ण्ये चरे रोगनिपीडितानां स्नानं नराणां निरुजत्वकारि ॥ २॥ " अथ दन्तधावनम्। पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः-" प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु चतुर्दश्यष्टमीषु च । नवम्यां भानुवारे च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ " नारदः-"चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीसंक्रमणेषु च । नन्दासु च नवम्यां च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ श्राद्धे यज्ञे च नियमे तथा प्रोषित-

---

विशाखा और पापवार और नवमी, द्वादशी, चतुर्थी, छठ, तिथि होंय तो रोगियोंके निमित्त यह मरणका योग कालका कारण है, दुष्टयोगमें रोग होंय तो नक्षत्रकी सोनेकी प्रतिमा निर्माण कर और घडेपर रखकर और प्रतिमाके वा घडेके बारह दलोंपर संकर्षण आदि बारह मूर्ति वा बारह आदित्योंकी पूजाकर दूर्वा, समिध, तिल, दूध, घृतकी १०८ आहुति गायत्री मंत्र पढकर उस देवताके निमित्त देकर दध्योदनकी बली देकर आचार्यको गौ और प्रतिमा दान कर ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इति संक्षेपः । विशेष तो व्रतहेमाद्रि और पदार्थादर्शमें जानना चाहिये ॥ अब औषधि सेवन करनेके दिनोंको लिखते हैं, चण्डेश्वर कहते हैं कि, मूल, अनु- राधा, मृगशिर, पुनर्वसु, विशाखा, रेवती अश्विनी, श्रवण, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, बृह- स्पति, शुक्र, चन्द्रवार इनमें मनुष्योंको औषधिका भक्षण करना हित है ॥ अब आरोग्यके स्नानको लिखते हैं । श्रीपति कहते हैं सोम, शुक्र वार, तीनों उत्तरा, रेवती, आश्लेषा, पुन- र्वसु, स्वाति, मघा, रेवतीमें रोगी मनुष्य कदाचित् भी स्नान न करै, चर लग्न रवि, मंगल- वार, रिक्ता तिथि, और शुक्ल पक्ष, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण नक्षत्रमें रोगी स्नान करै तो रोग- नाश होता है ॥ अब दंतधावनको लिखते हैं, पृथ्वीचंद्रोदयमें विष्णुने लिखा है कि, प्रतिपदा अमावस्या, छठ, चतुर्दशी, अष्टमी, नौमी और रविवारमें दतोन वर्जित है । और नारद कहते हैं कि, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, संक्रांति, प्रतिपदा, छठ, एकादशी, चतुर्दशी, अष्टमी और पर्वमें स्त्री और मनुष्य तैल, क्षौर भोग, मांस और दतोनको त्याग दे । जिस

भर्तृका । व्यतीपाते च संक्रान्त्यां नन्दाभूताष्टपर्वसु ॥ तैलं क्षौरं रतिं मांसं दन्तकाष्ठं च वर्जयेत् " ॥ २ ॥ वसिष्ठः-"शन्यर्कशुक्रवारेषु कुजाहे व्रतवासरे । जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ " हेमाद्रौ स्कान्दे-" अभ्यङ्गे जलधिस्नाने दन्तधावनमैथुने । जाते च निधने चैव तत्कालव्यापिनी तिथिः ॥ " संवर्तः-'रवौ विवाह आशौचे वर्जयेद्दन्तधावनम् ' व्यासः-" अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ । अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् " ॥ अथामलकस्नानम् । व्यासः-"श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः। सप्तमीं नवमीं चैव पर्वकालं विवर्जयेत् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥" क्रतुः-"षष्ठी च सप्तमी चैव नवमी च त्रयोदशी । संक्रान्तौ रविवारे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥ " यत्तु-" नवमी दशमी चैव तृतीया च त्रयोदशी । प्रतिपद्द्वादशी कृष्णा स्नानं तासु विवर्जयेत् ॥ " यच्च-" दर्शे स्नानं न कुर्वीत मातापित्रोः सुजीवतोः । पुत्रः कुर्वन्निराचष्टे पित्रोरुन्नतिजीविते " ॥ इति कण्वयमाद्यैः स्नानमात्रं निषिद्धम् ॥ तद्भोगार्थस्नानपरम् ॥ न नित्यनैमित्तिकपरमिति हेमाद्रिः ॥ अथ तैलस्नाननिषेधः । कात्यायनः-" पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां च तथा तिथौ । तैलेनाभ्यज्यमानस्तु चतुर्भिः परिहीयते ॥ "

स्त्रीका पति परदेशमें हो तो वसिष्ठने लिखा है कि, शनिश्चर, रवि, शुक्र, मंगल वारोंको व्रत और जन्म और श्राद्धके दिन दतोन न करे । हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, उबटना समुद्रका स्नान, दतोन, मैथुन, जन्म और मरणमें वही तिथि माननी चाहिये, जो उस समय विद्यमान हो । सम्वर्तने लिखा है कि, रविवार विवाह और आशौचमें दतोन न करे । व्यासने लिखा है कि, दतोनके न मिलनेपर और निषिद्ध तिथिको जलके बारह कुल्लोंसे दतोन करले । अब आमलोंसे स्नानको लिखते हैं । व्यासका कथन है कि, जो मनुष्य लक्ष्मीकी इच्छा करै तो निरन्तर आमलोंके जलसे स्नान करै, सप्तमी, नवमी और पर्वकालको त्यागदे, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें आमलोंसे स्नानको वर्जदे । क्रतु कहते हैं कि, छठ, सप्तमी, नवमी, त्रयोदशी और संक्रांति रविवारमें आमलोंसे स्नानको छोडदे जो किसीने इन कण्व, यम आदिके वाक्यसे स्नानमात्रका निषेध किया है कि, नवमी, दशमी, तृतीया, त्रयोदशी, प्रतिपदा और कृष्णपक्षकी द्वादशीमें स्नान न करै, और अमावास्याका उसे स्नान न करावै जिसके माता पिता जीते हों यदि पुत्र करै तो मातापिताकी उन्नति और जीवनको नष्ट करता है, ये वाक्य भोगके निमित्त हैं जो स्नान उसमें है अथवा अनैमित्तिक स्नानके विषयमें है, अर्थात् मातापिताकी उन्नतिके निमित्त स्नान करै तो कुछ दोष नहीं यह हेमाद्रिका कथन है ॥ अब तैलस्नानके निषेधको कात्यायन लिखते हैं प्रतिपदा, रविवार, छठ, रिक्तातिथिमें जो तेलसे स्नान करै

गर्गः–"पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां रविसंक्रमे । द्वादश्यां सप्तमीषष्ठ्योस्तैलस्पर्शं विवर्जयेत् ॥ न च कुर्यात्तृतीयायां त्रयोदश्यां तिथौ तथा । शाश्वतीं गतिमन्विच्छन् दशम्यामपि पण्डितः ॥ २ ॥" तत्रैवायुर्वेदे–"षष्ठ्यां दिनक्षयेऽष्टम्यामेकादश्यां च पर्वसु । द्वादश्यां च चतुर्दश्यां पञ्चम्यां प्रतिपत्तिथौ ॥ व्रते श्राद्धदिने जन्मत्रितये श्रवणार्द्रयोः । ज्येष्ठोत्तराफाल्गुनीषु व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ विष्टियोगे च संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु ॥ नाभ्यङ्गं तत्र बालानां वृद्धानां तु न दोषकृत् " ॥ ३ ॥ इति ॥ व्यवहारतत्त्वे–"संक्रान्तिभद्राव्यतिपातवैधृतिषष्ठ्यष्टमीपर्वसु नार्कभृत्सुते । स्नाने द्वितीया दशमी च गर्हिताः षष्ठ्याद्यमाद्या रदधावनेऽधमाः ॥" अस्यापवादमाह तत्रैव प्रचेताः–"सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् । अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥" आयुर्वेदे–"निषिद्धतिथिवारर्क्षग्रहणेष्वपि रात्रिषु । किंचिद्गोघृतयुक्तं वा विप्रपादरजोन्वितम् ॥ भानौ दूर्वान्वितं भौमे भूयुक्तं पुष्पयुग्गुरौ । सर्वेषां सर्वदा तैलमभ्यङ्गेषु न दुष्यति ॥" मंगलेष्वप्यदोषः ॥ "मांगल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपर्वोत्सवेषु च ॥ स्नेहमात्रसमायुक्तं मध्याह्नात्प्राक्तदिष्यते ॥" इति मदनपारिजाते कात्यायनोक्तेः ॥ हेमाद्रौ बृहन्मनुः–"तैलाभ्यंगो नार्कवारे न

यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षसे रहित होता है । गर्ग कहते हैं कि, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी संक्रांति, द्वादशी, सप्तमी, छठमें तेलका स्पर्श न करे और तृतीया, त्रयोदशी, दशमीको भी श्रेष्ठगतिकी इच्छा करताहुआ पंडित तेलसे न न्हाय, वहांही आयुर्वेदमें कहा है कि, षष्ठी तिथिका क्षय, अष्टमी, एकादशी, पर्व द्वादशी, चतुर्दशी, पंचमी प्रतिपदा तिथि व्रत और श्राद्धका दिन जन्मके दिनसे तीन दिन श्रवण आर्द्रा ज्येष्ठा उत्तराफाल्गुनी व्यतीपात वैधृति विष्टियोग संक्रान्ति मन्वादि और युगादितिथिमें बालकोंको तैलसे स्नान न करना, और वृद्धोंको कुछ दोष नहीं है ऐसा जानना चाहिये ॥ व्यवहारतत्वमें कहा है कि, संक्रांति भद्रा व्यतीपात वैधृति छठ अष्टमी पर्व रात्रि और मंगलवार द्वितीया दशमी ये स्नानमें छठ और प्रतिपदा दतोनमें निंदित हैं । इसका निषेध वहांही प्रचेताने लिखाहै कि, सरसों और गन्धके तथा फूलोंसे सुगन्धित और दूसरे द्रव्यसे युक्त तेलका कदाचित् भी दोष नहीं है । आयुर्वेदमें कहा है कि, निषिद्ध तीथि वार नक्षत्र ग्रहण और रात्रिमें किञ्चित् गौके घृतसे युक्त वा ब्राह्मणके चरणोंकी रजसे युक्त तेलका दोष नहीं है, रविवारको दूर्वासे युक्त मंगलवारको भूमिसे युक्त बृहस्पतिको फूलसे युक्त तेल सदा सबके निमित्त अभ्यंगमें दूषित नहीं है । पुत्रका जन्म पर्व उत्सवमें तेलके पात्रसे युक्त मंगल स्नान करावे और वह मध्याह्नसे प्रथम कहा है, इस मदनपारिजातमें लिखे हुए कात्यायनके वाक्यसे मंगलमें तैल मलनेका दोष नहीं । हेमाद्रिमें बृह-

भौमे नो संक्रान्तौ वैधृतौ विष्टिषष्ठयोः । पर्वस्वष्टम्यां च नेष्टः स इष्टः प्रोक्तान् मुक्त्वा वासरे सूर्यसूनोः ॥ " तिलस्नाननिषेधस्तु षट्त्रिंशन्मते—"तथा सप्तम्यमावास्यासंक्रान्तिग्रहजन्मसु । धनपुत्रकलत्रार्थी तिलपिष्टं न संस्पृशेत् ॥ " अथ गृहारम्भः । ज्योतिर्निबन्धे बादरायणः—"वैशाखे फाल्गुने पौषे श्रावणे मार्गशीर्षके । सूत्रारम्भः शिलान्यासः स्तम्भारम्भः प्रशस्यते" ॥ नारदः—"सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्त्तिकाः । मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः" अत्र वृषसिंहवृश्चिकाः—वैशाखश्रावणकार्तिकाः सौराज्ञेयाः इति कालादर्शः ॥ तत्रैव कारणतन्त्रे—"स्थिरमासे स्थिरे राशौ स्थिरांशे नववेश्मनाम् । कुर्वीत स्थापनं शंकोः शंभुस्थापनमेव वा ॥" कार्त्तिकनिषेधस्तुलापरः ॥ "कुम्भे माघेऽपि सर्वेषां मन्दिराणामुपक्रमम् । महर्षयः प्रशंसन्ति धान्यागारं विहाय च ॥निषेधो धान्यगृहपरः ॥ "पाकभोजनशालादौ मार्गशीर्षश्च फाल्गुनः । रथ्यागेहमठादौ च सहस्यः शुचिरेव तु ॥" पौषाषाढनिषेधस्तु प्रधानगृहपरः ॥ 'न प्रधानगृहारम्भं कुर्यात्पौषे शुचावपि' इति तत्रैवोक्तेः ॥ ज्योतिस्तत्त्वे—"पूर्वापरास्यं तु नभोन्त्यपौषे याम्योत्तरास्यं सहसि द्वितीये । कार्यं गृहं जीवबुधर्क्षगार्के नीचास्तगौ जीव-

न्मनु कहते हैं कि, रविवार भौम संक्रांति वैधृति विष्टि षष्ठी पर्व अष्टमीमें तैलाभ्यंग करना अच्छा नहीं और इनको त्यागकर शनिवारको वह तैलाभ्यंग कहा है, तिलके स्नानका निषेध तो षट्त्रिंशत्के मतसे लिखा है कि, सप्तमी अमावास्या संक्रांति जन्मदिनमें धन पुत्र स्त्रीका अभिलाषी मनुष्य पीसे हुए तिलोंको न छुए ॥ अब गृहारम्भको लिखते हैं ज्योतिर्निबंन्धमें बादरायण कहते हैं कि, वैशाख, फाल्गुन, पौष, श्रावण, मार्गशिरमें सूत्रका आरम्भ (सूतसे घरकी भूमिको नापना) शिलाका रखना स्तम्भोंका प्रारम्भ उत्तम है. नारद कहतेहैं कि, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक महीनेमें गृहके बनानेमें पुत्र आरोग्य धनके देनेवाले शुभदायी हैं, इस वाक्यमें वैशाख श्रावण और वृष, सिंह, वृश्चिक, सूर्यकी संक्रान्तिसे लेने चाहिये यह कालादर्शमें कहा है, उसी स्थानमें कारण तंत्रमें यह लिखा है कि, स्थिरमहीना स्थिरराशि और स्थिरके नवांशमें नये घरोंके शंकुओं (सूतके लिये चारों कोणोंमें खूटीका गाडना) का स्थापना और महादेवका स्थापन करे, कार्तिकका निषेध तो तुलाकी संक्रांतिके विषयमें जानना कुम्भ और माघ महीनेमें भी सब मंदिरोंके प्रारम्भकी अन्नके गृहको त्यागकर सब महर्षि प्रशंसा करते हैं, इनमें निषेध भी धान्यगृहके विषे जानना चाहिये । पाक और भोजनशालामें मार्गशिर और फाल्गुन रथ्या गृह और मठ आदिमें पौष और आषाढ उत्तम है, पौष और आषाढका निषेध तो प्रधान गृहके विषयमें है, कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि, पौष और आषाढमें प्रधानगृहका आरम्भ न करना चाहिये ॥ ज्योतिषतत्वमें कहाहै कि, पूर्व और पश्चिमके मुखका घर, श्रावण, फाल्गुन, पौषमें; दक्षिण और उत्तर मुखका घर, मार्गशि

सितौ च हित्वा ॥ '' रत्नमालायां " कर्कनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि । तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि वदन्ति ॥ '' दैवज्ञवल्लभः-" शोकं धान्यं पञ्चतां निःपशुत्वं स्वाप्तिं नैःस्वं संगरं भृत्यनाशम् ॥ स्वश्रीमाप्तिं वह्निभीतिं च लक्ष्मीं कुर्युश्चैत्राद्या गृहारम्भकाले ॥" गर्गः-"त्र्युत्तरामृगरोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करत्रये । धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ॥ रोहिण्यां श्रवणत्रयं दितियुगे हस्तत्रये मूलके रेवत्युत्तरफाल्गुनीष्वुरगभे मैत्रोत्तराषाढयोः । शस्तं वास्तु कुजार्कवर्जितदिने गोकुम्भसिंहे मुखे कन्यायां मिथुने नभःशुचिसहोराधार्कजे फाल्गुने ॥ २ ॥ '' कालादर्शे सनत्कुमारः-' आदित्यभौमवर्जं तु सर्वे वाराः शुभप्रदाः ' वास्तुशास्त्रे-" मार्गशीर्षे तथा पौषे वैशाखे श्रावणे तथा । फाल्गुने च कृतं वेश्म सर्वसंपत्प्रदं भवेत् ॥ कार्त्तिके माघमासे च चैत्रे ज्येष्ठे तथाश्विने । मास्याषाढे भाद्रपदे न कुर्यात्सर्वथा गृहम् ॥ द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा । त्रयोदशी च दशमी पूर्णा चैकादशी तथा ॥ वेश्मारम्भे शुभाय स्युर्विशेषाच्छुक्लपक्षगाः ॥४॥ '' व्यवहारसारे-" शिलान्यासः प्रकर्तव्यो गृहाणां श्रवणे मृगे । पौष्णे हस्ते च रोहिण्यां पुष्याश्विन्युत्तरात्रये ॥ '' वास्तुप्रदीपे-

---

और वैशाखमें निर्माण करै; बृहस्पति बुधकी राशिके सूर्यको और नीचे और अस्तहुए बृहस्पति और शुक्रको छोडदे. रत्नमालामें लिखाहै कि, कर्क, मकर, सिंह, कुंभके सूर्यमें पूर्व और पश्चिमके मुखके घर; तुला, मेष, वृश्चिक, वृषके सूर्यमें दक्षिण और उत्तर मुखके घर बनाने लिखेहैं. दैवज्ञवल्लभ कहतेहैं कि, चैत्र आदि महीनोंमें गृहके आरम्भका क्रमसे यह फलहै शोक अन्न मरण पशुओंकी हानि धनकी प्राप्ति धननाश संग्राम मृत्यु नाश. कालादर्शके मतसे मृत्यु और नाशके स्थानमें धन और धान्यका फल लिखाहै लक्ष्मीकी प्राप्ति अग्निसे भय और लक्ष्मी. गर्गका कथन है कि, तीनों उत्तरा, मृगशिर, रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाति, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवतीमें गृहका आरम्भ उत्तम है, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति मूल रेवती उत्तराफाल्गुनी आश्लेषा .अनुराधा उत्तराषाढमें मंगल और रविवारको त्यागकर मकर, कुम्भ, सिंह, कन्या, मिथुनकी संक्रांति श्रावण, आषाढ, मार्गशिर वैशाख कार्तिक और फाल्गुनमें घर बनाना उत्तम है ॥ कालादर्शमें सनत्कुमार कहते हैं कि, रवि मंगलको छोडकर सब वार शुभदायी हैं वास्तुशास्त्रमें कहा है कि, मार्गशिर, पौष, वैशाख, श्रावण, फाल्गुनमें निर्माण किया घर सब संपदाओंको देता है, कार्तिक माघ चैत्र ज्येष्ठ आश्विन आषाढ भाद्रपदमें घरको किसी प्रकार न बनावै, और द्वितीया तृतीया पञ्चमी सप्तमी त्रयोदशी दशमी पूर्णिमा तिथि घरके आरंभमें उत्तम हैं. शुक्ल पक्षकी तिथि तौ विशेषकर शुभ हैं ॥ व्यवहारसारमें कहा है कि गृहोंकी शिला (ईंटों) का रखना श्रवण, मृगशिर रेवती हस्त रोहिणी पुष्य अश्विनी तीनों उत्तरा इन नक्षत्रोंमें करना

अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् ॥ तिर्यङ्मुखैर्द्वारकपाटयानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवैश्च ॥ " लल्लः-" स्नानं च पाकं शयनं च भोज्यं गजालयं वाजिगृहं धनस्य। देवस्य पूर्वादिदिशि क्रमेण मध्ये सभा भूपनिवेशनाय ॥ " शिल्पशास्त्रे-" कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिमुखं शंभुकोणेऽग्निखातं वायव्ये स्यात्त्वदास्यं त्वलिधनमकरे ईशखातं वदन्ति । कुम्भे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं खातवायव्यकोणे चाग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे रक्षखातम् ॥ " तत्त्वचिंतामणौ-" यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोधिकम्। न तत्र चिंतयेद्धीमान् गुणानायव्ययादिकान् ॥ " राजमार्तण्डः-" आयव्ययौ मासशुद्धिं तृणागारे न चिन्तयेत्। शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथागारपुरातने ॥ " व्यवहारतत्त्वे-" निषिद्धेष्वपि कालेषु स्वानुकूले शुभे दिने। तृणकाष्ठगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥" चण्डेश्वरः-" पूर्णादि त्वष्टमीं यावत् पूर्वास्यं वर्जयेद्गृहम्। उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादि चतुर्दशीम् ॥ अमावास्याष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत्। नवम्यादौ तथा याम्यं यावत्कृष्णचतुर्दशी ॥ ध्रुवं दृष्ट्वाथवा स्मृत्वा कर्तव्यं वास्तुरोपणम्। सायाह्ने वर्ज्यदिवसे रात्रौ त्यक्त्वा महानिशाम् ॥ ३ ॥ " वराहः-" दक्षिणपूर्वे

चाहिये वास्तुप्रदीपमें कहा है कि, खात अधोमुख नक्षत्रोंमें और शिलापट्ट (देहली) ऊर्ध्वमुख नक्षत्रोंमें द्वार किवाड सवारीको तिर्यङ्मुख नक्षत्रोंमें, और गृहका प्रवेश मृदु संज्ञक और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें करना चाहिये। लल्ल कहते हैं कि स्नान पाक शयन भोज्य हाथी और घोडोंका घर धन और देवताके स्थानको पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे करै और किलेके मध्यमें बैठनेके निमित्त बीचमें अपनी राजसभा निर्माण करावे। शिल्पशास्त्रमें कहा है कि, कन्या सिंह और तुलाकी संक्रांतिमें शेषका मुख ईशानमें होता है, तब अग्निकोणमें नीम खोदे, और वृश्चिक धन मकरमें वायव्यमें मुख होता है तब ईशानमें खोदे, कुम्भ मीन मेषमें नैर्ऋतमें मुख होता है तब वायव्यमें खोदना चाहिये, वृष मिथुन कर्कमें अग्निकोणमें मुख होता है तब नैर्ऋतमें खोदे ॥ तत्त्वचिन्तामणिमें कहा है कि, जहां घरकी लंबाई तीस हाथसे अधिक हो बुद्धिमान् मनुष्य उस घरमें लंबाई और चौडाई गुण दोष आय व्यय आदिकी चिन्ता न करै, राजमार्तण्डमें कहा है कि, लंबाई और चौडाई और महीनेके शुद्धिकी चिन्ता तृणके घरमें न करै और पुराने घरमें शिलाके न्यास आदिकी चिन्ता न करै. व्यवहारतत्वमें कहा है कि निषिद्धसमयमें भी अनुकूल शुभदिन होय तो तृण और काष्ठके गृहारंभमें महीनेका दोष नहीं चण्डेश्वर कहते हैं कि, पूर्णिमासे अष्टमीपर्यंत पूर्वमुख गृहको और नौमीसे चतुर्दशी पर्यंत उत्तराभिमुख घरको अमावस्यासे अष्टमी पर्यंत पश्चिमाभिमुख घरको और नौमीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तक दक्षिणाभिमुख घरको त्यागदे, ध्रुवको देखके अथवा स्मरण करके वास्तुका आरंभ करै, दिनमें सायाह्नको और रात्रिमें अर्धरात्रिको त्यागदे ॥ वाराह लिखते हैं, कि,

कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् । शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः ॥ " कालादर्शे वास्तुशास्त्रे–' खाते चैव शिलान्यासे वृषचक्रं प्रशस्यते ॥ ' तच्चोक्तं शान्तिरत्ने–" चतुर्हस्तप्रमाणं तु खात्वा गर्तं समन्ततः । कुम्भोदकैः संचयेयुः शान्तिपाठपुरःसरम् ॥ तत ईशानदिग्भागे साक्षतं रत्नपञ्चकम् । साज्यं कुम्भं स्थिरं मुक्त्वा वास्तुपूजनपूर्वकम् ॥ कुम्भोपरि शिलान्यासः कर्तव्यस्तदनन्तरम् ॥ २ ॥ " अथ गृहप्रवेशः । बृहस्पतिः–" नन्दायां दक्षिणं द्वारं भद्रायां पश्चिमेन तु । जयायामुत्तरद्वारं पूर्णायां पूर्वतो विशेत् ॥ " वसिष्ठः–" कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान्पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम् । हर्म्यं रम्यं तोरणस्रग्वितानैः स्त्रीभिः स्रग्वी गीतवाद्यैर्विशेच्च॥" व्यवहारतत्त्वे–"सौम्यायने श्रावणमार्गपौषे जन्मर्क्षलग्नोपचयोदयांशे । वामं गतेऽर्के गृहवास्तुपूजां कृत्वा विशेद्धेऽशुभकूटशुद्धम् ॥ " वास्तुशास्त्रे–"लग्नात्प्रागादितो दिक्षु द्वौ द्वौ राशी नियोजयेत् । एकमेकं न्यसेत्कोणे सूर्यं वामं विचिन्तयेत् ॥ "वसिष्ठः–" चन्द्रजार्यसितवासरेषु च श्रीकरं सुतमहार्थलाभदम् । सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदं किं तु चौरभयमत्र निर्दिशेत् ॥" रत्नकोशे–"पुष्ये धनिष्ठामृगवारुणेषु स्वायंभुवर्क्षे त्रिषु चोत्तरासु ।

दक्षिण और पूर्वके कोणमें पूजन करके प्रथम शिलाको रक्खे शेष शिलाओंको प्रदक्षिणा क्रमसे रक्खे, इसी प्रकार स्तंभोंको रक्खै कालादर्शमें वास्तुशास्त्रके प्रकरणमें यह कहा है कि, नीमके खोदने और शिलाके रखनेमें वृषचक्रका देखना उत्तम है वह चक्र शांतिरत्नमें कहा है कि, चार हाथका गढा चारों ओरसे खोदे, और घटके जलसे शांतिपाठ करके उस गढेको सींचे, फिर ईशानदिशामें अक्षत और पंचरत्न घृतसहित घटका स्थापन और वास्तुका पूजन करके उस घडेके ऊपर शिलाको रक्खे ॥ अब गृहप्रवेशको बृहस्पति लिखते हैं कि, नंदामें दक्षिणके द्वारमें, भद्रामें पश्चिम द्वारमें, जयामें उत्तरके द्वारमें और पूर्णामें पूर्वके द्वारमें प्रवेश करै. वसिष्ठ कहते हैं कि शुक्रको पीठ पीछे करके सूर्यको वामभागमें करके ब्राह्मणोंकी पूजा और जलसे भरे हुए घडेको आगे करके तोरण माला चन्द्रोवासे मनोहर घरमें माला धारण किये यजमान स्त्री और गीत और बाजों सहित प्रवेश करै. व्यवहारतत्त्वमें कहा है कि उत्तरायण श्रावण मार्गशिर और पौषमें जन्मनक्षत्र और लग्नकी वृद्धि और नवांशमें सूर्यको बांये करके वास्तुपूजाके उपरान्त नक्षत्रोंसे शुद्ध मुहूर्तमें गृहप्रवेश करै ॥ वास्तुशास्त्रमें कहाहै कि, पूर्व आदि दिशाओंमें दो २ राशि रक्खे, और चारों कोणोंमें एक २ राशि रक्खे, इनसे वाम और सूर्यकी चिन्ता विचार करै । वसिष्ठ कहते हैं कि, बुध, बृहस्पति, शुक्रवार होय तो गृह लक्ष्मीको देताहै और पुत्र और लाभका देनेवाला होताहै, शनैश्चरके दिन स्थिरताको देताहै परन्तु इसमें चोरका भय है. रत्नकोशमें कहाहै कि, पुष्य धनिष्ठा मृदुसंज्ञक शतभिषा तीनों उत्तरा

अक्षीणचन्द्रे शुभदे नृपस्य तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः ॥'' नारदः-''प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः । माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः ॥ अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् । गृहं न प्रविशेद्धीमानापदामाकरो हि तत् ॥ २ ॥'' ज्येष्ठः-क्षुद्रगृहपरः ॥ वृद्धगार्ग्यः-''भानोश्च भौमस्य विहाय वारौ शूलादियोगानशुभानवापि । रिक्ता तिथिश्चापि मृदुध्रुवर्क्षे सौम्यायने च प्रविशेद्गृहाणि ॥'' रत्नमालायां-'' त्वाष्ट्रमित्रशशिपुष्यदैवतान्यामनन्ति मुनयो मृदून्यथ । मैत्रगे हरति भूषणांबरोद्गीतमंगलविधानमेषु च ॥'' रोहिण्युत्तरात्रयं च ध्रुवाणि ॥ प्रवेशश्च वास्तुपूजां कृत्वा कार्यः ॥'' जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने । नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने । द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च ॥ वास्तूपशमनं कुर्यात्पूर्वमेव विचक्षणः ॥ २ ॥'' इति मात्स्योक्तेः ॥ तत्रैव-'' कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुंभं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् । दत्त्वा हिरण्यवसनानि तथा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशांतिनिलयं स्वगृहं विशेच्च ॥ गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः । संतर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लांबरः स्वभवनं प्रविशेत्सुरूपम् ॥ २ ॥'' अथ

रोहिणी पूर्ण चन्द्रमा और रिक्तासे भिन्नतिथिमें राजाको गृहप्रवेश उत्तम होताहै. नारद कहतेहैं अगहन और कार्तिक महीनेमें प्रवेश मध्यम और माघ फाल्गुन वैशाख ज्येष्ट. महीनेमें उत्तम जानना, किवाड रहित जो छाया अर्थात् ऊपरसे ढका न हो जिसमें देवताओंकी बलि और भोजन न हुआहो उस घरमें बुद्धिमान् मनुष्यको प्रवेश न करना चाहिये कारण कि, वह आपत्तियोंका भंडार है इसमें ज्येष्ठ छोटे घरके निमित्त है ॥ वृद्धगार्ग्य कहते हैं कि, रवि और मंगलवार और शूल आदि अशुभ योग रिक्ता तिथिको छोडकर मृदु और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें और उत्तरायण सूर्यमें घरमें प्रवेश करै, रत्नमालामें कहाहै कि, चित्रा अनुराधा मृगशिर पुष्य और इनके देवताओंको मुनि जन मृदु कहते हैं, और इनमें मित्रकार्य घर भोग भूषण वस्त्र गान मंगलकार्य करै, रोहिणी तीनों उत्तरा ध्रुवसंज्ञक हैं, और वास्तुकी पूजा करके घरमें प्रवेश करै, कारण कि, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, जीर्णका उद्धार बाग गृह प्रवेश नया प्रासाद और महल स्थानपरिवर्तन वा द्वारका बदलना, मंदिर और घरमें बुद्धिमान् मनुष्यको पहलेही वास्तुशांति करनी चाहिये, वहांही लिखा है, कि, ब्राह्मण और जलसे पूर्ण उस घडेको आगे करके जो घडा दधि अक्षत आमके पत्तोंसे शोभित हो, और ब्राह्मणोंको सुवर्ण वस्त्र देकर मंगल शांतिवाले घरमें प्रवेश करै, गृह्यसूत्रमें लिखी उस विधिसे बलिदे, जो विधि प्रासादकी वास्तुशांतिमें लिखी है और भक्ष्य और भोज्योंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त कर फिर शुक्लवस्त्रोंको धारण कर अपने सुन्दर घरमें प्रवेश करै ॥ अब कलियुगमें

कलिवर्ज्यानि । बृहन्नारदीये-" समुद्रयातुः स्वीकारः कमण्डलुविधारणम् । द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा । देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः । मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥ दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च । दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ॥ रहः प्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः । इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥ " कमण्डलुः-' सोदकं च कमण्डलुम् ' इत्युक्तः, मृन्मयो वा । दत्ता ऊढाः । " ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधस्तथा । कलौ पञ्च न कुर्वीत भ्रातृजायां कमण्डलुम् ॥" इति हेमाद्रौ वचनात् ॥ ऊढायाः-'परपुरुषसंयोगान्मृते देयेति केचन ' इत्यादिभिर्विवाह्यतोक्ता ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे-" गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा । नराश्वमेधौ मद्यं च कलौ वर्ज्यं द्विजातिभिः॥" गोत्राद्गोत्रजायाः पितृष्वसुः मातृसपिण्डात् मातुलात्तत्कन्यया विवाहः कलौ न कार्यः ॥ तेन यानि तद्विधायकानि, तानि युगान्तरविषयाणि ॥तथा व्यासः-" तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृतस्तथा ॥ शुल्केन

वर्जितोंको लिखते हैं ! बृहन्नारदीयमें कहा है कि, समुद्रकी यात्राको स्वीकार करना कमंडलुका धारण (संन्यास) और ब्राह्मणोंको अपनेसे भिन्न वर्णकी कन्यासे विवाह करना, देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति, मधुपर्कमें पशुका वध, श्राद्धमें मांसप्रदान, वानप्रस्थ आश्रम, पुरुषके संगरहित विवाही कन्याको फिर व्याहना, बहुत कालतक ब्रह्मचर्य, नरमेध और अश्वमेध यज्ञ, महाप्रस्थान (अतिदूर) गमन, (अर्थात् मरणके निमित्त गमन) गोमेधयज्ञ इतने कार्य बुद्धिमानोंने कलियुगमें वर्जित किये हैं अथवा जलवाला कमण्डलु वा मृत्तिकाका पात्र रखना हेमाद्रि कहते हैं कि, विवाहीका पुनर्विवाह, ज्येष्ठ पुत्रका अधिक भाग गोविशसन, भ्राताकी पत्नीका स्वीकार, संन्यास ये पांच बातें कलियुगमें न करनी, कोई तो यह लिखते हैं कि, यदि विवाही हुई कन्याको दूसरे विवाहसे: प्रथम पुरुषका संयोग न हुआ होय तो प्रथम पतिकी मृत्यु होनेपर वह दूसरे पतिको देदेनी ये किसीका अल्पमत होनेसे स्वीकार योग्य नहीं है ॥ हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका लेख है कि, माताके सपिंड और गोत्रसे विवाह गोविशसन नरमेध अश्वमेध और मद्य, ये सब कलियुगमें द्विजातियोंको त्यागनी चाहिये, फूफी और माताके सपिण्डको और मामाकी कन्यासे विवाह कलियुगमें न करना चाहिये तिससे जो उस विषयके वाक्य हैं वे दूसरे युगोंके निमित्त हैं, सोई व्यासने लिखा है कि, माता और पितासे तीसरी पीढीकी कन्याको और मोलली कन्याको पापसे विमोहित होकर

---

१ तथा च, यत्तु कार्तयुगो धर्मो न कर्तव्यः कलौ युगे । पापयुक्ताश्च सततं कलौ नार्यो नरास्तथा ॥ सतयुगके सब धर्म कलियुगमें नहीं होते कारण कि, कलियुगके नारी नर पापकर्ममें रत रहते हैं ॥

चोद्वहिष्यन्ति विप्राः पापविमोहिताः ॥ " इति कलौ तन्निन्दामाह ॥ मातृतस्तृतीयां मातुलकन्यामित्यर्थः ॥ उक्तं चैतत् प्राक्॥ ' मद्यं स्त्रीभ्यश्च सुरामाचामम् ' इत्यादिना विहितमपि वर्ज्यम् ॥ हेमाद्रौ आदित्यपुराणे–" विधवायां प्रजोत्पत्तौ देवरस्य नियोजनम् । बालायाः क्षतयोन्यास्तु वरेणान्येन संस्कृतिः ॥ कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः । आततायिद्विजाग्र्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ॥ द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्यापि संग्रहः । सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमण्डलुविधारणम् ॥ महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञप्तिश्च गोसवे । सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः ॥ अग्निहोत्रहवन्याश्च लेहो लीढापरिग्रहः । वृत्तस्वाध्यायसापेक्ष्यमघसंकोचनं तथा ॥ प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणान्तिकम् । संसर्गदोषः स्तेयान्यमहापातकनिष्कृतिः ॥ ६ ॥ " संसर्गदोषः–'तत्संसर्गी च पञ्चमः ' इत्युक्तः ॥ स्तेयं च तदन्यानि महापातकानि ब्रह्महत्यासुरापानगुरुतल्पानि त्रीणि । तेषां कामकृतानां मरणान्तिकं प्रायश्चित्तं विप्राणां कलौ नेत्यर्थः ॥ मरणान्तिके हि जातिवधनिमित्तं द्वादशाब्दद्विगुणं ब्रह्मवधनिमित्तं च द्विगुणं भवति । तत् 'चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः' इति निषिद्धम् ॥ न चात्महत्याविधिना तद्बाधः । तेन ह्यात्महत्यानिमित्तस्यैव बाधो न जातिवधनिमित्तस्याभिन्नविषय-

---

ब्राह्मण विवाहेंगे, यह कलियुगमें व्यासने उनकी निंदा लिखी है मातासे तीसरी मामाकी कन्या यहां पहले कथन कर आये हैं, स्त्री, और असुर, मद्य पिये इससे विधानकी भी मदिराका कलिमें त्याग है हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका कथन है कि, विधवामें प्रजाकी उत्पत्तिके निमित्त देवरका नियोग और क्षतयोनिवाली कन्या दूसरे वरको देनी द्विजातियोंको भिन्नवर्णकी कन्यासे विवाह, धर्मयुद्धमें शस्त्रधारी ब्राह्मणोंका मारना, नावमें वैठकर समुद्रमें जानेवाले इनमें केवल उसी द्विजके संग व्यवहार करना जो प्रायश्चित्तसे शुद्ध होगया हो सत्र (समाज) की दीक्षा (मन्त्रका उपदेश) संन्यास महाप्रस्थानमें गमन गोसव यज्ञमें पशुको मारना सौत्रामणियज्ञमें सुरापान अग्निहोत्रके साकल्यका चाटना और भक्षण आचरण और वेदपाठके निमित्त आसव सेवन और मरणतक ब्राह्मणोंका प्रायश्चित्त संसर्गदोष (महा पातकीका संग) और चोरीसे दूसरे महापातकका प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या करनी सुरापान गुरुकी स्त्रीका गमन ये तीन महापातक कहे हैं, यदि ब्राह्मण इनको जानबूझकर करै तो उसको मरणान्त प्रायश्चित्त कलियुगमें नहीं है, किन्तु मरणके अन्तमें जातिवधके निमित्त बारह वर्ष और ब्राह्मणके वध निमित्त दूना प्रायश्चित्त कहा है और चौथे महापातकका प्रायश्चित्त नहीं है इससेही निषिद्ध है, और यदि कहो कि आत्महत्या करनेसे उसका बाध होता है सो उचित नहीं है । आत्महत्या निमित्तकाही उससे बाध होता है जातिवध निमित्तका नहीं है कारण कि, उसमें विषयका

त्वात् । संसर्गिणस्तु कामतोपि व्रतस्यैवोक्तेर्न मरणान्तिकम् । नापि स्तेये, तत्र राज्ञो वधकर्तृत्वात् । तेन तयोर्मरणान्तिकत्वाभावात् । तयोरेव निष्कृतिर्नान्येषां त्रयाणाम् । युगान्तरे तु कलौ निषेधबलात् प्रवृत्तिः । एतद्विप्रपरं, न क्षत्रियादेः । तदुक्तं–' विप्राणां मरणान्तिकम् ' इति ॥ विशेषोस्मत्कृते प्रायश्चित्तरत्ने ज्ञेयः ॥ " वरातिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया । दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥ सवर्णान्यांगनादुष्टैः संसर्गः शोधितैरपि ॥ अयोनौ संग्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियः । परोद्देशात्मसंत्याग उद्दिष्टस्यापि वर्जनम् । प्रतिमाभ्यर्चनार्थाय संकल्पश्च सधर्मकः ॥ अस्थिसंचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शनमेव च ॥ शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा ॥ षड्भक्तानशने चान्नहरणं हीनकर्मणः ॥ ९ ॥" माधवीये पृथ्वीचन्द्रोदये च–"शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणाम् । भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवातिदूरतः ॥ शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवद्वृत्तिशीलता । आपद्वृत्तिर्द्विजाग्र्याणामश्वस्तनिकता तथा ॥ प्रजार्थं तु द्विजाग्र्याणां प्रजारणिपरिग्रहः । ब्राह्म·

भेद है, संसर्गीका तो जानकरभी व्रतही लिखा है मरणके अन्तमें नहीं और चोरीमें भी प्रायश्चित्त नहीं । वहांभी वधका कर्ता राजा है तिससे उन दोनोंको मरणान्तिकके न होनेसे उन दोनोंकाही प्रायश्चित है और तीनोंका नहीं है, और युगमें तो कलियुगमें निषेधके बलसे प्रवृत्ति (प्रायश्चित्त) है, यह भी ब्राह्मणके निमित्त है, क्षत्रिय आदिको नहीं, सोई लिखा है कि, ब्राह्मणोंको मरणांतिक प्रायश्चित्त नहीं है, विशेष तो हमारे बनाये प्रायश्चित्तरत्नमें देखलेना, और ये भी कलियुगमें वर्जित हैं कि, वर अतिथि पितरके निमित्त पशुका वध करना दत्तक औरससे दूसरे पुत्रोंको स्वीकार करना, अपने वर्णसे दूसरे वर्णकी स्त्रीके संसर्गी उनका संग जिन्होंने प्रायश्चित्त भी किया हो, योनिसे पृथक् वीर्यका पात, गुरुकी स्त्रीका परित्याग, पराये निमित्त अपनी हत्या, उद्दिष्ट (स्वीकृत) का त्याग, मूर्ति पूजनके निमित्त धर्मसे संकल्प लेना, (इतना लेकर पूजन करूंगा ऐसा कहना) अस्थिसंचयके उपरान्त अंगका स्पर्श, हिंसाका यज्ञ और ब्राह्मणोंको सोम बेचना, छठे कालमें भोजन, अनशनव्रतहीन कर्मवाले (पतित) से अन्न ग्रहण करना वर्जित है ॥ माधवीय और पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है कि, शूद्रोंमें धीवर गोपाल कुलमित्र, आधे साझी, इनका अन्न गृहस्थीको खाने योग्य समझना और बहुत दूर तीर्थ सेवक, शिष्य गुरुकी स्त्रियोंमें गुरुके तुल्य वृत्ति रक्खे, ब्राह्मणको आपत्कालकी वृत्ति वा अश्वस्तनिकता (दूसरे दिनके निमित्त भी सञ्चय न करना) और ब्राह्मणोंको प्रजाके निमित्त प्रजारणि (अरणिमें अग्निको मथन करने) का स्वीकार करना ब्राह्मणोंके परदेशमें निवास सुखसे

---

१ कुलमित्रका अर्थ कोई कुरमी कोई कुलका मित्र करते हैं । अर्धसीरीको कोई आधी· बटाई करनेवाला कहते हैं.

णानां प्रवासित्वं मुखाग्निधमनक्रिया ॥ बलात्कारादिदुष्टस्त्रीसंग्रहो विधिचोदितः॥ यतेश्च सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्याविधानतः ॥ नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता । ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियापि च ॥ भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणे तथा । गोतृप्तिशिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया । पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दण्डकल्पनम् । यतेः सायंगृहत्वं च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः । निवर्तितानि विद्वद्भिर्व्यवस्थापूर्वकं बुधैः ॥ " सुराग्रहणस्य तत्कर्तुः संग्रहो व्यवहारकः ॥ न च मद्यं चेति सामान्येन निषिद्धस्याऽनेनोपसंहार इति वाच्यम् ॥ निषिद्धस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षत्वात् । ' न हिंस्यात् ' इत्यस्य ' न ब्राह्मणं हन्यात् ' इत्यनेनोपसंहारे हिंसान्तरस्यादोषत्वापत्तेश्च निरूपितं चैतद्धेमाद्रिणाऽन्यत्रेत्युपरम्यते ॥ सुराग्रहस्योद्देश्यस्य सौत्रामणिविशेषणाविवक्षया वाजपेयेऽपि निषेधः । सौत्रामण्यां तु–'पयोग्रहाः वा स्युः ' इत्यापस्तम्बोक्तैर्वैकल्पिकपयोग्रहैरप्यधिकारः ॥ वाजपेये तु–तत्प्राप्तौ मानाभावात् सोमसुरयोः सह त्यागेनांशे सुराद्रव्यत्वात्तत्प्रत्यक्षतया यागनामत्वेन तां विना संज्ञायोगात् कलौ नाधिकार इति युक्तं प्रतीमः ॥ त्रिकाण्डमण्डनादिलिखनं तु निर्मूल-

---

अग्निको फूकना बलसे दुष्ट स्त्रीका शास्त्रोक्त विधिसे अंगीकार करना, संन्यासीको सब वर्णोकी भिक्षा करना, मरणमें दश दिनके भीतर दक्षिणा ग्रहण करनी, ब्राह्मण आदिकोंमें शूद्रको पाक निर्माण करना, पर्वतसे और अग्निमें गिरकर वृद्ध आदिका मरना, गौकी तृप्तिसे शेष जलमें शिष्टोंको आचमन करना, पिता पुत्रके विरोधमें गवाहोंको दण्ड देना, सन्ध्याके समय संन्यासीको किसीके घरमें टिकना तत्त्वके जाननेवाले कवियोंने लोककी रक्षाके निमित्त कलियुगकी आदिमें ये निषिद्ध किये हैं ॥ मदिराके ग्रहणमें मद्य निर्माण करनेवालेका संग्रह व्यवहारसे है, अर्थात् पीने और निर्माण करनेवाले दोनों पतित हैं, यदि कोई कहै कि, मद्य इस पूर्वोक्त सामान्यवाक्यसे निषेधकी इसमें इससे पूर्ति की है, सो उचित नहीं कारण कि, निषेधका फल निवृत्ति लिखी है. उसको विशेषका अपेक्षा नहीं होसकती, चाहिये कि, अन्यथा हिंसा न करै, इससे ब्राह्मणको न मारना इससे उपसमाप्ति न मानोगे तो और हिंसाओंका दोष न होगा, यह सब हेमाद्रिने और स्थानमें वर्णन किया है, इससे हम यहांही विश्राम लेते हैं, मद्य स्वीकारको सौत्रामणि विशेषणकी विवक्षा न होनेसे वाजपेयमें भी मद्यका निषेध है, सौत्रामणिमें तो ब्राह्मण पयोग्रह दूधको भक्षण करै, इस आपस्तम्बके कथनसे दूध पीनेवालोंका भी विकल्पसे अधिकार लिखा है । वाजपेय यज्ञमें तो दूधकी प्राप्तिमें कोई प्रमाण नहीं है सोम और मद्यका एक बारही त्याग होनेसे उसके अंशमें मदिरा द्रव्यके विना उसकी संज्ञा नहीं होसक्ती इससे कलियुगमें अधिकार नहीं है यही बात हम युक्त देखते हैं ॥ त्रिकांडमण्डन आदिका लेख तो

मनाकरं च ॥ वृत्तेति–'एकाहाद्ब्राह्मणः शुद्ध्येद्योगी वेदसमन्वितः' इत्युक्तः ॥ खाद्यस्याशौचस्य संकोचः 'न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृग्वग्निपतनादृते' इत्युक्तस्य प्रायश्चित्तस्य विधानमुपदेशः । 'कलौ कर्तैव लिप्यते' इति व्यासोक्तेः ॥ पतितसंसर्गे दोषसत्त्वेति पातित्यं नेत्यर्थः ॥ इति केचिदाहुः। ते मूर्खाः मानाभावात्। तेनायमर्थः संसर्गी तु पंचमः । स्तेये च तदन्यानि महापातकानि ब्रह्मवधसुरापानगुरुतल्पानि त्रीणि तेषां कामाकृतानां प्रायश्चित्तं कलौ न । तेषु कामतो मरणांतस्यैवोक्तेः तत्स्थाने द्वादशाब्दं वैगुण्ये आत्मनो ब्रह्मवधनिमित्ते च चतुर्विंशाब्दमिति चतुर्गुणद्वादशापत्तेस्तस्य च चतुर्थे नास्ति निष्कृतिरिति निषेधात् संसर्गिणो व्रतस्यैवोक्तेः । स्तेये च राज्ञो वधकर्तृत्वान्नात्मवधापत्तिः । अतो वैगुण्ये युक्तोऽधिकारः । न च विधिना निषेधाबाधात् आत्मवधदोषापवादेऽपि ब्रह्मवधाभावात् । युगान्तरदोषसाम्येऽपि कलौ दोषाधिक्यात् । एतद्विप्रपरम् ॥ स्तेयभिन्ने महापापे रहस्यकृते प्रायश्चित्तं नेत्यर्थः ॥ सवर्णान्या असवर्णा क्षत्रियादिस्तया दुष्टे अयोनौ शिष्यादौ 'चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या' इत्युक्तस्त्यागः ॥ परोद्देशेन ब्राह्मणाद्यर्थमात्मत्यागः । यद्वा परोद्देशात्मत्यागो गोदानं 'मनसा पात्रमुद्दिश्य' इत्युक्तम् ॥ उद्दिष्टस्य त्यक्तस्य वर्जनम् ॥ प्रतिग्र-

---

निर्मूल है, और आकरसे भी विरुद्ध है, कारण कि, अग्निहोत्री और वेदपाठी ब्राह्मण दिनमें पवित्र होताहै इस वाक्यसे प्रथम आशौचका संकोच होता है और पर्वतसे और अग्निमें गिरे विना उसका प्रायश्चित्त नहीं है इस कथनसे कहींही प्रायश्चित्तकी विधिको उपदेश कहते हैं, और कलियुगमें करनेवालाही लिप्त होता है इस व्यासके कथनसे पतितके संसर्गमें दोष हो तोभी वह पतित नहीं होता । कोई ऐसा कहते हैं वे मूर्ख हैं, कारण कि, उनके कथनमें कोई प्रमाण नहीं इससे यह अर्थ (सिद्धांत) है कि, महापातकियोंका संसर्गी पांचवां होताहै इनसे और ब्राह्मणका वध मद्यपान गुरुस्त्रीका गमन ये महापातक लिखे हैं । यदि जानके किये होंय तो कलियुगमें इनका प्रायश्चित नहीं है कारण कि, इनका प्रायश्चित मरणांतही लिखा है उसके स्थानमें बारहवर्ष और दूने २४ ब्रह्मवधके निमित्त मानोगे तो चौथी वार महापातकमें अडतालीस (४८) होजाय और चौथेमें प्रायश्चित्त नहीं है इस कथनसे उसका निषेध है, और संसर्गीको व्रत करनाही लिखा है और चोरीमें वधका कर्ता राजा है, इससे आत्मवध नहीं होसक्ता, इससे विगुणता (अधूरा) होजाय तो अधिकारयुक्त है, यह विप्रपर है विधिसे नहीं है कारण कि, निषेधके वाक्य है शिष्य (चेली) गामी और गुरुगामी आदि चार पातकी त्यागने योग्य है, इससे त्यागने युक्त हैं, परके उद्देश्य (ब्राह्मण आदिके निमित्त) से अपना मरण अथवा परके निमित्त मनसे सुपात्रको दान और उद्दिष्टका त्याग यह है कि, त्यागेहुएको

दसमर्थोपि ' इत्युक्तम् ॥ चेतनग्रहणेन प्रतिमापूजा । 'स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागतः' इत्युक्तः स्पर्शः॥ षडिति ॥ 'उपोषितस्त्र्यहं स्थित्वा धान्यम-ब्राह्मणाद्धरेत्' इत्युक्तमन्नचौर्यम् ॥ आपदि क्षात्रादिवृत्तिः ॥ 'मुखेनैव धमेदग्निम्' इत्युक्तं धमनम् ॥ 'दशाहेनैव शुद्ध्येत भूमिष्ठं च नवोदकम्' इत्युक्तो दशाहः ॥ 'गुरवे तु वरं दत्त्वा' इत्युक्ता दक्षिणा ॥ शूद्रेषु दासगोपाले तु—"कन्दूपक्वं स्नेह-पक्वं यच्च दुग्धेन पाचितम् । एतान्यशूद्रान्नभुजो भोज्यानि मनुरब्रवीत् " इत्यप-रार्के सुमन्तूक्ता शूद्रस्य पाकक्रिया ॥ 'पितापुत्रविवादे तु साक्षिणां त्रिपणो दमः' इत्युक्तः॥ सायंगृहत्वम्-'विधूमेसन्नमुसले' इत्युक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रेण तु—"अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च । अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सायंगृहास्तु ते ॥" इति विष्णुपुराणोक्तो निषिद्धः ॥ तेनाज्ञातशीलपान्थादेः श्राद्धादौ विनियोगो न कार्यः ॥ कलावित्यर्थं उक्तः॥ एतानि वर्ज्यानीत्यर्थः । निगमः—"अग्निहोत्रं गवा-लम्भं संन्यासं पलपैतृकम् । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥" अग्नि-होत्रं तदर्थमाधानम् एतच्च सर्वाधानपरम् ॥ "अर्धाधानं स्मृतौ श्रौतस्मार्ताग्न्योस्तु

ग्रहण करै ॥ मासिक लेकर प्रतिमाका पूजन अपने आशौचके तीसरे भागमें स्पर्श होताहै, इस कथनसे कहाहुआ स्पर्श (छूना) है और षड्भक्त यह है कि, तीन दिन व्रत करके ब्राह्मणसे भिन्नके अन्नको चुरावै यह अन्नकी चोरी है, आपत्कालमें क्षत्रिय आदिकी वृत्ति स्वीकार करना मुखसे अग्नि फूकनेमें इस वाक्यसे लिखा हुआ धमन (फूंकना) लेना और भूमिपर गिराहुआ जल दशदिनमें पवित्र होताहै, इस वाक्यसे लिखाहुआ दशाह लेना और गुरुको दक्षिणा देकर गृहस्थमें इस कथनसे कहीहुई दक्षिणा लेनी शूद्रोंमें दास और गोपालको इस वाक्यसे लिखी हुई शूद्रकी पाकक्रिया ग्रहण करनी कि, कन्दू (कड़ही) में स्नेह (घृतआदि) और दूधसे पकाये पदार्थ उसको भी भोजनके योग्य है जो शूद्रके अन्नको न खाता हो यह मनुने लिखा है इस प्रकार अपरार्कमें सुमन्तुने शूद्रकी पाकक्रिया कही है और पिता पुत्रके विवादमें दण्ड यह है कि, साक्षियोंको तीन पणका दण्डदेना और संन्यासीका सायंगृह यह है कि जब गृहस्थीके घरमें धुआं और मुशलका शब्द बन्द हो उस कालमें जाय ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयने तो इस विष्णु-पुराणके कथनसे लिखे हुएका निषेध लिखा है कि, ब्राह्मण पृथिवी देखनेके निमित्त विचरतेहैं और स्थान नहीं रखते, और जो भोजन नहीं करते उसे सायंगृह लिखा है' जहां संध्याको टिकैं वही घर है जिस पान्थका शील और आचरण प्रतीत न हो उसका श्राद्धमें नियोग न करना चाहिये, कलियुगमें यह है ऐसा कहनेसे यह वर्जित है अग्निहोत्र, गवालम्भ, संन्यास, मांसके पिण्ड, देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति ये पूर्वोक्त कलियुगमें वर्जित हैं, और अग्निहोत्रके निमित्त अग्निका आधान ये सर्वाधानके विषयमें जानना और श्रौत और स्मार्त अग्निमें आधा आधान कहा

पृथक्कृतिः । सर्वाधानं तयोरैक्यकृतिः पूर्वयुगाश्रया " इति लौगाक्षिवचनादिति स्मृतिचन्द्रिकायाम् ॥ एतेन " चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च । कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदा त्रेतापरिग्रहः ॥ संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानता॥" इति व्यासवचनं व्याख्यातम् ॥ सर्वाधानेपि विशेषमाह देवलः-"यावद्वर्णविभागोस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते । संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युगे ॥" इति ॥ अत्र पूर्वयुगाश्रितेति लौगाक्षिवाक्ये पूर्वयुगानि कृतादीनीत्येकोर्थः ॥ अन्ये तु युगस्य पूर्वं कलेः पूर्वो भागः । 'स चत्वार्यब्दसहस्राणि' इति पूर्वोक्तवाक्याच्चतुश्चत्वारिंशच्छतवर्षावच्छिन्नः॥तस्मिन् भागे सर्वाधानं कार्यम् ॥ तदुत्तरे

है उसे ही पृथक् २ लिखते हैं, और उनके एक बार करनेको सर्वाधान लिखते हैं, जो पूर्वयुगोंमें किये जातेथे यह लौगाक्षिका वाक्य स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा है इससे यह व्यासका कहना चारितार्थ हुआ कि, चार सहस्र चारसौ (४४००) वर्ष जब कलियुगमें बीत जाँय तब त्रेताका परिग्रह है यह जानता हुआ ब्राह्मण अग्निहोत्र और संन्यासको न ग्रहण करे ॥ सर्वाधानमें तो देवलने विशेष यह लिखा है कि, इतने वर्णका विभाग और वेदोंकी प्रवृत्ति कही है तबतक अग्निहोत्र और संन्यासको ग्रहण करके, पूर्व युगाश्रित इस लौगाक्षिके वाक्यमें दो अर्थ हैं, प्रथम सतयुग आदि पूर्वयुगोंमेंकी दूसरा कलियुगका चार सहस्र ४००० और वह पूर्वोक्त कथनसे चौवालीससे ग्रहण करना उसमें तो सर्वाधान करे, उसके उपरान्त वर्णोंके विभाग तक अर्द्धाधान करे, ऐसे कोई लिखते हैं, संन्यास त्रिदण्ड रूप ग्रहण करना इससे एक दण्डका दोष नहीं है, । कलिवर्जित धर्म पूर्ण हुए ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते

१ तथा च-कलौ कलुषचित्तानां पापद्रव्यरतात्मनाम् । विधिहीनक्रियाणां च गतिर्गंगां विना न हि । अनाश्रित्य तु वै गंगां मुक्तिमिच्छति यः कलौ । सूर्यं द्रष्टुमिवोद्युक्तो जात्यन्धसदृशस्तु सः ॥ इत्याद्यनेकवाक्यैः कलौ गंगास्थितेर्निर्बाधत्वान्तिमे कलौ गमनं सिद्ध्यति ॥ अर्थात्-भविष्यमें लिखा है कलियुगमें कलुषितचित्त तथा पापद्रव्यमें रत आत्मावालोंको जो विधि और क्रियाहीन हैं उनको गंगाविना गति नहीं है वही पतितोंको रक्षक गंगा सेवनीय है इसके बिना संसारसागरमें मग्न शरणमें प्राप्त होनेकी इच्छावालोंको गंगाके विना उपायान्तर नहीं है. धर्ममयी शरणार्थियोंको शरण देनेवाली गंगाके विना जो महापातक दूर कर सर्वार्थसाधन करती है उसको छोडकर जो कलिमें मुक्तिकी इच्छा करते हैं वह जन्मान्धकी समान सूर्य देखनेकी इच्छा करते हैं इत्यादि वाक्योंसे कलिमें गंगा रहैगी. पांचसहस्र वर्ष तक रहैगी यह अन्तिमकालके निमित्त है, यह वाराहपुराणका निश्चय है, यदि प्रतिकलियुगमें जाती है तो २७ वार जाचुकी परन्तु ऐसे आनेजानेका उल्लेख नहीं इससे अन्तिमकलिपरक वाक्य है ॥

तु यावद्वर्णविभागोस्तीति वाक्यात् वर्णविभागपर्यंतमर्धाधानमित्याहुः ॥ संन्यासस्त्रिदण्डः ॥ इति श्रीमन्नारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ तृतीयपरिच्छेदे कलिवर्ज्यानि समाप्तानि ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

निर्णयसिन्धौ पंडितसुखानन्दमिश्रसूनुपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां तृतीये परिच्छेदे कलिवर्ज्यानि समाप्तानि ॥ शुभमस्तु ॥

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धौ—

तृतीयपरिच्छेदे श्राद्धप्रकरणं प्रारभ्यते ।
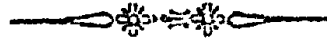
अथ श्राद्धनिर्णयः । नानानिबन्धवैमत्यभ्रान्तचित्तोद्दिधीर्षया । कमलाकरसंज्ञेन क्रियते श्राद्धनिर्णयः ॥ तत्स्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः—"प्रेतं पितॄंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम् ॥" श्राद्धपत्नीकारान्तश्चतुर्थ्यन्तपदोपनीतपित्राद्युद्देशकस्त्यागः श्राद्धमित्यर्थः ॥ तत्र यद्यपि होमपिण्डभोजनानि प्रधानमिति हेमाद्रिः ॥ "होमश्च पिण्डदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम् । श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन्नौपचारिकम् " इति श्रीधरश्च ॥ तथापि कश्चिद्विशेषं वक्ष्यामः ॥ निमित्तभेदभोजनस्य पिण्डानां वा निषेधो न प्राधान्यं विरुणद्धि । असोमयाजिनो दधिपयोयागवत् ॥ यच्च शूलपाणिः—'नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डविवर्जितम्' इति ॥ हारीतीये नित्यश्राद्धमपादौ

दोहा—दिव्य, पितर, ऋषि, मुनि, पिता, मातु, चरण, शिर नाय ।
श्राद्ध करण निर्णय सहित, भाषा लिखत वनाय ॥

अब इससे आगे श्राद्धनिर्णय लिखते हैं, अनेक ग्रंथोंके पृथक् २ मतोंसे भ्रान्तचित्तोंके उद्धारके निमित्त मैं कमलाकर भट्ट श्राद्धका निर्णय लिखता हूँ ॥ श्राद्धका स्वरूप पृथ्वीचन्द्रोदयमें यह लिखा है कि, जो भोजन अपनेको रुचता है वह प्रेत और पितरोंके निमित्त जब श्रद्धासे दिया जाय तब उसे श्राद्ध कहते हैं, प्रत्ययके स्वीकारपर्यंत चतुर्थ्यंत पदसे जनाये गये पिता आदिके निमित्तसे जो दान दिया जाय उसे श्राद्ध कहते हैं, यद्यपि हेमाद्रिने श्राद्धमें होम पिण्ड भोजन यह प्रधान लिखे हैं, और श्रीधरने भी इस वाक्यसे हवन पिंडदान ब्राह्मणभोजन ये उपचारसे एक श्राद्धमें श्राद्ध शब्दके अर्थसे कहे हैं तो भी हम कहीं विशेष लिखेंगे निमित्तके भेदमें भोजन वा पिण्डोंका निषेध मुख्य श्राद्धका विरोध नहीं हो सकता, जिस प्रकार सोमयज्ञ न करनेवाले दही और दूधका यज्ञ विरोधी नहीं होता जो शूलपाणिने यह लिखा है कि, इस हारीतके कथनसे नित्यका श्राद्ध विश्वेदेवा अर्घ्य और पिण्डसे रहित होता है, यह नित्य-

पिण्डनिषेधोस्ति न च प्राप्तिं विना सः । न चातिदेशं विना प्राप्तिः न चांगत्वेन विनातिदेशः । प्रधानस्यानतिदेशात् ॥ " नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ । पौर्णमास्यां प्रकर्तव्यं वराहवचनं यथा ॥" पौर्णमास्यां श्राद्धं विहितं तत्र नान्दीमुखाः के इत्याकांक्षायां ब्राह्मे-"पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः सम्प्रकीर्तिताः ॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः । ते तु नान्दीमुखा नान्दीसमृद्धिरिति कथ्यते॥२॥"इति वचनोक्ताः॥ एवं च तस्मिन् श्राद्धे पित्रादित्रयोर्घ्यानां प्रसन्नमुखत्वरूपं विश्वेदेवव्यावृत्तं नान्दीमुखत्वं पारिभाषिकम् । तदुक्तं-'प्रसन्नमुखसंज्ञास्तु मङ्गलीया यतस्तु ते' इति । अत एवात्र न नांदीश्राद्धधर्मातिदेशः । नान्दीमुखशब्दस्य देवतापरस्य कर्मनामत्वाभावात् । नापि नान्दीमुखत्वं पितृविशेषणम् ॥ पारिभाषिकत्वात् । तथा चैतस्य श्राद्धस्य कन्याराशिगते रवौ विधानात्तन्निमित्तावपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनाविति वाक्याद्धूरिलोचनौ विश्वेदेवौ । वृद्धिश्राद्धे तु"मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥"

श्राद्ध और मघा आदिके श्राद्धमें पिण्डदानका निषेध कहा है. निषेध प्राप्तिके विना हो नहीं सक्ता, प्राप्ति अतिदेशके विना नहीं हो सक्ती, और अतिदेश अंगके विना नहीं हो सक्ता और प्रधानका भी अतिदेश नहीं हो सक्ता ॥ जो किसीने यह लिखा है कि, नान्दीमुख पितरोंको प्रतिवर्ष कन्याके सूर्यमें पूर्णिमाको करना चाहिये इस वराहपुराणके कथनानुसार पूर्णिमाको श्राद्ध लिखा है उसमें नान्दीमुखको न करै यह आकांक्षा हुई वे ब्रह्मपुराणके इस वाक्यमें लिखे जानने कि, पिता, पितामह, प्रपितामह इन तीन पितरोंको अश्रुमुख कहते हैं । इनसे प्रथम प्रजा और सुखसे बढे हुए नांदी (वृद्धि) मुख लिखे हैं, इससे उस श्राद्धमें पिताको आदि लेकर तीन अर्घ देने योग्योंको प्रसन्नमुख कहा है और विश्वेदेवाओं सहित वे वाक्यसे नान्दीमुख कहे हैं सोई लिखा है कि, जिससे वे मंगलीय हैं, इससे इनको प्रसन्नमुख नाम कहा है, इसीसे इस श्राद्धमें नान्दीश्राद्धके धर्मोंका कर्तव्य नहीं, कारण कि, देवताके बोधक नान्दीमुख शब्दका कर्मनाम नहीं हो सक्ता, और नान्दीमुखनाम पितरोंका भी यह विशेषण नहीं हो सक्ता ॥ कारण कि, पारिभाषिक नाम-करण इससे इस श्राद्धका विधान कन्याके सूर्यमें होनेसे इसके निमित्त भी कन्याके सूर्य और काम्य श्राद्धमें धूरिलोचन विश्वेदेवा कहाते हैं इस कथनसे धूरिलोचन विश्वेदेवा जानने, वृद्धि श्राद्धमें तो इस कथनके अनुरोधसे कि, प्रथम मातृश्राद्ध फिर पितृश्राद्ध फिर मातामह श्राद्ध ये तीन श्राद्ध वृद्धिमें लिखे हैं इससे माता आदि तीन और मातामह आदि

---

१ यहांसे आरम्भकर ५६० पृ० इत्याहुः तक किसी २ पुस्तकमें विशेष है.

इत्यादिवाक्यानुरोधेन मात्रादित्रयमातामहादित्रयाणां देवतात्वे सिद्धे तेषामेव विश्वेदेवसाधारणमूर्ध्ववक्त्रीरूपं नान्दीमुखत्वम् । अत एवात्र वचनम् । ' ऊर्ध्व-वक्त्रास्तु ये तत्र ते नान्दीमुखसंज्ञिताः ' इति । तत्र "नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम् । पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्थितिः " इति पराश-रवचनात् । विश्वेषां देवानां पितृणां च विशेषणम् । तथा च नान्दीश्राद्धमिति कर्मनामधेयम् । अत एवात्र–'नान्दीमुखे सत्यवसू संकीर्त्यौ वैश्वदेविके ' इति वचनात्सत्यवसू विश्वेदेवौ । अत्र पितृशब्दस्य सपिण्डीकरणान्तश्राद्धजन्यपितृ-भावापत्तिपरत्वेन मातृपितृमातामहादिसाधारण्यात्सर्वत्र नान्दीमुखत्वं विशेषणम् । "एवं प्रदक्षिणावृत्को वृद्धौ नान्दीमुखान् पितॄन् । यजेत दधिकर्कन्धूमिश्रान् पिण्डान् यवैः क्रमात् " इति याज्ञवल्क्योक्तेरिति ग्रन्थान्तरे ॥ कलौ श्राद्धे मधु नैव देयम् । " अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् " इति श्राद्धदीपकलिकामदनपारिजातयोर्निगमोक्तेः ॥ पञ्चेति न परिसंख्या । दोषत्रयापत्तेः कलावन्यनिषेधवाक्यानर्थक्यापत्तेश्च । अतः प्रदर्शनमात्रार्थमेतत् । एतद्वाक्योपात्तत्वोपाधिना च पञ्चत्वोपपत्तिः । यत्तु

तीन देवता सिद्ध हुए वेही विश्वेदेवाओंके सहित ऊर्ध्वमुख आदि रूप नान्दीमुख हैं इसीसे यहां कहते हैं कि, श्राद्धमें जिनको ऊर्ध्वमुख कहे हैं, और वह इस पाराशरके कथनसे विश्वेदेवा और पितरोंका विशेषण लिखा है कि, नान्दीमुख विश्वेदेवा और पितरोंकी प्रदक्षिणा क्रमसे आसन दान करै, तिससे नान्दीश्राद्ध यह कर्मका नाम है, इसीसे यहां नान्दीमुखमें सत्यवसु विश्वेदेवा कहे हैं, इसीसे यहां सत्यवसु विश्वेदेवा लिखे हैं, इनमें पितृशब्द उनका कथन करनेवाला है, जिनका सपिंडीकरण तक श्राद्धसे पितृभाग उत्पन्न हो चुका है वह मातापिता मातामह आदिमें साधारण हैं, इससे नान्दीमुखशब्द सबका विशेषण कहा है कारण कि, याज्ञवल्क्यका वाक्य है कि, इस प्रदक्षिणाके क्रमसे वृद्धिश्राद्धमें नान्दीमुख पितरोंको दही और बदर मिले हुए पिण्ड देने सब कर्म करके जैसे पिण्ड करै, ग्रन्था-न्तरमें कहा है कि, कलियुगके श्राद्धमें मधु न देना कारण कि, श्राद्धदीपकलिका और मदन-पारिजातमें यह निगमका कथन है कि, चावल गौ रूप पशु श्राद्धमें मांस और मधु और देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति ये पांच बातें कलियुगमें वर्जित करदी हैं ॥ और इस स्थानमें पांच यह परिसंख्या न जाननी कारण कि, इसमें तीन दोष प्राप्त होंगे स्वार्थका त्याग दूसरेके अर्थकी कल्पना, और प्राप्तका बाध यह पांचही हैं । इसमें परिसंख्या पांच है, इस स्वार्थका त्याग पांचही हैं इस दूसरे अर्थकी कल्पना औरके निषेध प्राप्तिका बाध, और कलिके दूसरे निषेधके वाक्य ये अनर्थक हो जायगे इससे यह वाक्य दिखानेमात्र है, और इस वाक्यमें

"पञ्चश्राद्धं मधुना हीनं तद्रसैः सकलैरपि । मिष्टान्नैरपि संयुक्तं पितॄणां नैव तृप्तये ॥ अणुमात्रमपि श्राद्धे यदि न स्याच्च माक्षिकम् । नामापि कीर्तनं यत्स्यात्पितॄणां प्रीतये तदा ॥ २ ॥" इति हेमाद्रौ ब्राह्मवचनम् । यच्च-"कथंचिदपि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु । पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना" इति ॥ श्राद्धदीपकलिकायां नागरखण्डवचनम् ॥ यच्च "मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत्" इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनं तत्कलियुगादतिरिक्तपरम् । न च-"यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादिकं तथा । देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशीयजैर्नरैः ॥ अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः" ॥ इति श्राद्धं प्रवृत्य बृहन्नारदीये वचनाद्देशाचारतो व्यवस्थेति वाच्यम् ॥ कलिनिषेधवैयर्थ्यापत्तेः ॥ तस्मात्कलौ श्राद्धे मधु नैव देयमिति सिद्धम् । केचित्तु-"कथंचिदपि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु । पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना ॥" इति ॥ नागरखण्डवचने काले दाप्रत्ययस्मरणेन निषिद्धस्य कलिकालादेः सर्वस्यापवादाद्भोजने मधुनिषेधेपि पिण्डे मधु कलौ देयमेव । कलौ मधुनिषेधवाक्यानां भोजनपरत्वात् । तेन-"सर्वकालं तिला ग्राह्याः पितृकृत्ये विशेषतः । भोज्यपात्रे तिलान् दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥" इति ॥ यथा भोजने तिलनिषेधेपि न पिण्डे तन्निषेधस्तथात्र पिण्डे न

लिखनेसे पांचकी सिद्धि हो जायगी, और ब्रह्मपुराणका हेमाद्रिमें जो वचन है कि, मधुसे रहित श्राद्ध चाहे सब रस और मिष्टान्नसहित हो तो भी उससे पितरोंकी तृप्ति नहीं होती . विना अणुमात्र शहत हुए पितरोंकी तृप्तिका नाम न लेना जो यह नागरखण्डका वाक्य श्राद्धदीपकलिकामें लिखा है कि, यदि ब्राह्मणभोजन विना मधुके हो तो भी पिण्डपर तो शहत अवश्य देना और जो पुलस्त्यका हेमाद्रिमें कथन है कि, मुनिअन्न ब्राह्मणोंको, क्षत्रिय वैश्यको आमिष, और शूद्रको मुख्य मधु है । परन्तु मधुका किसीसे विरोध नहीं है, परन्तु इन तीनों वचनोंका कलिसे भिन्न विषयमें जानना यदि कहो कि, श्राद्धप्रकरणमें लिखे इस बृहन्नारदीयके वाक्यसे देशाचारसे व्यवस्था मानोगे कि, आचार होनेसे आमिष मधुप्रदान करै, यह मनुष्योंके देशाचारसे ग्रहण करना नहीं तो सब धर्मोंसे निकृष्ट पतित जानै सो यथार्थ नहीं ऐसा माननेसे कलियुगमें निषेधकी व्यर्थता होजायगी, इससे यह बात सिद्ध हुई कि कलिमें श्राद्धमें मधुका प्रयोग न करै, और किन्हींका यह कथन है जो भोजनमें मधु न दिया हो तो पिण्डमें तो देना ही इसके विना पिण्ड न दे ॥ इस नागरखण्डके वाक्यमें दाप्रत्ययका अर्थ समय है इस कारण वर्जित भी सम्पूर्ण कलिसमय आदिके बाधके कारण भोजनमें मधुके वर्जनेपर भी पिण्डमें अवश्य मधु देना चाहिये, और जिन वाक्योंसे कलिमें मधु वर्जा है वे भोजनविषयक

मधुनिषेध इत्याहुः ॥" सप्तमे उपकारत्वेनातिदेशोक्तेः । तेन भोजनं प्रधानं पिण्डोऽङ्गम् । पिण्डदानमात्रविधिस्त्वङ्गभूतात्कर्मान्तरमेव प्रकरणान्तरन्यायादिति ॥ तन्न ॥ "जातश्राद्धे न दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि । न पक्वं भोजयेद्विमान् शूद्रोऽपि कदाचन ॥" इत्याद्यैर्जातश्राद्धशूद्रश्राद्धादौ भोजनस्य निषेधेनाङ्गत्वापत्तेः । 'न तौ पशौ करोति' इतिवदुपजीव्यविरोधेन विकल्पापत्तेश्च ॥ तेन श्राद्धशब्दाभिधेयत्वेनोभयप्राप्तौ निषेधः । पर्युदासो वा 'दीक्षितो न ददाति न जुहोति नासोमयाजी सन्नयेत्' इतिवदिति तत्त्वम् ॥ धर्मप्रदीपेपि—"यजुषां पिण्डदानं तु बहृचानां द्विजार्चनम् । श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम् ॥" तत्र 'पितृन् यजेत्, पितृभ्यो दद्यात्' इत्युभयप्रयोगदर्शनाद्यागदानोभयात्मकम् । 'पितरो देवता' इति पितृद्देश्यकत्वाद्यागत्वं विप्रापेक्षया च दानत्वमित्यविरुद्धम् । एतेन श्राद्धं यागः । देवतोद्देशेन त्यागो यागः । यागोद्देश्या च देवतेत्यात्माश्र-

---

है इससे सब समयमें तिल ग्रहण करने और पितृकर्ममें विशेष कर ग्रहण करने भोजनके पात्रमें तिलोंका दर्शन कर पितर निराश जाते हैं इस वाक्यसे जैसे भोजनमें तिलोंका निषेध है पिण्डमें नहीं है उसी प्रकार यहां भी पिंडमें मधुका निषेध नहीं है ॥ सातवेंमें उपकार होनेसे अतिदेश कहा है इससे श्राद्धमें भोजन कराना प्रधान है पिण्ड अंग है, और पिण्ड दानमात्रकी विधि प्रकरणांतरके न्यायसे अंगरूप दूसराही कर्म है सो ठीक नहीं जातकर्मके श्राद्धमें ब्राह्मणोंको पकान्न न दे और श्रेष्ठ शूद्रभी ब्राह्मणोंको कभी पकान्न न जिमावे इत्यादि वचनोंसे जातश्राद्धमें और शूद्रआदिको भोजनका निषेध है, वहभी अंग होजायगा, पशुयज्ञमें पिण्ड और भोजन नहीं करना; इसके समान कारणके विरोधसे विकल्पकी प्राप्ति है इस कारण श्राद्धशब्दके नामसे दोनों पायेगये और दोनोंका निषेध है यह दीक्षित न देता है न होम करता है जो सोमयज्ञ न करता हो वह पिंड न दे इसको समान पर्युदास है, यह तत्व है ॥ धर्मप्रदीपमें भी कथन किया है कि, यजुर्वेदियोंको पिंडदान बहृचोंको ब्राह्मणोंका पूजन करना और सामवेदियोंको दोनों करने यह श्राद्धशब्दका अर्थ है, वह श्राद्ध यह है कि, पितरोंको पूजे और पितरोंके निमित्त दे इन दोनोंके देखनेसे यज्ञ दान दोनोंरूप पितर देवता है, इससे पितरोंका उद्देश होनेसे यज्ञ और ब्राह्मणोंका उद्देश्य होनेसे दान है इससे कुछ विरोधता नहीं, इससे देवताओंके निमित्त त्यागही यज्ञ है और यज्ञमें निमित्तदेवता यह

---

१ तथा च—देशे कालेच पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत् । पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम् ॥ अर्थात्—देश, काल, पात्रमें श्राद्ध और विधिसे जो पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दियाजाय उसको श्राद्ध कहते हैं ॥

यादिति गौडमतमपास्तम् ॥ वैधशब्दविशेषोद्देश्यत्वस्य तस्येदमिति स्वत्वारोपप्रतियोगित्वस्य वा देवतात्वात् । तत्रैव सुमन्तुः—' श्राद्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम् ॥ ' आदित्यपुराणे—"न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः । श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते ॥" तद्भेदानाह विश्वामित्रः—"नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् । पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्ध्यर्थमष्टमम् ॥ कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृतम् । यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम् ॥ २ ॥" इति ॥ एषां लक्षणानि भविष्ये—"अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् । वैश्वदेवविहीनं तदशक्तावुदकेन तु ॥ एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते । तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान् भोजयेद्द्विजान्॥ कामाय विहितं काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये । वृद्धौ यत् क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ॥ गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ ये समाना इति द्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम् ॥" 'नित्येन तुल्यशेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥' एतदुभयमेव स्त्रियाः । तेन स्त्रीकर्तृकं स्त्रीसंप्रदानकं चेत्युभयनियम इति कल्पतरुः ॥ "अमावास्यायां यत् क्रियते तत् पार्वणमिति स्मृतम् । क्रियते वा पर्वणि यत्तत् पार्वणमिति स्थितिः ॥" अत्र

आत्माश्रय दोष है, यह गौडोंका मत खंडित हुआ विधि (वेद) के शब्दमें निमित्त उसको वा तिसका यह है ऐसे स्वत्यागरूपके प्रतियोगी (लेनेवाला) को देवता होनेसे आत्माश्रय नहीं, वहांही सुमंतुका वचन है कि, श्राद्धसे पर और कल्याणका करनेवाला नहीं कहा है ॥ आदित्यपुराणमें कथन है कि, जो मनुष्य पितर नहीं हैं ऐसा मनमें करके श्राद्ध नहीं करता वे पितर उसके रक्तको पीते हैं. विश्वामित्रने श्राद्धके भेद कहे हैं कि नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि, सपिंडी, पार्वण, गोष्ठी, शुद्धि, कर्मांग, दैविक, यात्रा, पुष्टि, ये बारह श्राद्ध हैं ॥ इनके लक्षण भविष्यमें कहे हैं कि प्रतिदिन जो श्राद्ध करा, जाय उसे नित्य कहते हैं, और वह विश्वेदेवताओंसे रहित होता है और असमर्थ पुरुष जलसेभी उसे करै. और एकोद्दिष्ट (क्षयी) श्राद्धको नैमित्तिक कहते हैं, उसमेंभी विश्वेदेवा नहीं होते उसमें एक तीन आदि विषम ब्राह्मण जिमावै जो किसी मनोरथसिद्धिके निमित्त किया जाय उसे काम्य कहते हैं, वृद्धिमें जो किया जाय उसको वृद्धिश्राद्ध कहते हैं, गंध, जल, तिलोंसे युक्त चार पात्र अर्घके निमित्त बनावै, पितरोंके पात्रोंमें प्रेतके पात्र जलको " येसमाना, समनसा " इन दो मंत्रोंसे सींचन करै इसको सपिंडन कहते हैं शेषकर्म नित्यश्राद्धके समान होता है स्त्रीका एकोद्दिष्टभी नित्यके समान होता है, ये दोनों स्त्रीके भी होते हैं कि, स्त्रीही करै और स्त्रीको ही दे इन दोनोंका नियम यह कल्पतरुमें कथन है, जो अमावस्याको या पर्वमें किया जाय, उसे पार्वण कहते हैं ऐसी मर्यादा है ॥

पर्व-"चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्यमावास्या च पौर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रमणं तथा ॥" इति विष्णुपुराणोक्तं संक्रान्त्यादि ॥ "गोष्ठ्यां यत् क्रियते श्राद्धं गोष्ठीश्राद्धं तदुच्यते । बहूनां विदुषां संपत्सुखार्थं पितृतृप्तये ॥ क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानां तु भोजनम् । शुद्ध्यर्थमिति यत् प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥ निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्मांगमेव च ॥ देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तत्तु दैविकमुच्यते । गच्छन् देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्तु सर्पिषा ॥ यात्रार्थमिति तत् प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः । शरीरोपचये श्राद्धमर्थोपचय एव च ॥ पुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयमौपचायिकमुच्यते ॥ ६ ॥" गोष्ठ्यां श्राद्धकर्तृसमुदाये संभूय सामग्रीसंपादनेन श्राद्धमित्यर्थः ॥ युगपत्तीर्थादिप्राप्तौ विदुषां श्राद्धसंपदा सुखार्थं भिन्नपाकाशक्तौ बहुपितृकश्राद्धमेकः कुर्यादिति कल्पतरुः शंखधरश्च ॥ शुद्धिश्राद्धं प्रायश्चित्तांगमिति मैथिलाः ॥ अथ पार्वणैकोद्दिष्टवृद्धिसपिण्डीकरणात्मकं चतुर्विधमेव मुख्यम् । तस्यैवायं प्रपंचः ॥ अथ श्राद्धदेशाः । मनुः-"शुचिदेशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत् । दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे-" दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थादौ च गृहेपि

इसमें पर्व-चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी, संक्रांति हे राजेंद्र ! ये पर्व होते हैं, ऐसा विष्णुपुराणमें लिखा है बहुत विद्वानोंको सुख और पितृतृप्तिके लिये समूहमें जो कियाजाय उसे गोष्ठी श्राद्ध कहते हैं, शुद्धिके लिये जो ब्राह्मणोंको भोजन करायाजाय उसको हे वैनतेय ! शुद्धिश्राद्ध कहते हैं, गर्भाधान सोम सीमन्त और पुंसवनमें जो किया जाय उस श्राद्धको कर्मांग कहते हैं, जो देवताओंके निमित्त कियाजाय उसे दैविक कहते हैं देशान्तरके गमन करते और घरमें आकर जो घृतसे कियाजाय उसे यात्रार्थ कहते हैं, शरीर और धनकी वृद्धिके लिये जो श्राद्ध कियाजाय उसको पुष्ट्यर्थ या औपचायिक कहते हैं, गोष्ठीमें श्राद्ध करनेवालोंका समूह मिलकर सामग्रीको एकत्र करके तीर्थ आदिमें एक बार श्राद्ध करै, विद्वानोंका श्राद्ध सम्पदाके निमित्त है, भिन्न भिन्न पाक न बनासके तो बहुतसे पितरोंका एकही पाक करै, कल्पतरुमें कहा है, शंखधरने भी यही कहा है, शुद्धिश्राद्ध प्रायश्चित्तका अंग है, यह मैथिल कहते हैं, इन श्राद्धोंमें पार्वण एकोदिष्ट वृद्धि सापिण्डीकरण ये चार मुख्य हैं उन चारोंकाही यह विस्तार है ॥ अब श्राद्धोंके देशोंको कहते हैं । मनुजी कहते हैं कि, शुद्ध एकान्तदेशको गोबरसे लीपकर यत्नपूर्वक दक्षिणको नीची वेदी बनावे । पृथ्वीचन्द्रोदय और विष्णुधर्ममें लिखा है कि, दक्षिणको नीचे देश तीर्थ आदि वा घरमें भूमिको

---

१ भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहं मार्जनलेपनात् ॥ अर्थात्-याज्ञवल्क्य कहते हैं मार्जन, दाह, काल, गौके चलने, छिडकने, छीलने, लीपने और बुहारनेसे भूमिकी शुद्धि होती है ॥

षा । भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥" तत्रैव प्रभासखण्डे-' तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतः शुभे ॥ ' भारते-" तस्य देशाः कुरुक्षेत्रं गया गंगा सरस्वती । प्रभासं पुष्करं चेति तेषु श्राद्धं महाफलम् ॥ " स्कान्दे-" तुलसीकाननच्छाया यत्र यत्र भवेद्द्विज । तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ " माधवीये श्राद्धोपक्रमे व्यासः-" महोदधौ प्रयागे च काश्यां च कुरुजांगले ॥ " शंखः-" गंगायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यमरकण्टके । नर्मदावाहुदातीरे भृगुलिंगे हिमालये । गंगाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा । सन्निहत्यां गयायां च दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥ अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः । गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्समाहितः ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ २ ॥ " आदित्यपुराणे-" पंचक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । महानद्याः पश्चिमेन यावद्गृध्रेश्वरो गिरिः ॥ उत्तरे ब्रह्मयूपस्य यावद्दक्षिणमानसम् । एतद्गयाशिरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २ ॥ " इति । शूलपाणौ बृहस्पतिः-"गंगायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा । गयाशीर्षेऽक्षयवटे पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च । दृष्ट्वैतानि पितॄंश्चार्च्य वंशान्विंशतिमुद्धरेत् ॥ २ ॥ " त्रिस्थलीसेतौ वायवीये-शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं

लीपकर यत्नपूर्वक श्राद्ध करे । वहांही प्रभासखंडमें लिखा है कि, हे शुभे ! अपने घरमें श्राद्धके दाताको तीर्थसे आठ गुण पुण्य होता है । भारतमें कथन है कि, कुरुक्षेत्र, गया, गंगा, सरस्वती, प्रभास, पुष्कर यह श्राद्धके देश हैं इनमें श्राद्धका महान् फल है, स्कन्दपुराणका वचन है कि, हे द्विज ! तुलसीके वनकी छाया जहां जहां हो वहां वहां पितरोंकी तृप्तिके निमित्त श्राद्ध करै ॥ माधवीयमें श्राद्धके प्रकरणमें व्यासका वचन है कि, महोदधि, प्रयाग, काशी, कुरु, जांगल इनमें श्राद्ध करे शंखका वचन है कि, गंगा, यमुनाके तीर, पयोष्णी, अमरकंटक, नर्मदा, वाहुदा नदीका तीर, भृगुलिंग, हिमालय, गंगाद्वार, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, सन्निहितगया इनमें दिया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है, पितर यह इच्छा करते हैं कि, हमारे कुलमें कोई ऐसा मनुष्य हो जो गयाजी वट (प्रयाग) में सावधान होकर पिण्ड दे, बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करै, उनमें कोई एक भी गयाजीको जाय या अश्वमेध यज्ञ करै या नील वृषोत्सर्ग करै, यही श्रेष्ठ है । आदित्यपुराणमें यह लिखा है कि, पांच कोस गयाक्षेत्र और एक कोसतक गयाका शिर है, महानदीके पश्चिम गृध्रेश पर्वततक और ब्रह्मयूपसे उत्तर दक्षिण मानसतक गयाशिर नाम तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है । शूलपाणिमें बृहस्पतिका वाक्य है कि, गंगा, धर्मपृष्ट, ब्रह्मसरोवर, गयाशिर, अक्षयवट इनमें पितरोंको दिया अक्षय होता है, धर्मारण्य धर्मपृष्ठ धेनुकारण्य इनको देखकर पितरोंको पूजता हुआ मनुष्य बीस कुलोंको तृप्त करता है ॥ त्रिस्थलीसेतुमें वायुपुराणका वाक्य है कि,

दद्याद्गयाशिरे । उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ " सप्त गोत्राणि तु- "पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा । पितृमातृष्वसा चैव सप्त गोत्राणि वै विदुः॥" इति ॥ एषां गोत्राणामेकोत्तरशतं कुलं पुरुषा इत्यर्थः । ते चोक्तास्तत्रैव " तत्त्वानि विंशति नृपा द्वादशैकादशादश । अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ " तत्त्वानि चतुर्विंशतिः । ते च द्वादश पूर्वाः द्वादश पराः । एवमग्रेपि॥ प्रयोगपारिजाते पाद्मे-"शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित् । वाराणस्यां यथाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम्॥ "तथा-" यत्किञ्चित्पैतृकं कुर्यात्सपिण्डं वा तदन्तिके । विष्णुलोकं स गच्छेत्तु लभते शाश्वतं पदम्॥" तत्रैव वाराहे-" चक्राङ्कस्य तु सान्निध्यं यत् कर्म क्रियते नरैः । स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥ " अथ निषिद्धदेशाः । पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे-"त्रिशंकोर्वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् । उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीकटात् ॥ देशस्त्रैशंकवो नाम श्राद्धकर्मणि वर्जितः ॥ " वायवीये-'प्रणष्टाश्रमधर्माश्च देशा वर्ज्याः प्रयत्नतः ॥ ' यमः-"रूक्षं कृमिहतं क्लिन्नं संकीर्णानिष्टगन्धिकम् । देशं त्वनिष्टशब्दं च वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥ " तत्रैव शंखः-"गोगजाश्वादिजुष्टेषु कृमि-

शमी (छौंकार) के पत्तेकी समान भी गयाशिरमें जो पिंड देता है, वह सात गोत्र और एक सौ एक १०१ कुलका उद्धार करता है, सात गोत्र यह हैं, पिता, माता, भार्या, भगिनी, पुत्री, पिता और माताकी भगिनी इन सात गोत्रोंके एकसौ एक पुरुषोंको कुल कहते हैं वे भी वहांही कहे हैं । तत्त्व २४ (चौवीस) वीस चौदह बारह ग्यारह दश आठ इतने गोत्रोंके एकसौ एक १०१ मनुष्य कुल होता है इन चौवीस आदिमें बारह पहिले बारह पिछले लेने इसी प्रकार आगे भी समझने ॥ प्रयोगपारिजातमें पद्मपुराणका वाक्य है काशीमें जैसे अधिक शालिग्रामकी मुद्रा चारों तरफ चारों योजनके मध्यमें कहीं न कहीं टिकी हैं तैसेही वचन हैं कि, उस मुद्राके समीप जो पितरोंका कर्म सपिंडी करै वह विष्णुलोकमें गमन करता, व अविनाशी पदको प्राप्त होता है वहांही वाराहपुराणमें लेख है कि चक्रांकके समीप मनुष्य जो कर्म करते हैं वह स्नान, दान, तप, श्राद्ध संपूर्ण अक्षय होता है ॥ अब श्राद्धमें निषिद्धदेश कहते हैं । पृथ्वीचन्द्रोदयके स्कन्दपुराणका वाक्य है कि बारह योजन त्रिशंकुके सब देशको त्यागदे महानदीसे उत्तर और कीकटसे दक्षिण देशको त्रिशंकु कहते हैं यह श्राद्धकर्ममें वर्जित है वायुपुराणमें लिखा है कि, जिन देशोंमें आश्रमोंके धर्म न हों वे यत्नपूर्वक त्यागदेने. यमका वचन है कि, रूखा जीवोंसे नष्ट गीला संकीर्ण दुर्गन्धियुक्त तथा अनिष्ट नामवाले ऐसे देशको श्राद्धमें त्यागदे. वहांही शंखका वचन है कि,

१ पिछले दशमें बारह करनेसे १०१ होंगे. यह जोड़नेसे तो ९९ होते हैं.

मायां तथा भुवि । न कुर्याच्छ्राद्धमेतेषु पारक्यासु च भूमिषु ॥ " ॥ यमः-"पर-कीयप्रदेशेषु पितॄणां निर्वपेत्तु यः । तद्भूमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते ॥" ब्राह्मभारतयोरपि-"परकीयगृहे यस्तु स्वान् पितॄंस्तर्पयेद्यदि । तद्भूमिस्वामिन-स्तस्य हरन्ति पितरो बलात् ॥ अग्रभागं ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यं च जीवितम् ॥" श्राद्धार्हाणामग्रभागश्राद्धं तदनर्हाणां शूद्राणां तु मूल्यमिति केचित् । षोडशीपिण्डे बान्धवानामपि पिण्डोक्तेः ॥' येऽबान्धवा बान्धवाः' इत्यादितर्पणबाधापत्तेश्च ॥ नामगोत्रपूर्वं श्राद्धनिषेधो नान्यत्रेति गौडाः । विप्रासुतस्य शूद्रापुत्रश्राद्धनिषेधो नान्यत्र । अन्नदानं चान्नत्यागात्पूर्वं कार्यमिति मैथिलाः ॥ तन्न ॥ अग्रभागस्य श्राद्धपरत्वे मानाभावात् । अन्नदाने च निषेधाभावात् ॥ त्यागात्पूर्वं करणेऽनङ्गेन व्यवधानापत्तेः । अङ्गत्वे च मानाभावात् । इदं च स्वाम्यननुज्ञाभावे.॥ तदुक्तं तत्रैव ब्राह्मे-"स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च । श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्य-मेतेषु नोच्यते ॥ किरातेषु कलिङ्गेषु कौंकणेषु खसेष्वपि । सिन्धोरुत्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे ॥ पूर्वेण करतोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते ॥ २ ॥ " इदं काम्यविषयम् अन्यथा तत्रत्यानां सर्वश्राद्धाकरणापत्तेः नर्मदादक्षिणेऽपवादः

गौ हाथी घोडे बकरी आदिसे, संकुल जो भूमि किसीकी बनाई हो वा पराई हो उसमें श्राद्ध न करै यमका वाक्य है कि, दूसरेकी भूमिमें जो पितरोंको पिण्ड देता है उस भूमिके स्वामीके पितर उस श्राद्धको नष्ट करदेते हैं ब्रह्मपुराण और भारतमें लिखा है कि, पराये घरमें जो अपने पितरोंको तृप्त करता है उस घरवालेके पितर उसको बलसे हरण कर लेते हैं तिससे उनको अग्रभागदे अथवा उनके जीवनके लिये मोलदे अर्थात् श्राद्धके योग्य होय तो श्राद्ध और जो योग्य न होय शूद्र होय तो मूल्य दे षोडशीके पिंडमें उनको भी पिण्ड कहा है. गौड तो यह कहते हैं कि, जो बन्धु हैं वा अबन्धु हैं वे सब तृप्त हों इस तर्पणके बाधके भयसे नाम गोत्र पूर्वकही पराये पितरोंके श्राद्धका निषेध है, और स्थानमें नहीं ब्राह्मणीके पुत्रको शूद्रापुत्रके श्राद्धका निषेध है, अन्यत्र नहीं अग्रभागका देना अन्नके त्यागसे पहिले करना यह मैथिल कहते हैं. सो ठीक नहीं कारण कि अग्रभाग श्राद्धका बोधक है इसमें कोई प्रमाण नहीं, और अन्नदानका कोई निषेध नहीं अन्नत्यागसे पहिले श्राद्ध किया जाय तो अंगके विना अन्न दानसे व्यवधान होजायगा और अन्नदान भी अंग है इसमें कोई प्रमाण नहीं, यह भी तब है जब घरके स्वामीकी आज्ञा न हो ॥ यहां ब्रह्मपुराणके वचनसे वहांही कहा है कि भली प्रकार लिये हुए घरोंमें स्वामीकी आज्ञासे श्राद्ध देना और इनमें श्राद्ध वर्जित नहीं है, और किरात कलिंग कौंकण खश समुद्रके उत्तर तट नर्मदाके उत्तरतट करतोया नदीके पूर्व तटोंमें श्राद्धदान नहीं कहा यहभी काम्य श्राद्धोंके विषयमें है. अन्यथा

स्कान्दे-"सह्यस्य चोद्भवो यत्र यत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशोऽतिपावनः ॥ " परकीयत्वापवाद आदित्यपुराणे-" अटवी पर्वताः पुण्याः नदीतीराणि यानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तेषु परिग्रहः ॥ वनानि गिरयो नद्यस्तीर्थान्यायतनानि च । देवखाताश्च गर्ताश्च न स्वाम्यं तेषु विद्यते ॥ " स्मृतिसारे-" नैकवासा न च द्वीपे नान्तरिक्षे कदाचन । श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित् ॥ " दिवोदासीये-"म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां विप्रवर्जितः । न श्राद्धमाचरेद्विद्वान्न चाकाशे कथंचन ॥ " अथ श्राद्धकालाः । ते च संक्रान्तियुगादिमहालयादयः ॥ प्रायेण परिच्छेदद्वये उक्ता एव । केचित्तूच्यन्ते । पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः-"श्राद्धं वृद्धावचन्द्रेभच्छायाग्रहणसंक्रमे । नवोदके नवान्ने च नवच्छन्ने तथा गृहे ॥ न चैक्षवेषु चेहन्ते पितरो हि मघास्वपि ॥ पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ॥ २ ॥ " इति शातातपपाठः ॥ नवोदके नवकूपवाप्यादाविति केचित् । वर्षोपक्रमे आर्द्राप्रवेश इति गौडाः । नवान्नश्राद्धे विशेषो ज्योतिषे-"ज्येष्ठाशेषार्धगे सूर्ये मृगनेत्रानिशात्मके । नवान्नभोजनश्राद्धं जन्मचन्द्र-

---

वहांके वासियोंको किसीभी श्राद्धके करनेका अधिकार नहीं होगा, नर्मदाके दक्षिणमें जो निषेध है उसका अपवाद स्कन्दपुराणमें कहा है कि, जहां सह्य पर्वत है गोदावरी नदी है संपूर्ण पृथ्वीमें वह देश महापवित्र है पराई भूमिका अपवाद आदित्यपुराणमें कहा है कि, वन पर्वत पवित्र नदियोंके तीरका कोई स्वामी नहीं कारण कि, इनमें किसीका कर नहीं, वन पर्वत नदी तीर्थ देवमंदिर देवताओंके खोदे तीर्थ इनका कोई स्वामी नहीं, स्मृतिसारमें लिखा है कि, एक वस्त्र धारण किये, अशुद्धद्वीपमें और अन्तरिक्षमें श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए कर्मको कदाचित् न करै. दिवोदासीयमें लिखा है कि, म्लेच्छ देश रात्रि और संध्याकालमें ब्राह्मणोंके विना और आकाशमें विद्वान् मनुष्य कदाचित् श्राद्ध न करै ॥ अब श्राद्धके काल कहते हैं । वे संक्रांति युगादि महालय आदि पिछले दोनों परिच्छेदोंमें कहे हुए हैं और कुछ अन्य भी हम वर्णन करते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धपाराशरका कथन है कि, वृद्धि आमावस्या गजच्छाया ग्रहण संक्रांति नया जल और नया अन्न, नया छाया घर, नई ईख मघा इनमें पितर श्राद्धकी इच्छा करते हैं, और शातातपका यह पाठ है अष्टका मघामें पितर श्राद्धकी इच्छा करते हैं, कोई यह कहते हैं कि, नये जलसे नवीन कूप लेना और गौड यह कहते हैं कि, वर्षाका प्रारम्भ आर्द्राका प्रवेश लेना । नवान्नश्राद्धमें विशेष ज्योतिषमें कथन है कि, पिछले आधे ज्येष्ठामें जब सूर्य हो और मृगनेत्रा रात्रि हो तब नये अन्नसे श्राद्ध करै, और जन्मके चन्द्रमा और और तिथियोंमें न करै, आश्लेषा कृत्तिका मूल (पूर्वा-

तिथौ न च ॥ आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठामूलाजपदगेषु च । गुरुभौमदिने रिक्ते तिथौ नाद्यान्नवौदनम् ॥ २ ॥'' तत्रैव–'वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः ॥' अतः कृष्णपक्षे नेति गौडाः ॥ मैथिलास्तु–'अकृताग्रयणं चैव धान्यजातं नरोत्तम ।' इति वाराहोक्तेः प्रतिधान्यं श्राद्धमाहुः । तन्न ॥ जातपदस्य श्राद्धयोग्यसमूहपरत्वात् । हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः–''ग्रहोपरागे च सुते च जाते पित्र्ये गयायामयनद्वये च । नित्यं च शंखे च तथैव पद्मे दत्तं भवेन्निष्कसहस्रतुल्यम् ॥ शङ्खं प्राहुरमावास्यां क्षीणचन्द्रां द्विजोत्तमाः । अष्टकास्तु भवेत्पद्मं तत्र दत्तं तथाक्षयम् ॥ २ ॥'' तत्रैव शंखः–''यदा विष्टिर्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च । पद्मकं नाम तत् प्रोक्तमयनाच्च चतुर्गुणम् ॥ '' याज्ञवल्क्यः–'' अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम । द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः ॥ व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥'' कृष्णपक्षः सर्वोपि । ' शोकेनापरपक्षं नातिक्रमेत । ' मासि मासि वाऽशनम् ।' इति श्रुतेः । 'ऊर्ध्वं वा चतुर्थ्या यदहः संपद्यते ऋते चतुर्दशीम्' इति कात्यायनोक्तेः ॥ 'मासि मासि कार्यमपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयान् ' इत्यापस्तंबोक्तेश्च वीप्सया सर्वकृष्णपक्षेषु नित्यम् । तेनोपसंहारान्महालयपरत्वं परास्तम् । अत्र प्रत्यहं, पञ्चम्यादि,

भाद्रपदा) शुक्र और मंगलवारमें नये अन्नको न खाय वहांही लिखा है कि, वृश्चिकके शुक्ल पक्षमें बुद्धिमान् मनुष्य नया अन्न भक्षण करना अच्छा कहते हैं, तिससे कृष्णपक्षमें न खाय यह गौडोंका मत है ॥ हे नृप ! मैथिल तो आग्रयण किये विना किसी अन्नको मनुष्य न खाय इस वाराहपुराणके वचनसे प्रत्येक अन्नमें श्राद्ध कहते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि, जातपद श्राद्धयोग्य समूहका वाचक है । हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका वचन है कि, ग्रहण, पुत्रजन्म, पितृतिथि, गया, दक्षिणायन, उत्तरायण, शंख और पद्म इनमें दियाहुआ दान सहस्र गुण अधिक होता है । क्षीणचन्द्रवाली अमावास्याको शंख कहते हैं, और अष्टकाको पद्म कहते हैं इनमें प्रदान किया हुआ अक्षय होता है, वहांही शंख कहते हैं कि, विष्टिकरण, व्यतीपात, और भानुवार इनका योग हो तो उसको पद्मक कहते हैं ये अयनसे चतुर्गुण फल देते हैं ॥ याज्ञवल्क्यका कथन है कि, अमावस्या, अष्टका, वृद्धि, कृष्णपक्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, द्रव्य और ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति ये श्राद्धके समय कहे हैं, कृष्णपक्ष, सब लेना कारण कि, यह स्मृति है कि, शोकसे भी कृष्णपक्षका अवलंबन न करे वा मास २ में भोजन करावे, वा चतुर्थीके पीछे जो दिन चतुर्दशीके विना मिले इस कात्यायनके वाक्यसे और महीने २ में करे, कृष्णपक्षका, अपराह्न उत्तम है इस आपस्तम्बके वाक्यसे दो वार कहनेसे सब कृष्णपक्षोंमें नित्य है तिससे उपसंहारसे जो महालयके विषयमें कहना वह परास्त हुआ इसमें यह तीन पक्ष हैं कि, प्रतिदिन, पंचमीआदि, जिस दिन सामग्री जुडे, जो एक दिन

यदहःसंपत्तिर्वा इति त्रयः पक्षाः । यद्येकादिने श्राद्धं तदा दार्शं पृथगेव । याज्ञवल्क्येनामावास्यायाः पृथङ्निर्देशात् ॥ एतेन कृष्णपक्षे यदहः सम्पद्यते । अमावास्यायां तु विशेषेण इति निगमोक्तेर्गुणोपरपक्षश्राद्धस्यामावास्येति शूलपाणिमतमप्यपास्तम् ॥ 'अशक्तौ दर्शेनापि मासिश्राद्धसिद्धिः' इति नारायणवृत्तिः ॥ निरग्निकाणां कस्मिंश्चिद्दिने । आहिताग्नेस्तु दर्श एव । 'न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः' इति मनूक्तेः ॥ सर्वकृष्णपक्षाशक्तौ मात्स्ये-"अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् । कन्याकुम्भवृषस्थेर्के कृष्णपक्षे च सर्वदा ॥" कर्कोपि । 'आहिताग्नेः संवत्सरे त्रिः श्राद्धनियमः' इति ॥ देवलः-"अनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृत् । द्विश्चतुर्वा यथाश्राद्धं मासे मासे दिनेदिने ॥" कृष्णपक्षेऽपि महालयश्रेष्ठत्वम् । तच्चोक्तं प्राक् ॥ व्यतीपाते विशेषमाह हेमाद्रौ शङ्खः-"फलं लक्षमुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्यते । पतने शतकोट्यस्तु पाते वै दत्तमक्षयम् ॥" ज्योतिःशास्त्रे-"द्वाविंशतिस्तथोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः । पतने दश नाड्यस्तु पतिते सप्त नाडिकाः॥" अन्त्यौ च द्वौ व्यतीपातौ प्रागुक्तौ । हेमाद्रौ मार्कण्डेयः-"यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गृहं वेदविदग्निवित् । तेनैकेनापि कर्तव्यं श्राद्धं च विधुवच्छुभम् ॥" इदं चापिण्डं कार्यमिति

श्राद्ध होय तो अमावस्याका श्राद्ध पृथक्‌ही होता है, कारण कि, याज्ञवल्क्यने अमावस्या पृथक् दिखाई है, इससे यह शूलपाणिका मत खंडित हुआ कि, कृष्णपक्षमें जो दिन मिले उसमें और विशेषकर अमावस्यामें करै इस निगमके वचनसे कृष्णपक्ष गौण है, और श्राद्धका समय अमावस्या है सामर्थ्य न होय तो अमावस्यासेभी मासश्राद्धकी सिद्धि होती है, यह नारायणवृत्तिमें कहा है ॥ जो अग्निहोत्री नहीं है वे चाहैं जिस दिन और अग्निहोत्री तो अमावस्याकोही श्राद्ध करैं, क्योंकि मनुका वाक्य है कि, अग्निहोत्री ब्राह्मणको अमावस्याके विना श्राद्ध करना उचित नहीं सब कृष्णपक्षोंमें करनेका सामर्थ्य न हो तो मत्स्यपुराणके इस विधिसे वर्षके तीन दिनोंमें श्राद्ध करै, और वह कन्या कुम्भ वृषके सूर्यमें करै और वहभी सदैव कृष्णपक्षमें करै, कर्कभी लेनी कारण कि, देवकर्जाने यह कहा है कि, अग्निकको वर्षमें तीन वार श्राद्धका नियम है, इस प्रकारसे वर्षदिनमें एक वार दो वा चार श्राद्ध करै वा महीने २ और दिन २ में करै, कृष्णपक्षोंमें भी महालय उत्तम है सो पहिले कह आये हैं व्यतीपातमें विशेष हेमाद्रिमें शंखके वचनसे कहा है कि, उत्पत्तिमें लक्ष गुना, भ्रमणमें कोटिगुना, पतनमें सौ कोटि और पातमें दिया अक्षय होता है, ज्योतिःशास्त्रमें कहा है कि, उत्पत्तिमें बाईस, भ्रमणमें इक्कीस, पतनमें दश घडी और पतितमें सात घडी होती हैं और भी दो व्यतीपात पहिले कथन किये हैं ॥ हेमाद्रिमें मार्कंडेयका कथन है कि, जब वेदज्ञाता अग्निहोत्री वेदपाठी अपने घरमें आवे, यदि वह एकभी हो तो भी गृहस्थी विधिविधानसे शुभ

हेमाद्रिः ॥ एतज्जीवत्पितृकोपि कुर्यात् । " उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः " इति मैत्रायणीयपरिशिष्टोक्तेः ॥ तिथिविशेषे फलविशेषो याज्ञवल्क्येनोक्तः– "कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि । द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरौप्ये सकुप्यके । ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥ ३ ॥ " एताः कृष्णपक्षस्था एव ॥ महालये तु फलभूमेति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ पौर्णमास्यां हेमाद्रौ पितामहः–"अमावास्याव्यतीपाते पौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ " एतन्माघ्यादिपरम् । " व्रीहिपाके च कर्तव्यं यवपाके च पार्थिव । पौर्णमासी तथा माघी श्रावणी च नृपोत्तम ॥ प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी । एतांस्तु श्राद्धकालान्वै नित्यानाह प्रजापतिः ॥ " इति विष्णुधर्मोक्तौ विष्णुः–'माघी प्रौष्ठपद्यूर्ध्वं कृष्णा त्रयोदशी ' इति । अत्र माघी पौर्णमासीति कल्पतरुः ॥ ' श्रावण्यूर्ध्वमपि मघायोगसंभवात्त्रयोदशीविशेषणम् ' इति गौडाः ॥ नक्षत्रेष्वपि याज्ञवल्क्यः–"स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा । पुत्राञ्छ्रैष्ठ्यं च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां

श्राद्ध करै. हेमाद्रि कहते हैं कि, इस श्राद्धको पिंडरहित करना चाहिये, और इस श्राद्धको वहभी करै जिसका पिता जीवित हो कारण कि. मैत्रायणीय परीशिष्टमें लिखा है कि, विवाह, पुत्रजन्म, पितरोंका पूजन, सोमयज्ञ, तीर्थ, और ब्राह्मणका आगमन यह छः जीवत पिताके हैं, तिथियोंके विशेषमें फलका विशेष याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, कन्या, कन्याका लाभ, पशु, उत्तम पुत्र, जुआ, खेती, व्यापार, दो खुरवाले, एक खुरवाले. पशु, ब्रह्मतेजवाले पुत्र, सोना, चांदी, धन, जातिमें श्रेष्ठता, सम्पूर्ण कामनाको केवल एक चतुर्दशीको छोडकर प्रतिपदाआदि तिथियोंमें श्राद्धका दाता क्रमसे प्राप्त करता है, ये भी तिथि कृष्णपक्षकी ही लेनी चाहिये, महालयमें बहुत फल होता है यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है, कि, पूर्णमासीको हेमाद्रिमें पितामह ब्रह्माजीका वाक्य है कि अमावास्या व्यतीपात पौर्णमासी अष्टकामें जो जानकर श्राद्ध न करै वह नरकको गमन करता है, यह माघकी पूर्णिमाआदिके विषयमें कथन है, और भाद्रपदकी पूर्णिमाके पीछे कृष्णपक्षकी त्रयोदशी यह श्राद्धके काल प्रजापतिने सदा कहे हैं ॥ विष्णुधर्मोक्तिमें विष्णुजीने कहा है कि, माघकी पूर्णिमा और भाद्रपदकी पूर्णिमासे अगले कृष्णपक्षकी त्रयोदशी, यह माघीसे पूर्णिमा लेनी यह कल्पतरुमें कहा है; कारण कि, श्रावणीसे पीछे भी माघका योग होसकताहै, इसको त्रयोदशीका ही विशेषण गौड कहते हैं अर्थात् माघकी त्रयोदशी. नक्षत्रोंमेंभी याज्ञवल्क्यने यह लिखा है कि, स्वर्ग संतान बल शूरता क्षेत्र बल पुत्र श्रेष्ठता

शुभम् ॥ प्रवृत्तचक्रतां चापि वाणिज्यप्रभृतीनपि । अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥ धनं वेदान् भिषक्सिद्धिं कुप्यं गामप्यजाविकम् । अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ॥ कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामान् प्राप्नुयादिमान् ॥ ३ ॥ " फलान्तराण्यपि महाभारते कौर्मादेर्ज्ञेयानि ॥ माधवीये मरीचिः–" कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु श्राद्धे यत्फलमीरितम् । विष्कम्भादिषु योगेषु तदेव फलमिष्यते ॥ " बृहस्पतिः–" आरोग्यं चैव सौभाग्यं शत्रूणां च पराजितम् । सर्वान् कामान् श्रियं विद्यां धनमायुर्यथाक्रमम् ॥ सूर्यादिदिवसेष्वेतच्छ्राद्धकृल्लभते फलम् । बवादिकरणेष्वेतच्छ्राद्धकृल्लभते फलम् ॥२॥" अन्यानि च षण्णवतिश्राद्धादीनि प्रागुक्तानि मार्कण्डेयपुराणे–" श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने ।जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया ॥ " अथ श्राद्धाधिकारिणः । चन्द्रिकायां सुमन्तुः–" मातुः पितुः प्रकुर्वीत संस्थितस्यौरसः सुतः । पैतृमेधिकसंस्कारं मन्त्रपूर्वकमादितः ॥ " तत्रैव हेमाद्रौ शंखः–" पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया । पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्तदभावे तु सोदरः ॥ " अत्र यद्यपि पुत्रपदं क्षेत्रजादिद्वादशविधपुत्रपरम् । ते च द्वादशपुत्रा याज्ञवल्क्येनोक्ताः–" औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगो-

---

सौभाग्य समृद्धि मुख्यता शुभप्रवृत्ति तथा राज्य व्यपार आदि नीरोगता, यश शोकका नाश परमगति, धन, वेद, वैद्यककी सिद्धि, शुभशरीरता, अजा (भेड), अश्व, अवस्था इन फलोंको क्रमसे वह प्राप्त होता है जो कोई कृत्तिकासे आदि लेकर भरणीपर्यन्त नक्षत्रोंमें श्राद्ध करता है, औरभी श्राद्धके समय भारत कौर्म आदिमें लिखे हैं, माधवीयमें मरीचिका कथन है कि, कृत्तिका आदि नक्षत्रोंमें जो श्राद्धका फल कहा है, वही फल विष्कंभआदि योगोंमें होता है,ऐसा जानना. बृहस्पति कहते हैं कि, आरोग्य, सौभाग्य, शत्रुओंका पराजय, सब कामकी प्राप्ति लक्ष्मी विद्या धन अवस्था इनको क्रमसे रविवारआदि सात वारोंमें श्राद्ध करनेवाला प्राप्त होता है. औरभी छानवे श्राद्ध प्रथम कथन कर आये हैं; मार्कण्डेयपुराणमें कहा है कि, जब श्राद्धके योग्य द्रव्य हो और जब खोटा स्वप्न दीखे तथा जन्मका नक्षत्र हो तथा जब ग्रहोंकी पीडा ग्रहणादि हो इनमें इच्छासे श्राद्ध करै ॥ अब श्राद्धके अधिकारी कहते हैं, चन्द्रिकामें सुमन्तुका वाक्य है कि औरस पुत्र मृतक हुए माता पिताका सपिंडी संस्कार सत्कारसे मन्त्रपूर्वक करै. वहांही हेमाद्रिमें शंखका वाक्य है कि, पुत्र पिताका पिण्डदान और जलदान कर्म करै, पुत्र न होय तो पत्नी, पत्नी न होय तो सहोदर भ्राता करै, यहां यद्यपि पुत्रपदसे क्षेत्रज आदि बारह प्रकारके पुत्रोंका बोध होता है, और वे बारह पुत्र याज्ञवल्क्यने कथन किये, हैं कि धर्मपत्नीसे

त्रेणेतरेण वा॥ गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः। कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतः स्मृतः॥ अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवस्तथा। दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत्॥ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृतः। दत्तान्मातुः स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोढजः॥ उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोपविद्धो भवेत्सुतः। पिण्डदोंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः॥ ९॥" इति। तथापि॥ 'दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः॥' इति हेमाद्रावादिपुराणे कलावितरेषां पुत्रत्वनिषेधादौरसदत्तकपरमेव॥ यद्यपि 'पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः' इति याज्ञवल्क्योक्तेरौरसाभावे दत्तकप्राप्तिः, तथाप्यौरसाभावे पौत्रः, तदभावे प्रपौत्रः, तदभावे दत्तकादयः इति ज्ञेयम्॥ "पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते। अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्॥" इति जीमूतवाहनधृतवसिष्ठहारीतशंखलिखितोक्तेः॥ 'लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिं पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च "पुत्रः पौत्रश्च तत्पुत्रः पुत्रिकापुत्र एव च। पत्नी भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा। भगिनी भागिनेयश्च सपिण्डः सोदकस्तथा। असंनिधाने पूर्वेषामुत्तरे पिण्डदाः स्मृताः॥ २॥" स्मृतिसंग्रहे—"प्रपौत्रान्तरं पुत्रिकापुत्रोक्तेस्तत्सम-

जो उत्पन्न हो वह औरस, उसके तुल्य पुत्रिकाका पुत्र होताहै, अपनी स्त्रीमें जो पैदा हो वह क्षेत्रज चाहे वह सगोत्रसे हो वा इतरसे हो, घरमें छिपकर जो उत्पन्न हो वह गूढज, कन्यासे उत्पन्न कानीन, नानाका पुत्र कहा है, पुरुषके सम्बन्धसे रहित हो वा नहीं हो ऐसी स्त्रीमें जो अन्यसे उत्पन्न हो वह पौनर्भव पुत्र कहाता है, माता व पिता जिसको देदे, वह पुत्र दत्तक कहाता है, जो माता पिताने बेच दिया हो वह क्रीत होता है, जो स्वयं पुत्र करलियाहो वह स्वयंकृत कहाता है, जिसने अपनी आत्मा देदी हो वह स्वयंदत्त कहाता है, गर्भमें जो विवाहके समय हो अर्थात् गर्भवतीसे विवाह करनेसे जो उत्पन्न हो, वह सहोढज होता है, जो किसीका त्यागा हुवा ग्रहण किया जाय वह अपविद्ध पुत्र होता है, इन बारह १२ में पूर्व २ के अभावमें पिछला २ पिण्डका देनेवाला और अंशका भागी होताहै, तो भी कलियुगमें दत्तक औरसके सिवाय दूसरोंको पुत्रभावसे स्वीकार न करै यह हेमाद्रि और आदित्यपुराणमें कलियुगमें और पुत्रोंके निषेधसे औरस दत्तकके विषयमें माता पिताके संस्कारका पूर्वोक्त कथन है॥ यद्यपि पूर्व २ के अभावमें पर २ पिण्डका दाता और अंशका भागी होता है इस याज्ञवल्क्यके वचनसे औरसके अभावमें दत्तककी प्राप्ति है तथापि औरसके अभावमें पौत्र और पौत्रके अभावमें प्रपौत्र उसके अभावमें दत्तकआदि यही समझना, क्योंकि पुत्रसे लोकोंको जय करता है, और पौत्रसे अनन्त लोकोंको भोगता है, और पुत्रके पौत्रसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जीमूतवाहनमें लिखा वसिष्ठ हारीत शंखलिखितोंके वाक्योंसे और पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, पुत्रिकापुत्र, पत्नी, भ्राता, भ्राताका पुत्र, पिता, माता, स्नुषा (बहू), भगिनी, भानजा, सपिंड, सोदक, इनमें पूर्वके न होनेमें पिछले २ पिण्डके दाता कहे हैं॥ इस स्मृतिसंग्रहके वचनमें प्रपौत्रके पीछे

त्वाच्च दत्तकस्य ॥ " यद्यपि बृहस्पतिना-"पुत्रश्च पुत्रिकापुत्रः स्वर्गप्राप्तिकरावुभौ । रिक्थे च पिण्डदाने च समानौ परिकीर्तितौ ॥" इति पौत्रसाम्यमुक्तम् ॥ याज्ञवल्क्येन च-'औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः' इति औरससाम्यम् । तथापि-'लोके राजसमो मन्त्री' इत्यादौ किञ्चिन्न्यूने समशब्दप्रयोगात् । गौणमुख्ययोः साम्ययोगाच्च स्तुत्यर्थं तत् । न तु समविकल्पः । इति भ्रमितव्यम् । ' पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसंततिः । सपिण्डसंसृतिर्वापि क्रियार्हा नृप जायते ॥ तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः । मातृपक्षसपिण्डेन संबन्धो यो जलेन वा॥कुलद्वयेपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप । तत्संघातगतेर्वापि तद्रिक्थात्कारयेन्नृप ॥ ३ ॥ ' इति विष्णुपुराणाच्चेति प्रपौत्रानन्तरं दत्तकादय इति पृथ्वीचन्द्रमदनरत्नकालादर्शादयः ॥ मदनपारिजातेप्येवम् ॥ बोपदेवरुद्रधरादयस्तु-'पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यो वै कारयेत्स्वधाम्' इति सुमन्तूक्तौ ॥ " पितामहः पितुःपश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः ॥ " इति छन्दोगपरिशिष्टे च पुत्रशब्दस्य द्वादशविधसुतपरत्वात् ' पूर्वाभावे परःपरः' इत्यस्यानन्यपरत्वाच्च दत्तकाद्यभावे पौत्रादीनामप्यधिकार इत्याहुः ॥ तद्गौणमुख्ययोः साम्यायोगाद्-

---

पुत्रिकाका पुत्र कहा है और उसके समान दत्तक है, यद्यपि बृहस्पतिने तो पुत्र और पुत्रिकाका पुत्र यह दोनों स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाले हैं धन लेने और पिण्डदानमें ये दोनों समान कहे हैं और पौत्रके तुल्य कहे हैं, और याज्ञवल्क्यने भी धर्मपत्नीसे उत्पन्न हुआ औरस और उसके समान बेटीका पुत्र कहा है इस वचनसे औरसके तुल्य कहा है, तथापि लोकमें राजाके समान मन्त्री है इत्यादिमें कुछ न्यूनमें भी समशब्दका प्रयोग होनेसे गौण और मुख्यका तुल्यताका प्रयोग है इससे प्रशंसाके निमित्त वह वाक्य है तुल्यताका विकल्प है, यह सन्देह नहीं करना, और पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भ्राता, भ्राताकी सन्तान, सपिण्डकी संतानभी क्रियाके योग्य होती है, उन सबके अभावमें समानोदकोंकी सन्तान वा माताके पक्षका सपिण्ड जलदान करै, हे नृप ! यदि दोनों कुल नष्ट होगये हों तो स्त्री वा उनका समूह उसके धनमेंसे क्रियाको करै, इस विष्णुपुराणके वाक्यसे प्रपौत्रके पीछे दत्तक आदि करैं, यह पृथ्वीचन्द्रोदय, मदनरत्न, कालादर्श आदिके वचन कहते हैं, मदनपारिजातमें भी ऐसेही लिखा है ॥ बोपदेव रुद्रधर आदि तो कहते हैं कि पुत्रोंके विद्यमान होते अन्य स्वधाको न करैं इस सुमन्तुके वाक्यसे पिताके पीछे यदि पितामह मरजाय तो पौत्र दशाह आदि षोडश श्राद्ध करै, यदि पितामहके पुत्र होय तौ पौत्र ये श्राद्ध न करै इस छन्दोगपरिशिष्टमें पुत्रशब्दसे बारह प्रकारके पुत्रोंका बोध होता है और पूर्व पूर्वके अभावमें परपर करै यह भी अन्य अर्थका बोधक नहीं, इससे दत्तक आदिके अभावमें पौत्र आदिका अधिकार है यह जो कहते हैं सो ठीक नहीं कारण कि गौण-

त्तके सति पौत्रस्यांशहरत्वस्याप्यभावापत्तेः पुत्रपदस्यौरसमात्रपरत्वाच्चिन्त्यम् ॥ अत एव निषेधादुपनीतपौत्रसत्त्वेऽप्यनुपनीतपुत्रस्यैवाधिकारः ॥ ' औरसश्चानुपनीतोपि कुर्यात् ' इत्याह पृथ्वीचन्द्रोदये सुमन्तुः-"श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृको द्विजः । व्रतस्थो वाव्रतस्थो वा एक एव भवेद्यदि ॥ " वृद्धमनुः-"कुर्यादनुपनीतोपि श्राद्धमेको हि यः सुतः । पितृयज्ञाहुतिं पाणौ जुहुयाद्ब्राह्मणस्य सः ॥ " एको मुख्य औरस इत्यर्थः ॥ मनुः-"न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् । नाभिव्याहारयेद्ब्रह्मस्वधानिनयनादृते ॥ " ब्रह्म-वेदः ॥ सुमन्तुरपि- नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म यावन्मौञ्जी निबध्यते । मन्त्राननुपनीतोपि पठेदेवैक औरसः ॥ " अयं मन्त्रपाठः त्रिवर्षकृतचूडस्यैव । "अनुपनीतोपि कुर्वीत मन्त्रवत्पितृमेधिकम् । यद्यसौ कृतचूडः स्याद्यदि स्याच्च त्रिवत्सरः ॥ " इति सुमन्तूक्तेः ॥ यत्तु व्याघ्रः-" कृतचूडस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च । स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत् ॥ " इति ॥ यच्च स्मृतिसंग्रहे-"कृतचूडोऽनुपेतश्च पित्रोः श्राद्धं समाचरेत् । उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ ॥" इति । तत् प्रथमवर्षचूडाविषयमिति माधवमदनरत्नपृथ्वीचन्द्राः त्रिवर्षोर्ध्वं मन्त्रवत्त्वस्य

और मुख्यकी साम्यताके अयोगसे दत्तक पुत्रके होते पौत्रभी अंशका भागी नहीं होगा, पुत्रपद औरस (सन्तान) मात्रका बोधक है इसी निषेधसे जिसका यज्ञोपवीत होगया हो ऐसे पौत्रके विद्यमान होते भी अनुपनीत पुत्रकाही अधिकार है कारण कि पृथ्वीचन्द्रोदयमें सुमंतुने यह कथन किया है कि, अनुपनीत भी औरस पुत्र क्रिया करै, कि जिसका पिता मरगया हो वह द्विज व्रतमें स्थित हो वा न हो यदि एकही होय तो श्राद्धको अवश्य करे वृद्धमनुका वाक्य है कि, अनुपनीतमें भी पुत्र यदि एक होय तो श्राद्ध करै, और ब्राह्मणके हाथमें पितृयज्ञकी आहुति दे इसमें एक पदसे मुख्य औरस पुत्रही लेना ॥ मनुजीने कहा है कि यज्ञोपवीत पर्यन्त कोई कर्म न करै, और स्वधा अर्थात् (श्राद्ध) के विना वेदका उच्चारण न करै. सुमंतुका भी वाक्य है कि, जबतक यज्ञोपवीतकी मौञ्जी न बँधे तबतक वेदका उच्चारण न करै और अनुपनीत भी मुख्य औरस पुत्र मन्त्रोंको पढे यह मन्त्रोंका पाठ उसको ही है जिसका तीसरे वर्ष मुण्डन होगया हो कारण कि, सुमन्तुका वाक्य है कि, यज्ञोपवीत रहित भी पुत्र मन्त्रोंसे पितृयज्ञ करै, यदि तीन वर्षका होय और मुण्डन हो चुका हो तो व्याघ्रने यह लिखा है कि, मुण्डनके अनन्तर पिंड जलदान करै, और स्वधाको कहै परन्तु वेदको न पढै और जो स्मृतिसंग्रहमें लिखा है कि, मुंडनके पीछे यज्ञोपवीत रहित भी माता-पिताके श्राद्धको करै, और स्वधाको पढै और वेदके अक्षर न पढै यह दोनों वचन उसके विषं

विकल्पः इति चन्द्रिका वोपदेवश्च । दत्तकादिपरो निषेध इति वयम् ॥ मदनरत्ने स्कान्दे–"यज्ञेषु मन्त्रवत्कर्म पत्नी कुर्याद्यथा नृप । तथौर्ध्वदैहिकं कर्म कुर्यात्सा धर्मसंस्कृता ॥" अशक्तौ तु कात्यायनः–"असंस्कृते तु पत्न्या च ह्यग्निदानं समन्त्रकम् । कर्तव्यमितरत्सर्वं कारयेदन्यमेव हि ॥" पुत्रश्च न जन्मतोऽधिकारी । किं तु वर्षोत्तरमित्याह कालादर्शः–"चौलादाद्याब्दिकादर्वाङ् न कुर्यात्पैतृमेधिकम् । पुत्रश्चोत्पत्तिमात्रेण संस्कुर्यादृणमोचनात् ॥ पितरं नाब्दिकाच्चौलात्पैतृमेधेन कर्मणा ॥" एतच्चौरसस्यैव । दत्तकादीनां तूपनीतानामेवाधिकार इति कालादर्शः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि स्कान्दे–"पित्रोरनुपनीतोऽपि विदध्यादौरसः सुतः । और्ध्वदैहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारिणः ॥" इति ॥ अन्यत्रापि–दर्शमहालयादावनुपनीतस्याधिकारोऽस्माभिः पूर्वमुक्तः ॥ प्रपौत्राभावे दत्तकादय एकादश पुत्राः । तदभावे भर्तुः पत्नी तस्याश्च सः । "अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता । पत्न्येव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च ॥" इति वृद्धमनूक्तेः ॥ "भार्यापिण्डं पतिर्दद्याद्भर्त्रे भार्या तथैव च । श्वश्र्वादेश्च स्नुषा चैव तदभावे सपिण्डकाः॥" इति 'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः' इति च हेमाद्रौ

यमें हैं, जिसका पहिलेही वर्ष चूडाकर्म हुआ हो । माधवरत्न पृथ्वीचन्द्रोदय कहते हैं, तीन वर्षके पीछे इसको मन्त्रपाठ करनेका विकल्प है, यह चन्द्रिका और वोपदेवने कहा है और हम तो यह कहते हैं कि, निषेध दत्तकके निमित्त है ॥ मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि यज्ञोंमें हे नृप ! जैसे मन्त्रोंको पढकर पत्नी कर्म करती है इसी प्रकार धर्मसंस्कृत वह पत्नी मरणके कर्मको भी करै, सामर्थ्य न होय तो कात्यायनने यह कहा है कि, असंस्कृत पुत्र और पत्नी मन्त्रोंसे अग्निदाहक्रिया करै अन्य सब कर्म किसी औरसे करादे पुत्र जन्मसे अधिकारी नहीं किन्तु वर्षके उपरान्त है, मुण्डन और एक वर्षसे पहिले पितृयज्ञ न करै, यह कालादर्शका वाक्य है, मदनरत्नमें सुमन्तुने भी यही कहा है कि, पुत्र पिताका संस्कार उत्पन्न होतेही ऋणमोचनसे करै, एक वर्ष और मुण्डनसे पहिले न करै, यह भी औरसके निमित्त है दत्तक आदिमें तो उसकोही अधिकार है जिसका यज्ञोपवीत होचुका हो यह कालादर्शमें कहा है ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, अनुपनीत भी औरस पुत्र माता पिताका और्ध्वदैहिक कर्म करै, और पुत्र तो संस्कारके उपरान्त श्राद्धके अधिकारी हैं और अमावास्या महालय श्राद्धोंमें भी हम अनुपनीतका अधिकार पहिले कह आये हैं, प्रपौत्रके अभावमें दत्तक आदि ११ ग्यारह पुत्र और उनके अभावमें वह पत्नी करै जिसका वह पति था, कारण कि, वृद्धमनुने यह कहा है कि, जिसके पुत्र न हो वह पत्नीही पतिकी शय्याको पालन करती है, और व्रतमें स्थित होकर पिंड दे और सम्पूर्ण धनको ग्रहण करै और भार्याको पिंड पति दे पतिको भार्या दे, और सासको बहू दे, और यह न होवे तो सपिंड दें, कारण कि, हेमाद्रिमें शंखने कहा है कि, पुत्रके अभावमें पत्नी और पत्नीके अभावमें

शङ्खोक्तेः ॥ पृथ्वीचन्द्रस्तु—' कानीनगूढसहजपुनर्भूतनयाश्च ये । पत्न्यभावे विकुर्युस्ते त्वप्रशस्ताः स्मृता हि ते ॥ " इति स्मृतिसंग्रहात् ॥ पत्न्यभावे कानीनादय इत्याह । पत्युरपि सपत्नीपुत्रे सति नाधिकारः । ' पितृपत्न्यः सर्वा मातरः " इति सुमन्तूक्तेः " विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदैहिकम् । तदभावे सपत्नीजः क्षेत्रजाद्याः स्मृतास्तथा ॥ तेषामभावे तु पतिस्तदभावे सपिण्डकाः " इति मदनरत्ने कात्यायनोक्तेश्च ॥ " बह्वीनामेकपत्नीनामेष एव विधिः स्मृतः । एका चेत् पुत्रिणी तासां सर्वासां पिण्डदस्तु सः ॥ " इति बृहस्पतिवचनाच्च ॥ अपरार्केऽप्येवम् । तेन यच्छुद्धिविवेके उक्तं ' सत्यपि सपत्नीपुत्रे पत्युरेवाधिकारः ' इति । तन्निरस्तम् । यच्च तत्रैव कात्यायनः—' न भार्यायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि कचित् । ' यच्च विष्णुपुराणम्—' कुलद्वयेपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप ' इति ॥ यच्च मार्कण्डेयपुराणम्—' सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम् ' इति ॥ तदासुरादिविवाहोढाविषयम् ॥ " धर्म्यैर्विवाहैरूढा या सा पत्नी परिकीर्तिता । क्रयक्रीता तु या नारी न सा पत्न्यभिधीयते ॥ न सा दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां मुनयो विदुः ॥" इति माधवीये शातातपोक्तेः ॥ यत्तु शुद्धिरत्ना-

---

सहोदर भाई दे ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें तो यह कथन किया है कि, कानीन गूढ सहज पुनर्भूपुत्र पत्नीके अभावमें ही पिताका संस्कार अग्निक्रिया करै क्योंकि, ये निकृष्ट है इस स्मृतिसंग्रहके वाक्यसे पत्नीके अभावमेंही कानीन आदिका अधिकार है सपत्नीका पुत्र होय तो पतिको भी स्त्रीके संस्कारका अधिकार नहीं कारण कि, सुमन्तुने यह कहा है कि, पिताकी सब स्त्री माता होती है और मदनरत्नमें कात्यायनका वचन है कि, माताका और्ध्वदैहिक कर्म औरस पुत्र करै उसके अभावमें सपत्नीका पुत्र करै वह भी न होय तो क्षेत्रजआदि पुत्र, वे भी न होय तो पति, पति भी न होय तो सपिंड करै, और बृहस्पतिने भी कहाहै है कि, एक पुरुषकी बहुत स्त्रीकी यही विधि है कि, उनमें जो एक पुत्रवाली है वही सबको पिंडकी दाता है ॥ अपरार्कमें भी यही है तिससे जो शुद्धिविवेकमें यह कहा है कि, सपत्नीका पुत्र होतेभी पतिका अधिकार जो है, सो खण्डित हुआ जो वहांही कात्यायनने कहा है कि, पुत्ररहित भार्याको पति कदाचित् पिंड न दे, और जो विष्णुपुराणमें लिखा है कि, दोनों कुलोंके नष्ट होनेपर स्त्री क्रिया करै, और जो मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है कि, सबके अभावमें अपने पतियोंका संस्कार मंत्र विना स्त्री करै, ये सब वचन उन स्त्रियोंके विषयमें हैं, जो आसुर आदि विवाहोंसे विवाही हों क्योंकि, जो धर्महीके विवाहोंसे विवाही हों क्योंकि, जो धर्महीके विवाहोंसे विवाही हों वही पत्नी कही है मोलकी स्त्री पत्नी नहीं कहाती वह देव और पितर कर्मोंके योग्य नहीं उसको मुनिजन दासी कहते हैं, यह बात माधवीयमें शातातपने कही है ॥

करः शूलपाणिश्च-" अपुत्रस्य च या पुत्री सापि पिण्डप्रदा भवेत् । तस्य पिण्डान् दशैकं वा एकाहेनैव निक्षिपेत् " इति जाबालोक्तेः ॥ "भर्तुर्धनहरा पत्नी तां विना दुहिता स्मृता । अङ्गादङ्गात्संभवति पुत्रवद्दुहिता नृणाम्॥" इति बृहस्पतिना दुहितुर्धनहारित्वोक्तेश्च 'पुत्राभावे कन्या तदभावे सपत्नीपुत्रः " इत्याहतुः । तत्पूर्वविरोधात् । मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्यं ऋतेन्वये ' इति दुहितुर्मातृधनग्राहित्वेन पुत्रस्य तच्छ्राद्धानधिकारापत्तेश्चोपेक्ष्यम् । वचनं तु भ्रातृपुत्राद्यभावविषयम् ॥ पत्न्यभावे अविभक्तस्य सोदरः । पूर्वोक्तशङ्खवचनात् । विभक्तस्य तु दुहिता धनहारित्वात् । पूर्वोक्तजाबालिवचनाच्च । तत्राप्यूढानूढसमवाये ऊढैव । "दुहिता पुत्रवत्कुर्यान्मातापित्रोस्तु संस्कृता ॥ आशौचमुदकं पिण्डमेकोद्दिष्टं सदा तयोः॥" इति भरद्वाजोक्तेः ॥ तदभावे दौहित्रः धनहारित्वात् । मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदैहिकम् । कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात् ॥" इति चन्द्रिकायां वृद्धमनूक्तेः ॥ " यथा व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यात् क्रियां नृप । उदकाद्यां महाबाहो दौहित्रोपि तथार्हति ॥" इत्यपरार्के भविष्योक्तेश्च ॥ एतद्वन-

---

जो शुद्धिरत्नाकर और शूलपाणिने यह कहा है कि पुत्ररहितकी जो पुत्री है वह भी पिण्ड देनेवाली है वह पिताके दश पिंड एक दिनही देदे इस जाबालिके वाक्यसे पतिके धन लेनेवाली पत्नी और पत्नीके न होनेमें पुत्री कही है, कारण कि मनुष्योंके अंग २ से पुत्रके समान पुत्री भी होती है इस वाक्यसे बृहस्पतिने पुत्रीको धन लेनेवाली कहा है, इससे पुत्रके अभावमें कन्या और कन्या न होनेमें सपत्नीका पुत्र अधिकारी है, यह शुद्धिरत्नाकर और शूलपाणिका कथन है इस कारण त्यागने योग्य है कि, एक तो इसमें पूर्वोक्त वचनोंका विरोध आता है और एक ऋणसे शेष माताके धनको पुत्री और उनके अभावमें वंशके मनुष्य लें इस वचनसे पुत्रीको माताके धनका अधिकार होनेसे पुत्रको भी उसके श्राद्धका अधिकार न रहैगा, हाँ वचन तो उस विषयमें चरितार्थ हो जायगा और जहां भ्राताके पुत्र न हो, पत्नी न होय तो वह सहोदर भाई करे, जिसका विभाग नहीं हुआ हो कारण कि, पहिले शंखने यही कथन किया है ॥ और जो विभाग होगया होय तो पुत्री धनको ले, इसमें पूर्वोक्त जाबालिका वाक्य है, पुत्रियोंमें भी विवाही और विना विवाहियोंके बीचमें विवाही धनको ले कारण कि भरद्वाजका यह वचन है कि विवाही हुई पुत्री माता पिताका अशौच जल, पिण्डदान पुत्रके तुल्य करै, पुत्री न होय तो दौहित्रको धनका भागी होनेसे अधिकार है, कारण कि, चन्द्रिकामें वृद्ध मनुका वाक्य है कि, माता पिता गुरु आचार्य नाना इनके और्ध्वदैहिकको व्रतवालाभी दौहित्र सम्पादन करै तो व्रतसे भ्रष्ट नहीं हो सकता, और अपरार्कमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, व्रतमें स्थित जैसे पुत्र पिताकी क्रिया करै हे राजन् ! हे महाबाहो ! वैसेही दौहित्रभी

हारिण आवश्यकं नान्यस्येत्याह ॥ तत्रैव स्कान्दः–"श्राद्धं मातामहानां तु अवश्यं धनहारिणा । दौहित्रेणार्थनिष्कृत्यै कर्तव्यं पूर्वमुत्तरम् " इति ॥ तेन दौहित्रोत्र पुत्रीकृत इति देवयाज्ञिकोक्तिः परास्ता ॥ अत्र पत्नीदौहित्रसत्वायेंशपरत्वाद् पत्न्येव कुर्यात्। दौहित्रभ्रातृपुत्रसत्त्वे विभक्तस्य दौहित्रः, अविभागे भ्रातृपुत्रः । भ्रातृतत्पुत्रसत्त्वे कनिष्ठश्चेत् भ्रातैव । ज्येष्ठश्चेत्तत्पुत्रः कुर्यादिति दाक्षिणात्यग्रन्थाः ॥ हारलतादौ तु " भ्रातुर्भ्राता स्वयं चक्रे तद्भार्या चेन्न विद्यते । तस्य भ्रातृसुतश्चक्रे यस्य नास्ति सहोदरः ॥ " इति ब्राह्मोक्तेः । " पत्नी कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे सहोदरः ' इति कौर्माच्च ज्येष्ठभ्रातैव कुर्यान्न, तत्पुत्रः ॥ यत्तु–' नानुजस्य तथाग्रजः ' इति । तत् कनिष्ठभ्रातृसत्त्वविषयम् ॥ यच्च मनुः–"सर्वेषामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् । सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ " इति ॥ तत्सहोदराभावविषयमित्युक्तम् । एतेन पुत्रत्वातिदेशोयम् । अतस्तस्मिन् सति एकादश पुत्राः प्रतिनिधयो न कार्याः । स एव पिण्डदोंशहरश्चेति अत्रापि वाचस्पतिमनुटीकाकल्पतरुरत्नाकरादयः परास्ताः ॥ 'द्वादशपुत्राभावे पत्नीदुहितरः ' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च ॥ तस्माद्दत्तकपुत्रश्चांशेयमिति

जलदान आदि क्रिया करने योग्य है यहभी उसकोही आवश्यक है जो धनका अधिकारी है और नहीं ॥ वहांही स्कन्दपुराणके वचनसे यह कहा है कि, धन लेनेवाला दौहित्र नानाके श्राद्धको अवश्य करै, उससेही उसकी निष्कृति प्रायश्चित्त है, तभी वह धनका अधिकारी है, तिससे वही दौहित्र यहां लेना जो पुत्रकी तुल्य करलिया हो, यह देव याज्ञिककी उक्ति खण्डन हुई, यदि यहां पत्नी और दौहित्र दोनों होयँ तो धनकी मालकनी होनेसे पत्नीही करै, दौहित्र माईका पुत्र दोनों होयँ तो विभाग कियेका दौहित्र और विभाग न हुआ होय तो भ्राताका पुत्र करै, माई और माईके पुत्र छोटे होयँ तो भाई करै और ज्येठा होय तो माईका पुत्र करै यह दक्षिणियोंके ग्रन्थोंमें कहा है॥हारलतादिकमें यह लिखा है कि, माईही करै, माईका पुत्र न करै कारण कि ब्रह्मपुराण और कूर्मपुराणमें यह लिखा है कि, भ्राताकी स्त्री न होय तो भ्राता करै और जिसके भ्राता न होय उसका कर्म भ्राताके पुत्र करैं, और पुत्रके अभावमें पत्नी करै और पत्नीके अभावमें सहोदर भाई करै, जो किसीने यह कहा है कि, छोटे माईका कर्म ज्येष्ठ न करै यह तब है जब कोई छोटा भ्राता हो, जो मनुका यह वाक्य है कि, एकसे उत्पन्न हुए सब माइयोंमें जो एक पुत्रवाला हो वे सब उससे पुत्रवाले हैं यह मनुने कहा है यहभी तब है जब कोई सहोदर भ्राता न हो यह पहिले कहआये हैं इससे यह सब पुत्रका अतिदेश है अर्थात् 'माईआदिमें पुत्रभाव मानना है, इससे औरसपुत्रके होते ग्यारह प्रकारके पुत्र प्रतिनिधि न करने वही पिंडका दाता और धन लेनेवाला है इससे वाचस्पति मनुकी टीका कल्पतरु रत्नाकरआदि परास्त किये, बारह प्रकारके पुत्रोंके अभावमें पत्नी और पुत्रियोंको इस याज्ञवल्क्यके वचनसे

विज्ञानेश्वरः ॥ अविभक्तविषयं वा ॥ मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे–"पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं पत्नी च तदसन्निधौ । धनहार्यथ दौहित्रस्ततो भ्राता च तत्सुतः ॥ भ्रात्रोः सहोदरो भ्राता कुर्यादाहादि तत्सुतः । ततस्त्वसोदरो भ्राता तदभावे च तत्सुतः ॥ २ ॥" इति । भ्रातृपुत्राभावे क्रमेण पितृस्नुषास्वसृतत्पुत्रादयः ॥ धनहारित्वात् ॥ भगिनीतत्सुतयोर्विशेषमाह मदनरत्ने कात्यायनः–"अनुजा अग्रजा वापि भ्रातुः कुर्वीत संक्रियाम् । ततः स्वसोदरास्तद्वत्क्रमेण तनयस्तयोः ॥" अपरार्के कार्ष्णाजिनिः–"पुत्रः शिष्योऽथवा पत्नी पिता भ्राता स्नुषा गुरुः ॥ स्त्रीहारी धनहारी च कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ।" मार्कण्डेयपुराणे–"पुत्रो भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा पिता । वित्ताभावेऽपि शिष्यश्च कुर्वीरन्नौर्ध्वदैहिकम् ॥" तेन धनहारी एतद्भिन्न इति कालादर्शः ॥ अत्र पाठक्रमो न विवक्षितः ॥ पूर्ववाक्येष्वथ ततः शब्दादिभिः श्रौतक्रमोक्तेः 'अथ जिह्वया अथ वक्षसः' इतिवत् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः–"स्नुषा स्वस्रीयतत्पुत्रज्ञातिसंबन्धिबान्धवाः । पुत्राभावे तु कुर्वीरन् सपिण्डान्तं यथाविधि ॥" मार्कण्डेयपुराणे–

पत्नीकोही अधिकार है तिससे यह दत्तककी स्तुति है, यह विज्ञानेश्वर कहते हैं, अथवा उसके विषयमें है जहां विभाग न हुआ हो ॥ मदनरत्न और स्मृतिसंग्रहमें लिखा है कि, पिताके श्राद्धको पुत्र करै, यदि पुत्र निकट न होय तौ स्त्री करै, स्त्री न होय तो धनको लेनेवाला दौहित्र करै, दौहित्र न होय तो भ्राता करै और भ्राता न होय तो भाईके पुत्र करैं, सहोदर भाईका संस्कार दाहक्रिया आदि भ्राता वा भ्राताके पुत्र करैं वे न होयँ तो असहोदरभाई, वे भी न होयँ तो भ्राताके पुत्र करैं, इस वचनसे भ्रातृपुत्रोंके अभावमें क्रमसे पिता माता भगिनी भगिनीके पुत्र धनके भागी होनेसे उनकी क्रिया कर्म करै, भगिनी और भगिनीके पुत्रोंमें विशेष मदनरत्नमें कात्यायनने कहा है कि, छोटी वा बडी भगिनी भाईकी क्रिया करै, उसके अनन्तर असहोदर भगिनी करै, इसी प्रकार क्रमसे उनके पुत्र करै अपरार्कमें कार्ष्णाजिनिका वाक्य है कि, पुत्र शिष्य पत्नी पिता भ्राता स्त्री पालने और धनका लेनेवाला पिंड और जलदान क्रिया करै ॥ मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि, पुत्र भ्राता भ्राताका पुत्र पत्नी माता पिता और शिष्य धनके अभावमें भी और्ध्वदैहिक कर्म करै, कालादर्श यह कहते हैं कि, धन लेनेवाला इनसे भिन्न लेना, इन श्लोकोंमें पाठका क्रम हमें विवक्षित नहीं कारण कि, पूर्ववाक्यमें अथ और ततः शब्द आदिसे श्रौत (श्रवण) क्रमही कहा है जैसे अथ जिह्वाका और अथ वक्षःस्थलका न्यास करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धमनु कहते हैं कि, वधू भगिनी भगिनीके पुत्र ज्ञाति सम्बन्धी बान्धव ये सब पुत्रके अभावमें सपिंडीतक कर्मको यथाविधि करैं । मार्कण्डेयपुराणका वाक्य है कि, जिसके पुत्रआदि बन्धु नष्ट होगयेहों उसका

"पुत्राद्युत्सन्नबन्धोश्च सखापि श्वशुरस्य च । जामाता स्नेहवत्कुर्यादखिलं पैतृमेधिकम् ॥" चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—"मातुलो भागिनेयश्च स्वस्त्रीयो मातुलस्य च । श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च ॥ एतेषां चैव भार्याणां स्वसुर्मातुः पितुस्तथा ॥ श्राद्धमेषां तु कर्त्तव्यमिति वेदविदो विदुः ॥ २ ॥" शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्द्रोदये च ब्राह्मे "दत्तानां चाप्यदत्तानां कन्यानां कुरुते पिता । चतुर्थेऽहनि तास्तेषां कुर्वीरन् सुसमाहिताः ॥" दत्ताः—वाग्दत्ताः ॥ "मातामहानां दौहित्राः कुर्वन्त्यहनि चापरे । तेपि तेषां प्रकुर्वन्ति द्वितीयेऽहनि सर्वदा ॥ जामातुः श्वशुराश्चक्रुस्तेषां तेपि च संयुताः । मित्राणां तदपत्यानां श्रोत्रियाणां गुरोस्तथा ॥ भागिनेयसुतानां च सर्वेषां स्वपरेहनि । राजा सति सपिण्डे तु निरपत्ये पुरोहितः ॥ मन्त्री वा तदशौचं तु पुरा चीत्वा करोति सः ॥ ९ ॥" अत्र द्वितीयाहादौ श्राद्धविधानमस्थिसंचयपरम् ॥ कालादर्शे—"दाहादि मन्त्रवत्पित्रोर्विदध्यादौरसः सुतः । तदभावे तु पौत्रश्च प्रपौत्रः पुत्रिकासुतः ॥ दौहित्रो धनहारी च भ्राता तत्पुत्र एव च । पिता माता स्नुषा चैव स्वसा तत्पुत्र एव च ॥ सपिण्डः सोदको मातुः सपिण्डश्च सहोदकः । स्त्री च शिष्यर्त्विगाचार्या जामाता च सखापि वा ॥ उत्सन्नबन्धो रिक्थेन कारयेदवनीपतिः ॥ ३ ॥" गौतमः—"पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युः । तदभावे ऋत्विगाचार्यौ ॥"

मित्र और श्वशुरका जामाता स्नेहसे मृतककर्म करै । चन्द्रिकामें वृद्ध शातातपका कथन है कि, मानजेका मामा और मामाका मानजा कर्म करै, तथा श्वशुर गुरु मित्र नाना पत्नियोंका भगिनी माता और पिता इनका श्राद्ध करना यह वेदके ज्ञाता जानते हैं ॥ शुद्धिविवेक और पृथ्वीचंद्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि, वाग्दत्ता और अदत्ता कन्याओंका कर्म पिता करै, और वे कन्या चौथे दिन सावधानीसे पिताआदिका कर्म करैं, नानाका कर्म दौहित्र प्रथम दिन करै; और नाना भी दौहित्रके कर्मको दूसरे दिन करै जामाताके कर्मको श्वशुर और श्वशुरके कर्मको जामाता करै, मित्र मित्रकी सन्तान वेदपाठी गुरु मानजा मानजेके पुत्र इन सबका कर्म प्रथम दिन करै, यदि राजाका सपिंड और सन्तान न होय तो पुरोहित वा मंत्री राजाके अशौच बीतनेपर कर्मको करै, यहां दूसरा दिन, अस्थिसञ्चयसे लेना ॥ कालादर्शमें कथन किया है कि, पिता माताके दाहक्रिया आदि कर्मको औरस पुत्र मंत्रसे करै, वह न होय तो पौत्र प्रपौत्र पुत्रीपुत्र दौहित्र धनका ग्राहक भ्राता भ्राताके पुत्र पिता माता वधू भगिनी भगिनीके पुत्र सपिंड सोदक और माताके सपिंड सोदक स्त्री शिष्य ऋत्विक् आचार्य जामाता और मित्र क्रमसे कर्मको सम्पादन करै जिसके कोई बन्धु न होय उसके क्रिया कर्मको उसकेही धनसे राजा करवादे, गौतमका वाक्य है कि, पुत्रके अभावमें सपिंड माताके सपिण्ड शिष्य कर्म करैं, और वे न होवैं तो ऋत्विक् और आचार्य करै ॥ और जो चन्द्रिकामें वृद्ध-

यत्तु चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—'प्रीत्या श्राद्धं प्रकर्त्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम्' इति तत्सवर्णविषयम् ॥ "ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न कुर्यात्कर्म किंचन । कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत्" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ "न ब्राह्मणेन कर्त्तव्यं शूद्रस्याप्यौर्ध्वदैहिकम् ॥ शूद्रेण वा ब्राह्मणस्य विना पारशवात्क्वचित् ॥" इति पारस्करोक्तेश्च ॥ पारशव ऊढशूद्रापुत्रः ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ सर्वत्र पुत्रादेः सर्वस्याभावे पत्न्यादेरधिकार उक्तः तत्राभावोऽसन्निधिर्नाशश्चोच्यते ॥ अत एव पूर्वत्र 'असन्निधाने पूर्वेषाम्' इत्युक्तम् । तत्रासन्निधौ पत्न्यादेः सर्वाधिकारे प्राप्ते—"प्रोषितावरिते पुत्रः कालादपि चिरादपि ॥ एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्य विधिवत्क्रियाः ॥ ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्" इत्याद्यैर्देशान्तरेऽपवादात्पुत्रनाशे एव पत्न्यादेः सपिण्डनादावधिकारः ॥ असन्निधौ तु तत्पूर्वमेव नोर्ध्वम् ॥ अतोऽनधिकारिणा भ्रात्रादिना कृतमप्यकृतमेवेति पुनरावर्तनीयम् । मासिकापकर्षोऽप्यावर्तनीयः ॥ एकादशाहमासिकानि नावर्तन्ते । 'तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः' इतिवदावृत्तिविधानाभावादिति केचित् ॥ तन्न ॥ अस्य निर्मूलत्वात् ।

शातातपने कहा है कि, सम्पूर्ण वर्ण और आश्रमोंका प्रीतिसे श्राद्ध करना यह सवर्णके विषयमें है, कारण कि, ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, ब्राह्मण अन्य वर्णोंके किंचित् भी कर्म न करै, काम लोभ भय मोहसे करके उसी जातिको प्राप्त होता है, पारस्कर भी कहते हैं कि, ब्राह्मण शूद्रके और्ध्वदैहिकको न करै और पारशवं अर्थात् विवाही शूद्राके पुत्रके विना शूद्रभी ब्राह्मणके कर्मको न करै, यहां यह सिद्धांत है कि, सब जगह पुत्र आदि पहिले २ के अभावमें पत्नी आदिका अधिकार कहा है वहां अभावका अर्थ निकट न होना और मृत्यु दो प्रकारकी लेनी इसीसे पहिलेके असन्निधानमें यह वचन कह आये हैं, तहां पुत्र आदिके पास न होनेमें पत्नी आदिका सर्वत्र अधिकार पाया तो यदि पिता परदेशमें मराहो तो चिरकालमें भी पुत्र एकादशाह आदि क्रियाओंको करसकता है और वेही कर्मक्रिया तो जो ज्येष्ठने की हो इत्यादि वचनोंको देशान्तरमें पूर्वोक्त वचनोंके अपवाद होनेसे पुत्रके नाशमेंही पत्नी आदिका सपिंड आदिमें अधिकार है, यदि पुत्र समीप न होय तो सपिण्डीसे पूर्वकर्ममेंही अधिकार है पश्चात् नहीं ॥ इससे अनधिकारी भाई आदिका किया हुआभी न किया हुआ है, इस कारणसे फिर करना चाहिये, यदि मासिक यथार्थ न हुआ होय तो फिर करना चाहिये. एकादशाह और मासिक ये दूसरी बार न करने, सपिण्डीकरण दूसरी वार इसके समान करना । इसके समान एकादशाह और मासिककी पुनः विधिका अभाव है यह कोई कहते हैं, सो यथार्थ नहीं कारण कि, यह वचन निर्मूल है इससे वेभी कनिष्ठके किये हुए

१ तथा च—यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् । स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥ अर्थात्—जो ब्राह्मण शूद्रामें कामसे पुत्र उत्पन्न करै वह पारण करता हुआ शव है इससे उसको पारशव कहते हैं ॥

अतस्तदपि कनिष्ठकृतमावर्तते । वृद्धिश्रौतपिण्डपितृयज्ञार्थं तु कृतं नावर्तते । "नासपिण्डयाग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत् । न पार्वणं नाभ्युदयं कुर्वन्न लभते फलम् ॥" इति वृद्धयुत्तरानिषेधनादिति ॥ 'भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा' इत्यादिहारीतादिवचोभ्यः कनिष्ठादेरप्यधिकारात् । यथात्र ज्येष्ठकर्तृकत्वबाधः, तथा पुत्रकर्तृकत्वस्यापि बाधः । सपिण्डने तु बहु वक्तव्यं तन्निर्णये वक्ष्यामः ॥ अधिकारविशेषेण क्रियाव्यवस्थोक्ता विष्णुपुराणे–"पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः । त्रिप्रकाराः क्रिया ह्येतास्तासां भेदाञ्शृणुष्व मे ॥ आदाहाद्द्वादशाहाच्च मध्ये याः स्युः क्रिया नृप । ताः पूर्वा मध्यमा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः ॥ प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु । क्रियन्ते याः क्रियाः पुत्रैः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः ॥ पितृमातृसपिण्डैश्च समानसलिलैस्तथा । तत्संघातगतैश्चैव राज्ञा वा धनहारिणा ॥ पूर्वा मध्याश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः । दौहित्रैर्वा नरश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ॥ मृताहनि तु कर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः ॥ ६ ॥" दौहित्रतत्पुत्रयोर्धनहारिणोरिदम् ॥ एवमन्यस्य धनहर्तुः 'यश्चार्थहरः स पिण्डदायी' इत्यापस्तम्बोक्तेः ॥ "प्रेतस्य प्रेतकार्याणि अकृत्वा

पुनः करने उचित है वृद्धि, वेदोक्त पिण्ड, पितृयज्ञके निमित्त किये कर्मकी तो आवृत्ति नहीं होती असपिण्ड और अग्निहोत्री पुत्र मृतक पिताके कर्मको न करै, और न पार्वण और न नांदीमुख श्राद्ध करै, यदि करै तो फल की प्राप्ति नहीं होती भ्राता वा भाईका पुत्र कर्म करै, इत्यादि हारीत आदिके कई वचनोंसे कनिष्ट भाईकाभी अधिकार है जैसे यहां ज्येष्ठको श्राद्ध करनेका बाध है तैसेही पुत्रको भी श्राद्ध करनेका बाध है, सपिण्डामें तो बहुत कुछ कहना है वह सपिंड निर्णयमें कहैंगे ॥ अधिकारियोंके भेदसे क्रियाकी व्यवस्था विष्णुपुराणमें इस प्रकार है कि, पूर्वा मध्यमा उत्तरा ये तीन प्रकारकी क्रिया हैं, उनके भेद मुझसे सुनो हे राजन्! मरनेके दिनसे बारह दिनके बीचमें जो क्रिया होती है वह पूर्वा कहाती है, और मास २ में जो एकोद्दिष्ट क्रिया जाता है वह मध्यमा क्रिया कहाती है, सपिंडीकरणके पीछे जब प्रेत पितर हो जाता है तब जो क्रिया की जाती है वह तब उत्तर कहाती है, इन तीनोंमें पिता माता सपिण्ड सोदक इनके समूहमें जो हों उन्हें वा राजा और धनके भागीको पूर्वा और मध्यमा क्रिया करनी, हे नरोत्तम! उत्तर क्रिया पुत्र वा दौहित्र वा इनके पुत्रोंको करनी चाहिये, और स्त्रियोंकी भी उत्तरा क्रिया मरनेके दिन करनी यह भी दौहित्र और उसके पुत्र उनकोही अधिकार है जिनको धन मिलाहो, इसी प्रकार और भी उसकोही अधिकार है, जिसको धन मिलाहो कारण कि, आपस्तम्बने यह कहा है कि, जो धनका भागी है वही

धनहारकः । वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत्॥'' इति पृथ्वीचन्द्रोदये व्याघ्रपादोक्तेः ॥ मदनरत्ने स्कांदेपि–'मलमेतन्मनुष्याणां द्रविणं यत्प्रकीर्तितम्' इत्युक्त्वा ''ऋषिभिस्तस्य निर्दिष्टा निष्कृतिः पावनी परा । आदेहपतनात्तस्य कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ॥'' इत्युक्तम् ॥ क्रियानिबन्धे कात्यायनः–''न च माता न च पिता कुर्यात्पुत्रस्य पैतृकम् । नाग्रजश्च तथा भ्राता भ्रातॄणां तु कनीयसाम्॥'' पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः–''पित्रा श्राद्धं न कर्तव्यं पुत्राणां तु कथंचन । भ्रात्रा चैव न कर्तव्यं भ्रातॄणां च कनीयसाम् ॥ यदि स्नेहेन कुर्यात्तां सपिण्डीकरणं विना । गयायां तु विशेषेण ज्यायानपि समाचरेत् ॥ २ ॥'' अन्याभावे पित्रादिरपि कुर्यात् ॥ '' उत्पन्नबान्धवं प्रेतं पिता भ्राताथवाग्रजः । जननी चापि संस्कुर्यान्महदेनोन्यथा भवेत् ॥ '' इति सुमन्तूक्तेः ॥ ब्रह्मचारिणां तु शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्द्रोदये च ब्राह्मे–'' असमाप्तव्रतस्यापि कर्तव्यं ब्रह्मचारिणः । श्राद्धं तु मातापितृभिर्न तु तेषां करोति सः ॥'' श्राद्धं मासिकाब्दिकादि सर्वं कार्यमित्यर्थः ॥ न स्विति निषेधोऽन्यसत्त्वे ॥ यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे–''न त्यजेत्सूतकं कर्म ब्रह्मचारी स्वयं क्वचित् । न दीक्षणात्परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥ पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्यात् त्र्यहं वा

पिण्डका दाता होता है, पृथ्वीचन्द्रोदयमें व्याघ्रपादने भी यही कहा है कि, प्रेतके प्रेतकर्म किये विना जो धन लेता है वह सावधानीसे उस व्रतको करै, जो वर्णोंके वधमें कथन किया है. मदनरत्नमें स्कन्द पुराणके वचनसे भी कथन किया है कि, जिसको द्रव्य कहते हैं, यह मनुष्योंका मल है, यह कहकर कहा है कि, ऋषियोंने उसका पवित्र और श्रेष्ठ यह प्रायश्चित्त कहा है कि, मरनेसे लेकर उसकी पिण्डदान क्रिया कर दे ॥ क्रियानिबन्धमें कात्यायनका वाक्य है कि, पुत्रका मृतक कर्म माता, पिता और कनिष्ठभ्राताका कर्म बडा भाई न करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें बौधायनका कथन है कि, पुत्रके श्राद्धको पिता और कनिष्ठ भ्राताके श्राद्धको भाई न करै, यदि स्नेहसे करै, तो सपिण्डीकरणके विना करै, गयामें तो बडा भाई विशेषतासे करै, यदि अन्य कोई न होय तो पिता आदि भी श्राद्ध करै,कारण कि, सुमन्तुने यह कहा है कि, जिस प्रेतका कोई बान्धव न होय उसका संस्कार पिता भ्राता बडा भाई माता करै, नहीं तो महापाप होता है ॥ ब्रह्मचारियोंके लिये तो शुद्धिविवेक और पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका यह कथन है कि, जिसका व्रत समाप्त न हुआ हो, उस ब्रह्मचारीके वार्षिक मासिक श्राद्धको पिता आदि करै और माता पिताके श्राद्धको ब्रह्मचारी न करै, यदि दूसरा करनेवाला हो जो छन्दोग परिशिष्टमें लिखा है कि, सूतक अर्थात् सन्तति जन्ममें ब्रह्मचारी अपने कर्मको कभी भी न त्यागे, और यज्ञकी दीक्षा किये उपरान्त, कृच्छ्रआदि तपको आरंभ करनेपर पिताके मृत्यु होनेपर भी ब्रह्मचारीको कभी दोष नहीं होता, कर्मके समाप्त होनेपर केवल तीन दिन अशौच रहता है ॥

ब्रह्मचारिणाम् ॥ २ ॥" यच्च याज्ञवल्क्यः—'न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा' इति । तदप्यन्यसत्त्वे ॥ अन्याभावे तु ब्रह्मचारिणापि कार्यं पूर्वोक्तवृद्धमनुवचनात् ॥ "आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती । संकटान्नं च नाश्नीयान्न च तैः सह संवसेत् ॥" इति तेनैवोक्तेः ॥ 'ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोः' इति वसिष्ठोक्तेः ॥ अत्राशौचमेकाहं वक्ष्यामः ॥ प्रागुपनयनान्मृतस्य तु पञ्चवर्षोत्तरसपिण्डीकरणवर्ज्यं षोडशश्राद्धादि सर्वं कार्यमित्युक्तं देवजानीये ॥ 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतोवचनाच्च ॥ एतच्चाग्रे वक्ष्यामः ॥ अविभक्तानां विशेषमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः—"बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः । सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥ द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥" ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः ॥ तेन ये ब्रह्मचर्यपरान्नवर्जनादयः फलसंस्काराः ते सर्वेषां भवन्तीति सिद्धम् ॥ संसृष्टिनामप्येवम् ॥ तुल्यत्वात् ॥ विभक्तानां विशेषमाहोशनाः—"नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ॥" लघुहारीतः—"सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश । पृथङ् नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित् ॥ ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात्सर्वे कुर्युः

जो याज्ञवल्क्यने कथन किया है कि, ब्रह्मचारी किसीको जलदान न दे, और दे तो पतित होता है; यह भी तभी है जब कोई दूसरा करनेवाला हो, यदि दूसरा कोई न हो तो ब्रह्मचारी भी पहले कहे हुएके अनुसार वृद्ध मनुके वचनसे करै, कारण कि, वृद्ध मनुनेही यह कहा है कि, आचार्य, पिता गुरु इनका दाह करके भी ब्रह्मचारी व्रतसे पतित नहीं होता परन्तु सूतकके अन्नको भोजन न करै, और न उनके संग शयन करै, और वसिष्ठनेभी यह कथन किया है कि मातापितासे भिन्न मृतक कार्य करनेवाले ब्रह्मचारीका व्रत खंडित हो जाता है, इसमें एक दिनका आशौच कहेंगे, यज्ञोपवीतसे पहिले और पांच वर्षके उपरान्त मृत्यु हुएके श्राद्ध आदि सब करने चाहिये यह देवजानीयमें कथन किया है कि, जिनका संस्कार न हुआ हो उनका पिंड भूमिमें देना और सस्कृतोंका पिंड कुशाओंपर देना, इस प्रचेताकेभी वचनसे यह आगे कहेंगे ॥ जिनका विभाग नहीं हुआ है उनको विशेषकर पृथ्वीचन्द्रोदयमें मरीचिने कहा है कि, यदि पिताके बहुत पुत्र हों और वे एकत्र रहते हों उनमें सबकी सम्मतिसे जो बडेने इकट्ठे द्रव्यसे कार्य किया हो वह मानो सबनेही किया, बडेके करनेसे सब फलभागी हैं, तिससे ब्रह्मचर्य परान्नका त्याग आदि जो संस्कार हैं वे सबके होते हैं यह सिद्ध हुआ, समानतासे क्रियोंकाभी ऐसेही हैं. विभक्तोंका विशेष शुक्रने कहा है कि, नवश्राद्ध सपिंडी और षोडश श्राद्ध विभक्त धनवालोंमेंभी एकही करे ॥ लघु हारीतने ये कहा है कि, सपिंडीतक जो सोलह श्राद्ध हैं यदि भाई जुदे २ ही हों तो इनको अलग २ न करैं, और सपिंडीसे पीछे अलग २

पृथक्पृथक् ॥ " मदनरत्ने-" विभक्तास्तु पृथक्कुर्युः प्रतिसंवत्सरादिकम् । एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम् ॥" एतेनाब्दिकादिष्वविभक्तानामनियम इति वदन् शूलपाणिः परास्तः ॥ दत्तकस्तु जनकस्य पुत्राद्यभावे दद्यान्न तत्सत्त्वे ॥ "गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दत्रिमः सुतः । गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥" इति मनूक्तेः ॥ इदं जनकस्य पुत्रसत्त्वविषयम् ॥ एतच्च प्रवरमञ्जर्यां कात्यायनलौगाक्षिभ्यां स्पष्टमुक्तम्-'अथ ये दत्तकक्रीतकृत्रिमपुत्रिकापुत्राः परपरिग्रहेणानार्षेया जातास्ते द्व्यामुष्यायणा भवन्ति ॥ यथा शौङ्गशैशिरीणां यानि चान्यान्येवं समुत्पत्तीनि कुलानि भवन्ति' इत्यादिना द्वयोः पित्रोः प्रवरानुक्त्वोक्तम् । 'अथ यद्येषां स्वासु भार्यास्वपत्यं न स्यादक्थं हरेयुः पिण्डं चैभ्यस्त्रिपुरुषं दद्युर्यद्युभयोर्न स्यादुभाभ्यामेव दद्युरेकस्मिन् श्राद्धे पृथगुद्दिश्यैकपिण्डे द्वावनुकीर्तयेत्परिगृहीतारं चोत्पादयितारं चातृतीयात् पुरुषात्' इति ॥ हेमाद्रौ कार्ष्णाजिनिः-" यावन्तः पितृवर्ज्याः स्युस्तावद्भिर्दत्तकादयः । मृतानां योजनं कुर्युः स्वकीयैः पितृभिः सह ॥ द्वाभ्यां सहाथ तत्पुत्राः पौत्रास्त्वेकेन तत्परम् । चतुर्थपुरुषे छन्दस्तस्मादेषा त्रिपूरुषी ॥ साधारणेषु कालेषु विशेषो नास्ति धर्मिणाम् ॥ मृताहे त्वेकमुद्दिश्य कुर्युः श्राद्धं यथाविधि ॥" इति ॥ अस्यार्थमाह

ही सब करें. मदनरत्नमें कथन है कि, प्रतिवर्षके एकोद्दिष्टआदि श्राद्धको जुदेहुए अलग २ करैं और साझेमें जो एकने किया वह मानो सबने किया इससे यह शूलपाणि इसके कथनसे परास्त हुआ कि, वार्षिकआदि श्राद्धमें अविभक्तोंका नियम नहीं है, दत्तक तो उत्पन्नकर्ता पिताके कोई पुत्र न होय तो दे, होय तो न दे कारण कि, मनुने यह कहा है कि, दत्तकपुत्र उत्पन्न करनेवालेके गोत्र और धनको प्राप्त नहीं होता, गोत्र और धनके पीछे चलनेवालेके पिंड और स्वधा ये दोनों देनेवालेके नष्ट हो जाते हैं यह बात तब है जब उत्पादक पिताके कोई पुत्र हों ॥ यह बात प्रवरमञ्जरीमें कात्यायन और लौगाक्षिने स्पष्ट कथन की है, इसके अनन्तर जो दत्तक क्रीत कृत्रिम पुत्रिका पुत्र हैं ये अन्यके स्वीकारसे अनार्षेय द्व्यामुष्यायण अर्थात् गोत्ररहित होगये हैं, वे द्व्यामुष्यायण होते हैं, जैसे शौंग और शैशिरीयोंके अन्यभी उत्पत्तिसे वंश हो जाते हैं इत्यादिसे दोनों पिताओंके प्रवरोंको कहकर कहा है कि, जो इनके अपनी स्त्रियोंमें सन्तान न होय तो धनको ले और तीन पुरुषतक पिंडदे यदि दोनों पिताओंके न होनेसे दोनोंको दे एक श्राद्ध और एकही पिण्डमें भिन्न २ दोनोंके नामका उच्चारण करै, लेने और देनेवाले दोनोंका नाम तीन पीढीतक ले ॥ हेमाद्रिमें कार्ष्णाजिनिका वाक्य है कि, जितने पिताके वर्गमें हो दत्तक आदि पुत्र उतनोंके संग मृतकका अपने पितरोंके संग मिलावें, और दत्तकोंके पुत्र दोके संग और पौत्र एकके संग मिलावैं, चौथे पुरुषमें अपनी इच्छा है तिससे यह त्रिपुरुषी है साधारण कालोंमें वर्गियोंका कोई विशेष नहीं ॥ हेमाद्रिने

हेमाद्रिः-दत्तकादयः जनकपालकयोः कुले मेतानां स्ववर्गीयैः सपिण्डनं कुर्युः। दत्तकानां पुत्रास्तु पितुर्दत्तकस्य पितृभ्यां जनकपालकाभ्यां स्वपितामहाभ्यां सपिण्डनं कुर्युः॥ तेषां पौत्राः स्वपितरं दत्तकेन पितामहेन तज्जनकेन च सपिण्डयेयुः। चतुर्थोपि तत्कुलस्थ एव। तेषां प्रपौत्रस्तु दत्तकस्य प्रपितामहस्य पालककुलस्थं चतुर्थं योजयेन्न वा॥ छन्द इच्छा। दर्शमहालयादौ तु द्वयोः पित्रोः पितामहयोः प्रपितामहयोर्वा श्राद्धं देयम्। तत्र द्वयोः पित्राद्योः पृथक् पिण्डदानं द्वयोरुद्देशेनैको वेति। अत्र केचित्-'आवयोरयमिति परिभाष्य यो दत्तस्तस्येदं द्वयोः पित्रोः श्राद्धम्। यस्त्वपरिभाष्य दत्तः स ग्रहीतुरेव। स पालकायैव दद्यादित्याहुः॥ अत्र मूलं त एव प्रष्टव्याः॥ वस्तुतस्तु-जनकस्य पुत्रपत्न्याद्यभावे द्वयोर्दद्यादन्यथा पालकायैव प्रागुक्तकात्यायनवचनात्। मानवीयमप्येतद्विषयमेव। गोत्रं तु श्राद्धे पालकस्यैव। विवाहादौ तूभयोरित्यादि मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयम्। यस्तु मूल्यक्रीतायां परभार्यायां दास्यां चोत्पन्नः स बीजिन एव दद्यात्। मूल्यं विना स्वयमुपनतायां तु क्षेत्रिण एव॥ तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये कौर्मे-"अनियोगात्सुतो यस्तु शुल्कतो जायते त्विह। प्रदद्याद्बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोन्यथा॥" इति॥ क्षेत्रजादेर्विशेषस्तु कलौ तदभावान्नोच्यत इति

इसका अर्थ यह कहा है कि, दत्तक आदि जनक और पालक दोनोंके कुलमें मृत्यु हुओंको अपने वर्गमें जो हों उनके संग सपिंडन करैं, दत्तकोंके बेटे तो दत्तक पिताके पिता जो जनक पालक अपने पितामहोंके संग सपिंडन करैं और उनके पौत्र अपने पिताको दत्तक पितामहके और उसके उत्पादकके संग सपिंडन करैं, चतुर्थभी उसी वंशका लेना, उनका प्रपौत्र तो दत्तक प्रपितामहको पालक कुलके चौथेके संग मिलावे वा न मिलावे, अमावस्या महालय आदिमें तो दोनों पिता और दोनों पितामह और प्रपितामहोंका श्राद्ध करै उनमें दो पिता आदिको पृथक् २ पिण्डदान वा दोनोंके नामसे एक पिण्डदान करै यह किन्हीका वचन है यह दो पितरोंका श्राद्ध वह दत्तक करै, जो यह प्रतिज्ञा करके दिया हो कि, यह दोनोंका पुत्र रहा, और जो इस प्रतिज्ञासे न गया वह लेनेवालेकोही दे, इसमें प्रमाण उनकोही पूछना अर्थात् नहीं॥ सिद्धान्त तो यह है कि, जनकके कोई पुत्र पत्नी आदि न होय तो दत्तक दोनोंको दे न करनेसे पालककोही पूर्वोक्त कात्यायनके वचनसे दे, मनुके वचनकाभी यही तात्पर्य है गोत्र तो श्राद्धमें पालककेही होतेहैं और विवाह आदिमें दोनोंका, इत्यादि मेरे किये प्रवरदर्पणमें जानना जो पुत्र मोल ली परकी भार्या वा दासीमें उत्पन्न हुआ है वह उसको दे जिसका बीज हो, जो मोलके बिना स्वयं उसका पुत्र बीजवालेको दे यही पृथ्वीचन्द्रोदयमें कूर्मपुराणका वाक्य है कि, जो बिना मोलसे पुत्र उत्पन्न होय वह बीजदाताको पिण्ड दे और नियोगसे उत्पन्न क्षेत्रवालेको प्रदान करै, क्षेत्रज आदि पुत्रोंका विशेष इस कारण नहीं कहते कि, कलियुगमें वे नहीं होते यह

दिक् ॥ जारजानां विशेषमाहापरार्के नारदः-"जायंते त्वनियुक्तायामेकेन बहुभिस्तथा"। अरिक्थभाजस्ते सर्वे बीजिनामेव ते सुताः ॥ दद्युस्ते बीजिने पिण्डं माता चेच्छुल्कतो हृता । अशुल्कोपहृतायां तु पिण्डदा वोढुरेव ते ॥ २ ॥ " धर्मार्थ श्राद्धकरणे फलमाह चन्द्रिकायां शातातपः-"प्रीत्या श्राद्धं तु कर्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम् । एवं कुर्वन्नरः सम्यङ्महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ " गयायामपि तत्रैव ब्रह्मवैवर्ते-"आत्मजो वाथवान्योपि गयाशीर्षे यदा तदा । यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तन्नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ " एतच्च यदा फलभूमार्थिना द्विस्त्रिर्वा क्रियते तदा प्रेतशिलाश्राद्धवर्ज्यं कुर्यात्, तस्य प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात् तस्य च जातत्वादिति केचित् । वस्तुतस्तु-संन्यासिश्राद्धवदत्रापि सर्वं कार्यम् । साङ्गेधिकारादिति युक्तं प्रतीमः ॥ संन्यस्तपित्रादिस्तु पितुः पित्रादिभ्यः सर्वश्राद्धेषु दद्यादित्युक्तं प्राक् ॥ वक्ष्यते च जीवत्पितृकश्राद्धे ॥ अत्र स्त्रीशूद्राणां श्राद्धं मन्त्रवर्ज्यं तूष्णीं भवति । " स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं तथा शूद्रासुतस्य च । प्राग्द्विजाश्च व्रतादेशात्ते च कुर्युस्तथैव तत् ॥ " इति हेमाद्रौ मरीचिवचनात्सिद्धम् ॥ " अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः ॥ अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते ॥" इति ब्राह्मो-

---

दिग्दर्शनमात्र कथन किया है ॥ जारसे उत्पन्न हुओंका विशेष अपरार्कमें नारदजीने कथन किया है कि, विना नियोग एकसे व बहुतोंसे जो पुत्र उत्पन्न हों वे सब द्रव्यके भागी नहीं होते, और बीजवालेके होतेहैं, यदि माता मोलली होय तो बीजवालेको, और मोल न ली होय तो विवाहनेवालेको पिण्डदे, धर्मके निमित्त श्राद्ध करनेका फल चन्द्रिकामें शातातपने लिखा है कि, सम्पूर्ण वर्ण और आश्रमवालेका प्रेमसे श्राद्ध करना, इस प्रकार प्रेमसे श्राद्ध करनेवाला मनुष्य अधिक लक्ष्मीको प्राप्त होताहै ॥ गयामेंभी वहांही ब्रह्मवैवर्तपुराणका वचन है कि, पुत्र अथवा और कोई गयामें जब कभी जिस किसी नामसे पिंड देता है वह उसे सनातन ब्रह्मको पहुँचाताहै, और यहभी तब है जब अधिक फलकी इच्छासे दो वा तीन बार गया करै, और तब भी प्रेतशिलाके श्राद्धको छोडकर सम्पूर्ण गया करै, कारण कि, वह श्राद्ध प्रेतकी मुक्तिके निमित्त है कारण कि, वह एक बार हो चुका यह कोई कहते हैं, यथार्थमें तो हमें यह युक्त विदित होता है कि, अंगोंसहित गया श्राद्धके अधिकारसे संन्यासीके श्राद्धके समान दूसरी गयामें भी सम्पूर्ण कर्म करना चाहिये जिसका पिता संन्यासी हो वह पितामह आदिको सम्पूर्ण श्राद्धोंमें पिंडआदि प्रदान करै यह पहले कह चुके हैं और जीवत्पितृक श्राद्धमें आगे वर्णन करैंगे ॥ यहां स्त्री और शूद्रका श्राद्ध मंत्रोंविना मौनपूर्वक होता है कारण कि, हेमाद्रिमें मरीचिका कथन है कि, स्त्री और शूद्र मंत्रके विना श्राद्ध करैं, और यज्ञोपवीतसे पहिले द्विज भी तैसे ही करै ब्रह्मपुराणका भी वाक्य है कि, यही विधि मंत्रोंके विना शूद्रोंकी कही है, जो शूद्र अमंत्र है

केश्च। गृह्यते संबद्ध्यते। अस्य श्राद्धप्रकरणे पाठेपि परिभाषात्वान्न प्रकरणेन संकोचो युक्तः॥ तेन शूद्रस्य स्नानदानादावपि विप्रेण मन्त्रपाठः कार्यः। अमन्त्रश्चेति विशेषणात् स्त्रिया अपीति शूलपाणिः॥ यत्तु तेनोक्तं मन्त्रजन्यनियमादिष्टसिद्धिस्तु नमस्कारेण। 'अनुमतोस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति गौतमोक्तेरिति। तन्न। दृष्टद्वारैव हि तत्प्राप्तिर्न स्वातन्त्र्येण। अन्यथा नखविपूतेप्यवघातजन्यादृष्टार्थं सोपि क्रियेतेति किंचिदेतत्॥ तेन 'पितॄणां नामगोत्रतः' इत्यादौ यत्र द्विजानामपि नाममन्त्र उक्तः तत्र प्रतिप्रसवमात्रार्थं युक्तम्। न तिलावपनादावपि॥ अत्र केचित्। वैदिकमन्त्रो विप्रस्य, पौराणस्तु शूद्रैः पठनीयः। "न हि वेदेष्वधिकारः कश्चिच्छूद्रस्य विद्यते। पुराणेष्वधिकारो मे दर्शितो ब्राह्मणैरिह॥" इति तत्रैव पाद्मोक्तेरित्याहुः॥ गौडा अप्येवम्॥ तन्न। 'नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य तु सन्निधौ' इति कौर्मे पुराणनिषेधेन वेदस्य दूरापास्तत्वात्। "अध्येतव्यं ब्राह्मणेन वैश्येन क्षत्रियेण च। श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन॥ श्रौतं स्मार्तं च वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम। तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रं न श्रोतव्यं कदाचन॥ २॥"

उसके मंत्रको ब्राह्मण पढे, यह वचन श्राद्धप्रकरणमें भी पढा है, तो भी परिभाषा होनेसे प्रकरणसे इसका संकोच करना उचित नहीं अर्थात् श्राद्धमें हीन समझना किन्तु शूद्रके स्नान दान आदिमें भी ब्राह्मण ही मंत्र पढे, 'अमंत्रस्य' इस विशेषणसे स्त्रीके स्नानदान आदिमें भी ब्राह्मण ही मंत्र पढे यह शूलपाणिका मत है॥ और जो शूलपाणिने ही कहा है कि, शूद्रको मंत्रसे उत्पन्न हुए फलकी सिद्धि नमस्कारसे ही होती है गौतमका यह वचन है कि, शूद्रको नमस्कारकी ही आज्ञा है, सो यथार्थ नहीं दृष्टके द्वारा ही शूद्रको फलसिद्धि होती है, मंत्रसे नहीं अन्यथा पवित्र भी यवमें अवघात अर्थात् (खोटने) से उत्पन्न हुए अदृष्ट दृष्ट फलके निमित्त अवघात भी न करना चाहिये, इससे उनका कहना कुछ भी नहीं, तिससे पितरोंका श्राद्ध नामगोत्रसे इत्यादिमें जहां द्विजोंको भी नाममंत्र कहा है वहां प्रतिप्रसव अर्थात् (निषेधके निषेध) के निमित्त ब्राह्मण द्वारा मंत्र पढने योग्य हैं, और तिलके आवपन अर्थात् वोने आदिमें नहीं जहाँ कोई यह कहते हैं कि, ब्राह्मणके यहां वेदका मंत्र और शूद्रके यहां पुराणका श्लोक पढना क्यों कि, तहांही पद्मपुराणका वाक्य है कि, वेदमें शूद्रका अधिकार कहीं भी नहीं, और पुराणमें अधिकार ब्राह्मणके द्वारा हमने दिखाया है॥ गौडभी ऐसेही कहते हैं सो ठीक नहीं, क्योंकि यह शास्त्र शूद्रके समीप नहीं पढना, इस कूर्म पुराणके निषेधसे वेदका अधिकार तो सर्वथा शूद्रको नहीं, और वहांही पुराणके अधिकारमें भविष्य पुराणका वाक्य है कि, यह शास्त्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पढैं, और शूद्र सुने और कदाचित् भी पढै नहीं हे नृप! इसमें उत्तम श्रुति और स्मृतिके पढ़ने और सुननेमें शूद्रको अधर्म कहा है, तिससे

इति तत्रैव पुराणाधिकारे भविष्योक्तेश्च ॥ एतेन 'नाध्येतव्यम्' इति निषेधो मन्त्रेतरपुराणपरः इति श्रीदत्तादिमतमपास्तम् । तेन पौराणमन्त्राणामेव विप्रेण पाठो न वैदिकानामिति सिद्धम् । द्विजस्त्रियस्तु संकल्पमात्रं स्वयं कृत्वा वैदिकमंत्रयुक्तं सर्वं ब्राह्मणद्वारा कारयेयुरिति प्रयोगपारिजातः ॥ अत एव स्त्रीणामित्यकृतविवाहस्त्रीपरमिति हेमाद्रिराह ॥ अनुपनीतस्तु-'वैदिकमन्त्रयुक्तं सर्वं स्वयमेव कुर्यात्' इत्युक्तं प्राक् । यत्तु-'प्राक् द्विजाश्च व्रतादेशात्' इति तदशक्तविषयमचूडविषयं वा इति दिक् ॥ शूद्रस्य तु सदामश्राद्धमेव । 'सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्येऽपि "एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा । नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवत्सदा ॥" तत्रैव वृद्धपराशरः-"आमान्नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं तु द्विजपूजनम् । कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीन्नाशयेदथ ॥" स एव-'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते ॥' हेमाद्रौ भविष्ये-"धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञा यदि शूद्राः प्रकुर्वते । अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते ॥ आवाहनादि कर्तव्यं यथा शूद्रेण तच्छृणु ॥ देवानां देवनाम्ना तु पितॄणां नामगोत्रतः । पिण्डादीन्निर्वपेद्वीर नामतो गोत्रत-

---

शूद्र ब्राह्मणको आगे किये विना कदाचित् न सुने, इससे यह श्रीधर आदिका मत निरस्त हुआ कि, न पढे यह निषेध मंत्रसे इतर पुराणके विषयमें है तिससे यह सिद्ध हुआ कि, ब्राह्मण शूद्रके यहां पुराणके मंत्र पढे वेदके नहीं, द्विजोंकी स्त्री तो संकल्पमात्रको स्वयं करके सम्पूर्ण कर्मोंको वेदके मंत्रोंसे ब्राह्मणद्वारा करवावें, यह प्रयोगपारिजात कहते हैं ॥ इससे 'स्त्रीणाम्' यह स्त्रियोंको वेदका निषेध उन स्त्रियोंके लिये है जिनका विवाह न हुआ हो, यह हेमाद्रिका मत है । जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वह द्विज वेदके मंत्रोंसे सम्पूर्ण कर्म स्वयं करै यह पहिले कह आये, और जो यज्ञोपवीतसे पहले द्विज भी विना मन्त्र करै यह वचन है सो अशक्तके विषयमें है, वा उसके विषयमें है जिसका मुण्डन न हुआ हो, यह दिग्मात्र वर्णन किया शूद्र तो सदैव आमश्राद्ध करै, कारण कि, सुमन्तुका वाक्य है कि, शूद्रोंको सदैव आमश्राद्ध कहा है, पृथ्वीचन्द्रोदयमें और मत्स्यपुराणमें भी कहा है कि, इसी प्रकार शूद्र भी सामान्य श्राद्ध करै और वृद्धि श्राद्ध नमस्कार मंत्र और कच्चे अन्नसे सदा करै वहां ही वृद्धपाराशरका वचन है कि, शूद्र आम अन्नसे करै मौन हो ब्राह्मण पूजन करै श्राद्ध और निर्वाप करके सजातियोंको भोजन करावे वह शूद्रका कच्चा अन्नही पक्वान्न है और पक्व उच्छिष्ट है ॥ हेमाद्रिमें भविष्यका वचन है जो धर्मकी इच्छावाले शूद्र करते हैं उनका नमस्कारही अग्नौकरण और मंत्र है, जो शूद्रको आवाहनादि करना चाहिये, सो सुनो, देवताओंका देवताओंके नामसे, पितरोंका नाम गोत्रसे पिण्डोंका निर्वापन करना चाहिये,

स्तथा ॥ २ ॥" शूद्राणां गोत्राभावेपि काश्यपं गोत्रं ज्ञेयम् ॥ 'तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः' इति श्रुतेः ॥ 'गोत्रनाशे तु काश्यपः' इति व्याघ्रपादोक्तेश्चेति हेमाद्रिः ॥ एवमन्यत्र गोत्राज्ञाने तर्पणादिषु च ज्ञेयम् ॥ तत्रैव भविष्ये-"शूद्रस्तु गृहपाकेन न पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तुं मूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम्॥" गौतमः-'अनुमतोस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति ॥ 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इत्ययं नमस्कारमन्त्र इति केचित् ॥ विज्ञानेश्वरोप्येवमाह ॥ हेमाद्रिस्तु-'शूद्रोप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः' इति मात्स्ये ॥ मन्त्रनिषेधान्नाममन्त्रेणेत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे-"राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः । व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥" यत्तु भारते राजधर्मेषु-"यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः । शकास्तुषाराः कंकाश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः ॥" इत्युक्त्वा-"ब्रह्मक्षेत्रे प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः ॥ कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः ॥" इति चोक्त्वा "वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते । पितृयज्ञास्तथा कूपाः प्रपाश्च शयनानि च ॥ दानानि च यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत्सदा ॥" तथा-"दक्षिणाः सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिमिच्छता । पाकयज्ञा महार्हाश्च कर्तव्याः सर्वदस्युभिः ॥" इति म्लेच्छादीनां श्राद्धविधानम् ॥ तदपि सजातीयभोजनद्रव्यदानादिपरम् । न तु श्राद्धपरमिति ॥ इति श्रीनारायणभट्टसू-

---

शूद्रोंके गोत्र अज्ञानमें कश्यप गोत्र लेना इसीसे कहा है कि, सब प्रजा कश्यपसे उत्पन्न हैं ऐसी श्रुति है, गोत्रनाशमें कश्यप गोत्र कहना यह व्याघ्रपाद और हेमाद्रिका कथन है. इसी प्रकार अन्यत्र गोत्रादिके अज्ञानमें तर्पणादिमें जानना ॥ वहां ही भविष्यमें लिखा है कि, शूद्र गृहपाकसे पिण्डोंका निर्वापन न करे पिण्डके लिये सत्तू, मूल, फल वा पायस ही कहा है, गौतमने भी नमस्काररूप मंत्र इनको कहा है देवताओंके निमित्त पितरोंके निमित्त यही नमस्कार मंत्र है कोई ऐसा कहते हैं, विज्ञानेश्वरने भी यही कहा है. हेमाद्रि कहते हैं शूद्रभी मंत्रके विना इस विधिसे करै ऐसा मत्स्यपुराणमें भी मंत्र निषेधसे नाम मंत्रही कहा है पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणका वचन है जो राजकार्यमें नियुक्त वा बन्धनमें वर्तमान है तथा और विपयोंमें रहनेसे ब्राह्मणसे श्राद्ध करावे ॥ जो राजधर्ममें भारतमें लिखा है यवन, किरात, गान्धार, चीन, शवर, बर्बर, शक, तुषार, कंक, पह्लव, आन्ध्र, मद्र, यह कहकर ब्रह्मक्षेत्रमें प्रसूत हुए वैश्य, शूद्र, मनुष्य, विषयवासी किस प्रकार धर्म करैंगे, क्रियाही उनका धर्म है, पितृयज्ञ, कूप, प्रपा, शयन और यथाकालमें दान दे और ऐश्वर्यकी इच्छावालोंको सब यज्ञोंकी दक्षिणा देनीचाहिये. पाकयज्ञ महायोग्य यह दस्युओंको सदा करना चाहिये, यह म्लेच्छादिको श्राद्धका विधान है तो भी सजातीयभोजन द्रव्यदानादिपर है श्राद्धपरत्व नहीं है ॥ इति श्रीनारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ

-रिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ श्राद्धाधिकारनिर्णयः ॥ अथ श्राद्धपितरः । हेमाद्रौ मात्स्यदेवलौ-" नाम गोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः । अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः ॥ नाममन्त्रास्तदादेशा भवान्तरगतानपि । प्राणिनः प्रीणयन्त्येव तदाहारत्वमागतान् ॥ देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः । तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेप्यनुगच्छति ॥ गांधर्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् । श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेप्युपतिष्ठति ॥ पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम् ॥ दनुजत्वे तथा मद्यं प्रेतत्वे रुधिरोदकम् । मनुष्यत्वेऽन्नपानादिनानाभोगकरं भवेत् ॥ ९ ॥" अत्र पित्रादिशब्दैर्जनकादीनामेव देवतात्वमुच्यते, न वस्वादीनाम् ॥ ' असावेवत्त इति यजमानस्य पित्रे ' इति शतपथश्रुतेः ॥ ' यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय ' इति विष्ण्वादिस्मृतेश्च ॥ यत्तु मनुदेवलौ-" वसवः पितरो ज्ञेयाः रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः ॥ प्रपितामहास्तथादित्याः श्रुतिरेषा सनातनी ॥" यच्च याज्ञवल्क्यः-' वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ' इति ॥ तद्भेदज्ञानार्थम् ॥ यानि तु हेमाद्रौ नन्दिपुराणे- "विष्णुः पितास्य जगतो दिव्यो यज्ञः स एव च । ब्रह्मा पितामहो ज्ञेयो ह्यहं च प्रपितामहः॥" इति॥यच्च भविष्ये-"अनिरुद्धः स्वयं ज्ञेयः प्रद्युम्नश्च पिता स्मृतः ।

पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां श्राद्धाधिकारनिर्णयः ॥ अब श्राद्धके पितर कहते हैं । हेमाद्रिमें मत्स्यपुराण और देवलका वाक्य है कि, नाम और गोत्र पितरोंको हव्य कव्य पहुँचाता है अग्निष्वात्तादि पितर उनके अधिपति हैं, नाम मन्त्र और देश जन्मान्तरमें गयेहुओंको भी भोजन पहुंचाकर तृप्त करता है यदि पिता शुभ कर्मसे देवता हुआ है, उस देनेवालेका अन्न अमृत होकर उसे प्राप्त होता है, यदि गन्धर्व हो तो भोगरूपसे, पशु हो तो तृणरूपसे, नाग होनेपर श्राद्धका अन्न वायुरूपसे प्राप्त होता है, यक्ष होनेपर पानरूप, राक्षस हो तो आमिष, दनुज हो तो मद्य, प्रेत हो तो रुधिरोदक, मनुष्य हो तो अन्नपानादि अनेक भोग करनेवाला होता है, यहां पित्रादि शब्दसे जनकादिकोंको देवतात्व कहा है न कि, वसु आदिका, कारण कि, 'असावेवत्त ' इति 'यजमानस्य पित्रे' ऐसी शतपथकी श्रुति है जिसका पिता प्रेत हो गया हो वह पिताके निमित्त पिण्ड दे ऐसा विष्णुआदि स्मृतिमें कहा है ॥ और जो मनु और देवल कहते हैं, पितरोंको वसु पितामहको रुद्र प्रपितामहको आदित्य कहते हैं यह सनातनी श्रुति है और जो याज्ञवल्क्य कहते हैं वसु रुद्र अदितिके पुत्र पितर श्राद्धदेवता हैं यह अभेदज्ञानके निमित्त हैं जो हेमाद्रिमें नंदिपुराणका कथन है कि, इस जगत्का पिता विष्णु है वही दिव्य यज्ञ है, ब्रह्मा पितामह जानना मैंही प्रपितामह हूं और जो भविष्यमें कहा है अनिरुद्ध स्वयं कर्ता अपनेको जानना । प्रद्युम्नरूप पिता, उसका जनक सङ्कर्षणरूप और प्रपि-

संकर्षणस्तज्जनको वासुदेवस्तु तत्पिता ॥" स्वयम्—कर्ता ॥ यत्तु तत्रैव—" प्रथमो वरुणो ज्ञेयः प्राजापत्यस्तथापरः । तृतीयोऽग्निः स्मृतः पिण्डो ह्येष पिण्डविधिः स्मृतः ॥ " यच्च मनुः—" सोमपानाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः । वैश्यानामाज्यपानाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ " यच्चादित्यपुराणे—" मासाश्च पितरो ज्ञेया ऋतवश्च पितामहाः ॥ संवत्सरः प्रजानां च सृष्टिकः प्रपितामहः ॥ " यच्च नंदिपुराणे—" अग्निष्वात्ता ब्राह्मणानां पितरः परिकीर्तिताः । राज्ञां बर्हिषदो नाम विशां काव्याः प्रकीर्तिताः ॥ सुकालिनस्तु शूद्राणां व्यामा म्लेच्छान्त्यजातिषु ॥" अत्रावाहनादिषु पित्रादयः समुच्चयेन विकल्पेन वा यथाचारं तत्तद्देवतारूपेण वाच्याः इति हेमाद्र्यादयः ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे—" पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुकम् । मातामहं न कुरुते पितृहा स प्रजायते ॥" धौम्यः—" पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम् । अविशेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत् ॥ " अस्यापवादमाह कात्यायनः—कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं तु शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः ॥ " कर्षूसमन्वितं सपिण्डीकरणम् ॥ दर्शादौ सपत्नीकानामेव देवतात्वम् ॥ " स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं माता भुङ्क्ते सुधासमम् । पितामही च स्वेनैव तथैव प्रपितामही ॥ " इति तत्रैवोक्तेः ॥ चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते—" क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया । केचि-

---

तामह वासुदेवरूप है और वहांही पहला पिंड वरुण दूसरा प्रजापति तीसरा पिंड अग्निरूप है यह विधि है, और मनु कहते हैं ब्राह्मणोंके सोमपा, क्षत्रियोंके हविर्भुज, वैश्योंके आज्यपा और शूद्रोंके सुकालिन् पितर हैं और आदित्यपुराणमें पितर मासरूप, पितामह ऋतुरूप और प्रपितामह संवत्सररूप कहे हैं ॥ जो कि, नंदिपुराणमें ब्राह्मणोंके अग्निष्वात्ता क्षत्रियोंके बर्हिषद वैश्योंके काव्य शूद्रोंके सुकालिन् म्लेच्छ अन्त्यजादिकोंके व्यामा पितर कहे हैं, यहां आवाहनादिमें पित्र्यादिसमुच्चय विकल्प वा यथाचारसे उस २ देवतारूपसे जानने ऐसा हेमाद्रिआदिमें है, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है केवल पिताके निमित्त पार्वण करता है और मातामहका नहीं करता वह पितृहा होता है, धौम्य कहते हैं जहां पितर पूजित होते हैं वहां मातामहभी अवश्य अविशेषसे पूजने, विशेषसे नरक होता है, इसका अपवाद कात्यायनने कहा है कार्षूयुक्त छोडकर आदि षोडश श्राद्ध करै और शेषोंके प्रतिआब्दिक छः पिंड होते हैं यह स्थिति है, दर्शादिमें सपत्नीजनोंका भी देवतात्व है अपने भर्ताके साथ श्राद्धको माता अमृतकी समान भोजन करती है इसीप्रकार स्वभर्ताके साथ पितामही और प्रपितामहीको जानै यह वहीं कहा है ॥ चन्द्रिकामें चतुर्विंशतिके मतसे कहा है, क्षयाहको छोडकर स्त्रीकी पृथक् क्रिया नहीं है कोई महर्षि स्त्रियोंके पृथक्

दिच्छन्ति नारीणां पृथक् श्राद्धे महर्षयः ॥ अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि । अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥२॥" इति कात्यायनोक्तेश्च । अस्य निर्मूलतां वदन्तो गौडास्त्वज्ञा एव ॥ अत्र भाग इत्यध्याहारः ॥ अन्यथा सपत्निकायै मात्रे इति प्रयोगापत्तेः । अत्र–' मातृशब्दो जनन्यामेव मुख्यः । तेन सपत्नमातृभ्यो न दद्यात् । एवं पितामह्यादिशब्दैः पितृजनन्यादय एवोच्यन्ते इति तत्सपत्नीभ्यो न देयम्' इति हेमाद्रिः॥'कारुण्येन तु महालयादौ देयम्' इति स एव ॥ अथ विश्वेदेवाः । हेमाद्रौ शङ्खबृहस्पती–" इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ सत्यौ नान्दीमुखे वसू । नैमित्तिके कामकालौ काम्ये च धूरिलोचनौ । पुरूरवार्द्रवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ ॥ " तत्रैव–"उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः । अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः ॥ १ ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः । ये ह्यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ २ ॥ " इति ॥ इष्टिश्राद्धं प्रति रुचिः इत्युक्तम् इति कल्पतरुः । आधानादि कर्माङ्गमित्यन्ये । नैमित्तिकमेकोद्दिष्टम् ॥ 'एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ' इति भविष्योक्तेः ॥ एतद्यद्यपि ' एकोद्दिष्टं देवहीनम् ' इति तत्र विश्वेदेवनिषेधस्तथापि नवश्राद्धे द्वादशमासिके च कामकालौ ज्ञेयौ । " नवश्राद्धं दशाहानि नवमिश्रं तु षड्ऋतून् । अतः परं पुराणं वै त्रिविधं श्राद्धमुच्यते ॥ यस्मिन्नेष पुराणे वा

श्राद्धकी इच्छा करते हैं अन्वष्टका, वृद्धि, गया और क्षयाह इनमें माताका श्राद्ध पृथक् करै, अन्यत्र पिताके साथ करै यह कात्यायनका कथन है इसकी निर्मूलता कहते हुए गौड तो अज्ञ हैं, यहां भागका अध्याहार करना, अन्यथा ' सपत्निकायै मात्रे ' इस प्रयोगकी आपत्ति होगी यहां मातृशब्द मुख्य माताकाही बोधक है. इससे सौतेली माताओंको न दे, इसीप्रकार पितामही आदि शब्दोंसे पिताकी जननी आदिही जाननी उनकी सपत्नी जनोंको न देना, ऐसा हेमाद्रिका कथन है दयाकरके महालयादिमें तो देना यह वेही कहते हैं ॥ अब विश्वेदेवा कहते हैं । हेमाद्रिमें शंख बृहस्पतिका कथन हैं इष्टिश्राद्धमें, क्रतु, दक्ष, सत्य, नांदीमुखमें, वसु नैमित्तिकमें, काम और काल, काम्यमें, धूरिलोचन, पार्वणमें, पुरूरव आर्द्रव विश्वेदेवा कहे हैं, वहीं कहा है जो ब्राह्मण इनकी उत्पत्ति और नाम नहीं जानते उनको यह श्लोक श्रद्धापूर्वक उच्चारण करना चाहिये, महाभाग महाबली विश्वेदेवा आवें जो इस श्राद्धमें विहित . हैं वे सावधान हों, इष्टिश्राद्ध प्रति रुचि जानना ऐसा कल्पतरुमें कहा है । आधानादि कर्मांग हैं ऐसा कोई कहते हैं एकोद्दिष्ट नैमित्तिक है, कारण कि, भविष्यमें कहा है कि, एकोद्दिष्ट नैमित्तिक है ॥ यह एकोद्दिष्ट यद्यपि देवहीन है ऐसा वहां विश्वेदेवाका निषेध है सो भी नवश्राद्ध द्वादशमासिकमें कामकाल जानना, नवश्राद्ध दशाह नवमिश्र षड्ऋतुके जानने इसके परे पुराणोंमें तीन प्रकारके श्राद्ध कहे हैं जिस

विश्वेदेवा न लेभिरे। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं वृषलं मन्त्रवर्जितम् ॥ २ ॥" इति बह्वृचपरिशिष्टात्॥एतच्च बह्वृचानामेव, तेषामेवोक्तेः। अन्येषां तु-'नात्र विश्वेदेवाः' इति कात्यायनोक्तेस्तन्निषेध एवेति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ अन्ये तु नैमित्तिकं सपिण्डीकरणमाहुः। भविष्ये यद्यप्येकोद्दिष्टं तच्छब्देनोक्तं तथापि-' तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान्भोजयेद्द्विजान्' इति तत्रैव विश्वेदेवानिषेधात्। यद्यपि सपिण्डीकरणेंऽशत एकोद्दिष्टत्वम्, तथापि-'सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत्'इति वचनात्तत्परत्वम् ॥ हेमाद्रावादित्यपुराणे-"विश्वेदेवौ क्रतुर्दक्षः सर्वास्विष्टिषु कीर्तितौ। नित्ये नान्दीमुखे श्राद्धे वसू सत्यौ च पैतृके ॥ नवान्नलम्भने देवौ कामकालौ सदैव हि। अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ ॥ पुरूरवार्द्रवौ चैव विश्वेदेवौ तु पार्वणे ॥ ३ ॥" क्वचिद्विश्वेदेवापवादमाह हेमाद्रौ शातातपः-" नित्यं श्राद्धमदैवं स्यादेकोद्दिष्टं तथैव च। मातुः श्राद्धं च युग्मैः स्याददैवं प्राङ्मुखैः पृथक् ॥ योजयेद्देवपूर्वाणि श्राद्धान्यन्यानि यत्नतः ॥ २ ॥" नान्दीश्राद्धे भिन्नप्रयोगपक्षे मातुः श्राद्धमदैवमिति हेमाद्रिः ॥ उत्तमविप्रनिर्णयः। अथ विप्राः ॥ ते चोत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिविधाः ॥ तत्राद्याः ॥ अत्र मदीयाः श्लोकाः। त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुश्च बह्वृचोप्याथर्वणो याजुषसामगौ च। षडङ्गविच्च त्रिसुपर्णवेत्ता-

---

पुराणमें विश्वेदेवा नहीं लिये हैं वह श्राद्ध आसुर और मंत्रवर्जित शूद्रश्राद्ध है यह वचन बह्वृचपरिशिष्टमें कहा है यह बह्वृचोंकाही है ऐसी उनकी उक्ति है, औरोंके तो ' नात्र विश्वेदेवाः ' ऐसी कात्यायनकी उक्तिसे निषेधही जानना यह पृथ्वीचन्द्रोदय कहते हैं और तो नैमित्तिक सपिण्डीकरण कहते हैं। भविष्यमें यद्यपि एकोद्दिष्ट तत् शब्दसे कहा है, 'तौ भी वह अदेव करना दोसे भिन्न ब्राह्मणोंको जिमावै' यह वहीं विश्वेदेवका निषेध है, यद्यपि सपिण्डीकरणके अंशसे एकोद्दिष्टत्व है तो भी सपिण्डीकरण श्राद्ध देवपूर्वक नियुक्त करै इस वचनसे परत्व है॥ हेमाद्रिमें आदित्यपुराणमें कहा है कि क्रतु और दक्ष विश्वेदेवा सब श्राद्धमें, नांदीमुख और पितरोंके श्राद्धमें वसु, सत्य और नवान्न श्राद्धमें कालकाम विश्वेदेवा सदा होते हैं और कन्यागत और काम्य श्राद्धमें धूरिलोचन और पार्वणमें पुरूरव और आर्द्रव होते हैं, कहीं विश्वेदेवाओंका अपवाद हेमाद्रिमें शातातपने वर्णन किया है कि, नित्यश्राद्ध और एकोद्दिष्ट श्राद्ध देवसे रहित होते हैं, और मातृश्राद्ध भी अदैव और युग्म अर्थात् (दो) पूर्व मुख ब्राह्मणोंसे भिन्न होता है, और अन्य श्राद्ध यत्नसे देवपूर्वक करने चाहिये, नांदीश्राद्धका भिन्न प्रयोग तब है जब श्राद्ध अदैव होता है यह हेमाद्रिका मत है॥ अब श्राद्धके योग्य उत्तम ब्राह्मणोंका वर्णन करते हैं। वे उत्तम मध्यम अधम भेदसे तीन प्रकारके हैं, यहां मेरे बनाये श्लोक है कि, त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, बह्वृच, आथर्वण, याजुष, सामग, षडंगवित्, त्रिसुपर्णवेत्ता, अथर्वणके

र्थ्यथर्वशीर्षणोऽध्ययने रतश्च ॥ शतायुर्वेदार्थविदां प्रवक्ता स्याद्ब्रह्मचारी च तथाग्नि- चिच्च । सीदद्वृत्तिः सत्यवाक्पूरुषैः स्वैर्मातापित्रोः पञ्चभिः ख्यातवंशः ॥ पत्नीयुक्तो ज्येष्ठसामा पुराणवेत्ता पुत्री चेतिहासेष्वभिज्ञः । योगी भिक्षुः सामगो ब्रह्मवेत्ता पञ्चाग्निश्च श्रोत्रियस्तत्सुतो वा ॥ शंभुध्यायी श्रीशपादाब्जसेवी पान्थश्चैते तूत्तमाः संप्रदिष्टाः। भिक्षुर्योगी पान्थ एते स्वलभ्या भाग्याल्लभ्याश्चेत्तदा भोजनीयाः॥ श्राद्धे विप्रेषूविष्टेषु पश्चात्संप्राप्ताश्चेद्विप्रपङ्क्तौ तु भोज्याः ॥ "अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ तत्रैव नारदः—" यो वै यतीननादृत्य भोजयेदितरान् द्विजान् । विजानन्वसतो ग्रामे कव्यं तद्याति राक्षसान् ॥ " दीपकलिकायां दक्षः—" विना मांसेन मधुना विना दक्षिणयाशिषा । परिपूर्णं भवेच्छ्राद्धं यतिषु श्राद्धभोजिषु ॥" एतच्च ज्ञानि- विषयम् ॥ " त्रिणाचिकेतस्त्रिसुपर्णो यजुर्वेदैकदेशौ तद्व्रतेन तदध्यायिनौ च यस्य सप्त पूर्वे सोमपाः त्रिसुपर्णः " इति बोपदेवः ॥ स त्रिमधुर्ऋग्वेदैकदेशस्तदध्यायी ॥ केचिन्नाचिकेतं चयनं त्रिःकृतवानित्यर्थमाहुः । तद्धेमाद्रिविरुद्धम् ॥ हेमाद्रौ गौतमः—'युवभ्यो दानं प्रथमं पितृवयसः ' इत्येके । मात्स्ये मनुः—"यश्च व्याकु- रुते वाचं यश्च मीमांसतेऽध्वरम् । सामस्वरविधिज्ञश्च पंक्तिपावनपावनः ॥ "

पढनेमें रत, शतायु, वेदके अर्थका ज्ञाता और वक्ता, ब्रह्मचारी, अग्निचित्, जीविकासे हीन, सत्यवादी अपने मातापिताके वंशके पांच पुरुषोंसे विख्यात, पत्नीसे युक्त, ज्येष्ठसाम और पुरा- णका ज्ञाता, पुत्रवाला, इतिहासोंका ज्ञाता, योगी, भिक्षु, सामग, ब्रह्मवेत्ता, पंचाग्नि, वेदपाठी वा उसका पुत्र, शंभुका ध्यानी, विष्णुके चरणोंका सेवक और मार्गगामी ये ब्राह्मण उत्तम कहे हैं । भिक्षु, योगी, पांथ ये तो मिलने कठिन हैं, यदि भाग्यसे मिलजाय तो अवश्य भोजन कराने योग्य हैं, श्राद्धमें ब्राह्मण बैठगये हों और यह पीछे आये हो तो ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें जिमाने उचित हैं, यह प्रमाण हेमाद्रिमें लिखा है ॥ वहांही नारदजीका वाक्य है कि जो संन्यासियोंका अनादर करके ग्रामके दूसरे ब्राह्मणोंको जानकर जिमाता है उसका कव्य राक्षसोंको प्राप्त होता है, दीपकलिकामें दक्षजीने लिखा है, कि, यदि श्राद्धमें संन्यासी भोजन करते हों तो मांस, मधु और दक्षिणा आशीर्वादके विना भी श्राद्ध पूर्ण होता है, यह भी ज्ञानीके विषयमें है त्रिणाचिकेत और त्रिसुपर्ण ये यजुर्वेदके भाग हैं उनको पढनेवाला वा व्रतकारी जिसके सात पुरुष सोम पीनेवाले हुएहों वह त्रिसुपर्ण होता है, यह बोपदेवका कथन है कि, त्रिमधु ऋग्वेदके एकदेशपाठीको कहते हैं कोई २ त्रिणाचिकेतका यह अर्थ करते हैं कि, जिसने तीन वार अग्निचयन किया हो परन्तु यह हेमाद्रिसे विरुद्ध है ॥ हेमाद्रिमें गौतमजीने कहा है कि, युवाओंको प्रथम दान दे वा उनको दे जो पिताकी अवस्थाके हों, मत्स्यपुराणमें मनुजीने कहा है कि जो वाणीको प्रगट करै तथा यज्ञका विचार करै और सामस्वरकी विधि जाने यह पंक्तिके पवित्र करनेवालोंको भी पवित्र करते हैं कूर्मपुराणका

कौर्मे-"असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च । असंबन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मणः श्राद्धसिद्धये ॥ " गारुडे-"श्राद्धेषु विनियोज्यास्ते ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः । ये योनिगोत्रमन्त्रान्तेवासिसंबन्धवर्जिताः ॥ " मनुः-"न मित्रं भोजयेच्छ्राद्धे धनैः कार्योस्य संग्रहः । नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं तु श्राद्धे निमन्त्रयेत् ॥ " द्वयोर्भ्रात्रोः श्राद्धे भोजनं निषिद्धम् ॥ "पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् । सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु परिवर्जयेत् ॥ " इति श्राद्धदीपकलिकायां जातूकर्ण्योक्तेः ॥ मध्यमविप्रनिर्णयः । अथ मध्यमाः ॥ हेमाद्रौ कौर्मगार्ग्यौ-"नैकगोत्रे हविर्दद्याद्यथा कन्या तथा हविः । अभावे ह्यन्यगोत्राणामेकगोत्रांस्तु भोजयेत् ॥ " अत्र केचित्स्वशाखीयान् मुख्यानाहुः पठन्ति च । "निमन्त्रयीत पूर्वेद्युः स्वशाखीयान् द्विजोत्तमान् । स्वशाखीयद्विजाभावे द्विजानन्यान्निमन्त्रयेत् ॥ ३ ॥ " इति ॥ इदं तु निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिणा दूषितत्वाच्चोपेक्ष्यम् । मनुरपि-" यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणं वेदपारगम् । शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं वा समाप्तिगम् । एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः । पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥ २ ॥ " अत्र मामकाः श्लोकाः

वाक्य है कि, जिसके गोत्र प्रवर एक न हों और जो सम्बन्धी न हों ऐसे ब्राह्मणोंसे श्राद्धकी सिद्धि होती है गरुडपुराणका कथन है कि, श्राद्धमें वे ब्राह्मण नियुक्त करने जो ब्रह्मके ज्ञाता योनि[1], गोत्र, मंत्र, शिष्य सम्बंधभिन्न हों. मनुका वचन है कि, मित्रको श्राद्धमें न जिमावे और मित्रके धनका संचय करावे अर्थात् उसके धनसे श्राद्ध होसकता है जिसको न मित्र न शत्रु समझे उसे श्राद्धमें जिमावे दो भाइयोंको श्राद्धमें जिमाना निषेध है क्योंकि, श्राद्धीयदीपकलिकामें जातूकर्ण्यका कथन है कि, पिता पुत्र, दो भाई, अग्निहोत्रीसे भिन्न, गर्भिणीका पति, समानगोत्र और समानप्रवर इनको श्राद्धमें वर्जदे ॥ अब मध्यम ब्राह्मणोंको कहते हैं । हेमाद्रिमें कूर्म और गार्ग्यका वाक्य है कि, एक गोत्रमें हविको न दे, कारण कि, जैसी कन्या वैसीही हवि है यदि भिन्नगोत्रके न मिलें तो एक गोत्रके जिमावे, इसमें कोई अपनी शाखावालोंको मुख्य कहते हैं, और पढते हैं कि, पहले दिन अपनी शाखाके उत्तम ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, अपनी शाखाके न मिलें तो अन्यब्राह्मणोंको निमंत्रण दे यह तो निर्मूल है और हेमाद्रिमें दूषित होनेसे त्यागने योग्य है मनुका भी वचन है कि, वेदके पारगामी ब्राह्मणको श्राद्धमें यत्नसे जिमावे वा शाखाके अंतगामी वा अध्वर्यु सब वेदके ज्ञाता. इनमेंसे कोई भी पूजित हुआ जिसके यहां श्राद्ध जीमताहै उसके पुरुषा सात पीढीतकके सदा तृप्त रहतेहैं ॥ इसमें

---

१ योनिसम्बन्धसे मामा आदि, गोत्र सम्बन्धसे सपिण्ड, मंत्रसम्बन्धसे वेदादि अध्यापक, अन्तेवासी सम्बन्धसे शिल्पशास्त्रादिके पढानेवाले जानने ॥

" मातामहो मातुलभागिनेयदौहित्रजामातृगुरुस्वशिष्याः । ऋत्विक् च याज्य-श्वशुरौ स्वबन्धुश्यालौ गुणाढ्यास्त्वनुकल्पभूताः ॥ " बन्धवो मातृष्वसृपितृष्वसृ-मातुलपुत्रा इति बोपदेवः । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ सगुणस्वस्त्रीयाद्यतिक्रमे दोष एव । "सप्त पूर्वान् सप्त परान् पुरुषानात्मना सह । अतिक्रम्य द्विजानेतान्नरके पातयेत् खग ॥ संबन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा । भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धुं खगाधिप ॥ २ ॥ " इति मदनरत्ने भविष्योक्तेः ॥ अत एव याज्ञवल्क्यः—" ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे " इति गुण्यतिक्रमे दशपणं दण्डमाह ॥ आसन्नमात्रपरमिदम् । मूर्खे तु न दोषः । " ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे वेदविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥" इति कात्यायनोक्तेः विप्रस्यापि दोषः ' अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत् ' इति मनूक्तेः ॥ अपरार्के अत्रिः—"षड्भ्यस्तु पुरुषेभ्योर्वागश्राद्धेयास्तु गोत्रिणः । षड्भ्यस्तु परतो भोज्याः श्राद्धे स्युर्गोत्रजा अपि ॥" एतच्च ब्राह्मणालाभे अपिशब्दात् ॥ असंभवे हेमाद्रौ गौतमः—'शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवतः ।' आपस्तम्बः—'ब्राह्मणान् भोजयेद्योनिगोत्रमन्त्रान्तेवास्यसंबन्धिनः । गुणहान्यां तु

मेरे बनाये श्लोक हैं कि, नाना, मामा, भानजा, दौहित्र, जामाता, अपना शिष्य, ऋत्विक, जिसे यज्ञ करावे, श्वशुर, अपना बन्धु, शाला, गुणवान् ये सब अनुकल्प अर्थात् गौण हैं, मौसी, फूफी, मामाके पुत्र, बांधव होतेहैं, यह बोपदेवका वचन है, इसमें मूल हेमाद्रिमें जानना, गुणवाले भानजे आदिके अवलंघनमें दोषही है. कारण कि, मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, सम्पूर्ण सम्बन्धी, दौहित्र, वैश्योंका पति विशेषकर भानजा और हे गरुड ! अपना बन्धु इतने ब्राह्मणोंको त्याग करके अपने सहित सात पहिले और सात आगेके पुरुषोंको पतित करता है॥ इसीसे याज्ञवल्क्यके इस वचनसे कि, गुणसे. योग्य ब्राह्मणको निमंत्रण न देनेमें दशपण ही दण्ड दे इस प्रकार ब्राह्मणके श्रेष्ठत्यागमें दशपण दंड विधान कियाहै, यहभी समीपके विषयमें है मूर्खके त्यागमें तो दोष नहीं कारण कि, कात्यायनका वाक्य है कि, वेदसे हीन मूर्ख ब्राह्मणके त्यागमें दोष नहीं, जलती हुई अग्निको छोडकर भस्ममें आहुति नहीं दीजाती, इस प्रकार ब्राह्मणोंको भी दोष है कारण कि, मनुका वचन है कि, मूर्ख प्रतिग्रह लेनेसे काष्ठके समान भस्म होताहै ॥ अपरार्कमें अत्रिका वाक्य है कि, छः पुरुषोंसे पहले सगोत्री श्राद्धके अयोग्य होते हैं और छःसे पहले सगोत्रीभी श्राद्धमें भोजन करनेके योग्य हैं, यहभी ब्राह्मणोंके न मिलनेपर है, अपिशब्दसे असम्भवमें हेमाद्रिमें गौतमका वाक्य है कि, शिष्य सगोत्री गुणवाले भी तीन पीढीसे पहले होंय तो भोजन करावै, आपस्तम्बने लिखा है कि, कुटुम्बी, गोत्र, मित्र, शिष्यसबन्धी इन ब्राह्मणोंको भोजन करावै, किसी गुणकी न्यूनता होय तो अन्य ब्राह्म-

परेषां समुदितः सोदर्योपि भोजयितव्यः । एतेनान्तेवासिनो व्याख्याताः' इति ॥ अत्र विशेषमाहात्रिः—"पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाथ सपिण्डकः । न परस्परमर्घ्याः स्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥ ऋत्विक्पुत्रादयोप्येते सकुल्या ब्राह्मणाः स्मृताः । वैश्वदेवे नियोक्तव्या यद्येते गुणवत्तराः ॥ सगोत्रा न नियोक्तव्याः स्त्रियश्चैव विशेषतः ॥ ३ ॥" इति ॥ वर्ज्यविप्रनिर्णयः । अथ वर्ज्याः ॥ अत्र मामकाः श्लोकाः ॥ "वर्ज्यान् प्रवक्ष्ये त्वथ रोगिवैरिहीनाधिकाङ्गान् कितवान् कृतघ्नान् । नक्षत्रशास्त्रेण च जीवमानान् भैषज्यवृत्त्यापि च राजभृत्यान् ॥ संगीतकायस्थकुसीदवृत्त्या वेदक्रयेणापि कवित्ववृत्त्या । देवार्चनेनापि च जीवमानान् स्वाध्यायदाराग्निसुतात्यजकाणान् ॥ दुर्वालखल्वाटकुनख्यधर्मिनटांश्च पौनर्भवकृष्णदन्तान् । अगारदाही गरदः समुद्रयायी च कुण्डाश्यथ कूटकारी ॥ बालांश्च योध्यापयते स्वपुत्रादवाप्तविद्यस्त्वथ कुण्डगोलौ । अग्रेदिधिष्वाः पतिरस्त्रकर्ता सोमक्रयी तैलिककेकराक्षौ ॥ युद्धाचार्यः पक्षिणां पोषकश्च स्रोतोभेत्ता वृक्षसंरोपकश्च । मेषाणां वा माहिषाणां च पुष्ट्या स्वीयस्त्रीषु प्रहितैर्यश्च जारः ॥ जीवत्यथेनुश्च दत्तानुयोगात् द्रव्यप्राप्त्या वेदमुद्घाटयन्तः । ग्रामयाजिपशुकेशविक्रयिस्तेनशिल्पिपितृवादकारकान् ॥ अर्थकामरतशूद्रयाजकश्मश्रुहीनजटिमुण्डिनिर्घृ-

---

णोंके समुदायमें सहोदर भी जिमाने योग्य हैं, इससे अन्तेवासी अर्थात् शिष्य भी कहे गये। यहां अत्रिने विशेष कहा है कि, पिता, पितामह, भ्राता, पुत्र, सपिंड यह श्राद्धमें परस्पर पूजने योग्य नहीं, और ऋत्विज भी नहीं, ऋत्विक् पुत्र आदि भी ये सकुल्य ब्राह्मण माने हैं, जो ये श्रेष्ठ गुणी होंय तो वैश्वदेवमें नियुक्त करने, और सगोत्री और विशेषकर स्त्री नियुक्त करना न चाहिये ॥ अब वर्जित ब्राह्मणोंको कहते हैं, इसमें मेरे बनाये श्लोक हैं कि, अब वर्जित ब्राह्मणोंका वर्णन करताहूँ। रोगी, वैरी, हीन अधिक अंगवाले, कपटी, कृतघ्नी, ज्योतिषी, वैद्य राजाके भृत्य, गाना, लिखना, लेन, देन इन वृत्तियोंसे जीनेवाले, वेदको वेचनेवाले, जीविकाके अर्थ कवि, जीविकाके अर्थ देवपूजक, वेद स्त्री अग्नि पुत्र त्यागी, जिनके बाल बुरे हों अर्थात् खल्वाटे, जिसके नाखून बुरेहों, अधर्मी, नट, पुनर्भूका पुत्र. जिसके काले दांत हों, घरमें अग्नि लगानेवाले, विष प्रदान करनेवाले समुद्रके यात्री, कुंडके यहां भोजन करनेवाले, कपटसे कार्य करनेवाले, बालकोंको पढानेवाले, अपने पुत्रसे जिसने विद्या पढी हो, कुंड और गोलक, अग्रेदिधिषुका पति, अस्त्र बनाने और सोम बेचनेवाले, तेली, केकराक्ष—अर्थात् ऊंचीनीची आंखोंवाला, युद्ध सिखानेवाले, पक्षियोंके पालक, जलके प्रवाहके भेदक, वृक्षके लगानेवाले, भेड वा भैंस पोषक, अपनी स्त्रीके जारोंसे आजीविकावाले, पढनेवालोंकी आज्ञासे द्रव्यके लिये वेदका उच्चारण करते फिरनेवाले, ग्रामयाजक, पशु और केशके बेचनेवाले, चोर, शिल्पी, पिताके संग विवादके कर-

णान् । यस्य चैव गृहिणी रजस्वला स्वार्थपाककरशापदायकान् ॥ क्लीबकुष्ठ्यतिविलोहितेक्षणान् कुब्जवामनमृषाभिशापिनः । पुत्रहीनमथ कूटसाक्षिणं प्रेतहारिकमयाज्ययाजकम् ॥ स्वात्मदातृपरिवेत्तृयाजकस्तेनहिंसकमुखान् विवर्जयेत् ॥ ९ ॥" अत्र मूलं हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च ज्ञेयम् ॥ भारते दानधर्मेषु श्राद्धवर्ज्यविप्राधिकारे—"कितवो भ्रूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः । ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायकः सर्वविक्रयी ॥ सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः । पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति । पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः ॥ अव्रतानामुपाध्यायः काण्डपृष्ठस्तथैव च । श्वभिश्च यः परिक्रामेद्यः शुना दष्ट एव च ॥ परिवित्तिस्तथा स्तेनो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः । कुशीलको देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ॥ ईदृशा ब्राह्मणा ज्ञेया अपांक्तेया युधिष्ठिर ॥ ६ ॥" तथा—'ऋणकर्ता च यो राजन् यश्च वार्धुषिको नरः ॥' काण्डपृष्ठः—'स्वशाखां त्यक्त्वा परशाखयोपनीतस्तदध्यायी च' क्षत्रियवैश्यवृत्तौ नारदस्तु—"तस्यामेव तु यो वृत्तौ ब्राह्मणो रमते रसात् । काण्डपृष्ठश्च्युतो मार्गात्सोऽपांक्तेयः प्रकीर्तितः ॥" इत्याह ॥

नेवाले, धन और विषयोंमें लगेहुए श्मश्रुसे हीन, जटाधारी, मुंड और निर्दयी और जिसकी स्त्री रजस्वला हो अपने लिये पाकमें तत्पर, शाप देनेवाले, नपुंसक, कुष्ठी, अत्यन्त लालनेत्रवाले, कुबडे, बौने, झूंठा दोष लगानेवाले, पुत्रहीन, असत्य साक्षी, द्वारपालक, अयाज्योंका याजक जिसने अपनी आत्मा देदी हो, परिवेत्ता (बडेके होते छोटा व्याह करले), याचक, चौरोंका हिंसक इतने ब्राह्मणोंको श्राद्धमें त्यागदे ॥ इसमें प्रमाण हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखा है, भारतमें श्राद्धमें वर्जित ब्राह्मणोंके अधिकारमें कहा है कि, कपटी, गर्भ हत्यारे, यक्ष्मरोगी, पशुओंके पालक, निरादरवाले, ग्रामका प्रेष्य, व्याज लेने और गानेवाले सब रसोंके बेचनेवाले, समुद्रका यात्रिक, राजाका सेवक, तैलिक, कूट करनेवाले, पिताके संग विवादी जिसके घरमें जार रहै, शापी, जिसे दोष लगाहो, चौर, शिल्पसे जीनेवाले, चर्मकार, सूची (दरजी) का काम करनेवाले, मित्रद्रोही, परस्त्रीगामी, यज्ञोपवीत रहितको पढानेवाले, काण्डपृष्ठ, कुत्तेकी परिक्रमा करनेवाले, कुत्तेके काटे हुए, परिवित्ति, चौर, बुरे चर्मवाले, गुरुस्त्रीगामी, किसान, द्रव्य लेकर देव पुजारी, नक्षत्रोंसे जीनेवाले, ब्राह्मण पंक्तिमें बैठनेके योग्य नहीं हैं, तैसेही वचन है कि, ऋण करनेवाला मनुष्य और हे राजन् ! व्याज लेनेवाला अयोग्य है 'अपनी शाखाको छोडकर दूसरेकी शाखासे जिसका यज्ञोपवीत हुआ हो वह वा अपनी छोडकर दूसरी शाखाको पढनेवाला काण्डपृष्ठ हैं क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्तिमें नारदने तो यह कथन किया है कि, जो ब्राह्मण प्रीतिसे क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्तिमें तत्पर हो मार्गभ्रष्ट, पंक्तिके

हारीतः—"शूद्रापुत्राः स्वयंदत्ता ये चैते क्रीतकाः सुताः। ते सर्वे मनुना प्रोक्ताः काण्डपृष्ठा न संशयः ॥" अन्येपि हेमाद्रौ मात्स्ये—" त्रिशंकून् बर्बरानान्ध्रान् चीनद्रविडकौङ्कणान् ॥ कर्णाटकांस्तथाभीरान् कालिङ्गांश्च विवर्जयेत् ॥" तत्रैव सौरपुराणे—" अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रान् गुर्जरांस्तथा । आभीरान् कौंकणांश्चैव द्राविडान् दाक्षिणायनान् ॥ आवन्त्यान् मागधांश्चैव ब्राह्मणांस्तु विवर्जयेत् ॥" चन्द्रिकायां यमः—" काणाः कुब्जाश्च षण्ढाश्च कृतघ्ना गुरुतल्पगाः । मानकूटास्तुलाकूटाः शिल्पिनो ग्रामयाजकाः ॥ राजभृत्यान्धबधिरमूकखल्वाटपङ्गवः । वणिजो मधुहर्तारो गरदा वनदाहकाः ॥ समयानां च भेत्तारः प्रदाने ये निवारकाः । प्रव्रज्योपनिवृत्ताश्च तथा प्रव्रजिताश्च ये ॥ यश्च प्रव्रजिताज्जातः प्रव्रज्यावसितश्च यः । अवकीर्णी च वीरघ्नो गुरुघ्नः पितृदूषकः ॥" श्राद्धकाशिकायां कात्यायनः—" द्विर्नग्नः कीलदुश्चर्मा शुक्लोऽतिकपिलस्तथा । छिन्नोष्ठश्छिन्नलिङ्गश्च नैव केतनमर्हति ॥" पित्रोर्वंशे त्रिपुरुषं विच्छिन्नवेदाग्निः ॥ हेमाद्रौ मरीचिः—"अविद्धकर्णः कृष्णश्च लम्बकर्णस्तथैव च । वर्जनीयाः प्रयत्नेन ब्राह्मणाः श्राद्धकर्मणि ॥" ब्राह्मे—" मूकश्च पूतिनासश्च छिन्नाङ्गश्चाधिकाङ्गुलिः । गलरोगी च गंडूमान् स्फुटिताङ्गश्च संज्वरः ॥ षण्ढतूवरमन्दाश्च श्राद्धेष्वेतान्विवर्जयेत् ॥"

अयोग्य हो उस ब्राह्मणको 'काण्डपृष्ठ' कहते हैं ॥ हारीतका वचन है कि, शूद्राके पुत्र स्वयंदत्त और मोल लिये पुत्र ये सब मनुने "काण्डपृष्ठ" कहे हैं इसमें संशय नहीं और भी हेमाद्रि और मत्स्यपुराणमें वर्णन किये हैं कि, त्रिशंकु, बर्बर, आंध्र, चीन, द्रविड, कोंकण, कर्णाटक, आभीर, कलिंग देशोंके ब्राह्मण श्राद्धमें वर्जितहैं, वहांही सौरपुराणका वाक्य है कि, अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र, गुर्जर, आभीर, कोंकण, द्राविड, दाक्षिणात्य, आवंत्य, मागध इन ब्राह्मणोंको भी वर्जदे, चन्द्रिकामें यमका वाक्य है कि, काने, कुबडे, नपुंसक, कृतघ्नी, गुरुतल्पगमनकर्ता, तोलमें (कपटी) शिल्पी, ग्रामयाजक, राजाके भृत्य, अन्धे, बहिरे, गूंगे, खल्वाट, लंगडे, पंगु, व्यापारी, मधुके चोर, विषके देनेवाले, वनदाह करनेवाले, मर्यादाके भेदक, और दानके निवारक संन्यासी होकर लौटनेवाले वृथा संन्यासी और संन्यासीके उत्पन्न संन्याससे पतित अवकीर्णी (वीर्यपात करनेवाले ब्रह्मचारी) शूरवीर, गुरुकी हत्यावाले; पिताके दूषक, ब्राह्मण श्राद्धमें त्यागदेने ॥ श्राद्धकाशिकामें कात्यायनका वाक्य है कि, पिताके वंशमें तीन पीढी तक वेद और अग्निहोत्रका प्रचार न हो वह द्विर्नग्न नपुंसक कुत्सित चर्मवाले जो शुक्ल और अत्यन्त कपिल हों जिनके होठ और लिंग कटे हों ऐसे ब्राह्मण स्थानमें बैठनेयोग्य नहीं, हेमाद्रिमें मरीचिका वचन है कि, जिसके कान न बिंधेहों काले लम्बकर्ण ब्राह्मण श्राद्धकर्ममें प्रयत्नसे वर्जदेने ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, मूक जिसके नाकमें दुर्गन्ध हो जिसका अंग कटाहो वा अधिक अंगुली हों जिसके गलेमें रोग हों वा गंडमालीहो जिसका अंग फटाहो वा ज्वर होवे नपुंसक

लम्बकर्णं चाह तत्रैव गोभिलः-" हनुमूलादधः कर्णौ लम्बौ तु परिकीर्तितौ । द्व्यङ्गुलौ त्र्यंगुलौ शस्ताविति शातातपोऽब्रवीत् ॥ " चन्द्रिकायां यमः-'द्व्यंगुलातीतकर्णस्य भुञ्जते पितरो न तु।' षण्ढश्चात्र चन्द्रिकोक्तः सप्तविधो ग्राह्यः॥ यथा-" षण्डको वातजः षण्ढः पण्डः क्लीबो नपुंसकः । कीलकश्चेति सप्तैवं क्लीबभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ " पराशरमाधवीये तु चतुर्दशविधः ॥ तेषां स्वरूपाणि तत्रैव ज्ञेयानि ॥ चन्द्रिकायां शातातपः-" अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्ये यजन्त्यल्पदक्षिणैः । तेषामन्नं न भोक्तव्यमपांक्तास्ते प्रकीर्तिताः ॥" एतच्च शक्तौ सत्याम् ॥ अपरार्के भारते-" अव्रती कितवः स्तेनः प्राणिविक्रयकोपि वा । पश्चाच्चेत्पीतवान् सोमं स निकेतनमर्हति ॥ " श्राद्धदीपकलिकायां यमः-' अपत्नीकश्च वर्ज्यः स्यात्सपत्नीकोप्यनग्निकः ' ॥ तत्रैवाश्वलायनः-" प्रतिमाविक्रयं यो वै करोति पतितस्तु सः । जीवनार्थं परास्थीनि धृत्वा तीर्थं प्रयाति यः ॥ मातापित्रोर्विना सोपि पतितः परिकीर्तितः ॥ " तत्रैव जातूकर्ण्यः-" यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वा वृषलीपतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम् ॥ पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् । सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु परिवर्जयेत् ॥२॥" बृहन्नारदीये-

---

तुम्बर, मन्द श्राद्धमें त्यागदे, वहांही गोभिलने लम्बकर्ण यह कहा है हनु (ठोडी) की जडसे नीचे कानवालेको लम्बकर्ण कहतेहैं, जिनके दो अंगुल अधिक कान हों उसके यहां पितर नहीं खाते, यह शातातपका कथन है ॥ चन्द्रिकामें यमने कहा है दो अंगुलसे अधिक कर्णवाले ब्राह्मणमें पितर नहीं खाते चंद्रिकामें षण्ढ सात ७ प्रकारका लेना, षण्डक, वातज, षण्ढ, पण्ड, क्लीब, नपुंसक, कीलक ये सात नपुंसकके भेद हैं, पराशरमाधवीयमें तो चौदह प्रकारके षण्ढ लिखे हैं उसका प्रकार वहांसे ही जानना, चंद्रिकामें शातातपका वाक्य है कि, अल्पदक्षिणासे जो अग्निष्टोम आदि यज्ञ कराते हैं उनका अन्न भोजन न करै, क्योंकि वे पंक्तिके अयोग्य कहे हैं, यहभी शक्ति हो तब जानना अपरार्कमें भारतका वाक्य है कि, जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो, कपटी और जो प्राणियोंको बेचै यदि ऐसे ब्राह्मणने पीछेसे सोम यज्ञ किया होय तो श्राद्धके योग्य है॥ श्राद्धदीपकलिकामें यमका कथन है कि, जिसके स्त्री न हो वह और जो सपत्नीक भी अग्निहोत्री न हो वह ये दोनों वर्जित हैं, वहां ही आश्वलायनका वाक्य है कि, जो मूर्तियोंको बेचै वह पतित है, और माता पिताको छोडकर दूसरोंके अस्थि लेकर तीर्थको जो जाय वहभी पतित है, वहां ही जातूकर्ण्यका वाक्य है कि, जहां मातुलकी कन्याका पति वा शूद्राका पति हो वह श्राद्ध और मांसरहित श्राद्ध पितरोंको प्राप्त नहीं होता. पिता, पुत्र, दो भाई अग्निहोत्रसे हीन गर्भवतीका पति, अपने गोत्र और प्रवरका जो हो इनको श्राद्धमें वर्जदे ॥ बृहन्ना-

" शङ्खं चक्रं मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ शंखचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं तथा । एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्द्विजन्मनः ॥ २ ॥" तेन ये तप्तमुद्रादिविधयस्ते शूद्रविषयाः इति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये–"शिवकेशवयोरङ्कान् शूलकचक्रादिकान् द्विजः । न धारयेत मतिमान् वैदिके वर्त्मनि स्थितः॥" इत्याश्वलायनोक्तेश्च नृत्यं चोदरार्थं निषिद्धमिति श्रीधरस्वामी ॥ अन्येपि निषिद्धा निबन्धेषु ज्ञेया इति दिक् ॥ अत्र विप्राणां ग्राह्यत्वोक्त्यैव तद्वर्ज्यानां निषेधे सिद्धे पुनर्वर्ज्यपरिगणनं निषिद्धवर्ज्यनिर्गुणप्राप्त्यर्थमिति विज्ञानेश्वरः ॥ कुष्ठिकाणादेरपवादो हेमाद्रौ वसिष्ठः–"अपि चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः । अदूष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः ॥" क्वचिद्विप्राणां जातिमात्रेण ग्राह्यत्वमुक्तम् ॥ चन्द्रिकायामाग्नेये–"यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् । तानेव भोजयेद्विप्रान्ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥ ब्राह्मणाः कृतसंस्थाना विप्रा ब्रह्मसमाः स्मृताः ॥ अमानुषा गयाविप्रा ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥ तेषु तुष्टेषु संतुष्टाः पितृभिः सह देवताः ॥" तत्रैव–"न विचार्यं कुलं शीलं विद्या च तप एव च । पूजितैस्तैस्तु सन्तुष्टा देवा सपितृगुह्यकाः ॥ " गयायां निर्गुणा अपि ते एव

रदीयका वचन है कि, जो ब्राह्मण मट्टीसे वा तपायेहुए लोहेसे शंख चक्र लेता है. वह ब्राह्मण सम्पूर्ण कर्मोंसे शूद्रके समान बाहिर करने योग्य है, शंखचक्रका अंक लगाना, और नृत्य आदिक यह शूद्रका धर्म है द्विजातिका कदाचित् नहीं, तिससे तप्तमुद्रा आदिकी जो विधि हैं वह शूद्र आदिके विषयमें हैं, यह पृथ्वीचन्द्रोदय आदिमें लिखा है, और आश्वलायनने भी कहा है कि बुद्धिमान् और वेदके मार्गमें टिका द्विज शूल और चक्र आदि शिव विष्णुके चिह्नोंको धारण न करै, यह श्रीधरस्वामीने लिखा है कि पेटके लिये नृत्यका निषेध है औरभी निषिद्ध ब्राह्मण ग्रन्थोंमें जानने यह दिक् मात्र कहा है। यहां ग्रहण करने योग्य ब्राह्मणोंके कहनेसे ही वर्जितोंका निषेध सिद्ध था पुनः वर्जितोंका गिनना इसलिये है कि, निषिद्ध और वर्जित निर्गुणी होते हैं, यह विज्ञानेश्वरने कहा है ॥ कुष्ठी और काने आदिका अपवाद हेमाद्रिमें वसिष्ठने कहा है कि, पंक्तिसे बाह्य करानेवाले शरीरके दूषणोंसे युक्त ब्राह्मण वेदके जाननेवाले होयँ तो यमऋषिने कहा है कि, दूषणके हीन और पंक्तिको पवित्र करनेवाले कहे हैं तो ब्राह्मणोंकी जातिमात्रसे ग्रहण करने योग्य कहा है, चन्द्रिकामें अग्निपुराणका वाक्य है कि, यदि किसी कालमें पुत्र गयाको जाय तो उन्हीं ब्राह्मणोंको जिमावे जो गयामें कल्पित हैं, ब्रह्माके बसाये वे ब्राह्मण ब्रह्माके तुल्य कहे हैं गयाके ब्राह्मण जो ब्रह्माने रचे हैं वे मनुष्य नहीं उनकी प्रसन्नतासे पितर और देवता प्रसन्न होते हैं वहांही लिखा है कि, उनके कुलशील विद्या तप नहीं विचारने इनकी पूजासे देवता पितर गुह्यक संतुष्ट होते हैं

भोज्या इति हेमाद्रौ ॥ अक्षय्यवटश्राद्ध एव तन्नियमो नान्यत्रेति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेपि पाद्मे—"तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन । अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥ " स्कान्देपि—'ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थे क्षेत्रनिवासिनः ॥' मनुः—"न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् । पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ " असंभवपरमेतदिति मेधातिथिः ॥ हेमाद्रौ व्यासः—"गायत्रीसारमात्रोपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः । नायंत्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ काणाः कूटाश्च कुब्जाश्च दरिद्रा व्याधितास्तथा । सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः ॥ २ ॥ " अथ विप्रनिमन्त्रणम् । चन्द्रिकायां वाराहे—"वस्त्रशौचादि कर्तव्यं श्वः कर्तास्मीति जानता । स्थानोपलेपनं कृत्वा ततो विप्रान्निमन्त्रयेत् ॥ दन्तकाष्ठं च विसृजेद्ब्रह्मचारी शुचिर्भवेत् ॥ " तत्रैव प्रचेताः—"दक्षिणं चरणं विप्रः सव्यं वै क्षत्रियस्तथा । पादावादाय वैश्यो द्वौ शूद्रः प्रणतिपूर्वकम् ॥ " बृहस्पतिः—"उपवीती ततो भूत्वा देवार्थं तु द्विजोत्तमान् । अपसव्येन पित्र्येऽथ स्वयं शिष्योथवा सुतः ॥ " प्रचेताः "सवर्ण

गयामें निर्गुणभी वेही जिमाने यह हेमाद्रि कहते हैं, त्रिस्थलीसेतुमें हमारे पितामहने तो यह कहा है कि अक्षय वटके श्राद्धमें ही उनका नियम है अन्यत्र नहीं ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका यह वाक्य है कि, तीर्थोंमें ब्राह्मणकी कभी भी परीक्षा न करै, मनुजीने अन्नके निमित्त आये उसको जिमाने योग्य कहा है स्कन्दपुराणमें भी लिखा है कि, क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंकी तीर्थके ऊपर परीक्षा कदाचित् न करै, मनुका वाक्य है कि, धर्मका ज्ञाता मनुष्य देवकर्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा न करै, जब पितृकर्म हो तब तो यत्नपूर्वक परीक्षा करै, मेधातिथि यह कहते हैं कि असम्भव (जब उत्तम न मिलें) में यह बात है हेमाद्रिमें व्यासका वाक्य है कि जिसके वशमें इन्द्रिय हों वह गायत्री मात्रके जाननेवाला भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है, और जिसके वशमें इन्द्रिय न हों वह सब खाने और सब बेचनेवाला वह चाहे चतुर्वेदी हो तोभी भला नहीं काणे, कपटी, कुबडे, दरिद्री, रोगी ये सब वेदके पारगामियोंकी पंक्तिमें नियुक्त करदेने ॥ अब ब्राह्मणके निमन्त्रणको कहते हैं, चन्द्रिकामें वाराहका वाक्य है कि, कलको श्राद्ध करूंगा यह जानता हुआ मनुष्य वस्त्रोंको धोवे, और स्थानको लीपकर ब्राह्मणको निमन्त्रण दे, और दतोनको त्यागदे ब्रह्मचारी होकर शुद्ध रहै वहांही प्रचेताका वचन है कि, दक्षिण चरणको ब्राह्मण और वाम चरणको क्षत्रिय और दोनों चरणोंको वैश्य ग्रहण करके निमंत्रण दे, और शूद्र नमस्कार करके निमंत्रण दे, बृहस्पतिका वचन है कि, सव्य होकर देवताओंके निमित्त और अपसव्य होकर पितरोंके निमित्त शिष्य अथवा पुत्र ब्राह्मणोंके लिये निमंत्रण दे, प्रचेताका कथन है कि, द्विजोंके निमंत्रणके निमित्त अपने वर्णके सज्जन मनुष्यको

प्रेषयेदाप्तं द्विजानां तु निमन्त्रणे ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे-"राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः। व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥ " चन्द्रिकायां यमः-"अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमन्त्रितम्। तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ॥ " तत्रैव पैठीनसिः-'सप्त पञ्च द्वौ वा श्रोत्रियान्निमन्त्रयेत् ॥ ' आश्वलायनसूत्रेपि-'एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन्वा वृद्धौ फलभूयस्त्वम् ॥' द्वाविति वृद्धिश्राद्धे ॥ गौतमः-'नवावरान् भोजयेदयुजो वा यथोत्साहम् ॥ ' याज्ञवल्क्यः-"द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा। मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥ " दीपकलिकायां पराशरः-"संपत्तावर्थपात्राणामेकैकस्य त्रयस्त्रयः। पित्रादेर्ब्राह्मणाः प्रोक्ताश्चत्वारो वैश्वदेविके ॥ " वृद्धयाज्ञवल्क्यः-"दशैकं पञ्च वा विप्रान् पार्वणे विनियोजयेत् ॥" अत्र वैश्वदेवे द्वौ चतुरो वोपवेश्य पित्रादीनामेकैकस्य स्थाने एकं त्रीन् पञ्च सप्त नव वोपवेशयेदिति निष्कृष्टोर्थः ॥ मनुः"-द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा। भोजयेत सुसमृद्धोपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम्। पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥२॥" पृथ्वीचन्द्रोदये शाता-

---

भेजे पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, जो राजकार्यमें नियुक्त हो वा बन्धनमें हो अथवा द्यूत आदि व्यसनोंमें हो उसका श्राद्ध ब्राह्मणसे करवावे ॥ चन्द्रिकामें यमका वाक्य है कि, शूद्रने निमंत्रण दिया होय तो ब्राह्मणका अन्न और ब्राह्मणने निमंत्रण दियाहोय तो शूद्रका अन्न खाना उचित नहीं, वहांही पैठीनसिका वाक्य है कि, सात पांच वा दो वेदपाठियोंको निमंत्रण दे, आश्वलायनसूत्रमें कथन है कि, एक १ पितरके निमित्त एक २ वा दो २ वा तीन २ ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, वृद्धिश्राद्धमें अधिक फलकी इच्छावाला दो २ को निमंत्रण दे, गौतमने लिखा है कि, न्यूनसे न्यून अथवा उत्साहके अनुसार विषम ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, देवताओंके दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख और पितरोंके दो ब्राह्मण उत्तराभिमुख स्थित हों इसी प्रकार मातामह आदिके हों अथवा विश्वेदेवा तंत्रसे (एकस्थानमें) हों, दीपकलिकामें पराशरने लिखा है कि, धन और सुपात्र ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति होय तो ब्रह्माने पिताआदिकोंमें एक २ के तीन २ और विश्वेदेवाओंके चार ब्राह्मण लिखे हैं ॥ वृद्ध याज्ञवल्क्यका वाक्य है कि, दश एक वा पांच ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नियुक्त करै, यहां विश्वेदेवाओंके दो वा चार ब्राह्मणोंको बैठाकर पिता आदि एक २ के स्थानमें एक तीन पांच सात वा नौ बैठावे यह सिद्धांत अर्थ है, मनुने कहा है कि, देव श्राद्धमें और पितर श्राद्धमें तीन अथवा दोनोंमें एक २ ब्राह्मणको महाधनी भी जिमावै, परन्तु विस्तार न करै, कारण कि, विस्तारमें उत्तम कर्म, देश, काल, पवित्रता, ब्राह्मणोंका मिलना इन पांचोंको नष्ट करता है तिससे विस्ता-

तपः-" द्वौ दैवेथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत् । पित्र्ये तूदङ्मुखांस्त्रींश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान् ॥ " अत्यशक्तौ हेमाद्रौ देवलः-" एकेनापि हि विप्रेण षट्पिण्डं श्राद्धमाचरेत् । षडर्घ्यान् दापयेत्तत्र षड्भ्यो दद्यात्तथा हविः ॥ " गोभिलः-" यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छन्दोगं तत्र भोजयेत् । ऋचो यजूंषि सामानि त्रितयं तत्र विद्यते ॥" अत्र वैश्वदेवे विशेषमाह तत्रैव वसिष्ठः-" यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् । अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च ॥ देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं समाचरेत् । प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥ २ ॥" एतच्च सपिण्डीकरणवर्ज्यं ज्ञेयम् ॥ ' न त्वेवैकं सर्वेषां काममनाद्ये ' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ अस्यार्थ उक्तो नारायणवृत्तौ-' आद्यं सपिण्डीकरणं तद्वर्ज्येषु श्राद्धेषु कामं त्रयाणामेकं भोजयेत् ॥ सपिण्डीकरणे तु नियतं त्रिभिर्भवितव्यमिति ॥ अनाद्ये पार्वणवर्जिते वा । अभोजने आमहेमश्राद्धादौ वा । अन्नाभावे चेति व्याख्यान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् ॥' कारिकापि-' दैवे पित्र्येऽथवैकैकं सपिण्डीकरणं विना ' इति ॥ अत्रैकविप्रे साग्नेर्विशेषमाह पृथ्वीचंद्रोदये प्रचेताः-" एकस्मिन् ब्राह्मणे दैवे साग्नेरग्निर्भवेत्सदा । अनग्नेः कुशमुष्टिः स्याच्छ्राद्धकर्माणि सर्वदा ॥ " सर्वथा

रकी इच्छा न करै ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें शातातपने लिखा है कि, देवश्राद्धमें अथर्ववेदी दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख और पितृश्राद्धमें बह्वृच, अध्वर्यु, सामवेदी, तीन ब्राह्मण उत्तरमुख बैठावे, अतीव अशक्त होय तो हेमाद्रिमें देवलने यह लिखा है कि, एक भी ब्राह्मणसे छः अर्घ्य और छः पितरोंको हवि दे, गोभिलने कहा है कि, जो श्राद्धमें एक ब्राह्मण जिमावे तो ऐसेको जिमावे जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये तीनों हों विश्वेदेवाओंके श्राद्धमें विशेष है वहांही वसिष्टने लिखा है कि, श्राद्धमें एक ब्राह्मणको जिमावे तो दैव श्राद्ध वहां कैसे हो, पात्रमें सम्पूर्ण श्राद्धके अन्नको निकालकर और उसे देवमंदिरमें रखकर फिर श्राद्ध करै, उस अन्नको अग्निमें डालदे अथवा ब्रह्मचारीको देदे यहभी सपिंडीको छोडकर जानना, कारण कि, आश्वलायनने यह लिखा है कि, सपिंडीसे भिन्न सम्पूर्ण श्राद्धोंमें चाहै, तीनके स्थानमें एक ब्राह्मणको जिमा दे ॥ नारायणवृत्तिमें लिखा है कि, सपिंडोंमें तो तीन ब्राह्मण अवश्य होने चाहिये कोई अनाद्येका पार्वण भिन्न और आम और सुवर्णश्राद्ध वा अन्नके अभावमें यह अर्थ करके पार्वण और आम हेम श्राद्धमें और अन्नके अभावमें चाहे एक २ जिमादे अन्यत्र तो तीनही जिमावे यह कहते हैं यहभी वहांही जानना कारिकामें भी लिखा है कि, सपिंडीके विना देव और पितृश्राद्धमें एक २ ब्राह्मणको भोजन करावे अग्निहोत्रीको एक ब्राह्मणके श्राद्धमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रचेताने लिखा है कि, एक ब्राह्मण होय तो अग्निहोत्रीको देवश्राद्धमें सदैव अग्नि होती है और जो अग्निहोत्री न होय तो उसके कुशाओंकी मुष्टि श्राद्धकर्ममें होती है सब प्रकार ब्राह्मण न मिलैं तो सावधान होकर आस-

विप्रालाभे तत्रैव हेमाद्रौ च सत्यव्रतः–" निधाय दर्भनिचयमासनेषु समाहितः । प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥" अत्र 'प्राप्त्यभावात्सत्रे इव ऋत्विक्कार्ये यजमानविधौ न दक्षिणे ' इति केचित् । तन्न । अदृष्टार्थायाः दक्षिणायाः प्राप्तेः । ' सर्वं तन्त्रिजदे तुभ्यं यच्च श्राद्धमदक्षिणम् ' इति पाद्मात् ॥ " विदध्याद्धौत्रम· न्यश्चेद्दक्षिणार्धहरो भवेत् । स्वयं चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत्॥" इति छन्दो· गपरिशिष्टाच्च ॥ एवं यतिश्राद्धेपि कात्यायनः–" यज्ञवस्तुनि मुष्टौ च स्तम्भे दर्भ· बटौ तथा । दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥ " मातृश्राद्धे तु विप्रा· लाभे सुवासिन्योपि भोजनीया इत्याहापरार्के वृद्धवसिष्ठः–" मातृश्राद्धे तु विप्रा· णामलाभे पूजयेदपि । पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोष्टौ कुलोद्भवाः ॥ " इति॥ अष्टाविति वृद्धिश्राद्धविषयम् ॥ पाद्मे उत्तरखण्डे–" सकृदभ्यर्चितं लिङ्गं शाल· ग्रामशिलां च यः । पीठे संस्थापयित्वा तु श्राद्धं च कुरुते नरः ॥ पितरस्तस्य तिष्ठंति कल्पकोटिशतं दिवि ॥ " चन्द्रिकायां मात्स्ये–" पठन्निमन्त्र्य नियमान् श्रावयेत्पैतृकान् बुधः । अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ॥ भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥ " यत्तु मनुः–" सर्वायासविनिर्मुक्तैः काम·

नोंपर कुशाओंके समूहको रखकर आवाहन और विसर्जनसहित संपूर्ण श्राद्धको करै यह हेमा· द्रिमें कहा है ॥ यहां कोई यह कहते हैं कि, और न होय तो जहां ऋत्विक्ही यजमानकी विधिको करै, और दक्षिणा न दे सो ठीक नहीं कारण कि, अदृष्टपुण्यके निमित्त दक्षिणाकी प्राप्ति है, पद्मपुराणमें लिखा है कि, तन्त्रसे किया संपूर्ण कर्म और दक्षिणाहीन श्राद्ध दूषित है, यदि होमके कर्मको और कोई करै, तो आधी दक्षिणाके योग्य होता है यदि दोनों कर्म स्वयं करै, तो विरक्त ऋत्विक् किसी दूसरेको दक्षिणा देदे यह छन्दोग परिशिष्टमें भी लिखा है, यति· श्राद्धमें भी ऐसी ही करै, यज्ञकी वस्तु कुशाकी मुष्टि और स्तम्भ (गुच्छे) और कुशाका बटू विष्टर और आस्तरण (विछौना) इनमें कुशाओंकी संख्या नहीं कही. ऐसा कात्यायनने कहा है माताके श्राद्धमें ब्राह्मण न मिलै तो सुहागिन स्त्रियोंकोही जिमावै यह अपरार्कमें वृद्ध· वसिष्ठका वचन है कि, माताके श्राद्धमें ब्राह्मणोंके न मिलनेपर पति और पुत्रसे युक्त सुन्दर और कुलीन आठ स्त्रियोंको जिमावै, यह आठका कहना वृद्धि श्राद्धके विषयमें है ॥ पद्मपुरा· णके उत्तरकाण्डमें लिखा है कि, जो मनुष्य शंकरलिंग और शालिग्राम शिलाकी पूजा करके पट्टेपर स्थापन करके श्राद्ध करता है उसके पितर कल्पकोटिके सैकडों वर्षतक स्वर्गमें स्थित रहते है चन्द्रिकामें मत्स्यपुराणका लेख है कि, निमन्त्रण देनेमें पितृश्राद्धके नियमोंको पाठ कर बुद्धिमान् मनुष्य निमंत्रितोंको श्रवण कराके हे ब्राह्मणो ! तुम रोषसे रहित शौचमें तत्पर निर· न्तर ब्रह्मचारी रहना और मैं श्राद्धमें तत्पर रहूंगा, यह कहै जो मनुने यह लिखा है कि,

क्रोधविवर्जितैः । भवितव्यं भवद्भिर्नः श्वोभूते श्राद्धकर्मणि ॥ " इति ॥ तत्पूर्वेद्युर्निमन्त्रणपरं न तदहः ॥ तत्रैव देवलः-" असंभवे परेद्युर्वा ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेत् । अज्ञातीनसमानार्षानयुग्मानात्मशक्तितः ॥ " कात्यायनः- " अनिन्द्येनामन्त्रितो नापक्रामेत्केतनं गृह्य शक्तः ॥ " अथ श्राद्धकर्तृभोक्तृनियमाः । तत्र निमन्त्रितविप्रत्यागेऽपरार्के यमः-" केतनं कारयित्वा तु योतिपातयति द्विजम् । ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयोनौ च जायते ॥ आमन्त्र्य ब्राह्मणं यस्तु यथान्यायं न पूजयेत् । अतिकृच्छ्रासु घोरासु तिर्यग्योनिषु जायते ॥ २ ॥" प्रमादात्त्यागे तु हारीतः-"प्रमादाद्विस्मृतं ज्ञात्वा प्रसाद्येनं प्रयत्नतः । तर्पयित्वा यथान्यायं सर्वं तत्फलमश्नुते ॥" प्रमादाभावे तु नारायणः-"एकस्मिन्नेनसि प्राप्ते ब्राह्मणो नियतः शुचिः । यतिचान्द्रायणं कृत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥" यमः-"आमन्त्रितस्तु यो विप्रो भोक्तुमन्यत्र गच्छति । नरकाणां शतं गत्वा चांडालेष्वभिजायते ॥ " तत्रैव देवलः-"पूर्वं निमन्त्रितोऽन्येन कुर्यादन्यप्रतिग्रहम् । भुक्ताहारोथवा भुङ्क्ते सुकृतं तस्य नश्यति ॥" यदि

करके श्राद्ध कर्ममें सब प्रकारके परिश्रमसे और काम क्रोधसे रहित आप रहें और वह वचन पहिले दिन निमन्त्रणके विषयमें है उसी दिनके विषयमें नहीं, वहांही देवलने लिखा है कि, पहले दिन ब्राह्मण न मिलें तो दूसरे दिन उन ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, जो अज्ञात हों और जो सगोत्री न हों और सम न हों, अपनी शक्तिसे निमंत्रण दे, कात्यायनने लिखा है कि, अपने घरकी शक्तिसे निन्दारहितको निमंत्रण दे ॥ अब श्राद्धके कर्ता और भोक्ताओंके नियमोंको वर्णन करते हैं वहां निमंत्रित ब्राह्मणका त्याग करें तो अपरार्कमें यमका कथन है कि, जो निमंत्रण देकर ब्राह्मणको न जिमावै वह ब्रह्महत्या और शूद्रयोनिमें प्राप्त होता है, जो ब्राह्मणको निमंत्रण देकर यथायोग्य पूजन न करै वह अत्यन्त दुष्ट और घोर तिर्यक् योनिमें प्राप्त होता है प्रमादसे ब्राह्मणको त्याग दे उसपर हारीतने यह लिखा है कि प्रमादसे ब्राह्मणको भूल गया होय तो यत्नसे ब्राह्मणको प्रसन्न करके और यथायोग्य तृप्त करै, तो उसके संपूर्ण फलको प्राप्त होता है प्रमादके अभावमें तो नारायणका यह वचन है कि, यदि प्रमादसे ब्राह्मणको भूलनेका अपराध हो जाय तो नियमसे शुद्ध होकर यतिचान्द्रायण करनेसे उस पापसे छूटता है ॥ यमने कहा है कि जो ब्राह्मण निमंत्रण स्वीकार करके अन्यत्र भोजन करनेको जाता है वह सौ नरकोंमें जाकर चाण्डाल योनिमें उत्पन्न होता है वहांही देवलने लिखा है कि, पहिले अन्यके निमंत्रणको लेकर जो ब्राह्मण दूसरेका प्रतिग्रह ग्रहण करता है वा भोजन करके भोजन करता है उसका पुण्य नष्ट होता है, जो ब्राह्मण भोजन करनेमें देर करै

विप्रो विलम्बते तदोक्तमादित्यपुराणे–"आमन्त्रितश्चिरं नैवं कुर्याद्विप्रः कदाचन। देवतानां पितॄणां च दातुरन्नस्य चैव हि ॥ चिरकारी भवेद्द्रोही पच्यते नरकाग्निना॥" पृथ्वीचन्द्रोदये यमः–"निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः। भवंति पितरस्तस्य तं मासं पांसुभोजनाः॥ आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे हिंसां वै कुरुते द्विजः। पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति रुधिराशनाः ॥ आमन्त्रितस्तु यो विप्रो भारमुद्वहते द्विजः। पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति स्वेदभोजनाः॥ निमन्त्रितस्तु यो विप्रः प्रकुर्यात्कलहं यदि। पितरस्तस्य तं मासं भवन्ति मलभोजनाः ॥ ४ ॥" शंखः–"निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धं मैथुनं सेवते द्विजः। श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा॥" मैथुनं ऋतावपि निषिद्धम्। "ऋतुकाले नियुक्तो वा नैव गच्छेत् स्त्रियं क्वचित्। तत्र गच्छन्नवाप्नोति ह्यनिष्टानि फलानि तु ॥" इति तत्र माधवीये च वृद्धमनूक्तेः। "श्राद्धं करिष्यन् कृत्वा वा भुक्त्वा वापि निमन्त्रितः। उपोष्य च तथा भुक्त्वा[१] नोपेयाच्च ऋतावपि ॥ भोक्ष्यन् करिष्यन् श्वः श्राद्धं पूर्वरात्रौ प्रयत्नतः। व्यवायं भोजनं चापि ऋतावपि विवर्जयेत् ॥ २ ॥" इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेश्च॥ विज्ञानेश्वरेण तु–"श्राद्धे ऋतौ गच्छतोपि न दोषः"

तो आदित्यपुराणमें कहा है कि, निमंत्रित ब्राह्मण किसी प्रकार भी बुलानेपर देर न करे, जो करता है वह देवता पितर और दाता तथा दूसरोंका द्रोही होता है, और नरकमें जाता है पृथ्वीचंद्रोदयमें यमका कथन है कि, जो निमंत्रित दुष्टमति ब्राह्मण कहीं मार्गमें चला जाता है उसके पितर उस मासमें पांसु (रेत-धूरि) भोजन करते हैं, जो निमंत्रित ब्राह्मण कदाचित् क्लेश करे, तो उसके पितर उस मासमें मलको भोजन करते हैं जो निमंत्रित ब्राह्मण भार (बोझ) ले जाता है उसके पितर उस मासमें स्वेदका भोजन करते हैं, जो निमंत्रित ब्राह्मण कलह करता है उसके पितर उस महीनेमें मैल खाते हैं॥ शंखने लिखा है कि जो श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण मैथुन करता है वह श्राद्ध करके वा खाकर बडे पापसे युक्त होता है, ऋतुमें भी मैथुन निषिद्ध है निमंत्रित ब्राह्मण ऋतुकालमें भी स्त्रीका संग किसी प्रकार न करे ऋतुमें गमन करनेसे अनिष्ट फलोंको प्राप्त होता है, यह वहांही माधवीयमें वृद्धमनुने कहा है, वहांही आश्वलायनका यह वाक्य है, कि श्राद्धका करनेवाला और भोजन करनेवाला निमंत्रित ब्राह्मण व्रत और उपवासका भोजन करके ऋतुमें भी गमन न करे और कलको श्राद्ध करने और भोजन करनेवाले पूर्वरात्रिमें भोजनको और ऋतुमें भी मैथुनको त्याग दें, विज्ञानेश्वरने तो यह लिखा है कि श्राद्धमें ऋतुगमन करनेवालेको दोष नहीं, वह तो तब है जब कोई दूसरी गति

१ न सीमान्तमतिक्रामेच्छ्राद्धार्थं वै निमंत्रितः। पर्यटन्सीममध्ये तु न कदाचित्प्रदुष्यति ॥ अर्थात् ब्राह्मण श्राद्धमें निमंत्रित हो वह गामकी सीमा उल्लंघन न करे सीमामें पर्यटन करता दूषित नहीं होता, यह ब्रह्माण्डपुराणका लेख है॥

इत्युक्तं तत्त्वगतिकगतित्वे ज्ञेयम् ॥ बृहस्पतिः—" द्विनिशं ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृद्ब्राह्मणैः सह । अन्यथा वर्तमानौ तु स्यातां निरयगामिनौ ॥ पुनर्भोजनमध्वानं भारमायासमैथुनम् । श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥ स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वापं तथैव च ॥ ३ ॥" यत्तु श्राद्धकारिकायां पुराणसमुच्चये—"कृत्वा तु रुधिरस्रावं न विद्वान् श्राद्धमाचरेत् । एकं द्वे त्रीणि वा विद्वान् दिनानि परिवर्जयेत्॥ " इति ॥ तन्निर्मूलम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—"पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् । संध्यां प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभोक्ताऽष्ट वर्जयेत् ॥" इति ॥ संध्यानिषेधः प्रायश्चित्तात् पूर्वं ज्ञेयः॥ यथाहोशनाः—"दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग्द्विजः । ततः संध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि ॥" गौडास्तु—"सायंसंध्यां परान्नं च छेदनं च वनस्पतेः । अमावास्यां न कुर्वीत रात्रिभोजनमेव च ॥ द्यूतं च कलहं चैव सायंसन्ध्यां दिवाशयम्; ॥ श्राद्धकर्ता च भोक्ता च पुनर्भुक्तिं च वर्जयेत् ॥ २ ॥ " इति कामधेनौ वराहोक्तेः ॥ श्राद्धकर्तुरपि सायंसंध्यानिषेधमाहुः ॥ शिष्टास्तु निर्मूलत्वमाहुः ॥ होमनिषेधस्तु स्वविषयः ॥ " सूतके च प्रवासे च ह्यशक्तौ श्राद्धभोजने । एवमादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ॥" इति छंदोगपरिशिष्टात् ॥ तत्रैवादित्यपुराणे—'निमन्त्रितस्तु न श्राद्धे कुर्याद्भार्यादिताडनम् ॥ ' चन्द्रिकायां प्रचेताः—"श्राद्धभुक् प्रातरु-

---

न हो, बृहस्पतिने लिखा है कि, श्राद्धका करनेवाला ब्राह्मणोंसहित दो दिन ब्रह्मचारी रहै न रहै तो वे दोनों नरकमें जाते हैं श्राद्धका कर्ता और भोजन कर्ता (भोक्ता) पुनः भोजन, मार्गगमन, भार, परिश्रम, मैथुन, वेदपाठ, कलह, दिनमें शयन इन सबको त्याग दे ॥ जो श्राद्धकारिकामें पुराणसमुच्चयका वचन है कि, रुधिरका स्राव (फस्त) कराकर बुद्धिमान मनुष्य श्राद्ध न करे, एक, दो, तीन दिन बुद्धिमान् मनुष्य त्यागदे सो वचन निर्मूल है पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमका लेख है कि, पुनः भोजन, मार्ग, भार, पढना, मैथुन, संध्या, प्रतिग्रह, होम इन आठोंको श्राद्धका खानेवाला त्यागदे, उनमें संध्याका निषेध प्रायश्चित्तसे पहले जानना, सोई उशनाने कथन किया है कि श्राद्धका भोक्ता ब्राह्मण, गायत्री पढकर दशवार जल पीवे, फिर संध्या करके जप होम करै ॥ गौडोंने तो यह कहा है कि, सायंकालकी सन्ध्या दूसरेका अन्न, वनस्पतिका छेदन और रात्रिको भोजन ये सब अमावस्याको न करै, और कामधेनुमें वराहमें यह कहा है कि, जुआ कलह सायंसन्ध्या दिनमें सोना फिर भोजन इनको श्राद्धका कर्ता और भोक्ता त्यागै, कर्ताकोभी सायंसंध्याका निषेध कहते हैं, होमका निषेध तो अपने निमित्त है, कारण कि, छन्दोग परिशिष्टमें यह लिखा है कि, सूतक, परदेश, अशक्ति, श्राद्धभोजन इत्यादि निमित्तोंमें न होम करै, न करावै वहांही आदित्यपुराणका वाक्य है कि, श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण स्त्रीको ताडना न दे, चन्द्रिकामें

त्थाय प्रकुर्याद्दन्तधावनम् ॥ श्राद्धकर्ता न कुर्वीत दन्तानां धावनं बुधः ॥ " हेमाद्रौ जाबालिः—"दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यङ्गमभोजनम् । रत्यौषधपरान्नं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत् ॥ " इति ॥ विष्णुरहस्ये—"श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् । गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् । दानप्रतिग्रहौ होमं श्राद्धभुक्त्वष्ट वर्जयेत् ॥ २ ॥ " सोमोत्पत्तौ—"वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम् । घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ " एतद्विहितेध्मातिरेकेण—"वनस्पतिगते सोमे मन्थानं यस्तु कारयेत् । गावस्तस्य प्रणश्यन्ति चिरकालमुपस्थिताः ॥" वनस्पतिगतस्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः—"त्रिमुहूर्तं वसेदर्के त्रिमुहूर्तं वसेज्जले ॥ त्रिमुहूर्तं वसेद्गोषु त्रिमुहूर्तं वनस्पतौ ॥" कलिकायां वृद्धमनुः—"निमन्त्र्य विप्रांस्तदहर्वर्जयेन्मैथुनं क्षुरम् । प्रमत्ततां च स्वाध्यायं क्रोधाशौचे तथानृतम् ॥ " केचिन्निमन्त्रणात् पूर्वं शुद्ध्यर्थं पूर्वेह्नि क्षौरं कुर्वन्ति तत्र मूलं मृग्यम् ॥ मरीचिः—"षष्ठ्यां पर्वसु पक्षादौ रिक्तभद्रातिथिष्वपि । पाते श्राद्धे व्रताहे च क्षौरं वर्ज्यं निशासु च ॥ ". यदा कर्तुरशक्त्या तत्पुत्रशिष्यादिः श्राद्धं करोति तदा कर्त्रा प्रतिनिधिना च प्रागुक्त-

---

प्रचेताका वाक्य है कि, श्राद्धका भोक्ता प्रातःकाल उठकर दतौन करै, और श्राद्धका करनेवाला न करै, हेमाद्रिमें जाबालिका लेख है कि, दतौन, ताम्बूल, तैल मलना, व्रत, मैथुन, औषधी, पराया अन्न इन सातको श्राद्ध करनेवाला त्यागदे ॥ विष्णुरहस्यमें कहा है कि, श्राद्ध और व्रतके दिन दँतोन करके सौ गायत्री पढकर दँतोन करनेसे पवित्र होता है, पुनः भोजन, मार्ग, सवारी, परिश्रम, मैथुन , दान, प्रतिग्रह, होम इन आठको श्राद्धका भोक्ता त्यागदे, सोमकी उत्पत्तिमें यह कहा है कि, जब सोम वनस्पतिमें आवे उस समय जो वनस्पतिकी हिंसा करता है, वह घोर गर्भहत्याके पापको प्राप्त होता है, यहभी शास्त्रसे विहित इध्मनआदिसे भिन्नमें समझना, वनस्पतिमें जब चन्द्रमा हो तब जो बैलोंको जोतताहै उसके पितर १९ वर्षतक भोजन नहीं करते वनस्पतिमें जब चन्द्रमा हो उस समय जो दूध मथता है चिरकालसे विद्यमानभी उसकी गौ नष्ट होती है ॥ वनस्पतिका स्वरूप पृथ्वीचन्द्रोदयमें व्यासने यह कहा है कि, सोम तीन मुहूर्त जलमें तीन मुहूर्त गौओंमें तीन मुहूर्त वनस्पतिमें निवास करता है, कालिकामें वृद्धमनुका वाक्य है कि ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर उस दिन मैथुन क्षौर प्रमाद वेदपाठ क्रोध आशौच और झूठको त्यागदे, कोई तो निमन्त्रणसे पहिले शुद्धिके निमित्त. पहले दिन क्षौर (हजामत) करते हैं, और कराते हैं उसमें प्रमाण ढूँढनेयोग्य है अर्थात् नहीं है ॥ मरीचिने लिखा है कि, षष्ठी, पर्व, प्रतिपदा, रिक्ता, भद्रा, व्यतीपात, श्राद्ध और व्रतके दिन, और रात्रिमें क्षौरको न करावे, जब कर्ताकी अशक्तिसे उसके पुत्र और शिष्य

नियमाः कार्याः ॥ " न शक्नोति स्वयं कर्तुं यदा ह्यनवकाशतः । श्राद्धं शिष्येण पुत्रेण तदान्येनापि कारयेत् ॥ नियमानाचरेत्सोपि नियतोश्च वसुंधरे । यजमानोपि तान्सर्वानाचरेत्सुसमाहितः ॥ २ ॥ " इति हेमाद्रौ वाराहोक्तेः ॥ स्त्रियस्तु पाद्मे–"मुक्तकच्छा तु या नारी मुक्तकेशी तथैव च । हसते वदते चैव निराशाः पितरो गताः॥" आश्वलायनः–" श्राद्धेहि भोजयेद्दास्तौ न बालानपि यत्नतः ॥ प्राक्पिण्डदानाद्भन्यार्थैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहम् ॥" वास्तौ–गृहे ॥ अथ श्राद्धवस्तूनि । तत्रादौ कुशाः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये दक्षः–'समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः परिकीर्तितः ॥ ' अष्टधा भक्तदिने द्वितीयो भाग इत्यर्थः ॥ तत्रैव यमः–"समूलस्तु भवेद्दर्भः पितॄणां श्राद्धकर्मणि । मूलेन लोकान् जयति शक्रस्य सुमहात्मनः ॥ " व्यासः–"तर्पणादीनि कार्याणि पितॄणां यानि कानिचित् । तानि स्युर्द्विगुणैर्दर्भैः सप्तपत्रैर्विशेषतः ॥ " शालंकायनः–"सपिण्डीकरणं यावदृजुदर्भैः पितृक्रिया । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ॥ " शङ्खः–" अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च । प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र

आदि श्राद्ध करें तब कर्ता और उसका प्रतिनिधि दोनों पूर्वमें कहे नियमोंको करें, कारण कि, हेमाद्रिमें वराहपुराणका वाक्य है कि, जब अनवकाशसे स्वयं न करसके तब पुत्र शिष्य वा दूसरेसे श्राद्धको करावे हे पृथ्वी ! वहभी और यजमानभी उन सब नियमोंको सावधानीसे करें, स्त्रियोंके निमित्त तो पद्मपुराणमें यह लिखा है कि, जो स्त्री केश और नीवीको खोलकर हँसती वा बोलती है उसके पितर निराश जाते है, आश्वलायनमें लिखाहै कि, श्राद्धके दिन अपने घरमें बालकोंकोभी यत्नसे भोजन न दे, और पिंडदानसे पहिले अपनी स्त्रीको भी वस्त्रभूषणसे सज्जित न करे ॥ अब श्राद्धकी वस्तुओंका वर्णन करते हैं. उनमें प्रथम कुशा कहते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें दक्षका वाक्य है कि, समिधा फूल और कुशा आदिके ग्रहण करनेका समय दिनके आठ भागोंमेंसे दूसरा भाग कहा है वहांही यमने कहा है कि, पितरोंके श्राद्धकर्ममें मूलसहित कुशा होती है कारण कि, मूलसेही महात्मा इन्द्रके लोकको जीतता है, व्यासजीका वाक्य है कि, तर्पण आदि जो कुछ पितरोंके कर्म हैं वे द्विगुण और सातपत्तेकी कुशाओंसे होते हैं, शालङ्कायनका कथन है कि, सपिंडीसे पहिले पितरोंका कर्म ऋजु (सीधी एक एक) कुशाओंसे होता है और सपिंडीसे पीछे विधिपूर्वक द्विगुणी कुशाओंसे होता है ॥ शंखका वाक्य है कि, जिसके भीतर गर्भ न हो और अग्र (मुख्य) हो

१ तथा च–सप्तपत्रा शुभा दर्भास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । अप्रसूताः स्मृता दर्भाः प्रसूतास्तु कुशाः स्मृताः । समूलाः कुतपाः प्रोक्ताश्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः । अर्थात्–दर्भ और कुशमें भेद कौशिक कहते हैं सात पत्रवाले शुभदर्भ कहाते हैं जो तिलक्षेत्रमें उत्पन्न होते हैं वे अप्रसूत दर्भ, और प्रसूत कुश कहाते हैं समूल कुतप, और अग्रभागसे छिन्न तृण कहाते हैं ॥

कुत्रचित् ॥ " हारीतः-" पवित्रं ब्राह्मणस्यैव चतुर्भिर्दर्भपिञ्जुलैः । एकैकं न्यून-मुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥ " स्मृत्यर्थसारे-' सर्वेषां वा भवेद्वाभ्यां पवित्रं ग्रन्थितं नवम् ॥ ' रत्नावल्याम्-' द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद्बुधः ॥ ' हेमाद्रौ स्कान्दे-" अनामिकाधृता दर्भा ह्येकानामिकयापि वा । द्वाभ्यामनामिकाभ्यां तु धार्ये दर्भपवित्रके ॥ पवित्राभावे तु तत्रैव सुमन्तुः-' समूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे करे । सव्ये चैव तथा त्रीन्वै बिभृयात्सर्वकर्मसु ॥ " वौधायनः-'हस्तयोरुभयोर्द्वौ द्वावासनेपि तथैव च ॥' दर्भग्रहणे मन्त्रमाह शङ्खः-"विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज । नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥" स्मृत्यर्थसारे-'हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्त्वा समुद्धरेत् ॥' भारद्वाजः-"प्रेतक्रियार्थं पित्रर्थमभिचारार्थमेव च । दक्षिणाभिमुखश्छिन्द्यात्प्राचीनावीतिको द्विजः ॥" कुशाभावेऽपरार्के सुमन्तुः-'कुशः काशः शरो गुन्द्रो यवा दूर्वाऽथ वल्वजाः । गोकेशमुञ्जकुन्दाश्च पूर्वाभावे परः परः ॥ " काशादौ विशेषमाह शङ्खः-"काशहस्तस्तु नाचामेत्कदाचिद्विधिशङ्कया ॥ प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये यमः-"मासि मास्युद्धृता दर्भा मासि मास्येव

ऐसी दोदलकी प्रादेश विलस्तमात्र कुशा सब कर्मोंमें पवित्र होती है, हारीतका कथन है कि ब्राह्मणकी पवित्री चार २ कुशाओंकी और अन्य वर्णोंकी क्रमसे एक २ कम कुशाओंकी होती है स्मृत्यर्थसारमें विकल्प लिखा है कि, सब वर्णोंकी पवित्री नई और गाँठ दिहुई दो कुशाओंकी होती हैं, रत्नावलीमें कहा है कि, अंगुलियोंके दो पर्वोंके बीचमें बुद्धिमान् पवित्रीको धारण करै, हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, अनामिका अनेक कुशा वा एक कुशाको धारण करै, वा दोनों अनामिकाओंमें दो पवित्रा धारण करै, पवित्रीके अभावमें तो वहां ही सुमन्तुका लेख है कि, जड और अग्रभाग सहित और गर्भ सहित दो कुशा दहिने हाथमें और तीन कुशा बांये हाथमें सदैव सब कर्मोंमें धारण करै ॥ वौधायनका वचन है कि, दोनों हाथोंमें और आसनमें दो २ कुशा धारण करै, कुशा ग्रहण करनेका मंत्र शंखने यह कहा है कि, परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्माके संग तू उत्पन्न हुई है हमारे सब पापोंको दूर करके कल्याण कर, स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि, हुं फट्कार मंत्रसे एकवार छेदन करके उखाडे, भरद्वाजका वाक्य है कि, प्रेतक्रिया, पितर और मारनेके लिये दक्षिणामिमुख और प्राचीनावीति होकर कुशाओंको उखाडे कुशा न मिलैं तो अपरार्कमें सुमन्तुका कथन है कि, कुश, काश, शरकण्डे, यव, दूर्वा, वेल, गौके केश, मुञ्ज, कुंद इनमें पहिले २ के अभावमें परला २ लेना, काश आदिमें विशेष शंखने लिखा है कि, काश और दूर्वाको हाथमें लेकर कदाचित् विधिकी शंकासे आचमन न करे, और करै तो प्रायश्चित्तके योग्य होता है ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमका वाक्य

चोदिताः ॥' षट्त्रिंशन्मते-'मासेन स्यादमावास्या दर्भो ग्राह्यो नवः स्मृतः ॥ गृह्यपरिशिष्टे-"ये च पिण्डाश्रिता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् । ह्यमेध्याशुचि-लिप्ता ये तेषां त्यागो विधीयते ॥" लघुहारीतः-'पथि दर्भाश्चितौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु । स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत् ॥ ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे । हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥ २ ॥" हेमाद्रौ-"अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च ॥ हेमात्मकपवित्रस्य ह्येकां नार्हन्ति वै कलाम् ॥" श्राद्धे हविर्निर्णयः । अथ हविः ॥ हेमाद्रौ प्रचेताः-" कृष्ण-माषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाःस्युर्यवशालयः । महायवा व्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः ॥ कृष्णाः श्वेताश्च लोहाश्च ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि ॥" महायवा-वेणुबीजम् । मधू-लिका यावनाला इति हेमाद्रिः कल्पतरुश्च ॥ भारते-" वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षय्यं मनुरब्रवीत् । सर्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन् ॥" चन्द्रिकायां देवलः-"इष्टा-पूर्ते मृताहे च दर्शवृद्ध्यष्टकासु च ॥ पात्रेभ्यस्तेषु कालेषु देयं नैव कुभोजनम् ॥ सायणीये-"अगोधूमं च यच्छ्राद्धं माषमुद्गविवर्जितम् । तैलपक्वेन रहितं कृतमप्य-कृतं भवेत् ॥ " हेमाद्रावत्रिः-'अगोधूमं च यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् ॥' तत्रैव ब्राह्मे-'यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । संतर्पयेत् पितॄन् मुद्गैः श्यामाकैः

हैं कि, महीने २ में उखाडी कुशा मास २ में काम देती है, षट्त्रिंशतके मतमें तो यह लिखा है कि, अमावास्याको उखाडी हुई कुशा महीने भरतक नवीन कहीजाती है गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि, पिंडोंके ऊपरकी और पितरोंके तर्पणकी और अशुद्धिवस्तुसे लिप्त कुशाको त्याग दे, लघुहारीतका कथन है कि, मार्ग, चिता, यज्ञभूमि, बिछौना, आसन, पिंडकी इन छः कुशा-ओंको त्याग दे और ब्रह्मयज्ञ और पितृतर्पणकी कुशा और जिनके मूत्र वा विष्ठा लगी हो उनको त्याग दे हेमाद्रिमें लिखा है कि, और सब कुशा और दूर्वा पवित्र हैं परन्तु ये सुवर्णकी पवि-त्रीकी सोलहवीं कलाको भी नहीं प्राप्त होते ॥ अब हविको वर्णन करते हैं । हेमाद्रिमें प्रचे-ताका कथन है कि, काले उडद, तिल, यव, सांठीके चावल, महायव, व्रीहियव और मधूलिका कृष्ण और श्वेत लोह (आरक्त) यह श्राद्ध कर्ममें ग्रहण करने योग्य हैं, महायवसे वेणुबीज और मधूलिकासे (मूर्वा) यावनाल लेते हैं, यह हेमाद्रि और कल्पतरुमें लिखा है भारतमें लिखा है कि, जिस श्राद्धमें तिलोंकी वृद्धि होय उस श्राद्धको मनुने अक्षय्य कहा है, जो तिलोंसे पितरोंका पूजन करता है वह सब कामोंसे और सब यज्ञोंसे पूजता है चन्द्रिकामें देवलका कथन है कि, इष्टापूर्त क्षयाह अमावस्या वृद्धिश्राद्ध और अष्टका इन कालोंमें सुपात्रोंको निंदित भोजन न दें ॥ सायणीयमें लिखा है कि, गेहूँ, उडद, मूंग, तैलका पक्वान्नसे रहित जो श्राद्ध है वह किया भी न कियेकी समान है हेमाद्रिमें अत्रिका वचन है कि, गेहूँके विना किया भी श्राद्ध न कियेकी समान है, वहांही ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, जौ, व्रीहि, गोधूम, तिल

सर्षपद्रवैः ॥ नीवारैर्हरिश्यामाकैः पियंगुभिरथार्चयेत् ॥" हेमाद्रौ कार्ष्णाजिनिः—"यदिष्टं जीवतश्चासीत्तद्द्यात्तस्य यत्नतः। स तृप्तो दुस्तरं मार्गं ततो याति न संशयः॥"कलिकायामाश्वलायनः—"कदल्यादिफलैः शस्तैर्मूलैरार्द्रादिकैरपि। गोरसैर्मधुना दध्ना श्राद्धे संतर्पयेत् पितॄन्॥कदल्याम्रफलादीनि श्राद्धे संपादयेत्सुधीः॥" हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च मार्कण्डेयः—"गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि। श्राद्धेषु दत्तैः प्रीयन्ते मासमेकं पितामहाः॥ विदार्या च भरुण्डैश्च तिलैः शृङ्गाटकैस्तथा। कञ्चुकैश्च तथा कन्दैः कर्कन्धूबदरैरपि ॥ पालेवतैरारुकैश्चाप्यक्षोटैः पनसैस्तथा। काकोल्या क्षीरकाकोल्या तथा पिण्डालकैः शुभैः॥ लाजाभिश्च सधानाभिस्त्रपुसैश्चारुचिर्भटैः। सर्षपाराजकाचाभ्यामिंगुदै राजजम्बुभिः॥ प्रियालामलकैर्मुख्यैः फल्गुभिश्च किलण्टकैः। वेत्रांकुरैस्तालकंदैश्चक्रिकाक्षीरिकावचैः॥ लोचैः समोचैर्लकुचैस्तथा वै बीजपूरकैः। कुंजातकैः पद्मफलैर्भक्ष्यभोज्यैश्च संस्कृतैः॥ रागखाण्डवचोष्यैश्चत्रिजातकसमन्वितैः। दत्तैस्तु मासं प्रीयन्ते श्राद्धेषु पितरो नृणाम् ॥ एषां कोशहेमाद्र्यादिव्याख्यावैद्यकाद्यनुसारेण मध्यदेशभाषया नामान्युच्यन्ते ॥ सतीनैः—कलायैः॥ 'कलायस्तु सतीनकः' इत्यमरः॥वटूरीति प्रसिद्धः॥ विदार्या—तत्कंदेन ॥ भरुण्डं—जलजं मखाणा इति श्राद्धमञ्जर्याम् ॥ भूकूष्माण्डमित्यन्ये। शृङ्गाटकं—सिंघाडा। कञ्चुकः कचनारः। कंदः सूरणः 'अर्शोघ्नः

उडद, चने, मूंग, शामाक, सरसों, कोदों, नीवार, हरी श्यामाक, कांगनी इनसे पितरोंको तृप्त करै, हेमाद्रिमें कार्ष्णाजिनका कथन है कि, जीते हुए मनुष्यको जो इष्ट हो वोही यत्नसे दे उसमें तृप्त हुआ वह दुस्तरभी मार्गको सुखसे जाता है, इसमें संदेह नहीं कलिकामें आश्वलायनका वाक्य है कि, केले आदिके उत्तम फल मूल अदरख गोरस मधु दही इनसे श्राद्धमें पितरोंको तृप्त करै, और केला और आमके फल आदिको बुद्धिमान् श्राद्धमें इकट्ठे करै ॥ हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें मार्कण्डेयका वाक्य है कि, गेहूँ ईख मूंग सतीन चने श्राद्धमें देनेसे मनुष्योंके पितर एक मासतक तृप्त होते हैं, विदारी कन्द, भरुण्ड (मखाना) तिल शृंगाटक केचुक कन्द कर्कन्धु, झडबेर, पालेवन, आरुक, अखरोट, पनस काकोली क्षीरकाकोली पिण्डालक धानकी खील त्रपुसा ऊर्वा आरु चिरभट (खर्बूजा) सरसों राजशाक गोंदी राजजम्बू प्रियाल (चिरौंजी) आमले छोटे तिलंटक वेतके अंकुर तालकन्द, चक्रिका, क्षीरिका, वच, लोच, मोच, लकुच, विजोरे, गुंजातक, पद्मके फल, भली प्रकार बनाये भक्ष्य, भोज्य, और रागखांडव चोष्य जिनमें लौंग और इलायची पडी हों इतने पदार्थोंके देनेसे मनुष्योंके पितर एक मास प्रसन्न रहते हैं ॥ इन सबके नामोंको कोश हेमाद्रि आदिका टीका वैद्यक इनके अनुसार मध्यदेशकी भाषामें कहते हैं, सतीन कलाय वटुरीको कहते हैं, भरुण्ड, मखाना, और कोई भूकूष्मांडको कहते हैं शृंगाटक सिंघाडा, कंचुक कचनार, कन्दसे जिमीकन्द, कर्कन्धु

सूरणः कंदः ' इत्यमरः । कर्कंधूः-वन्यं सूक्ष्मं बदरम् । पा[illegible]तं-कोशातकी । आरुकम्-अरुई । अक्षोटम् अखरोटः । काकोलीक्षीरकाकोल्यौ गौडेषु प्रसिद्धौ । पिण्डालकं-सुथनी । महाराष्ट्राणां मोहलकंद इति प्रसिद्धम् । त्रपुसादयस्त्रयः-कर्कटीभेदाः । चिर्भटं-खर्बुजम् । सर्षपा इति दीर्घश्छान्दसः । प्रियालं-चिरौञ्जी । फल्गु-उदुम्बरम् । तिलंटकं-पटोलकम् । तालकन्दः-कन्दविशेषः । चक्रिका-तिन्तिणी चिंचा । क्षीरिका-खीरिणी । मोचं-कदलीफलम् । लकुचं-वडहरम् । मुञ्जातकं गौडदेशे प्रसिद्धम् । पद्मफलं-गट्टा ॥ रागखांडवः-"पिप्पलीशुण्ठियुक्तस्तु मुद्गयूषस्तु खाण्डवः । रागखाण्डवतां याति शर्करासंयुतं तु तत् ॥ " इत्युक्तः पानविशेषः ॥ त्रिजातं लवङ्गैलापत्रकाणि ॥ मदनरत्ने कौर्मे-'कालशाकं च वास्तूकं मूलकं कृष्णनालिका ॥ ' प्रशस्तानीति शेषः ॥ हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च वायुपुराणे-"कालशाकं महाशाकं द्रोणशाकं तथार्द्रकम् । विल्वामलकमृद्वीकापनसाम्रातदाडिमम् ॥ चव्यं पालिवटाक्षोटं खर्जूरं च कसेरुकम् । कोविदारश्च कंदश्च पटोलं बृहतीफलम् ॥ पिप्पली मरिचं चैव एला शुण्ठी च सैन्धवम् । शर्करागुडकर्पूरबदरीद्रोणपत्रकम् ॥ २ ॥" तथा-" मधुकं रामठं चैव कर्पूरं गुडमेव च । श्राद्धकर्माणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं तथा ॥ " रामठं हिंगुः ॥ " कसेरुः कोविदारश्च तालकन्दस्तथा बिसम् । तमालं शतकन्दश्च मध्वालुः शीतकन्दकम् ॥ कालेयं कालशाकं च सुनिषण्णं सुवर्चलम् । मांसं शाकं दधि

वनका छोटा बेर, पालेवत, कोशातकी, अरुक अरई पिण्डालक सुथनी महाराष्ट इसको मोहलीकन्द कहते हैं, त्रपुसाआदि तीन यह ककडीके भेद हैं चिर्भट, खर्बूजा, प्रियाल चिरौंजी फल्गु गूलर, तिलंटक पटोल, तालकन्द-कन्दका भेद, चक्रिका इमली और क्षीरिका खिर्नी, मोच केलेका फल, लकुच बडहर, मुञ्जातक पद्मफल; रागखाण्डव उसे कहते हैं जो पिप्पल और सोंठिसे मिलाहुआ खाँडसहित मूंगका यूष हो ॥ यह पान किया जाता है । त्रिजात लौंग इलायची पत्रजको कहते हैं ॥ मदनरत्नमें कूर्मपुराणका वाक्य है कि, कालका शाक बथुवा मूली कृष्णनाली ये श्रेष्ठ हैं, हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें वायुपुराणका वाक्य है कि, समयका शाक महाशाक, द्रोणशाक अदरख बेल, आमले, मुनक्का, पनस, आम्रातक, अनार, चव्य, पालेवत (जँभीरा) अखरोट, खजूर, कसेरू, कोविदार (कचनार) कन्द, पटोल, (पर्वल) कटेरीका फल, पीपल, कालीमिर्च, इलायची, सौंठ, सेंधानोन, खांड, गुड, कपूर, बेल, द्रोणपत्र ॥ तैसेही वचन है कि, महुआ, हींग, कपूर, गुड, सैन्धानोन ककडी ये श्राद्धकर्ममें श्रेष्ठ हैं, कसेरू, कचनार ताल मूली, बिस भंसीडा तमाल, शतावर, मध्वालु, मोहलकंद शीतकंद (सेरुकी) कालेय (कराल) वा (दारुहलदी) कालशाक सुनिषण्ण, (ककडीके समान सुन्नाटा फल) सुवर्चल (शाकभेद) मांस शाक दही दूध जल, बेंतके अंकुर, कट्फल श्रीपर्णी वृक्षका फल,

क्षीरं चाम्बुवेत्रांकुरस्तथा ॥ कट्फलं कौंकणी द्राक्षा लकुचं मोचमेव च। अलाबुं ग्रीवकं चारं कर्कन्धुर्मधुसाह्वयम्। वैकंकतं नारिकेलं शृङ्गाटकपरूषकम्। पिप्पलीमरिचं चैव पटोलं बृहतीफलम्। एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च। नागरं चार्द्रकं देयं दीर्घमूलकमेव च ॥ ९ ॥" इति। तथा-'शर्कराक्षीरसंयुक्ता पृथुका नित्यमक्षयाः ॥' द्रोणशाकं 'गूम' इति प्रसिद्धम्। मृद्वी-द्राक्षा। आम्रातम् आंवाडा इति प्रसिद्धो वृक्षः। तत्फलं च पालिवन्तं जम्बीरम्! पालिआलमिति गौडप्रसिद्धं वा। खर्जूरं खजूर इति प्रसिद्धम्। कसेरुः जलजः कन्दः। कोविदारः कञ्चनारसदृशः तालकन्दः-तालमूली। बिसं-भसीडम्। शतकन्दः-शतावरी। शालूकं-केसेरुकीति प्रसिद्धम्। कालेयं-करालसंज्ञः शाकः। दारुहरिद्रा वेति पृथ्वीचन्द्रोदयः॥ सुनिषण्णं-ककँटी। सुदर्शं सुलटीया इति गौडप्रसिद्धम्। सुवर्चलं-शाकविशेषः॥ कट्फलं-श्रीपर्णीवृक्षफलम्। कौंकणी-अम्लरसा द्राक्षा। तिन्दुकं-डिण्डिशमिति केदेवः॥ तिन्दुफलं वा। ग्रीवकं-फलविशेषः। चारं-क्षुद्रतालम्। मधुसाह्वयं मधूकपुष्पं फलं वा वैकंकतं-वैञ्चीति गौडाख्यातम्। परूषकं परूसमिति प्रसिद्धम्। नागरं शुण्ठी ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-"आम्र आम्रातकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम्। प्राचीनामलकं क्षीरं नारिकेलं परूपकम्। नारङ्कं च खर्जूरं द्राक्षानीलकपित्थकम्। एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः ॥२॥" मात्स्ये-"अन्नं तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम्। मासं प्रीणाति सर्वान्वै पितॄनित्याह केशवः ॥" याज्ञवल्क्यः-"हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्। मत्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥ ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम्। मासवृद्ध्याभितृप्यन्ति दत्तैरिह

कौंकणी (खट्टे मुनक्का) लकुच मोच तिन्दुक (टैंडश) वा (तेंदूका फल) बेर सहस्र दोनों प्रकारके अलाबू (घीआ) ग्रीवक फल विशेष, चार-क्षुद्रताल कर्कन्धु (छोटाबेर) मधु, मधुकके पुष्प वा फल, वैकंकत वैंची, नारियल, सिंघाडा, परूषक पीपल मिरच काली परवल कटेरीके फल इत्यादि और अन्य भी जो स्वादु और मीठे हों नागर अदरख और बडीमूली श्राद्धमें देने चाहियें, दूधसे मिली खांड मालपुवे, सदैव अक्षय तृप्तिको करते हैं॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका लेख है कि, आम्र आम्रातक बिल्वी अनार बिजौरा पुराना आमला दूध नारियल परूप नारंगी खजूर मुनक्का नीलकैंत इतने फलोंके समूह श्राद्धमें यत्नसे देने उचित हैं, मत्स्यपुराणका वचन है कि, दही दूधसे मिला हुआ अन्न खांड मिला गौका घी ये सब एक मासतक पितरोंको तृप्त करते हैं, यह केशव कहते हैं, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, हविष अन्न महीनेतक और खीर एक वर्षतक पितरोंको तृप्त रखती है मत्स्य, हिरण, उरभ्र पक्षी, छाग, पृषत्, एण, रुरु, वराह, शशा इनके मांसके देनेसे पितर क्रमसे एक २ मासकी वृद्धिसे

पितामहाः ॥ खड्गामिषं महाशल्कं मधु मुन्यन्नमेव च । लोहामिषं कालशाकं मांसं वाध्रीणसस्य च ॥ २ ॥ " निगमः-" त्रिपिबेत्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम्। वाध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि ॥" वाध्रीणसो-जरच्छाग इति मेधातिथिः ॥ कात्यायनः-'छागोस्रमेषानालभ्य शेषाणि क्रीत्वा लब्ध्वा वा स्वयंमृतानां वाहृत्य पचेत् ॥ ' कौर्मे-" क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वा द्विजः । दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षय्यमुच्यते ॥ " दत्तस्य मांसस्याभक्षणे दोषमाह मनुः-नियुक्तस्य यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः । स प्रेत्य पशुतांयाति संभवानेकविंशतिम् ॥ अत्र बहुषु वचनेषु श्राद्धे मांसमधुनोः प्राशस्त्योक्तेः ॥ ' विना मांसेन यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् ' इति हेमाद्रौ देवलोक्तेः ॥ " यच्छ्राद्धं मधुना हीनं तद्रसैः सकलैरपि ॥ मिष्टान्नैरपि संयुक्तं पितॄणां नैव तृप्तये ॥ अणुमात्रमपि श्राद्धे यदि न स्याच्च माक्षिकम् । नामापि कीर्तनीयं स्यात् पितॄणां प्रीतये ततः ॥ २ ॥ " इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेश्च मांसमधुनोः श्राद्धे नियतत्वं गम्यते ॥ गौडनिबन्धे मात्स्यसूक्ते-" मध्वभावे गुडो देयः क्षीरस्य च तथा दधि । न लभ्यते घृतं यत्र कुर्यात् घृतवतीजपम् ॥" श्राद्धकलिकायां नागरखण्डे-"कथंचिद्यदि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु । पिण्डास्तु

तृप्त होते हैं, गैंडेका मांस, महाशाक, शहत, मुनियोंका अन्न वाध्रीणसका मांस श्रेष्ठ है ॥ निगममें लिखा है कि, जिसकी क्षीण इन्द्रिय तीनों, (मुख कान नाक) एक बार जल पीवैं ऐसे श्वेत और वृद्ध अजाओंके पतिको याज्ञिक श्राद्ध कर्ममें वाध्रीणस वर्णन करते हैं, मेधातिथिमें वृद्ध छागको वाध्रीणस कहा है, कात्यायनने लिखा है कि, छागका मांस और मेष इनको लेकर और शेषोंको खरीद कर वा लेकर वा स्वयं मरोंको लाकर उनके मांसको पकावै, कूर्मपुराणका वाक्य है कि, खरीदकर वा प्राप्त होकर वा स्वयंमरोंको लाकर द्विज श्राद्धमें प्रदान करदे तो पितर अक्षय तृप्त होते हैं ॥ श्राद्धमें मांसके न खानेमें मनुने दोष कहा है, श्राद्धमें नियुक्त ब्राह्मण जो मांसको न खाय वह मरकर इक्कीस जन्म तक पशु होता है, यहां बहुतसे वचनोंमें मांस और मधु श्रेष्ठ कहे हैं. और हेमाद्रिमें देवलकाभी कथन है कि, मांसके विना कियाभी श्राद्ध न किया है, जो श्राद्ध सहतसे हीन है वह चाहे सब रस और मिष्टान्नसे युक्त हो पर उससे पितरोंकी तृप्ति नहीं होती हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि, अणुमात्र भी शहत श्राद्धमें यदि न होय तो पितरोंकी तृप्तिका नाम क्या कोई ले सकता अर्थात् नहीं ले सकता इससे श्राद्धमें मांस मधुका नियम विदित होता है, गौडग्रंथोंमें मत्स्य और सुमंतुने लिखा है कि, मधु न हो तो गुड देना और दूध न हो तो दही और घृत न मिले तो घृतवती ऋचाका जप करै ॥ श्राद्धकलिकामें नागर खण्डका वाक्य है कि, किसी प्रकार ब्राह्मणोंको मधु

नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना ॥" बृहत्पराशरस्तु मांसं निषेधति- "यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मांसैस्तर्पयते पितॄन् । स विद्वांश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादंगारविक्रयम् ॥ क्षिप्त्वा कूपे यथा कश्चिद्बाल आदातुमिच्छति । पतत्यज्ञानतः सोपि मांसेन श्राद्धकृत्तथा ॥ २ ॥" स एव-" सर्वथान्नं यदा न स्यात्तदैवामिषमाश्रयेत् ॥ ब्राह्मणश्च स्वयं नाद्यात्तच्च श्वादिहतं यदि ॥" भागवतेपि-" न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् । मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥" तथेति शेषः ॥ अत्र केचित् । " मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रदानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत् ॥" इति हेमाद्रौ पुलस्त्योक्त्या व्यवस्थामाहुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु-" अक्षत्यगो पशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥" इति निगमोक्तेः ॥ " वराऽतिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया " इति कलिवर्ज्येषु हेमाद्रावादित्यपुराणात् ॥ बृहन्नारदीये-"मांसदानं यथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा' इत्युक्त्वा 'इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः' इति बृहन्नारदीयेऽभिधानाच्च मांसविधिः कलिव्यतिरिक्तविषयः ॥ कलौ मांसनिषेधानां च देशाचारात् व्यवस्था ॥ तथा च बृहन्नारदीये श्राद्धं प्रकृत्य-"यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादिकं तथा । देशाचाराः परि-

---

न दिया हो तो पिंडोंमें मधु अवश्य देना चाहिये, बृहत्पराशरने तो मांसका निषेध कहा है कि, जो मनुष्य प्राणियोंको मारकर पितरोंको तृप्त करता है वह विद्वान् चन्दनको जलाकर मानो अंगारोंको बेंचता है, जैसे कोई बालक कुएमें वस्तुको फेंककर फिर निकालनेकी इच्छा करता है इसी प्रकार वह भी ज्ञानहीन मांससे श्राद्ध करता है, उसीका वचन है कि, तभी मांस ले जब सर्वथा अन्न न मिले, और कुत्ते इत्यादि मारे हुए मांसको ब्राह्मणको खाना उचित नहीं॥ भागवतमें लिखा है कि, श्राद्धमें मांसको न दे, और न भोजन करे, मुनियोंके अन्नसे जिस प्रकार पितर तृप्त होते हैं तैसे पशुहिंसासे तृप्त नहीं होते, यहां कोई हेमाद्रिमें इस पुलस्त्यके वचनसे इस व्यवस्थाको कहते हैं कि, ब्राह्मणको मुनियोंका अन्न, और क्षत्री वैश्यको मांस, और शूद्रको मधु प्रधान कहा है जो मधु सब विरोधी नहीं, पृथ्वीचंद्रोदय तो संन्यास गोमेध श्राद्धमें मांस और मधु और देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति इन पांचोंको कलियुगमें त्याग दे, इस निगमके वचनसे और हेमाद्रिमें इस आदित्यपुराणके वचनसे वर, अतिथि, पितर इनके लिये पशुको न मारे, कलियुगमें जो वर्जित उनमें ये पूर्वोक्त गिने हैं श्राद्धमें मांसका दान और वानप्रस्थ आश्रम यह कहकर इन धर्मोंका शास्त्रकारोंने कलियुगमें निषेध कहा है ॥ बृहन्नारदीयमें कहनेसे मांसकी विधि कलियुगसे भिन्नके विषयमें है, कलियुगमें नहीं करनी कलियुगमें जो मांसके निषेध है उनकी देशाचारसे व्यवस्था है, यहां

ग्राह्यस्तत्तद्देशीयजैर्नरैः ॥ अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥" इति ॥ "यस्मिन् देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचारयेत् ॥" इति भृगूक्तेश्चेत्याहुः ॥ तन्न ॥ होलकाधिकरणन्यायेन देशविशेषव्यवस्थापकपदकल्पनायोगात् ॥ निरूपितं च तत् पितामहचरणैर्मांसमीमांसायाम् इति दिक् ॥ मनुः—" संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च । वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ त्रिःपिबंत्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् । वाध्रीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि ॥ २ ॥" क्षीरादौ विशेषमाह हेमाद्रौ सुमन्तुः—"पयो दधि घृतं चैव गवां श्राद्धेषु पावनम् । महिषीणां घृतं प्राहुः श्रेष्ठं न तु पयः क्वचित् ॥" याज्ञवल्क्यः—" सन्धिन्यनिर्दशावत्सागोपयः परिवर्जयेत् । औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ॥" हेमाद्रौ हारीतः—'नवसूतायाः सप्तरात्रादित्येके' दशरात्रादित्यपरे 'मासे नो पेयूषं भवतीति' धर्मविदः, ॥'. एतद्रजोभावपरम् । देवलः—"अजाविमहिषीणां तु पयः श्राद्धेषु वर्जयेत् । विकाराः पयसश्चैव माहिषं तु घृतं हितम् ॥" तत्रैव ब्राह्मे—"माहिषं चामरं मार्गमाविकै-

---

बृहन्नारदीयमें कहा है कि, श्राद्धके कर्ममें मधु मांस आदिका प्रयोग देशाचारके अनुसार करना और उस २ देशके उत्पन्न हुए मनुष्योंको देशाचार सर्वथा मानना चाहिये, न माने तो सब धर्मोंसे बाह्य पतित होता है, और भृगुने भी वह कहा है कि जिस, देश, पुर, ग्राम तीन विद्यावाले नगरमें जो धर्म जहां विहित है उसका विचार न करे, यह किन्हींका कथन ठीक नहीं है क्योंकि होलिका अधिकरणके समान देश विशेषकी व्यवस्थाकी कल्पना अयोग्य है, यह हमारे पितामहोंने मांसमीमांसामें निरूपण किया है, इस प्रकार यह थोडासा कथन किया ॥ मनुका वाक्य है कि, गौके दूध और खीरसे वर्षदिनतक वाध्रीणसके मांससे बारह वर्षतक पितरोंकी तृप्ति होती है, जिसकी तीन इन्द्रिय जल पीवें ऐसे श्वेतवर्ण वृद्ध अजाओंके पति बकरेको याज्ञिक श्राद्ध कर्ममें वाध्रीणस कहते हैं, क्षीर आदिमें सुमंतुने हेमाद्रिमें विशेष लिखा है कि, गौओंका दूध, दही, घी और भैंसका घृत श्राद्धोंमें पवित्र कहा है और किसी जीवका दूध कहीं भी पवित्र नहीं कहा, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, संधिनी (जो दूध दे और गामनमी हो) दश दिनतककी ब्याई, बछडाहीन गौका दूध और ऊण्टनीका दूध, और एकखुर जीव, (घोडी आदि) वनके पशु, मेंड, इनका दूध त्यागदे, हेमाद्रिमें हारीतने कहा है कि, नई ब्याईका किसीके मतसे सात दिनतक और किसीके मतसे दश दिनतक दूध निषिद्ध है, एक मासमें अपेयुस (जिसमें पेवसी न हो) होता है, यह धर्मशीलोंका कथन है, यह भी रजके अभावके विषयमें है, देवलका वाक्य है कि, बकरी, भेड, भैंसके दूध और दूधके विकारोंको श्राद्धमें वर्ज दे, भैंसका घी तो हित है ॥ वहांही ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, भैंस चमरी गौ मृग मेंड एक खुरवाले जीव, स्त्री ऊण्टनीका दूध दही; घी मांगेहुए पदार्थ श्राद्धमें त्याग दे, गुड

कशफोद्भवम् । स्त्रैणमौष्ट्रं पाचितं च दधि क्षीरं त्यजेद्धृतम् ॥ सगुडं मरिचाक्तं तु तथा पर्युषितं दधि । दीर्णं तक्रमपेतं च नष्टास्वादं च फेनवत् ॥ २ ॥" माहिषापवादोऽपरार्के ब्राह्मे-"देयं तक्रं तु सद्यस्कं नवनीतादनुद्धृतम् । आरण्यमहिषीक्षीरं शर्करास्रुतिसंयुतम् ॥ मध्वक्तं तुहिनं चैव दद्यात्तदमृतं यतः ॥" स्रुतिः क्षीरशरः ॥ श्राद्धकौमुद्यां चैवम् ॥ यद्यपि याज्ञवल्क्येन-"अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् । अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥" इति पर्युषितं दध्यादि भोज्यमुक्तम् । तथापि गुडमरिचाक्तस्य पर्युषितदोषोऽत्रोच्यत इति हेमाद्रिः ॥ तत्रैव ब्राह्मे-"कालशाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा । शाकमारण्यकं चैव दद्याच्छ्राद्धेषु नित्यशः ॥" तन्दुलीयं-सूक्ष्मपत्रमिति हेमाद्रिः ॥ महाराष्ट्राणां माठ इति प्रसिद्धम् ॥ आरण्यकं-फांजीचूवादि । तत्रैव-"दाडिमं मागधीं चैव नागरार्द्रकतिन्तिणीः । आम्रातकं जीरकं च कुबरं चैव योजयेत् ॥" मागधी-पिप्पली । नागरं-शुण्ठी । कुबरं-कुस्तुंबरं धणिया इति प्रसिद्धम् ॥ वायवीये-'अगस्त्यस्य शिखास्ताम्राः कषायाः सर्व एव च ।' शिखा-नवपल्लवाः । प्रभासखण्डे-'आरामस्य तु सीमन्ताः कलापाः सर्व एव च ।' सीमन्ताः-नवपल्लवाः ॥ कौर्मे-'तमालं शतकन्दं च मध्वालुं शीतकन्दली' मध्वालुः-मोहलकन्दः । शीतकन्दली-रताळु इति प्रसिद्धम् ॥

मिर्चमिली वस्तु बासी दही और फटा मट्ठा फैकनेके योग्य है, स्वादहीन कणवाले मट्ठेको त्याग दे, भैंसकेका अपवाद ब्रह्मपुराणके वचनसे अपरार्कमें लिखा है कि, मट्ठे और तुहिनको दे, क्योंकि, वह ताजा और दूधसे निकला जिसमेंसे मक्खन न निकाला हो वह तुहिन अमृत होता है खांड पडा हुआ वनकी भैंसका ' दूध' और सहत मिला हो तो तुहिन अमृतरूप है दूधको श्राद्धमें दे, श्राद्धकौमुदीमें भी यही लिखा है ॥ यद्यपि याज्ञवल्क्यने घी आदिसे युक्त, अधिक दिनके बासी भी अन्न खाने योग्य कहे हैं और जिनमें घी आदि न होय ऐसे गेहूं जो गोरसके विकार भोजन योग्य कहे हैं, इस वचनसे बासी दही आदि भोजन योग्य लिखे हैं, तथापि उस पर्युषितका दोष वहां कहा है जिसमें गुड और मिर्च संयुक्त हो, यह हेमाद्रि कहते हैं वहांही ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, समया, शाक, मूली, बथुवा, वनके शाक तण्डुलीय (छोटे पत्तोंका शाक) इनको श्राद्धमें नित्य दे, वहांही कथन किया है कि, अनार, पीपल, सोंठी, अदरख, इमली, आम्रातक, जीरा, धनियां इनको भी मिलावे, वायवीयमें लिखा है कि, अगस्त्यके नवीन पत्तोंको ताम्र कहते हैं, प्रभासखंडमें लिखा है कि, आरामके नये पत्तोंको कळाप कहते हैं कूर्मपुराणमें लिखा है कि, तमाल, शतकंद, मोहालकंद और रताळु इनको भी दे॥

श्राद्धे वर्ज्यहविर्निर्णयः । अथ वर्ज्यम् ॥ मार्कण्डेयपुराणे—"यच्चोत्कोचादिना प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम् । अन्यायकन्याशुल्कार्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम् । पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम् ॥" चन्द्रोदये शङ्खः—"भूस्तृणं शिरसा शिग्रु- पालंकीमृचुकं तथा । कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥ पिप्पलीं मरिचं चैव तथा वै पिण्डमूलकम् । कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं च विवर्जयेत् ॥ राजमाषान् मसूरांश्च कोद्रवान् कोरदूषकान् ॥ लोहितान् वृक्षनिर्यासान् श्राद्ध- कर्मणि वर्जयेत् ॥ २ ॥" भूस्तृणं काश्मीरदेशे प्रसिद्धम् । सुरसा निर्गुण्डीति माधवः ॥ तुलसीति पृथ्वीचन्द्रोदयः । सा च भक्ष्यत्वेन निषिद्धा न पुष्पत्वेनेति गौडाः ॥ पालंकी पालक इति प्रसिद्धा । मृचुकं जलजः शाकः । समुकमिति पाठे खदिरशाक इति हेमाद्रिः ॥ मरीचान्यार्द्राणीति हेमाद्रिः ॥ कृतं लवणं सांभरभिन्नम् । 'सैन्धवं लवणं चैव तथा मानससम्भवम् ।' 'यच्च सामुद्रिकं भवेत्' इति शूलपाणौ पाठः ॥ 'पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः' इति वायवीयोक्तेः ॥ मानसं साम्भरम् । यत्तु भविष्यम्—'तर्जन्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा' इति ॥ तत्र क्षारलवणं खारीति प्रसिद्धं निषिद्धम् ॥ 'भुक्त्वा तु

अब श्राद्धमें वर्जित हविको कहते हैं । मार्कण्डेयपुराणमें कहा है कि, जो धन उत्कोच (घुस) आदिसे वा पतितसे संचय किया हो, अन्यायसे मिला वा कन्याके मोलका हो वह धन श्राद्धमें निंदित है और वह भी निंदित है जो यह कहकर मिला हो कि, पिताके लिये मुझे दो । चन्द्रो- दयमें शंखका कथन है कि, भूस्तृण (काश्मीरमें प्रसिद्ध) सुरसा निर्गुंडी (तुलसी) शिग्रु (सहिजना) पालंकी (पालक) मृचुक (जलका शाक) पेठा घियमा बैंगन कचनार पीपल गीलीमिर्च पिण्डमूल (सलगम) बनाया लवण और वंशका अग्रभाग कल्ला, राजमाष (राज उर्द) मसूर कोदों कोर्दूषक और वृक्षके लालगोंद इनको श्राद्ध कर्ममें त्यागदे भूस्तृण कश्मी- रमें प्रसिद्ध है सुरसा निर्गुण्डीको कहते हैं यह माधवका मत है पृथ्वीचन्द्र तुलसीको कहते हैं कि, तुलसीका भक्षणमें निषेध है चढानेमें नहीं यह गौड कहते हैं ॥ पालंकी पालकको कहते हैं, मृचुक जलका शाक है समुक ऐसा पाठ होय तो खैरका शाक लेना यह हेमाद्रिने कहा है मिरचसे गीली मिरच ऐसा हेमाद्रि कहते हैं और बनाया भी सांभरवाला न लेना और लेना, क्योंकि शूलपाणमें ऐसा पाठ है कि, सेंधालवण सांभर और समुद्रका लवण ये प्रत्यक्ष भी सदैव परम पवित्र है यह माधवीयमें लेख है, जो भविष्यमें यह लिखा है कि, तर्जनी दँतोन प्रत्यक्ष लवण ये वर्जित हैं, वहां प्रत्यक्ष लवणसे खारी नोनका ग्रहण है क्योंकि, ब्रह्मपुराणमें

---

१ तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः । प्रयान्ति गरूडारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः ॥ अर्थात् तुलसीकी गन्ध ग्रहण कर सन्तुष्ट हो पितर गरुडपर चढ भगवान्के लोकको जाते हैं ॥

क्षारलवणं त्रिरात्रं तु वने वसेत् ' इति ब्राह्मोक्तेरिति शूलपाणिः ॥ क्षीरलवणमिति पाठात् क्षीरमिश्रं लवणं निषिद्धमिति वाचस्पतिः ॥ राजमाषाः–रतरा इति प्रसिद्धाः ॥ कोरदूषकः–चणकोद्रवः ॥ चन्द्रिकायां शङ्खः–" पिण्डालकं च तुण्डीरं करमर्दं च नालिकम् । कूष्माण्डं बहुबीजानि श्राद्धे दत्वा व्रजत्यधः ॥" पिण्डालकं महाराष्ट्रेषु पेण्डरमिति प्रसिद्धम् । तुण्डीरं बिम्बीफलमिति कैदेवः ॥ करमर्दं करवन्दमिति प्रसिद्धम् । तत्रैव–"बिडालोच्छिष्टमाघ्रातं श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् । कूष्माण्डं माहिषं क्षीरमाढक्यो राजसर्षपाः ॥ चणका राजमाषाश्च घ्नन्ति श्राद्धं न संशयः ॥ २ ॥ वृद्धपराशरः–" करीरफलपुष्पाणि विडङ्गमरिचानि च । जम्भारिकासजम्बीरा सुपक्वं बीजपूरकम् ॥ जम्ब्वलाबूनि पिप्पल्यः पटोलं पिण्डमूलकम् । मसूराञ्जनपुष्पं च श्राद्धे दत्वा पतत्यधः ॥ २ ॥ " जम्बूः सूक्ष्मा । माधवीये चतुर्विंशतिमते–'यावनालान् कुलित्थांश्च वर्जयन्ति विपश्चितः॥' यावनाला–जोंधला । अत्र यानि चणकादीनि विहितनिषिद्धानि तेषां विकल्पः । अन्यथा–"श्यामाकैश्चणकैः शाकैर्नीवारैश्च प्रियंगुभिः । गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितॄन्" इति । ' गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि' इति हेमाद्रौ कौर्मविष्णुधर्मादिविरोधः स्यात् ॥ पिप्पलीमरिचादेस्तु प्रत्यक्षस्य निषेधो न त्वन्यद्-

---

लिखा है कि, खारेलवणको खाकर तीन रात वनमें रहे यह शूलपाणि कहते हैं, क्षीरलवण यह पाठ होय तो दूधिमिला लवण निषिद्ध है यह वाचस्पतिका मत है कोर्दूषकसे वनकी कोदो लेनी ॥ चन्द्रिकामें शंखका वाक्य है कि, पिंडालक (पैंडर) तुंडीर (बिम्बीका फल) करमर्द (करबंद) नरसल पेठा बहुबीज इनको श्राद्धमें देकर नरकमें जाता है, पिंडालकको महाराष्ट्रमें पैंडर कहते हैं तुण्डरी बिम्बीफलको कहते हैं यह कैदेवका मत है । करमर्द करवंदका नाम हेमाद्रिमें है, वहांही लिखा है कि, बिडालका जूंठा और सुंघा पेठा भैंसका दूध आढकी राई चने राजउर्द श्राद्ध नष्ट करनेवाले हैं इनको यत्नसे त्यागदे ॥ वृद्धपाराशरका वाक्य है कि, करीरके फल और फूल वायविडंग मिरच जंमारिका (जंमीरी) पका बिजोरा, छोटा जामुनका फल अलाबु (लौका) पिप्पली पटोल पिंडमूल मसूर अंजनका फूल इनको श्राद्धमें देकर नरकमें जाता है, (जामुन छोटी लेनी) माधवीयमें चतुर्विंशतिके मतसे लिखा है कि, यावनाल (जोंधल) कुलथी इनको भी बुद्धिमान् त्याग दे, यहां जो चणक आदिका विधान, निषेध दोनों हैं उनका विकल्प समझना अर्थात् ले चाहै न ले अन्यथा हेमाद्रिमें लिखे कूर्म और विष्णुधर्मके इन वाक्योंका विरोध होगा कि, सामक चने शाक नीवार कांगनी गेहूं तिल मूंगसे पितरोंकी एक मासतक तृप्ति होती है, गेहूँ गाडा मूंग चनेसे भी पितरोंकी एक महीनेतक तृप्ति होती है, पिप्पली और मिरच आदिका निषेध केवलका है और द्रव्यमें मिलीका नहीं कारण

व्यमिश्रस्य " सौवीरतिक्तैर्लवणादिभिस्तु पाकस्य सिद्धिर्महतीह येस्तु । तद्बीजपूरान् मरिचादियोगात्सिद्धं प्रदेयं न तु दुष्यतीह " ॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरोक्तेः ॥ तत्रैव-"दातुश्च यस्मिन्मनसोभिलाषः श्रद्धा भवेद्यत्र च दीयमाने। श्राद्धेषु देयं विधिवत्तदेव तद्दत्तमक्षय्यमिति ब्रुवन्ति ॥ " एतन्निषिद्धेतरविषयम् ॥ चन्द्रिकायाम्-" कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि । न वर्जयेत्तिलांश्चैव मुद्गमाषांस्तथैव च ॥ " मात्स्ये-" मसूरशणनिष्पावराजमाषकुसुम्भिकाः । पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूषकाः ॥ न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा । कोद्रवोद्दारवरककपित्थमधुकातसी ॥ एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः श्राद्धमिच्छता ॥ २ ॥ " निष्पावाः वल्लाः । यत्तु मार्कण्डेयः-' प्रियंगवः कोविदारा निष्पवाश्चात्र शोभनाः ' इति । तत्र निष्पावः श्वेतशिम्बीति दानसागरे श्राद्धप्रकाशे चोक्तम् ॥ बिल्वं च रक्तं निषिद्धम् ॥ ' जम्बीरं रक्तबिल्वं च शालस्यापि फलं त्यजेत् ' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ ' पारिभद्रो निम्बतरुः ' इत्यमरः ॥ रक्तमन्दार इति हेमाद्रिः ॥ आटरूषो वासा तत्पुष्पम् । उद्दारः काञ्चनारः ॥ मधुकं ज्येष्ठी मध्वीति चन्द्रिका । वरका वनमुद्गाः ॥ हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे-' आसनारूढमन्नाद्यं पादोपहतमेव च । अमेध्यैर्जंगमैः स्पृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥

कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहत्पाराशरका यह कथन है कि, सौवीर चर्परे पदार्थ लवण आदि जिन पदार्थोंसे पाक श्रेष्ठ बनता है वह बिजौरा और मिरच आदिके योगसे सिद्धिकी दाता है दूषित नहीं है, वहांही लिखा है कि, जिसमें दाताकी इच्छा हो, और जिसके देनेमें श्रद्धा हो, श्राद्धमें वही विधिसे देना चाहिये उससे अक्षय तृप्ति होती है, यह कहते हैं यह भी निषिद्धोंसे भिन्नोंके विषयमें है ॥ चन्द्रिकामें लिखा है कि, कष्टके देनेवाले कृष्णवर्ण जितने पदार्थ हैं उनको श्राद्धकर्ममें त्यागदे और तिल, मूंग उडद इनको न त्यागे मत्स्यपुराणमें लिखा है कि मसूर, सण, निष्पाव (कला) राजमाष, कुसुंम्भिका, पद्म, बेल आक, धतूरा, पारिभद्र, (निम्बतरु) आटरूषक (वासेका फल) और बकरी और भेडका दूध इनको पितृकर्ममें न दे, और कोदव उद्दार, (कचनार) वड कैत, मधुक (महुआ) अतसी श्राद्धको चाहता हुआ मनुष्य पितरोंको इनको भी न दे, जो मार्कण्डेयमें लिखा है कि, कांगनी, कचनार और निष्पाव ये श्राद्धमें श्रेष्ठ हैं वहां निष्पावसे वेतसी भी लिया है यह दानसागर और श्राद्धप्रकाशमें लिखा है, बेल भी लाल निषिद्ध है कारण कि ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि जँमीरी रक्तबेल शालका फल त्याग दे, हेमाद्रिने पारिभद्रसे रक्तमाल मन्दार लिया है, चणकसे वनकी मूंग लेनी हेमाद्रिमें ब्रह्मांडपुराणका वाक्य है कि आसनपै रक्खा और चरणसे छुवा वा अपवित्र जंगम जीवोंसे छुआ सूखा वा बासी जो अन्नादि हैं सो द्विविन्न अर्थात् एकबार पकानेसे खाने योग्य

द्विःस्विन्नं परिदग्धं च तथैवाग्रावलेहितम्। शर्कराकीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपद्रुतम्॥ पिण्याकं मथितं चैव तथातिलवणं च यत्। सिद्धाः कृताश्च ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः। वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि ॥ ३ ॥ द्विस्विन्नमसकृत्पाकेन भक्ष्यमपि हिङ्गुजीरकादि संस्कारार्थं पुनः पच्यते, तद्वर्ज्यम् ॥ यत्तु तिक्तशाकान्नविकारादि द्विःपाकेनैव भक्षणार्हं, तन्न निषिद्धम् ॥ आग्रावलेहितमास्वादितिपूर्वं पर्युषितस्य सदा निषेधेऽपि पुनर्वचनम् " अपूपाश्च करम्भाश्च धाना वटकसक्तवः। शाकं मांसमपूपं च सूपं कृसरमेव च ॥ यवागुः पायसं चैव यच्चान्यत्स्नेहसंयुतम्। सर्वं पर्युषितं भोज्यं शुष्कं चेत्परिवर्जयेत् ॥२॥ इति माधवीये यमोक्तवटकादेरपि पर्युषितस्य निषेधार्थमिति चन्द्रिकादयः ॥ वर्ज्येषु विश्वामित्रः " कपित्थं कुरुकं चैव नारिकेलं च पैत्तिकम्। जंबूफलादि पक्कं च पिण्याकं तन्दुलीयकम् ॥ " हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते–' वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथैव च ॥' मर्कटकाः लाका इति प्रसिद्धाः ॥ पैठीनसिः–" वृन्ताकं नालिकापोतकुसुम्भाश्मन्तकानि च। शाकानामभक्ष्याः " इति ॥ पोतं पोई इति प्रसिद्धम्। मार्कण्डेयः–" वर्ज्याश्चाभिषवा नित्यं शतपुष्पा गवेधुकाः। जंबीरकं फलं वर्ज्यं कोविदाराश्च नित्यशः ॥ " अभिषवाः शुक्ता इति चन्द्रिका ॥ संधानकमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ शतपुष्पा ओंवा इति प्रसिद्धम् ॥ शाठ्यायनः–" मारिषं

भी जो हींग और जीरेके संस्कारके लिये फिर पकाया जाय, जला अन्न और प्रथम चाटा हुआ अन्न वा जिसमें कंकड कीडे पाषाण वा केश हों और जो वस्त्रसे दिया हो खल मथित (निर्जल मथा दही) जिसमें अधिक लवण हो और सिद्ध किये हुये जिन भक्ष्य पदार्थोंमें प्रत्यक्ष लवण गेरा हो इतने पदार्थ श्राद्धकर्ममें वर्जित हैं और जो तीखे और शाक अन्नके विकार आदि दुवारा पाकसेही भक्षणके योग्य होते हैं, उनका निषेध नहीं यद्यपि वासीका सर्वदा निषेध सिद्ध था फिर वचन इस कारण है कि माधवीयमें यमके कहे वासी दही वडे आदिका भी निषेध है यह चन्द्रिकामें लिखा है कि, मालपुए करंभ धान वटक सत्तु शाक मांस पूये दाल कृशर यवागू पायसखीर और घृतसे युक्त (लड्डू आदि) और सब वासी पदार्थ भी ये खाने योग्य हैं: खट्टे होंय तो न खाय वर्जितोंमें विश्वामित्रका वचन है कि, कपित्थ कुतुक नारियल पैनिक पका जामुनका फल चौलाई ये सब वर्जित हैं ॥ हेमाद्रिमें षट्त्रिंशत्का मत है कि, श्राद्धमें मर्कट (लौका) और राजमाष वर्जित हैं, पैठनसिका वचन है कि, बैंगन नलिका पोई कुसुंभ (करड) (अश्मन्तक) अमलतासका शाक अभक्ष्य है, पोत पोईको कहते हैं कुसुंभ कडशाक महाराष्ट्रमें प्रसिद्ध है मार्कण्डेयका वाक्य है कि अभिषव (सूक्त वा सन्धानक) शतपुष्पा (सोआ पालक) गवेधुक जम्भीरीका फल कोविदार सदा वर्जित है, शाठ्यायनका वाक्य है मारिष (मर्वा) नलिका

नालिका चैव रक्ता या च कलम्बिका । असुरान्नमिदं सर्वं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥" मारिषं मध्यदेशे मरुसा :इति ' महाराष्ट्रेषु राजगिरा इति च प्रसिद्धम् ॥ कलम्बिका वेण्वाकृतिपत्रा ॥ तत्रैव–'गान्धारिकापटोलानि श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्॥' गान्धारिका तन्दुलीयमिति चन्द्रिका ॥ ' जवासाख्या दुरालभा ' इति केचित्॥ भारते–" हिंगुद्रव्येषु शाकेषु अलाबुं लशुनं तथा । कुकुण्डकान्पलाबूनि कृष्णं लवणमेव च ॥ " पुनरलाबुग्रहणमुभयालाबुनिषेधार्थमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ कुकुण्डकं–वर्तुलच्छत्राकम् ॥ तत्रैव–'कुस्तुम्बुरुं कलिंगोत्थं वर्जयेदाम्लवेतसम् ॥' हेमाद्रौ ब्राह्मे–" वार्ताकं पञ्चशिम्बं च लोमशानि फलानि च । कलिङ्गं रक्तचारं च वीणाकं घृतचारकम् ॥ कपालं काचमारीचे करञ्जं पिण्डमूलकम् । गृञ्जनं चुलिकां चैव गाजरं जीवकं तथा ॥ २ ॥" वृन्ताकं–श्वेतम् ।' कण्डूरां श्वेतवृन्ताकं कूष्माण्डं च विवर्जयेत् ' इति देवलोक्तेः ॥ तेन कृष्णस्य न निषेध इति चन्द्रिकामाधवौ ॥ वस्तुतस्तु सदा श्वेतनिषेधात् पुनः श्राद्धे निषेधो व्यर्थः ॥ तेन भक्ष्यस्य कृष्णवृन्ताकस्यापि निषेधार्थमिति वयम् ॥ कन्दूराः–कपिकच्छूः । कूष्माण्डं–वृत्तालाबुः। पञ्चशिम्बं–वल्लमसूरराजमाषमटकुलित्थाः ॥ लोमशानि–कपित्थानि । रक्तचारं–लोहितचारफलम् । वीणाकं–कृष्णदीर्घकर्कटी । घृतचारकं–चिरस्थितचारफलम् । चारोलीति प्रसिद्धम् । कपालं–नारिकेलम् । काचं–कचूवृक्षफलम् । मारीचम्–आर्द्रमरीचानि। गृञ्जनं–पलाण्डुभेदः । पश्चिमदिशि प्रसिद्धः । न तु गाजरम् ।

(नाली) रक्तकलम्बिका ये सब राक्षसोंका अन्न है पितरोंको नहीं मिलता, रक्तकलंबिकाके पत्ते बांसकी समान होते हैं वहांही लिखा है कि गांधारिका (तण्डुलीयक या जवासा) पटोल इनको श्राद्धकर्ममें त्यागे, भारतमें लिखा है हींग द्रव्य और शाकोंमें अलाबू लहसुन कुकण्डिका (गोल छत्राक) अलावू काला लवण ये निषिद्ध हैं, पुनः अलावूका ग्रहण दोनों अलाबुओंके निषेधके लिये है यह पृथ्वीचन्द्रोदयका मत है वहांही लिखा है कि, कुस्तुंबुरु और कलिंगदेशमें उत्पन्न हुए अमलवेतका निषेध है ॥ हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका यह वचन है, बैंगन, पञ्चशिम्ब,(वल्ल,) मसूर, राजमाष, मठ,(कुलथी) लोमश (कैत) के फल, रक्तचार (चारका लालफल) वीणाक (कालीकाकडी) घृत चारक (बहुत दिनका चारफल) कपाल (नारियल) कंचु वृक्षका फल, गीली मिरच, करंज, पिंडमूलक, गाजर, चुलिका गृञ्जन, (सलगमका भेद) जीवक ये निषिद्ध हैं वृन्ताकसे श्वेतबैंगन लेना, कारण कि, देवलका वाक्य है कि, कण्डूर सपेद बैंगन कुंभांड (गोलघिया) इनको त्याग दे तिससे कालेका निषेध नहीं यह चन्द्रिका और माधवका मत है, सिद्धांत तो यह है कि, श्वेत तो सदैव निषिद्ध हैं फिर श्राद्धमें निषेध व्यर्थ पाया था तिससे भक्षणके योग्य भी काले बैंगनके निषेधार्थ यह वचन है यह हमारा मत है, अर्थ ऊपर करचुके हैं, हेमाद्रिने तो

तस्य पृथगुक्तेः हेमाद्रिणा तु गृञ्जनं गाजरमेवोक्तम् ॥ गौडश्राद्धकौमुद्यामप्येवं तच्चिन्त्यम् ॥ चुक्रिका चिरकालशुक्तं पानकम् ॥ चन्द्रिकायां हारीतः—'न वटप्लक्षोदुम्बरशेलुदधित्थनीपमातुलिङ्गानि भक्षयेत् ॥' शेलुः—भोकरसंज्ञः। दधित्थम्—कपित्थम्। स्मृतिसारे—"क्षीरे तु लवणं दत्त्वा ह्युच्छिष्टेपि च यद्घृतम्। स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम् ॥" गौडनिबन्धसागरे स्मृतिः—"नारिकेरोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना ॥ ताम्रपात्रे घृतं मांसं पञ्चगव्यं घृतेतरत्। आमिषं तु गवां मांसं दधि मद्यं पयो रजः ॥ द्रव्यान्तरयुतं मांसं पयसा संयुतं दधि। पयोऽनुद्धृतसारं च ताम्रपात्रे न दुष्यति ॥ २ ॥" श्राद्धे जलनिर्णयः। अथ जलम्। याज्ञवल्क्यः—'शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम्।' वर्ज्यं जलमुक्तं हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—"दुर्गन्धि फेनिलं क्षारं पङ्किलं पल्वलोदकम्। न भवेद्यत्र गोतृप्तिर्नक्तं यच्चाप्युपाहृतम्। यन्न सर्वार्थमुत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम्। तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव श्राद्धकर्मणि ॥२॥" निपानः—जलाशयः ॥ शुद्धितत्त्वे शङ्खः—"स्नानमाचमनं दानं देवतापितृतर्पणम्। शूद्रोदकेन कुर्वीत तथामेध्याद्विनिःसृतैः ॥" हेमाद्रावादित्यपुराणे—"चिरं पर्युषितं वापि

गृञ्जनसे गाजरही कहा है सलगम नहीं, गौडश्राद्धकौमुदीमें भी ऐसेही लेख है, सो योग्य नहीं, चुक्रिकासे चिरकालसे खट्टे पानकको लेना ॥ चन्द्रिकामें हारीतका वचन है कि, वट, पिलखन, गूलर, शेलु (वहेडा), दधित्थ (कैंत), नीप (कदम्ब), मातुलिंगका भक्षण न करै, स्मृतिसारमें लिखा है कि, दूधमें लवण और उच्छिष्टमें घृत देकर और धोबीके तीर्थमें स्नान करना तांबेके पात्रमें गव्य सुराके समान है, गौडनिबन्धके स्मृतिसारमें स्मृति है कि, नारियलका जल कांसीके पात्रमें और ताम्रपात्रमें रक्खा सहत और गव्य, ये घीको छोडकर मदिराके समान हैं, तांवेके पात्रमें धरा मांस और घीको छोडकर गव्य इनमें मांस गौके मांसके समान है, दही मदिराके, दूध रजके समान होता है, अन्य द्रव्यसे मिला मांस और जिसमेंसे माखन न निकाला हो ऐसा वे दूध ये ताम्रपात्रमें दूषित नहीं होते ॥ अब जलको कहते हैं। याज्ञवल्क्यका वचन है कि, जिसमें एक गौकी तृप्ति हो ऐसा पृथ्वीका स्वच्छ जल पवित्र है हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वचनसे वर्जित कहा है कि, जिसमें दुर्गंध हो झाग हो खारी हो कीच मिली हो और छोटे सरोवरका हो जिसमें गौ तृप्त न हो पहिली रात्रिका निकाला हो (वासी जल) और जिसका सबके निमित्त शास्त्रोक्त विधिसे उत्सर्ग (त्याग) न किया हो जो अशुद्ध निपान (चोवचा) का हो हे तात! ये जल श्राद्धकर्ममें सदैव निषिद्ध हैं ॥ शुद्धितत्त्वमें शंखका वाक्य है कि, स्नान दान आचमन देव और पितरोंका तर्पण ये शूद्रके और मेवके जलसे न करै हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका वचन है कि बहुत दिनका बासी और शूद्रका स्पर्श किया भी गंगाजल स्नान और

शूद्रस्पृष्टमथापि वा । जाह्नव्याः स्नानदानादौ पुनात्येव सदा पयः ॥"कात्यायनः-"अपो निशि न गृह्णीयान्न पिबेच्च कदाचन । उद्धृत्याग्निमुपर्यग्नेर्धाम्नो धाम्न इतीरयेत् ॥ " रजोदोषे तु प्रागुक्तं नारदीये-" त्यजेत्पर्युषितं पुष्पं त्यजेत्पर्युषितं जलम् । न त्यजेज्जाह्नवीतोयं तुलसीं बिल्वपङ्कजम् ॥ " अन्यान्यपि पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्ये-"मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः । रौप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः॥ पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारिणः । अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपा इति विश्रुताः ॥ २ ॥ " ब्राह्मे-" यतिस्त्रिदण्डः करुणा राजतं पात्रमेव च । दौहित्रं कुतपः कालश्छागः कृष्णाजिनं तथा ॥ " शस्तानीति शेषः ॥ दौहित्रं खड्गपात्रमिति कल्पतरुः ॥ अपरार्के स्मृत्यन्तरे-" अपत्यं दुहितुश्चैव खड्गपात्रं तथैव च । घृतं च कपिलाया गोर्दौहित्रमिति कीर्तितम् ॥ " ब्रह्माण्डे-" अमावास्यागते सोमे या तु खादति गोस्तृणम् । तस्या गोर्यद्भवेत्क्षीरं तद्दौहित्रमुदाहृतम् ॥ " स्मृतिसंग्रहे-" उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वान्तं च मृतकर्पटम् । श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥ " उच्छिष्टं- वत्सस्य दुग्धमित्यर्थः ॥ शिवनिर्माल्यं गङ्गोदकम् । वान्तं मधु । मृतकर्पटं-त्रसरीपटम् ॥ तिलनिर्णयः । तिलेष्वापस्तम्बः-" अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्टफलितास्तथा ।

दान आदिमें सदैव शुद्धि करता है, कात्यायनका वचन है कि रात्रिमें जलोंको ग्रहण न करे, और न कभी पीवे और रात्रिमें जलोंको निकालकर (अग्निमुपर्यग्ने धाम्नो धाम्नः) इस ऋचाको पढै, रजके दोषमें तो पहले कथन कर आये हैं । नारदीयमें लिखा है कि, वासी फूल और जलको त्याग दे, गंगाजल, तुलसी, पद्म और बेल वासी भी न त्यागें, अन्य भी पृथ्वीचन्द्रोदयमें मत्स्यपुराणके वचनसे कहे हैं कि मध्याह्न समय गैंडेका पात्र, नेपालका कंबल, चांदी, कुशा, तिल, गौ और आठवां दौहित्र ये आठों कुतप कहाते हैं, पापको (कुत्सित) कहते हैं उसको संताप (दुःख) करनेवाले ये आठ होते हैं ॥ ब्रह्मपुराणका वचन है कि संन्यासी, त्रिदण्डी, करुणा (दया) चांदीका पात्र, दौहित्र, कुतुपकाल, छाग (बकरा) काला मृगचर्म ये शुद्ध कहे हैं, यहां दौहित्रसे गैंडेका पात्र लेना यह कल्पतरु कहते हैं, अपरार्कमें किसी स्मृतिका वचन है कि, कन्याका पुत्र गैंडेका पात्र कपिला गौका घी यह दौहित्र कहाते हैं, ब्रह्माण्डपुराणका वचन है कि, अमावास्यामें चंद्रमाके आनेपर उस दिन जो गौ तृण खाती है उस गौका दूध दौहित्र कहाता है स्मृतिसंग्रहमें लिखा है कि, श्राद्धमें ये सात पवित्र हैं कि, वत्सका उच्छिष्ट दूध, शिवनिर्माल्य (गंगाजल) वान्त (शहत) मृतकर्पट (पुराना टसरीका वस्त्र) दौहित्र कुतपकाल और तिल ॥ तिलोंके विषय आपस्तंबका वचन है कि, जो तिल वनमें उत्पन्न हुए हों और जिनके

१ तथा च-जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ताः कृष्णवर्णा वनोद्भवाः । जर्तिलाश्चैव ते ज्ञेया अकृष्टोत्पादिताश्च ये ॥ अर्थात्-काले वनमें उत्पन्न हुए तिल जर्तिल कहाते हैं जो कि, विना जोते वनमें उपजते हैं ॥

ते वै श्राद्धे पवित्राः स्युस्तिलास्ते न तिलास्तिलाः ॥" अभावे-ग्राम्याः ॥ 'गौराः कृष्णास्तथारण्यास्तथैव त्रिविधास्तिलाः' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ श्राद्धे वर्ज्यानि । अथ वर्ज्यानि चन्द्रिकायाम् यमः-"कुक्कुटो विड्वराहश्च काकश्चाथ बिडालकः । वृषलीपतिश्च वृषलः षण्ढोऽवीरा रजस्वला ॥ एते तु श्राद्धकाले वै वर्जनीयाः प्रयत्नतः । खञ्जः काणः कुणिः श्वित्री दातुः प्रेष्यकरस्तथा ॥ न्यूनाङ्गोप्यतिरिक्ताङ्गस्तमप्यपनयेत्ततः ॥ २ ॥" वायवीये-"अन्नं पश्येयुरेते तु यदि वै हव्यकव्ययोः । तत्सृष्टव्यं प्रधानार्थं संस्कारस्त्वापदि स्मृतः ॥" सुमन्तुः-'चाण्डालादिवीक्षितमन्नमभोज्यमन्यत्र मृद्भस्महिरण्योदकस्पर्शात् ॥' तत्रैव जमदग्निः-"शुद्धवत्योथ कूष्माण्डयः पावमान्यस्तरत्समाः । पूतेन वारिणा दर्भैरन्नदोषमपानुदत् ॥" चन्द्रोदये-"पादुकोपानहौ छत्रं चित्ररक्ताम्बरं तथा । रक्तपुष्पं च मार्जारं श्राद्धभूमौ विवर्जयेत् ॥ " निर्णयदीपे-"घण्टानिनादो हयसंनिधानं शम्बूकशङ्खं कदलीदलं च । उन्मत्तजात्यर्कहयारिजानि श्राद्धस्य वैगुण्यकराण्यमूनि ॥" हयारिजं-महिषीक्षीरादि ॥ अथ श्राद्धदिनकृत्यम् । चन्द्रोदये उशनाः-'गोमयोदकैर्भूमिभाजनशौचं कुर्यात् ॥' पराशरः-"काञ्जिकं दधि तक्रं च शृतं वाशृतमेव च ।

विना जोते फल आवें वेही तिल श्राद्धमें पवित्र हैं, और तिल तिल नहीं हैं अर्थात् उत्तम नहीं हैं, वे न मिलें तो ग्रामके लेने, श्वेत कृष्ण और वनमें उत्पन्न ये तीन प्रकारके तिल हैं यह ब्रह्मपुराणमें कथन किया है ॥ अब त्यागे हुओंको कहते हैं, चन्द्रिकामें यमका वाक्य है कि, कुक्कुट (मुर्गा) और विष्ठाका भक्षक वराह, काक, बिलाव, शूद्रका पति, शूद्र, नपुंसक, विधवा स्त्री, रजस्वला ये श्राद्धकालमें प्रयत्नसे वर्जने योग्य हैं, खंज (लंगडा) काणा कुणी (कुष्ठविशेष) जिसके सुपेद दाद हों, दाताका सेवक, जिसका न्यून वा अधिक अंग हो इनको भी श्राद्धके स्थानसे दूर करै, वायवीयका वाक्य है कि, ये यदि हव्य और कव्यके अन्नको देखलें तो उस अन्नको त्यागदे और आपत्तिमें होय तो अन्नका संस्कार उचित है ॥ सुमन्तुका वाक्य है कि, चाण्डाल आदिसे देखा हुआ भी अन्न भोजनके योग्य नहीं, यदि उसमें मिट्टी भस्म सुवर्णका जल मिला होय तो दोष नहीं, वहां ही जमदग्निका कथन है कि, कूष्माण्डी पावमानी तरत्समंदी ऋचा पवित्र हैं, यह कुशाओंसे पवित्र जलके छिडकनेसे अन्नके दोषको दूर करती हैं, चन्द्रोदयमें लिखा है कि, खडाऊं, उपानह, छत्र, चित्र, और लालवस्त्र रक्तपुष्प और बिलाव इनको श्राद्धभूमिमें निषेध करै, निर्णयदीपमें लिखा है कि, ये श्राद्धके बिगाडनेवाले हैं कि, घंटाका शब्द घोडेका संनिधान शंबूक (कोपले) शंख केलेका पत्ता, धतूरा, आकके फूल आदि, हयारिज (भैंसका दूध आदि) यह श्राद्धमें निषिद्ध किये हैं ॥ अब श्राद्धदिनके कृत्यको कहते हैं । चन्द्रोदयमें शुक्रका वाक्य है कि, गोबर और जलसे भूमि और पात्रोंकी शुद्धि करै, पराशरका वाक्य है कि, कांजी दही मट्ठा ये पके हों वा पके

पूर्वमेव न दातव्यमेकोद्दिष्टेथ पार्वणे ॥" हेमाद्रौ पराशरः-"गृह्याग्निशिशुदेवानां ब्रह्मचारितपस्विनाम् । तावन्न दीयते किंचिद्यावत्पिण्डान्न निर्वपेत् ॥" कौर्मे-'तिलान्प्रकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजान् ॥' तत्रैव देवलः-'तत्रैव यन्त्रितो दाता प्रातः स्नात्वा सहाम्बरः । आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः ॥' अत्रात्मनेपदात्स्वयमेव पाकः कार्यः ॥ अशक्तौ पत्न्या, तदभावे बान्धवैः ॥ 'ततस्तु निपपाताशु सीता जनकनन्दिनी' इति पाद्मलिङ्गादिति हेमाद्रिः ॥ श्राद्धदीपकलिकायामाश्वलायनः-"समानप्रवरैर्मित्रैः सपिण्डैश्च गुणान्वितैः । कृतोपकारिभिश्चैव पाककार्यं प्रशस्यते ॥" व्यासः-"गृहिणी चैव सुस्नाता पाकं कुर्यात्प्रयत्नतः । निष्पन्नेषु च पाकेषु पुनः स्नानं समाचरेत् ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-"रजस्वलां च पाखण्डीं पुंश्चलीं पतितां तथा । त्यजेच्छूद्रां तथा वन्ध्यां विधवां चान्यगोत्रजाम् ॥ व्यङ्गकर्णीं चतुर्थाहःस्नातामपि रजस्वलाम् । वर्जयेच्छ्राद्धपाकार्थममातृपितृवंशजाम् ॥ २ ॥" मातृपितृवंशजभिन्नां त्यजेदित्यर्थः ॥ स्मृतिसारे-"न पाकं कारयेत्पुत्रीमन्यां वाप्यन्यगोत्रजाम् । मृतवन्ध्यां च गर्भघ्नीं गर्भिणीं चैव दुर्मुखीम् ॥" पाकभाण्डानि तु हेमाद्रौ नागरखण्डे-"सौवर्णान्यथ रौप्याणि कांस्य-

---

न हों इनको एकोद्दिष्ट और पार्वणश्राद्धमें पहिले ही न परसे, हेमाद्रिम पराशरका वाक्य है कि, घरकी अग्नि बालक ब्रह्मचारी तपस्वी इनको तवतक कुछ नहीं दिया जाता जवतक पिण्डदान नहीं करले, कूर्मपुराणका वाक्य है कि, श्राद्धके स्थानमें तिलोंको बखेरे, और चारों ओरसे बकरी बांधदे, वहांही देवलका वाक्य है कि, इस प्रकार यंत्रित हुआ दाता प्रातःकाल वस्त्रसहित स्नान करके बांधवोंसहित नये पात्रोंसे अन्नका आरम्भ करावे, यहां 'आरभेत' इस आत्मनेपदसे अपने आप पाक करै यदि अपनी शक्ति न होय तो स्त्रीसे करावे, आर वह न होय तो कुटुम्बियोंसे करावै इससे यह पद्मपुराणका प्रमाण है कि, फिर जनकनन्दिनी सीताने उनको शीघ्र पाक किया हेमाद्रि यह कहते हैं ॥ श्राद्धदीपकलिकामें आश्वलायनका वाक्य है कि अपन प्रवरके और सपिंड गुणवान् और अपने उपकारी जनोंसे पाक करना उत्तम है, व्यासका कथन है कि, स्त्री भलीप्रकार स्नान करके पाक बनावे पाक होचुकने पर फिर स्नान करे पृथ्वीचन्द्रोदयम ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, रजस्वला, पाखंडिनी, व्यभिचारिणी, जातिसे पतित, शूद्रा, वंध्या, विधवा और गोत्रकी जिसके कान टेढे हों और वह रजस्वला जिसने चौथे दिन स्नान किया हो तो जो माता पिताके वंशकी न हो, इतनी स्त्रियोंसे पाक न करावे । स्मृतिसारमें भी कथन किया है कि, पुत्रीके सिवाय अन्य गोत्रकी, जिसके बालक मरजाते हों वह वन्ध्या, गर्भपात करनेवाली और गर्भिणी दुर्मुखी इतनी स्त्रियोंसे पाक न बनवावे, पाकके पात्र तो हेमाद्रिमें नागरखण्डके वचनसे कहे हैं, सोना, चांदी, तांबा कांसी हो और मट्टीके भी

ताम्रोद्भवानि च । मार्त्तिक्यान्यपि भव्यानि नूतनानि दृढानि च ॥" तत्रैव आदित्यपुराणे–"पचेदन्नानि सुस्नातः पात्रेषु शुचिषु स्वयम् । स्वर्णादिधातुजातेषु मृन्मयेष्वपि वा द्विजः ॥ अच्छिद्रेष्वविलिप्तेषु तथानुपहतेषु च । नायसेषु न भिन्नेषु दूषितेष्वपि कर्हिचित् ॥ पूर्वं कृतोपयोगेषु मृन्मयेषु न तु क्वचित् ॥ ३ ॥ " वायुपुराणे–" न कदाचित्पचेदन्नमयःस्थालीषु पैतृकम् । अयसो दर्शनादेव पितरोपि द्रवंति हि ॥ कालायसं विशेषेण निन्दन्ति पितृकर्मणि ॥ फलानां चैव शाकानां छेदनार्थानि यानि तु ॥ महानसेपि शस्त्राणि तेषामेव हि सन्निधिः । इष्यते नेतरस्यात्र शस्त्रमात्रस्य दर्शनम् ॥ श्राद्धदेशे तु विदुषा पितॄणां तृप्तिमिच्छता । महानसे नियुक्तानामपि कार्यं न दर्शनम् ॥ ४ ॥" तत्रैव ॥ "पचमानस्तु भाण्डेषु भक्त्या ताम्रमयेषु च । समुद्धरति वै घोरात् पितॄन् दुःखमहार्णवात् ॥ तैजसानामभावे तु पिठरे मृन्मयेपि च । नवे शुचौ प्रकुर्वीत पाकं पित्रर्थमादरात् ॥ २ ॥ " तत्रैवादित्यपुराणे–" पक्वान्नस्थापनार्थे तु शस्यन्ते दारुजान्यपि । दर्व्यादीन्यपि कार्याणि यज्ञियैरपि दारुभिः ॥ " यमः–" विवाहे प्रेतकार्ये च मातापित्रोः क्षयेऽहनि । नवभाण्डानि कुर्वीत यज्ञकाले विशेषतः ॥ " श्राद्धपाकाग्निनिर्णयः । अथ पाकाग्निः ॥ हेमाद्रौ प्रजापतिः–' औपासनेनान्नसिद्धिरग्नौकरणमेव च ॥ ' पृथ्वी-

---

नये सुघर दृढ हों, वहांही आदित्य पुराणका वाक्य यह है कि भली प्रकार स्नान करके पवित्र हो सोना आदि धातुसे उत्पन्न और उन मट्टीके पात्रोंमें स्वयं ब्राह्मण अन्न पकावै, जिनमें छिद्र न हो कुछ लिपा न हो और जो अपवित्र वस्तुसे लिप्त न हो लोहेके न हों टूटे फूटे और दूषित न हों और जो एकवार काममें लाये गये हों ऐसे मृत्तिकाके पात्रमें भी न पकावै ॥ वायुपुराणमें भी कहा है कि, लोहकी टोकनीमें कदाचित् भी पितरोंके निमित्त अन्न न पकावै कारण कि, लोहके दर्शनसेंही पितर चले जाते हैं पितरोंके कर्ममें और लोहेका पात्र विशेषकर वर्जित है, महानस (रसोई) में उन शस्त्रोंकोही निकट रक्खै जो फल और शाकोंके छेदनार्थ हों, अन्य शस्त्रमात्रका रसोईमें दर्शनमात्र न करै, पितरोंकी तृप्तिकी इच्छा करता हुआ मनुष्य श्राद्धके देशमें उन शस्त्रोंमें भी न दिखावै जो रसोईमें भी युक्त हैं वहांही कहा है कि, मट्टीके और तांबेके पात्रमें पकाकर और खाकर पितरोंका घोर दुःखसमुद्रसे उद्धार करता है, यदि तेज (धातु) के न होयँ तो नये शुद्ध मट्टीके पिठर (हांडी) में पितरोंके निमित्त आदरसे पाक बनावै, वहांही आदित्यपुराणका वाक्य है कि पक्वान्न रखनेके निमित्त तो काठके वरतन भी श्रेष्ठ हैं और यज्ञके काठोंकी दर्वी (कलछी) आदि भी बनाले तो अच्छा है, यमका वाक्य है कि विवाह प्रेतका कर्म और माता पिताके मरणदिनमें और विशेषकर यज्ञके समयमें नवीन पात्रोंको करै ॥ अब श्राद्धमें पाककी अग्निको वर्णन करते हैं । हेमाद्रिमें प्रजापतिका वाक्य है कि, श्राद्ध, और अग्नौकरण ये दोनों उपासनाकी अग्निसे सिद्ध होते हैं पृथ्वीचन्द्रोदयमें अंगिराका कथन है कि

चन्द्रोदयेऽङ्गिराः–"शालाग्नौ तु पचेदन्नं लौकिके वापि नित्यशः । यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन् होमो विधीयते ॥ " मनुः–" वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । पञ्चयज्ञविधानं च पंक्तिं चान्वाहिकीं द्विजः ॥" श्राद्धस्य गृह्यत्वं चोक्तमपरार्केण ॥ अत्र विशेषः कर्मप्रदीपे–" प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात् । शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत् ॥ पाकान्तेऽग्निं समाहृत्य गृह्याग्नौ तु पुनः क्षिपेत् । ततोऽस्मिन्वैश्वदेवादि कर्म कुर्यादतन्द्रितः ॥२॥ " तदभावे लौकिके–" ततः पचेयुरन्नानि निर्वापानंतरं शनैः । वैवाहिकेऽग्नावन्यत्र लौकिके वापि संयतः ॥ " इति कलिकायां संग्रहोक्तेः ॥ पित्रर्थं निर्वापं कृत्वेत्यर्थः ॥ अत एव हेमाद्रौ वायुपुराणे–' पित्रर्थं निर्वपेद्भूमौ कूर्चे वा दर्भसंस्कृते ॥ " तत्रैव पद्ममात्स्ययोः–"अग्निमान्निर्वपेत्पैत्रं चरुं वा समुष्टिभिः । पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत्॥" चरुग्रहणान्न शाकादाविति हेमाद्रिः ॥ पिण्डपितृयज्ञार्थपाकविषयोऽयं निर्वाप इति तु युक्तम् ॥ अयं चेतरेषामग्निः ॥ आश्वलायनानां तु–' गुरुणाभिमृता अन्यतो वापक्षीयमाणा अमावास्यायां शान्तिकर्म कुर्वीरन् ' इत्यादिसूत्रेण पचनाग्नेरत्यागमुक्त्वा ' इहैवायमितरो जातवेदः । ' इत्यर्धर्चेन ' शमीमयीभ्यामरणिभ्या-

---

शालाकी अग्नि वा लौकिक अग्निमें नित्य अन्नको पाक करै, और जिस अग्निमें अन्नको पकावे उसीमें हवन करै, मनुका वाक्य है कि, द्विज अपने गृहस्थके कर्म और पंचयज्ञकी विधि और प्रतिदिनका पाक इन सबको शास्त्रमें कही विधिसे विवाहकी अग्निमें करै, श्राद्धको भी गृहका कर्म अपरार्कने लिखा है ॥ इसका विशेष वर्णन कर्मप्रदीपमें कहा है कि प्रातःसमय होमको करके और अग्निको निकालकर रसोईमें रखकर पाकका आरम्भ करै, जब पाक होचुके तब उस अग्निको लाकर गृह्यकी अग्निमें डालदे, फिर उसमें बलि वैश्वदेव आदि कर्मको आलस्यरहित करै, वैवाहिक अग्नि होय तो लौकिक अग्निमें करै, कारण कि कलिकामें संग्रहका इस प्रकार कथन है कि, फिर पितरोंके निमित्त अन्न देकर वैवाहिक अग्निमें वा लौकिक अन्नोंको पाक करै इसीसे हेमाद्रिमें वायुपुराणका वाक्य लिखा है कि पितरोंके निमित्त भूमिमें व कुशाओंके कूर्चपर निर्वाप करै, अर्थात् अन्नको प्रदान कर दे ॥ वहांही पद्म और मत्स्यपुराणके वाक्य हैं कि अग्निहोत्री ब्राह्मण अन्न वा समुष्टि चरुका निर्वाप करै, और उसको पितरोंको प्रदान करता हूं यह कहताहुआ दक्षिणदिशामें त्यागदे ये चरुके ग्रहणसे शाक आदिके विषयमें नहीं है, यह हेमाद्रि कहते हैं, यह निर्वाप पिंड और पितृयज्ञके निमित्त जो पाक कहा है उसका है यह तो युक्त है यह अग्नि इतरोंकी है, आश्वलायनोंकी तो गुरुसे मरे अथवा अन्यसे नष्ट हुएका अमावस्याको शांतिकर्म करै, इस सूत्रसे पाककी अग्निका स्वीकार कथन कर यहांही यह अन्य अग्नि है; इस आधीऋचासे शमीकी अरणियोंसे जिस अग्निको निकाले वह पचनाग्नि कहाती

माग्निं मन्येत्स पचनाग्निर्भवति' इति सूत्रे वृत्तौ चोक्तेः पचनाग्नावेव पाकः ॥ बौधायनेनाप्युक्तम्-'आहृतपचनाग्निमौपासनं वाभिप्रव्रजन्ति' इति ॥ स्मार्ताग्नौ पाकस्त्वन्यशाखाविषय इति केचित् ॥ वस्तुतस्तु पूर्वोक्तस्य सर्वाधानविषयत्वं युक्तम् ॥ शिष्टाचारेपि न पचनो दृश्यते ॥ अण्डविलायामपि 'सर्वाधानपक्षे वैश्वदेवश्राद्धं च पचने कुर्यात् । अन्यथौपासनम्' इत्युक्तम् ॥ अग्नौकरणं तु प्रयोगपारिजातादिभिराब्दिकादिसर्वश्राद्धेषु पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गोक्तेर्लौकिके पचने वा पाके कृतेपि गृह्याग्नौ पक्वचरुणैव कार्यमिति प्रतिभाति ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ 'विधुरोत्सन्नाग्न्यादेस्तु पृष्ठोदिविविधानेनाग्निसंपादनमित्युक्तं' हरिहरभाष्ये ॥ इति पाकाग्निः ॥ श्राद्धकृत्यनिर्णयः । चन्द्रिकायां मार्कण्डेयः-"अह्नः षट्सु मुहूर्तेषु गतेषु प्रयतान्द्विजान् । प्रत्येकं प्रेषयेत्तेषां प्रदायामलकोदकम् ॥" देवलः-"ततो निवृत्ते मध्याह्ने कृत्तरोमनखान् द्विजान् । अभिगम्य यथान्यायं प्रयच्छेद्दन्तधावनम् ॥ तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम् । पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदैविकपूर्वकम् ॥ २ ॥" औदुम्बरैस्ताम्रमयैः । 'अत्र क्षौरामलकस्नानादि निषिद्धतिथ्यादिव्यतिरिक्तविषयम्' इति हेमाद्रिर्माधवश्च ॥ यत्तु चन्द्रिकायां प्रचेताः-'तैलमुद्वर्तनं स्नानं दद्यात पूर्वाह्न एव च । श्राद्धभुग्भ्यो नखश्मश्रुच्छेदनं तु न कारयेत् ॥" इति तन्निषिद्ध-

---

है इसके सूत्र और वृत्तिके कहनेसे पचनाग्निमेंही पाक होता है ॥ बौधायनने भी कहा है कि, पचनाग्नि वा उपासनाग्निको लेकर संन्यास ग्रहण करते हैं स्मार्त अग्निमें पका तो अन्य शाखावालोंके निमित्त है यह कोई कहते हैं, सिद्धांत तो यह है कि, पूर्वोक्त वचन सर्वाधानके विषयमें उचित शिष्टाचारमें भी पंचनाग्निको नहीं देखते, अडविलायमें भी यही कहा है, सर्वाधान पक्षमें वैश्वदेवश्राद्धको पचनाग्निमें और दूसरे कर्मको उपासनाग्निमें करै; अग्नौकरण तो प्रयोग पारिजात आदिकोंने वार्षिक आदि सम्पूर्ण श्राद्धमें पिण्ड और पितृयज्ञको व्यतिषंग अर्थात् (असम्बन्ध) कहनेसे पाक चाहै लौकिक अग्निमें वा पचनअग्निमें किया हो, गृह्यअग्निमें पकाये चरुसेही अग्नौकरण करनाही हमको विदित होता है, मदनरत्नमें भी ऐसेही कहा है जिसकी अग्नि वीचमेंही नष्ट हुई हो वह विधिसे अग्निका सम्पादन करै, यह हरिहरभाष्यमें कहा है ॥ ॥ इति पाकाग्निः ॥ चन्द्रिकामें मार्कण्डेयका वाक्य है कि, जब दिनके छः मुहूर्त वीतजांय, तब एक २ सावधान हुए ब्राह्मणको आमले और जल लेकर भेजे देवलका कथन है कि, मध्याह्नके अनन्तर रोम और नख कटाये हुए ब्राह्मणोंके पीछे जाकर दँतोनोंको दे और तैल-अभ्यंग स्नान और पृथक् २ स्नानके द्रव्य तांबेके पात्रोंमें रखकर क्रमपूर्वक विश्वेदेवाओंको दे, यहां क्षौर और आमलोंसे स्नानआदि निषिद्ध तिथिसे भिन्नमें जानना चाहिये यह हेमाद्रि और माधवका कथन है, जो चन्द्रिकामें प्रचेताका वाक्य है कि कि, श्राद्धके भोक्ता ब्राह्मणोंको तैल और उवटना स्नान यह प्रथम दिन देवे और उनके नख और मूँछ डाढियोंका छेदन न

तिथ्यादिविषयम् ॥ निषिद्धतिथ्यादि तु प्रागुक्तम् ॥ अभ्यङ्गे तु कलिकायां कात्यायनः—" तैलमुद्वर्तनं देयं ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः । तैरभ्यङ्गश्च कर्तव्यो वर्ज्यकालं न चिन्तयेत् ॥" अपरार्के प्रचेताः—" स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च कर्मणि । श्राद्धकृच्छुक्लवासाः स्यान्मौनी च विजितेन्द्रियः ॥ " हेमाद्रौ जाबालिः—" ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम् । रत्यौषधं परान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥ " वस्त्रे विशेषमाह तत्रैव भृगुः" नग्नः स्यान्मलवद्वासा नग्नः कौपीनकेवलः । द्विकच्छोनुत्तरीयश्च अकच्छोऽवस्त्र एव च ॥ नग्नः काषायवासाः स्यान्नग्नश्चार्द्रपटः स्मृतः । नग्नो द्विगुणवस्त्रः स्यान्नग्नो रक्तपटः स्मृतः ॥ नग्नस्तु स्निग्धवस्त्रः स्यान्नग्नः स्यूतपटस्तथा ॥ ३ ॥ " ततः कर्ता ऊर्ध्वपुण्ड्रं कुर्यात् ॥ " जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि । तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥" इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ " यज्ञो दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च । वृथा भवति विप्रेन्द्र ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् " इति बृहन्नारदीयात् ॥ ' ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ' इति वृद्धपराशरोक्तेश्च ॥ अन्ये तु—" ऊर्ध्वं पुण्ड्रं द्विजातीनामग्निहोत्रसमो विधिः । श्राद्धकाले तु संप्राप्ते कर्ता भोक्ता च तत्त्यजेत् ॥ वामहस्ते च दर्भास्तु गृहे रङ्गवालिं तथा । ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥२॥ "इति संग्रहोक्तेः । ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा चन्द्राकारमथापि वा । श्राद्धकर्ता

करवावे वह क्षौरमें निषिद्ध पूर्वोक्त तिथिके विषयमें है ॥ निषिद्धतिथि पहले कहदी है॥ अभ्यंगके विषय तो कलिकामें कात्यायनका यह वाक्य है कि, ब्राह्मणोंको तेल और उबटना प्रयत्नसे देना, और वे वर्जितकालकी चिन्ता न करके उबटना करै अपरार्कमें प्रचेताका कथन है कि स्नानसे देव और पितृकर्मका अधिकारी शुक्ल वस्त्रसे मौन और जितेंद्रिय होकर स्नान करनेवाला होता है, हेमाद्रिमें जाबालिने कहा है कि, ताम्बूल दँतोन स्नेहसे स्नान भोजनका त्याग मैथुन औषधी पराया अन्न इनको श्राद्धकर्ता कर्ता त्याग दे ॥ वस्त्रमें विशेष वहांही भृगुजीने कथन किया है कि, ऐसा श्राद्धका नग्न होता है मलिन वस्त्र केवल कौपीनधारी, द्विकच्छ जिसपर डुपट्टा न हो अकच्छ और. वस्त्रहीन, गेरूसे रंगे कपडेवाला, गीले वस्त्रवाला दुहरा वस्त्र पहरे, लालवस्त्रवाला, चिकना वस्त्र, सिला हुआ वस्त्र पहरे त्याज्य हैं, फिर कर्ता ऊर्ध्वपुण्ड्र करै, क्योंकि, हेमाद्रिमें यह कहा है कि, जप होम दान पितृकर्म वेदपाठमें वह सब क्षीण होता है, जो ऊर्ध्वपुण्ड्रके विना किया हो बृहन्नारदीयका वाक्य है, कि हे विप्रेन्द्र ! ऊर्ध्वपुण्ड्रके विना किया यज्ञ दान जप होम वेदपाठ पितृकर्म व्यर्थ होता है, वृद्धपराशरका कथन है कि, देव और पितृकर्ममें ऊर्ध्वतिलक करै, और तो यह कहते हैं कि, द्विजातियोंको ऊर्ध्वपुण्ड्र की विधि अग्निहोत्रकी समान है, परन्तु जब श्राद्धकाल आवे तब कर्ता और भोक्ता उसको त्यागदे, बांये हाथमें कुशा और घरमें रंगकी पंक्ति और तिलकको देखकर पितर निराश चले जाते हैं, इस संग्रहके बचनसे ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र वा चन्द्राकार, तिलकोंको

न कुर्वीत यावात्पिण्डान्न निर्वपेत्" इति विश्वप्रकाशे वचनाच्च न कार्यमित्याहुः ॥ अत्राचाराद्व्यवस्था ॥ अत एव बृहन्नारदीये-'ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन, इति ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिर्विप्रविषयः ॥ निषेधः कर्तृपर इति पृथ्वीचन्द्रः ॥ यत्तु हेमाद्रौ देवलः-" ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे माल्यं तथैव च । निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् " इति तद्गन्धे त्रिपुण्ड्रविषयम् ॥ ' प्राक्पिण्डदानाद्गन्धाद्यैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहम् ' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ पुण्ड्रं वर्तुलमित्यपरार्के मदनरत्ने च ॥ पृथ्वीचन्द्रस्तु पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रकम्-" ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् । निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम् " इति वृद्धपराशरोक्तेः भोक्तुस्तिर्यग्लेपो भवत्येव ॥ "वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा । तिर्यगप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः " इति व्यासोक्तेरित्याहुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-" सदर्भेण तु हस्तेन यः कुर्यात्तिलकं बुधः । आचम्य स विशुद्ध्येत दर्भत्यागेन चैव हि ॥" श्राद्धारम्भकालनिर्णयः । श्राद्धारम्भकालमाहापरार्के गौतमः-"आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारोहणं बुधः । विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लंघयेत् ॥ " एतदेकोद्दिष्टे ॥ पार्वणे तूक्तं मात्स्ये-" ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्य-

---

श्राद्धकर्ता तबतक न करै जबतक पिण्डोंको न दे, इस विश्वप्रकाशके वचनसे तिलक न करै, इस निषेधमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी ॥ इसीसे बृहन्नारदीयका कथन है कि, कोई श्राद्धमें ऊर्ध्वपुंड्र और तुलसीकी इच्छा नहीं करते, ब्राह्मणके लिये ऊर्ध्वपुण्ड्रकी विधि है और कर्ताके लिये निषेध है, यह पृथ्वीचन्द्रका मत है जो हेमाद्रिमें देवलका वाक्य है कि, मस्तकपर पुण्ड्रको और कांधेपर मालाको और शूद्रीके पतिको देखकर पितर निराश हो चले जाते हैं, वह कथन मंत्रसे त्रिपुंड्रके विषयमें है, कारण कि, आश्वलायनने यह कहा है कि, पिण्डदानसे पहिले अपने शरीरको गंध आदिसे सुन्दर न करै, अपरार्कमें और मदनरत्नमें पुंड्रक गोलतिलक कहा है ॥ और पृथ्वीचन्द्रोदयने पुंड्रक त्रिपुंड्को कहाहै कारण कि, वृद्धपराशरका कथन है कि, ऊर्ध्व तिलक करै और त्रिपुंड् न करै, कारण कि, त्रिपुंड्को देखकर पितर निराश हो चलते हैं, श्राद्धका भोक्ता तो मस्तकपर तिरछा लेप करै, क्योंकि व्यासने कहा है कि, श्राद्धकालमें सदैव मस्तकमें तिलकको त्यागदे और तिरछे और ऊर्ध्व पुंड्रको तो प्रयत्नसे धारण करै । पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका लेख है कि, कुशा हाथमें लेकर जो बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्धको करताहै वह कुशाको त्यागकर आचमनसे शुद्ध होताहै ॥ श्राद्धके प्रारम्भका समय अपरार्कमें गौतमने कहा है कि, कुतपमें श्राद्धका प्रारम्भ करके आरोहण पर्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध करै, और विधिका ज्ञाता विधिमें स्थित होकर रौहिणका लंघन न करै यह भी एकोद्दिष्टके विषयमें है, पार्वण काल तो मत्स्यपुराणमें यह वर्णन किया है कि,

न्मुहूर्तचतुष्टयम् । मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते ॥" तथा—" मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मंदीभवति भास्करः । तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते ॥ " अथ श्राद्धपरिभाषानिर्णयः । चन्द्रिकायां कात्यायनः—" दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा । पातयेदितरं जानुं पितॄन् परिचरन् सदा ॥ " बौधायनः–प्रदक्षिणं तु देवानां पितॄणामप्रदक्षिणम् । देवानामृजवो दर्भाः पितॄणां द्विगुणास्तथा ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये शङ्खः—" आवाहनार्घ्यसंकल्पे पिण्डदानान्नदानयोः । पिण्डाभ्यञ्जनकाले तु तथैवाञ्जनकर्मणि ॥ अक्षय्यासनयोः पाद्ये गोत्रं नाम प्रकाशयेत् ॥ " तत्रैव परिशिष्टे—" क्षणे च पिण्डदाने च गन्धधूपाक्षये तथा । संकल्पे चासने दीपे अञ्जनाभ्यञ्जने तथा ॥ अन्नार्घ्यदानाद्यन्तेषु गोत्रं नाम च कीर्तयेत् ॥ " कलिकायां संग्रहे–" आसनावाहने पाद्ये अन्नदाने तथैव च । अक्षय्ये पिण्डदाने च षट्सु नामानि कीर्तयेत् ॥ " मात्स्ये " सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयाद्गोत्रं नाम तथैव च । पश्चाद्रूपं विजानीयात् क्रम एष सनातनः ॥ " तत्रैव—" सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता । सकारः कुतपो ज्ञेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत् ॥ " यथा-काश्यपगोत्रेति ॥ " पराशरसगोत्रस्य वृद्धस्य तु महात्मनः । भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं

कुतपके मुहूर्तसे पीछे जो चार मुहूर्त हैं, ये पांचों मुहूर्त स्वधा भवन इष्ट है, तैसेही वाक्य है कि, जिससे सदा सूर्य मध्याह्नमें मंद होताहै, तिससे मध्या में आरम्भ करना अनन्त फलोंका देनेवाला और श्रेष्ठ है ॥ अब श्राद्धकी परिभाषा कथन करते हैं । चन्द्रिकामें कात्यायन ऋषिका वाक्य है कि, देवताओंकी पूजा करता हुआ दक्षिण जानुको, और पितरोंकी पूजा करता हुआ वाम जानुको सदा झुकावे, बौधायनका कथन है कि, देवताओंकी प्रदक्षिण कुशा होती हैं, और पितरोंकी अप्रदक्षिण कुशा होती हैं, और देवताओंके सीधे (एक २) और पितरोंके द्विगुने होते हैं ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें शंखका कथन है कि, आवाहन, अर्घ्य, संकल्प, पिंडदान अन्नदान पिंडोंका स्नान और पूजन अक्षय्य जल आसन और पाद्य इनमें गोत्र और नामका उच्चारण करै, वहांही परिशिष्टका कथन है कि, काल पिंडदान, गंध धूप अक्षय जल संकल्प आसन दीप अंजन अभ्यंजन अन्न और अर्घ्यका दान इनके आदि और अन्तमें गोत्र नामका उच्चारण करै, कलिकामें संग्रहका वाक्य है कि, आसन आवाहन पाद्य अन्नदान अक्षय्य जल पिंडदान इन छः में नामोंका उच्चारण करै ॥ मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, प्रथम संबन्धको कथन करै फिर नाम गोत्रको, फिर पितरोंके रूपको जाने, यह सनातन क्रमहै, वहांही कहाहै कि, सकारसे बुद्धिमान् मनुष्य सदैव गोत्रको कहै, सकार कुतप जानना, तिससे तिसे यत्नसे कहै, जैसे काश्यपसगोत्र, और मोक्ष धर्मका प्रयोग भी है कि, पाराशरसगोत्र वृद्धमहात्मा पञ्चशिख भिक्षुका मैं परमधर्मात्मा शिष्य हूं, तिससे गोत्र सगोत्रके

शिष्यः परमधार्मिकः " इति मोक्षधर्मेषु प्रयोगाच्च ॥ तेन गोत्रसगोत्रयोः पर्यायत्वाच्छाखाभेदाद्व्यवस्थेति शूलपाणिः ॥ एतद्येषामाम्नातं तेषामेव ॥ हेमाद्रौ वृद्धप्रचेताः—" गोत्रं स्वरान्तं सर्वत्र गोत्रस्याक्षय्यकर्मणि । गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्तं एवं दाता न मुह्यति ॥ सर्वत्रैव पितुः प्रोक्तः पिता तर्पणकर्मणि । पितुरक्षय्यकाले तु पित्रे संकल्पने तथा ॥ शर्मन्नर्घ्यादिके कार्यं शर्मा तर्पणकर्मणि । शर्मणोऽक्षय्यकाले तु पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ३ ॥ " स्वरान्तं–संबुद्ध्यन्तमिति हेमाद्रिः ॥ तत्रैव चन्द्रिकायां च । स्मृत्यन्तरे–" गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते । यस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः कश्यपसम्भवाः ॥ " यत्तु सत्याषाढः–' अथाज्ञातबन्धोः पुरोहितगोत्रेणाचार्यगोत्रेण वेति ' तद्विवाहपरम् ॥ नामोच्चारणे विशेषमाह हेमाद्रौ बौधायनः–" शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु । गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥ " पित्रादिनामाज्ञाने तत्रैव–"पृथिवीषत्पितावाच्यस्तत्पिता चान्तरिक्षवत् । अभिधानापरिज्ञाने दिविषत्प्रपितामहः ॥ पित्रादीनां नाम यदा पुत्रैर्न ज्ञायते तदा "॥आपस्तम्बसूत्रेप्येवम् ॥ एतदन्यशाखापरम् ॥ आश्वलायनानां तूक्तं तत्सूत्रे–'यदि नामान्यविद्वांस्तत्पितृपितामहप्रपितामहेति ब्रूयात् ॥ ' तत्कारिकापि–'.नामानि चेन्नजानीयात्तत्तेत्यादि

पर्यायमें शाखाभेदसे व्यवस्था जानो यह शूलपाणिका मत है यह भी उनके निमित्तहै जिनको शास्त्रमें कहाहै ॥ हेमाद्रिमें वृद्धप्रचेताका कथन है कि, सब स्थानमें गोत्रके अन्तमें सम्बोधन होता है, क्षयाह श्राद्धमें गोत्रस्य और तर्पणमें गोत्र कहाहै, इस प्रकार देनेवाला मोहको नहीं प्राप्त होता, सब स्थानमें पितुः कहाहै तर्पणमें पिता और अक्षय्यमें पितुः और संकल्पमें पित्रे कहना चाहिये, अर्घ्य आदिके समय शर्मन् और तर्पणके समय शर्मा और क्षयी श्राद्धके समय शर्मणः उच्चारण करना इस प्रकार पितरोंको दिया अक्षय होताहै ॥ वहांही चन्द्रिकामें स्मृत्यन्तरका वाक्य है कि, गोत्रके ज्ञान न होनेमें काश्यप गोत्र कहै. तिससे ही श्रुतिने कहा है कि, सब प्रजा काश्यपसे उत्पन्न हुई हैं जो सत्याषाढने यह कहा है कि, जिसके गोत्रका ज्ञान न हो उसका कर्म पुरोहित वा आचार्यके गोत्रसे करै, सो विवाहकै विषयमें है, नाम उच्चारणमें विशेष हेमाद्रिमें तो बहुधा कथन किया है कि, ब्राह्मणके नामके अन्तमें शर्म क्षत्रियकेमें वर्म वैश्यके अन्तमें गुप्त शूद्रके अन्तमें दास लगावै, पिता आदिके नामका ज्ञान न होय तो वहांही कहा है कि, पिता पृथ्वी सत् और पितामह अन्तरिक्ष सत् और प्रपितामह दिविसत् कहना, जब पुत्र पिता आदिकोंके नामको न जानै तब यह जानना ॥ आपस्तम्बसूत्रमें भी ऐसेही कहा है कि, यह अन्य शाखाके विषयमें है आश्वलायनोंको तो उक्त सूत्रमें यह लिखा है कि, यदि नामोंका स्मरण न होय तो पिता पितामह प्रपितामह ऐसे ही उच्चारण करै, उसकी कारिका भी है कि, यदि नामोंको न जाने तो तत् इत्यादि क्रमसे

षदेत्क्रमात् ॥ '' तत्तेति सम्बन्धमात्रपरम् ॥ तेन पितृव्यादावपि तथेति गौडाः ॥ स्त्रीणां दान्तं नाम ज्ञेयम् ' दान्तं नाम स्त्रीणाम्' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः ॥ केचिद्देवीशब्दान्तमाहुः ॥ अन्ये तु देवी दा इति द्वयोः समुच्चयमाहुः ॥ हेमाद्रौ नारायणः–"विभक्तिभिस्तु यत्किञ्चिद्दीयते पितृदैवते । तत्सर्वं सफलं ज्ञेयं विपरीतं निरर्थकम् ॥" चन्द्रिकास्मृत्यर्थसारयोश्च नारदीये–"अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने तथा । अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषाः सम्बुद्धयः स्मृताः ॥" यत्तु व्यासः–"चतुर्थी चासने नित्यं संकल्पे च विधीयते । प्रथमा तर्पणे प्रोक्ता सम्बुद्धिमपरे जगुः ॥" इति ॥ अत्र शाखाभेदाद्व्यवस्थेति हेमाद्रिः ॥ हेमाद्रौ भृगुः–"अर्घ्यावनेजनं पिण्डमन्नं प्रत्यवनेजनम् । सम्बुद्धिं तत्र कुर्वीत शेषे षष्ठी विधीयते ॥" तत्रैव मातुर्विशेषो नागरखण्डे–"मातर्मात्रे तथा मातुरासने कल्पने क्षणे । गोत्रे गोत्राये गोत्रायाः प्रथमाद्या विभक्तयः ॥" हेमाद्रौ प्रभासखण्डे–"यज्ञोपवीतिना कार्यं दैवं कर्म प्रदक्षिणम् । प्राचीनावीतिना कार्यं पितृकर्माप्रदक्षिणम् ॥" अनुपनीतस्त्रीशूद्रादेस्तूत्तरीयेणैव सव्यापसव्ये ज्ञेये ॥ तस्योपवीतस्थानीयत्वात् ॥ ' अपसव्यं क्रमाद्वस्त्रं कृत्वा कश्चित्सगोत्रजः ' इति ब्राह्माच्चेति वाचस्पतिः ॥ यत्तु केचित्–' सदोपवीतिना भाव्यम् ' इत्यस्य पुरुषा-

---

कहे तत् इत्यादि कथन सम्बन्ध मात्रके विषयमें है तिससे वह पितृव्य (चाचा) आदिमेंही उसीप्रकार कहना गौडोंका कथन है कि, स्त्रियोंके नामके अन्तमें दा जानना, कारण कि पृथ्वीचन्द्रोदयमें गोभिलका कथन है कि, स्त्रियोंका नाम दांत होता है, कोई देवीशब्दान्त कहते हैं और तो देवी दा इन दोनोंका समुच्चय एकार्थ कहते है जैसे यशोदा देवी इति ॥ हेमाद्रिमें नारायणका कथन है कि, पितर और देवताओंके कर्ममें जो व्याकरणकी विभक्तियोंसे प्रदान किया जाता है वह सब सफल, और विपरीत निरर्थक होता है, चंद्रिका और स्मृत्यर्थसार और नारदीयमें कहा है कि, अक्षय्य जल, और आसनमें षष्ठी आवाहनमें द्विताया और अन्नदानमें चतुर्थी कहनी, और शेषमें विभक्ति सम्बोधनयुक्त होती है, और जो व्यासका कथन है कि, आसन और संकल्पमें चतुर्थी कहा है, और तर्पणमें प्रथमा सम्बोधन कहते हैं, यहां शाखाके भेदसे व्यवस्था है यह हेमाद्रि कहते हैं ॥ हेमाद्रिमें भृगुका वाक्य है कि, अर्घ्य अवनेजन पिण्ड अन्न प्रत्यवनेजन इनमें सम्बोधन विभक्तिओ कहे और शेषमें षष्ठी कही है, हेमाद्रिमें प्रभास खण्डका कथन है कि, सब देवकर्म सव्य और प्रदक्षिण क्रमसे करै और पितरोंका कर्म अपसव्य और अप्रदक्षिणसे करै, यज्ञोपवीत रहित स्त्री शूद्र आदिकतो दुपट्टेसेही सव्य अपसव्य जानने कारण कि, वही यज्ञोपवीतके स्थानमें है, ब्रह्मपुराणकाभी वाक्य है कि, कोई सगोत्री क्रमसे अपसव्य वस्त्रको करके श्राद्ध करै यह वाचस्पति कहते हैं ॥ जो कोई यह कहते हैं कि सदा उपवीत

र्थत्वात् ॥ प्राचीनावीतिकालेप्युपवीतान्तरेण तत्कार्यमेवेति ॥ तन्न ॥ विशेषेण बाधात् ॥ जमदग्निः–"सूक्तस्तोत्रजपं त्यक्त्वा पिण्डाघ्राणं च दक्षिणाम् । आह्वानं स्वागतं चार्घ्यं विना च परिवेषणम् ॥ विसर्जनं सौमनस्यमाशिषां प्रार्थनं तथा । विप्रप्रदक्षिणां चैव स्वस्तिवाचनकं विना ॥ पितॄनुद्दिश्य कर्तव्यं प्राचीनावीतिना सदा॥ २॥" हेमाद्रौ संग्रहे–"आदौ विप्रांघ्रिशौचाते़ऽभ्यर्चने विकिरे कृते । पिण्डानभ्यर्चयित्वा च विसर्ज्य ब्राह्मणांस्तथा ॥ आचामेच्छ्राद्धकर्ता च स्थानेष्वेतेषु सप्तसु । आद्यन्तयोर्द्विराचामेच्छेषेषु तु सकृत्सकृत्" ॥ २॥ तत्रैव–" श्राद्धारम्भेऽवसाने च पादशौचार्चनान्तयोः । विकिरे पिण्डदाने च षट्स्वाचमनमिष्यते ॥" आश्वलायनः -"दानाध्ययनदेवार्चाजपहोमव्रतादिकान् । न कुर्याच्छ्राद्धदिवसे प्राग्विप्राणां विसर्जनात् ॥" एतन्नित्यवर्ज्यमिति वोपदेवः ॥ इदं विष्णुभिन्नदेवपरम् ॥ "विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् । पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते॥पितृशेषं तु यो दद्याद्धरये परमात्मने । रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनः ॥२॥" इति स्कान्दात् ॥ ' पितरः सर्वे मनुष्या विष्णुनाशितमश्नंति ' इति श्रुतेः ॥ " यः श्राद्धकाले हरिभुक्तशेषं ददाति भक्त्या पितृदेव-

---

वाला रहै इस वचनको पुरुषार्थ होनेसे अपसव्यके समयमी दूसरे यज्ञोपवीतसे वह कर्म करै, सो ठीक नहीं कारण कि, विशेष वचनसें इसका विरोध है, जमदग्निका कथन है कि, सूक्त और स्तोत्रका जप पिंडोंका सूंघना, दक्षिणा, आह्वान, स्वागत, अर्घ्य, परिवेषण, विसर्जन सौमनस्य, मनकी प्रीति, आशीर्वादकी प्रार्थना, ब्राह्मणोंकी प्रदक्षीणा, स्वस्तिवाचन, इन कर्मोंको छोडकर जो पितरोंके निमित्त कियाजाय वह सब अपसव्यसे करना ॥ हेमाद्रिमें संग्रहका वचन है कि, आदिमें ब्राह्मणोंके चरण धोकर पूजन करके, विकिर देकर पिंडोंका अर्चन और ब्राह्मणोंका विसर्जन करके इन सात स्थानोंमें श्राद्धका कर्ता आचमन करै, और आदि अन्तमें दो वार और शेषमें एक वार आचमन करै वहांही कहा है कि श्राद्धका आरंभ और अन्त, चरणोंका शौच और पूजन इनका अन्त विकर पिंडदान इन छहोंमें आचमन इष्ट है ॥ आश्वलायनका कथन है कि दान पढना देवपूजा जप होम व्रतआदि इतने कर्म श्राद्धके दिन ब्राह्मणोंके विसर्जनसे पहिले न करै यह नित्यको छोडकर है यही वोपदेवने कहा है, यह भी विष्णुदेवके भिन्नमें है, कारण कि, स्कन्दपुराणका कथन है कि विष्णुको निवेदित अन्नसे अन्यदेवकी पूजा करै, और वही पितरोंको दे तो अनन्तफल प्राप्त होता है हरिपरमात्माको जो पितरोंका शेष देता है तो पितर रेतके भक्षण करनेवाले और क्लेशके भागी होते हैं, और श्रुतिमें भी कहा है कि पितर और सम्पूर्ण मनुष्य विष्णुके उच्छिष्टको भोजन करते हैं, ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, जो मनुष्य श्राद्धके समय विष्णुभोगका बचाहुआ और तुलसी मिलेहुए उसी अन्नके पिंड पितर

तानाम् । तेनैव पिण्डांस्तुलसीविमिश्रानाकल्पकोटिं पितरस्तु तृप्ताः ॥"इति ब्राह्मोक्तेश्चेति श्रीधरस्वामिनृसिंहपरिचर्यादयः ॥ एतत्सर्वं निबन्धविरोधान्निर्मूलम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे–'श्राद्धानि तु समभ्यर्च्य नृवाराहं जनार्दनम् ॥' शिवपुराणे–" पूजयित्वा शिवं भक्त्या पितृश्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ' पूर्वनिषेधस्तु विहितभिन्नपरः ॥ तथा हेमाद्रौ–" देवार्चा दक्षिणाङ्गादिः पादजान्वंसमूर्धनि । शिरोंसजानुपादेषु वामाङ्गादि च पैतृकम् ॥ कलिकायां स्मृत्यन्तरे–" श्राद्धारम्भे तु ये दर्भाः पादशौचे विसर्जयेत् । अर्चनादौ तु ये दर्भा उच्छिष्टान्ते विसर्जयेत् ॥ मार्जनादौ तु ये दर्भाः पिण्डोत्थाने विसर्जयेत् । उत्थानादौ तु ये दर्भा दक्षिणांते विसर्जयेत् ॥ प्रार्थनादौ तु ये दर्भा नमस्कारे विसर्जयेत् ॥ ३ ॥ " ऊहमाह विष्णुः–"मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम् ॥" यथान्यायमिति यत्र बहुवचनान्तः पितृशब्दस्तत्र सर्वपितृवाचित्वान्नोहः ॥ तत्रापि–'शुन्धन्तां पितरः' इत्यत्रोह एव । सर्वपितृवाचित्वे उत्तर- मन्त्रद्वयवैयर्थ्यात् ॥ बहुवचनं तु नोह्यते ॥ प्रकृतावसमर्थत्वात्पाशानितिवत् ॥ ऋगन्ते च नोहः ॥ तस्मादृचं नोहेदिति निषेधात् ॥ एकोद्दिष्टेप्येवम् ॥ प्रेतैकोद्दिष्टे तु एकवन्मन्त्रानूहे तैकोद्दिष्टे' इति विष्णूक्तेरूहः ॥ अत्र बहुवचनस्याप्यूहो वचनात् ॥

और देवताओंको प्रेम भक्तिसे देता है उसके पितर कोटिकल्पतक तृप्त होते हैं, यह श्रीधरस्वामी नृसिंहपरिचर्या आदिका कथन है, परन्तु यह संपूर्ण ग्रंथोंके विरोध होनेसे निर्मूल है, मानने योग्य नहीं ॥ इसमें विशेष हेमाद्रिमें विचारना, विष्णुधर्ममें कहा है कि, श्राद्धके दिन नृसिंह, और वराह जनार्दनका पूजन करै शिवपुराणमें कहा है कि, प्रीतिसे शिवजीकी पूजाकर पितरोंका श्राद्ध करै प्रथम शिवपूजनका निषेध तो शास्त्रके सिवाय अन्य विषयमें है, तैसे ही हेमाद्रिमें कहा है कि, पाद जानु कन्धे मस्तकको दक्षिण करके देवपूजन और शिर कन्धे जंघा चरणको बांये करके पितृ पूजन करै, कालिकामें स्मृत्यन्तरका वाक्य है कि, श्राद्धके आरम्भकी कुशाको पादशौचमें पूजनआदिकी कुशा पूजनके अन्तमें मार्जनआदिकी कुशा पिंडके उठानेमें उत्थान आदिकी कुशा दक्षिणाके अन्तमें और प्रार्थनाकी कुशा नमस्कारमें छोडदे ॥ विष्णुने ऊह अर्थात् पलटना कहा है कि, इसीप्रकार बुद्धियुक्त मनुष्य मातामहोंकाभी श्राद्ध न्यायसे मन्त्रोंका ऊह (नामका परिवर्तन कर) करै और शेषोंका मन्त्रवर्जित करै, न्यायसे यह कहनेसे कि; जहां बहुवचनांत पितृशब्द है वहां सबका वाची होनेसे परिवर्तन न करना वहांही 'शुन्धन्तां पितरः' यहां परिवर्तन ऊह होता है यदि पितर शब्द सब पितरोंका वाचक स्वीकार मानोगे तो अगले दो मन्त्र वृथा हो जांयगे, बहुवचनकातो प्रकरणमें असमर्थ होनेसे पाशानकी समान ऊह नहीं होता, ऋचाके अन्तमें ऋचाका ऊह न करै इस निषेधसे ऊह न करै वा एकोद्दिष्टमें भी ऐसेही है प्रेतके एकोद्दिष्टमें तो इस विष्णुके वाक्यसे ऊह होता है कि, एकोद्दिष्टमें मन्त्रोंमें एकव-

वृद्ध्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ शेषाणामिति पितृव्याद्येकोद्दिष्टे आवाहनादि मन्त्रवर्ज्यं कार्यमिति कल्पतरुः ॥ ऊहयोग्यपितृपदवान् मन्त्र एव तत्र न प्रयोज्यः ॥ न तूहः ॥ नापि पितृपदरहितः प्रयोज्य इति शूलपाणिः ॥ अर्थान्तरं चोक्तं प्राक् ॥ बह्वृचकारिकापि-" अर्घ्यप्रदानमन्त्रे तु मात्रादिपदमावपेत् । शुन्धन्तामिति पित्रादौ मात्रादिपदमावपेत् ॥" मातृश्राद्धे पिण्डदाने' 'ये च त्वामत्रानु '·इत्यत्र नोह इति वृद्धिकृत् ॥ तथा-"मातुः श्राद्धेप्यनूहेन कुर्यात्पिण्डानुमन्त्रणम् । दशादानमुपस्थानं तद्वत्कार्यमिति स्थितिः ॥ प्रवाहणमनूहेन तद्वत्प्राशनमिष्यते ॥" तथा-" आयन्तुनस्तिलोसीति उशन्तस्त्वेति यानि तु । अनूह्यः पितृशब्दोत्र पितृसामान्यवाचकः॥"आपस्तम्बानां तु वक्ष्यते ॥ हेमाद्रौ मार्कण्डेयः-'स्नातः स्नातान् समाहूतान् स्वागतेनार्चयेत्पृथक् ॥ ' कालिकायां नारदीये-" प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञां प्रगृह्य च । दद्याद्ब्रह्मदण्डार्थं हिरण्यं कुशमेव च ॥" तत्रैव संग्रहे-" तिथिवारादिकं ज्ञात्वा संकल्प्य च यथाविधि। प्राचीनावीतिना कार्यं सर्वं संकल्पनादिकम् ॥ सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयान्नामगोत्रे तथैव च । वस्वादिरूपतां चापि स्वपितॄणामनुक्रमात् ॥ २ ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये नारदीये-'श्राद्धार्थं समनुप्राप्तान्

चनका ऊह करना, यहां शास्त्रके कहे वचनसे बहुवचनकाभी ऊह होता है, वृद्धिआदि श्राद्धमें तो विशेष वर्णन करैंगे शेष पितृव्य आदिके एकोद्दिष्टमें आवाहन आदिके मन्त्रोंको त्यागकर सम्पूर्ण कार्य करना यह कल्पतरुमें कहते हैं शूलपाणिने तो यह कहा है कि, ऊहके योग्य पितृ पदवाला मन्त्रही वहां न पढे न ऊह करै, न पितृपदसे रहित श्राद्ध करै अर्थान्तर पहिले कह दिया है ॥ बह्वृचकारिकामें भी कहा है कि, अर्घ्यके दानमंत्रमें मातृआदि पदको कहै, ' शुन्धन्ताम्' इस मन्त्रमें' पितरः' शब्दके स्थानमें 'मातरः ' यह पद उच्चारण करै, वृत्तिकार तो यह कथन करते हैं कि, मातृश्राद्धके पिण्डदानमें और ' ये चत्वा ' मन्त्रोंको छोडकर ऊह न करै, तैसेही वचन है कि माताके श्राद्धमें विना ऊह पिंडोंका अनुमन्त्रण वस्त्रका दान और स्तुतिको करै और पिंडोंका प्रवाह और प्राशनभी विना ऊहके इष्ट माना है तैसेही वचन है कि 'आयन्तु नः ' तिलोसि, उशन्तस्त्वा ' इन मन्त्रोंके पितृ शब्दमें ऊह न करै कारण कि, वह सामान्यसे सब पितरोंका वाचक है, आपस्तम्बोंके निमित्त तो कहैंगे ॥ हेमाद्रिमें मार्कण्डेयका कथन है कि, स्नान करके स्नान किये और बुलायेहुए ब्राह्मणोंको सन्मानसे पृथक् २ अर्चन करै कालिकामें नारदका वाक्य है कि, प्रायश्चित्तसे विशुद्धात्मा मनुष्य ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर ब्राह्मणोंको ब्रह्मदण्डके निमित्त सुवर्ण और कुशा दे, वहां ही संग्रहका वाक्य है कि, तिथि वार आदिको जानकर और संकल्प करके संकल्प आदि सम्पूर्ण कर्म अपसव्य होकर करै प्रथम सम्बन्धको फिर नाम गोत्रको फिर अपने पितरोंके वसुआदि रूपको क्रमसे कहै, चन्द्रोदयमें नारदीयका

विप्रान् भूयो निमन्त्रयेत् ॥ ' आपस्तम्बस्तु-' पूर्वेद्युर्निमन्त्रणं परेद्युर्द्वितीयं तृतीयमामन्त्रणम् ' इत्याह ॥ यूयं मया निमन्त्रणीया इति निवेदनरूपमाद्यम् ॥ तद्विधिमाह शौनकः-"गृहीत्वाऽमुकसंज्ञस्यामुकगोत्रस्य चामुके । श्राद्धे तु वैश्वदेवार्थं करणीयः क्षणस्त्वया ॥ इत्येवं श्राद्धकृद्ब्रूयादों तथेति वदेत्तु सः । श्राद्धस्य कर्ता स ब्रूयात्तं प्राप्नोतु भवानिति । स वदेत् प्राप्नुवानीति चेतरस्तं प्रति द्विजः ॥ ३ ॥' दैवे पार्वणे पुरूरवार्द्रवौ वाच्यौ ॥ पित्रादेरप्यनेनैव वृणीत विधिना द्विजान् ।' ततः कर्ता बह्वृचोऽनाहिताग्निः पिण्डपितृयज्ञे परिस्तरणादीध्माधानान्तं कुर्यात् ॥ ' अर्धाधानिनोप्येवम्' इति प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च । भाष्यकारमते आह्निकेप्येवम् ॥ वृत्तिकारमते नेदम् ॥ हेमाद्रौ शम्भुः-" सम्मार्जितोपलक्षिते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले । उदक्प्लवमुदीच्यं स्याद्दक्षिणं दक्षिणाप्लवम् ॥ ' व्याघ्रः-" उत्तरेऽक्षतसंयुक्तान् पूर्वाग्रान् विन्यसेत्कुशान् । दक्षिणे दक्षिणाग्रांस्तु सतिलान् विन्यसेत्कुशान् ॥ " तत्रैव बौधायनः-" चतुरस्रं त्रिकोणं च वर्तुलं चार्धचन्द्रकम् । कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम् ॥ " तत्रैव लौगाक्षिः-" हस्तद्वयमितं कार्यं वैश्वदेविकमण्डलम् । दक्षिणे च चतुर्हस्तं पितॄणामंघ्रिशौचने॥"कालिकायां संग्रहे तु-'प्रादेशमात्रं देवानां चतुरस्रं तु मण्डलम् । त्यक्त्वा षडंगुल

कथन है कि, श्राद्धके निमित्त आये ब्राह्मणोंको फिर भी निमन्त्रण दे, आपस्तम्ब तो यह कहते हैं कि, पहिले दिन निमंत्रण और दूसरे दिन दूसरा निमंत्रण और तीसरे दिन आमंत्रण होता है, उनमें प्रथम मैं निमंत्रण दूंगा, यह वात निवेदनरूप है ॥ उसकी विधि शौनकने यह कही है कि, अमुक नाम अमुक गोत्रके अमुक नाम श्राद्धमें विश्वेदेवाओंके निमित्त आप क्षण (अवकाश रखना) ऐसे ब्राह्मणसे श्राद्धका करनेवाला कहै, इसके उत्तर ब्राह्मण ' ओम्' कहै, फिर श्राद्ध करनेवाला आप आइये ऐसे कहे, पार्वणमें पुरूरव और आर्द्रव देवता कहने, पिता आदिके ब्राह्मणोंकोभी इसी विधिसे निमंत्रण दे, फिर करनेवाला बह्वृच और अग्निहोत्री न होय तो पिंडपितृयज्ञ कुशाओंका परिस्तरण ईंधनके आधानपर्यन्त कार्य करै अर्द्धाधानमें भी यही क्रम करना, प्रयोगपारिजातमें, परिशिष्टमें और भाष्यकारके मतमें आह्निक विधि करना ऐसाही है वृत्तिकारके मतमें नहीं है ॥ हेमाद्रिमें शम्भुका कथन है कि, सम्यक् प्रकार लिपेहुए द्वारेपर मंडल करै, उत्तर दिशाका मण्डल उत्तरको दक्षिण दिशाका दक्षिणको नीचा होना चाहिये, व्याघ्रका कथन है कि, उत्तरके मण्डलमें चावलोंसहित उत्तराग्र कुशा और दक्षिणमें तिलोंसहित दक्षिणाग्र कुशा रखनी चाहिये वहांही बौधायनका कथन है कि, चौकोर तिकोना गोल अर्द्धचन्द्राकार मण्डल क्रमसे ब्राह्मणोंके निमित्त करै, वहांही लौगाक्षिका कथन है, कि, विश्वेदेवाओंका मण्डल दो हाथका और उसके दक्षिणओर पितरोंका मण्डल पादशौचका बनाना चाहिये, कलिकामें संग्रहके वचनसे यह कथन किया है कि, देवताओंका चौकोर मण्डल बिलस्तभर और उससे दक्षिण छः हाथपर

तस्माद्दक्षिणे वर्तुलं तथा " इत्युक्तम् ॥ स्मृत्यन्तरे " गर्तः पंचांगुलो विप्रे जानुमात्रो महीभुजि । प्रादेशमात्रो वैश्ये च साधिकः स तु शूद्रके ॥ तिर्यगूर्ध्वप्रमाणेन व्याख्यातो दैवपित्र्ययोः । चतुरस्रं वर्तुलं च कथितं गर्तलक्षणम् ॥ पादप्रक्षालनं प्रोक्तमुपवेश्यासने द्विजान् । तिष्ठंश्चेत्क्षालनं कुर्यान्निराशाः पितरो गताः ॥ ३ ॥ इति ॥ " तत्समूलत्वे मण्डलाग्रे पृथक् ज्ञेयम् ॥ तत्र गोमये हेमाद्रौ भृगुः–"अत्यन्तजीर्णदेहाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः। आर्ताया नवसूताया न गोर्गोमयमाहरेत् ॥" मात्स्ये–" अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यापसव्यवत् । विप्राणां क्षालयेत्पादानभिवन्द्य पुनः पुनः ॥ प्रत्यङ्मुखः स्थितः कुर्याद्विप्रपादाभिषेचनम् ॥ " तत्रैव भविष्ये–' प्रक्षालयेद्विप्रपादान् शन्नोदेवीरिति त्यृचा ' पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धवसिष्ठः–' न कुशग्रन्थिहस्तस्तु पाद्यं दद्याद्विचक्षणः ' कलिकायां संग्रहे–" ततः प्रक्षालयेत्पादौ भार्यास्रावितवारिणा ॥ " तथा–' श्राद्धकाले यदा पत्नी वामे नीरप्रदा भवेत् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ " तत्रैव–' नाधः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्रादिकर्मसु ' पाद्यानन्तरमर्घ्यमपि दद्यादिति

बिलस्तभरही पितरोंका निर्माण करे ॥ जो स्मृत्यन्तरमें यह कहा, कि, ब्राह्मण पांच अंगुलका राजा जानुपर्यन्त वैश्य प्रादेश (बिलस्तमात्र) इससे कुछ अधिक शूद्र गड्ढा करे, वह देवकर्ममें तिरछा और पितृकर्ममें ऊंचा होना चाहिये चौकोर और गोल होना उस गर्तका लक्षण है और उस गड्ढेमें आसनपर बैठे हुए ब्राह्मणोंके चरण प्रक्षालन करे, यदि खडे होकर चरण धोवे तो पितर निराश चले जाते हैं, वह गर्त यदि प्रमाण युक्त होय तो मण्डलके आगे पृथक् जानना श्राद्धके गोबरके विषय हेमाद्रिमें भृगुका कथन है कि, अत्यन्त जीर्णदेहवाली, वन्ध्या, रोगिन, नई ब्याई, गौका गोबर न मँगवावै, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, अपसव्य होकर पुष्प सहित चावलोंसे पूजा और वारंवार प्रणाम करके ब्राह्मणोंके चरणोंको पश्चिमको मुख करके धोवै, वहांही भविष्यका कथन है कि, 'शन्नोदेवी' इस ऋचाको पढकर ब्राह्मणोंके चरण धोवै पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्ध वसिष्ठका कथन है कि, कुशाकी ग्रन्थी हाथमें लेकर बुद्धिमान् मनुष्यको पाद्य देना चाहिये, कलिकामें संग्रहका कथन है, फिर स्त्रीके दियेहुए जलसे चरणोंको धोवै ॥ तैसेही वचन है कि, यदि श्राद्धके समय वामभागमें होकर पत्नी जल दे तो वह श्राद्ध आसुर हो जाता है, पितरोंको प्राप्त नहीं होता, वहांही कहा है कि, पिता आदिक कर्मके श्राद्धका कर्ता आसनके विना चरण न धोवै पाद्यके अनन्तर अर्घ्य भी दें यह हेमा-

---

१ तथा च–सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः स्थिता । विप्रपादक्षालने च अभिषेके च वामतः ॥ अर्थात्–यह वचन इसका अपवाद है जो कहा है कि, सब धर्मकार्यमें पत्नी दक्षिण ओर स्थित रहै, ब्राह्मणोंके पादप्रक्षालन और अभिषेकमें बाईं ओर रहै ॥

हेमाद्रिः ॥ तत्रैव लौगाक्षिः-' मण्डलादुत्तरे देशे दद्यादाचमनीयकम् ॥' तत्रैव-" विधाय क्षालनं तेषां द्विराचमनमिष्यते । स्वयं चापि द्विराचामेद्विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः ॥ " हेमाद्रौ नारदीये -" यत्राचमनवारीणि पादप्रक्षालनोदकैः । संगच्छन्ते बुधाः श्राद्धमासुरं तत्प्रचक्षते ॥ " हेमाद्रौ व्यासः-" सव्येनैवासनं धृत्वा दक्षिणे दक्षिणं करम् । व्याहृतीभिः समस्ताभिरासनेपूपवेशयेत् ॥ समाध्वमिति चैवोक्त्वा दक्षिणं जानु संस्पृशन् । आस्यतामिति तान्ब्रूयादासनं संस्पृशन्नपि ॥ २ ॥ " हेमाद्रौ शातातपः-" द्वौ दैवेऽथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत् । पित्र्ये तूदङ्मुखांस्त्रींश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान् ॥ " द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ॥' यत्तु हेमाद्रौ हारीतः-' दक्षिणाग्रदर्भे प्राङ्मुखान् भोजयेत, उदङ्मुखानित्येके' इति तन्मैत्रायणीयविषयम् ॥ ' प्राङ्मुखान् भोजयेदुदङ्मुखानित्येके ' इति तत्परिशिष्टात् विकल्प इति हेमाद्रिः ॥ माधवीये यमः-"भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः । उपविष्टेष्वनुप्राप्तः कामं तमपि भोजयेत् ॥" कौर्मे-'अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रचक्षते ।' विप्रनियमो माधवीये-"पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनव्रतान्विताः । उच्छिष्टो-

---

द्रिका मत है, वहांही लौगाक्षिका कथन है कि, मण्डलके उत्तर देशमें आचमन दे वहांही कहा है कि, ब्राह्मणोंके चरण धोकर दो वार आचमन करावै, और श्रद्धासे आप भी दो वार आचमन करै, हेमाद्रिमें नारदीयका कथन है कि, जहां आचमनका जल चरणप्रक्षालनके पानीमें मिलजाय, हे पंडितो ! वह श्राद्ध आसुर कहाता है ॥ हेमाद्रिमें व्यासका कथन है कि, सव्यसे आसन रखकर और दक्षिण हाथपर दक्षिण हाथ रखकर समस्त व्याहृतियोंसे आसनोंपर बैठावै, दक्षिण जंघाका स्पर्श करता हुआ क्षमा करो यह कहकर आसनको स्पर्शकर बैठो, इस प्रकार कहै, हेमाद्रिमें शातातपका कथन है कि, देवकर्ममें अथर्ववेदी दो ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बैठावै, और पितृ कर्ममें उत्तराभिमुख बहृच अध्वर्यु सामवेदी तीन २ बैठावै, याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, देवकर्ममें दो पूर्व मुख और पितृकर्ममें तीन २ वा एक २ उत्तरमुख बैठावै, जो हेमाद्रिमें हारीतका कथन है कि, दक्षिणाग्र कुशाओंपर प्राङ्मुख ब्राह्मणोंको भोजन करावै कोई यह कहतेहैं कि, उत्तराभिमुखोंको भोजन करावै, वह मैत्रायणीय शाखाके विषयमें है, कारण कि, उनका यह परिशिष्टहै प्राङ्मुखोंको जिमावै, कोई कहतेहैं कि, उत्तर मुखोंको विकल्प हो यह हेमाद्रिने कहाहै ॥ माधवीयमें यमका वाक्यहै कि, भिक्षु (संन्यासी) ब्रह्मचारी भोजनके निमित्त ब्राह्मणोंके बैठे पीछे आया हो उसकोभी यथेच्छ जिमावै, कूर्मका कथन है कि, जिसमें अतिथि भोजन न करै, वह श्राद्ध नहीं कहाता ब्राह्मणोंका नियम माधवीयमें कहा है कि, सबके हाथमें पवित्री हों मौन हों और

च्छिष्टसंस्पर्शं वर्जयन्तः परस्परम् ॥" तत्रासनानि पृथ्वीचन्द्रोदये यमः-'आसनं कुतुपं दद्यादितरद्वा पवित्रकम् ॥' हेमाद्रौ चमत्कारखण्डे-"पितॄणां घटितं हैमं राजतं वापि चासनम् । येन ताम्रमयं दत्तमासनं पितृकर्मणि ॥ स वै दिव्यासनारूढो न हि प्रच्यवते दिवः ॥" हेमाद्रौ नागरखण्डे-'अयःशंकुमयं पीठं प्रदेयं नोपवेशने ॥' कलिकायां संग्रहे-"क्षौमं दुकूलं नैपालमाविकं दारुजं तथा । पार्णं तार्णं बृसीं चैव विष्टरादि च विन्यसेत् ॥ अग्निदग्धान्यायसानि भग्नानि च विवर्जयेत् ॥" हेमाद्रौ छागलेयः-"पश्चाद्भागादुपक्रम्य प्राच्यां पंक्तिर्यथा भवेत् । दक्षिणासंस्थिता ह्येषा पितॄणां श्राद्धकर्मणि ॥" पुलस्त्यः-"श्रीपर्णी वारुणी क्षीरी जम्बुकाम्रकदम्बकम् । सप्तमं वाकुलं पीठं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥" संग्रहे-"शमी च काश्मरी शेलुः कदम्बो वारुणस्तथा । पञ्चासनानि शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा ॥" कारिका-'द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रीनिप्रानुदगाननान् ॥' पैठीनसिः-'कुतपः श्राद्धवेलायां श्रोत्रियो यदि दृश्यते ॥' आश्वलायनः-'नीवीवासोदशान्तेन स्वरक्षार्थं प्रबन्धयेत् ॥' वृद्धयाज्ञवल्क्यस्तु-'दक्षिणे कटिदेशे तु तिलैः सह कुशत्रयम् ॥' यत्तु कातीयम्-'नीवी कार्या दशागुप्तिर्वामकुक्षौ कुशैः सह' इति ॥ तद्वृद्धिश्राद्धे' पितॄणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीता तु दैविके' इति स्मृत्य-

---

कोईभी उच्छिष्टका परस्पर भोजन समय स्पर्श न करै, आसन वर्णन करते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें यमका कथन है कि, कुतुप आसन वा पवित्र दे ॥ हेमाद्रिमें चमत्कारखंडमें कहाहै कि, पितरोंको सुवर्ण, चांदी, ताम्रका आसन देनेसे वे स्वर्गसे च्युत नहीं होते, हेमाद्रिमें नागरखंण्डमें लिखाहै कि, शंकुयुक्त आसन बैठनेके निमित्त न दे कालिकामें संग्रहका कथन है कि, क्षौम (रेशम) का नैपालकी ऊन, काठ, तृण, पत्ते बृसी आदिका आसन दे अग्निदग्ध और भग्न आसनोंको त्यागदे ॥ हेमाद्रिमें छागलेयका कथनहै कि, आसन ऐसा हो जिसकी पंक्ति पूर्वको न हो, दक्षिणको स्थित पंक्ति पितरोंके श्राद्ध कर्ममें होती है, पुलस्त्यका कथन है कि, श्रीपर्णी वारुणी, क्षीरी, जामुन, आम, कदम्ब, वकुल आसनपर दिया पितरोंको अक्षय होता है, संग्रहमें लिखा है कि, शमी, काश्मरी, शेलु, कदम्ब, वारुण यह पांच श्राद्ध और देवपूजामें श्रेष्ठ हैं, कारिकाका कथन है कि, देवश्राद्धमें दो ब्राह्मण प्राङ्मुख, और पितृ श्राद्धमें उत्तर मुख तीन होतेहैं ॥ पैठीनसिका कथन है कि, श्राद्धके समय वेदपाठी दीखजाय तो कुतप काल समझना आश्वलायनका कथन है कि, नीवीके वस्त्रको अपनी रक्षाके लिदशाके अन्तसे बांधले, वृद्ध याज्ञवल्क्य तो दक्षिण कटिमें तिलोंसहित तीन कुशा रक्खै, जो कातीय कथन करतेहैं कि, नीवी, दशासे गुप्त वाम कुक्षिमें तिलों सहित कुशासे करनी यह वृद्धिश्राद्धमें जानना क्योंकि यह स्मृत्यन्तर है कि, पितरोंके कर्ममें दक्षिण पार्श्वमें और देवकर्ममें वाममें करै, वाममें

न्तरात् ॥ वामे दक्षिणे वेत्याचाराद्व्यवस्थेति मदनपारिजाते ॥ आचार्यः- "प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्रीस्मरणं तथा । श्राद्धं कर्तास्मीति वदेद्विप्रैर्वाच्यं कुरुष्व च ॥" ब्राह्मे-"ततस्तिलान् गृहे तस्मिन् विकिरेच्चाप्रदक्षिणम् । श्रद्धया परया युक्तो जपेदपहता इति ॥" स्मृत्यर्थसारे-'अपहता इति तिलान्विकीर्य उदीरतामित्यृचा प्रोक्षेत ॥' पराशरः-"तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रयत्नतः । प्रोक्षयेदन्नजातं तु शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये ॥" हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे-"श्राद्धभूमौ गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम् । वस्वादींश्च पितॄन् ध्यात्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तते ॥ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमोनमः । आदिमध्यावसानेषु त्रिरावृत्तं जपेद्बुधः । पितरः क्षिप्रमायांति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च ॥ ३ ॥" तत्रैव स्कान्दे-"तिला रक्षन्तु ह्यसुरान् दर्भा रक्षन्तु राक्षसान् । पंक्तिं वै श्रोत्रियो रक्षेदतिथिः सर्वरक्षकः ॥" वसिष्ठः-'शुद्धवतीभिः कूष्माण्डीभिः पावमानीभिश्च पाकादि प्रोक्षयेत् ॥' अथ देवार्चा ॥तत्र प्रत्युपचारमाद्यन्तयोरपो दद्यादित्युक्तं वृत्तौ स्मृत्यर्थसारे च ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे-" आसनेष्वासनं दद्याद्वामे वा दक्षिणेऽपि वा । पितृकर्मणि वामे च दैवे दद्यात्तु दक्षिणे ॥ " प्रचेताः-" आसनेष्वासनं दद्यान्न तु पाणौ कदाचन । धर्मो

वा दक्षिणमें इसकी देशाचारसे व्यवस्था है यह मदनपारिजातमें कहाहै ॥ आचार्यका कथन है कि, तीन प्राणायाम और गायत्रीका स्मरण करके श्राद्ध करताहूं ऐसे कहै, कर इस प्रकार ब्राह्मण कहै, ब्रह्मपुराणका कथन है, फिर वाम क्रमसे उस घरमें तिलोंको गेरै, स्मृत्यर्थसारमें है परम श्रद्धासे युक्त ' अपहता ' इस ऋचाको पढकर तिल डाले, ' उदीरता ' इस ऋचाको पढ प्रोक्षण करै पराशरने लिखा है कि, " तद्विष्णोः " इस मन्त्र वा गायत्रीको पढकर सावधानीसे शूद्रदर्शन आदिकी शुद्धिके निमित्त सब अन्नोंको छिडकै ॥ हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका कथन है कि, श्राद्धकी पृथ्वीमें, गया और गदाधर भगवान्‌का ध्यान और उन दोनों को नमस्कार करके फिर श्राद्धका प्रारम्भ करना चाहिये, और देवता पितर महायोगी स्वाहा स्वधा इनको नित्य नमस्कार है इस मन्त्रको श्राद्धके आदि मध्य अन्तमें बुद्धिमान् मनुष्य तीन वार जपै तो पितर शीघ्र आगमन करते हैं और राक्षस पलायन करते हैं, वहांही स्कन्दपुराणका कथन है कि, तिल असुरोंसे कुशा राक्षसोंसे पंक्तिमें वेदपाठी और अतिथि सबसे रक्षा करते हैं, वसिष्ठका कथन है कि, 'शुद्धवती० कुष्माण्डी० पावमानी०' ऋचाओंसे पाकआदिका प्रोक्षण करै ॥ अब देवपूजाको वर्णन करते हैं उस पूजाके आदि और अन्तमें प्रति उपचारमें जलप्रदान करै यह वृत्ति स्मृत्यर्थसारमें कथन किया है. हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, वाम और दक्षिण आसनोंपर आसन दे, पितृकर्ममें वाममें और देवकर्ममें दाक्षि-

स्तीरपथ मन्त्रेण गृह्णीयुस्ते तु तान्कुशान् ॥ '' 'धर्मोसि विशिराजा प्रतिष्ठितः' इति मन्त्रः ॥ गालवः-"दर्भानादाय हस्ताभ्यां गृहीत्वा दक्षिणे करे। दैवे क्षणः क्रियतां तु निरंगुष्ठं करं ततः ॥ ओं तथेति द्विजा ब्रूयुस्ते प्राप्नोतु भवानिति। कर्ता ब्रूयात्ततो विप्रः प्राप्नुवानीति वै वदेत् ॥ २ ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये-" यवैर्दर्भैश्च विश्वेषां देवानामिदमासनम् । दत्त्वेति भूयो दद्याद्वै दैवे क्षण इति क्षणम् ॥ '' 'तच्च षष्ठ्या चतुर्थ्या वा कार्यम्' इति स एव ॥ 'ततोऽर्घ्यं कल्पयेत्' इति मन्वादयः ॥ शौनकजयन्ताभ्यामर्घ्यरहितस्य देवार्चनस्योक्तेः ॥ आश्वलायनानां दैवेऽर्घ्यदानं न इति बोपदेवः,तन्न । परिशिष्टप्रयोगपारिजातविरोधात्॥ वृद्धिश्राद्धे तु दैवेष्यर्घ्यं दद्यात् ॥ 'देवेभ्योऽपि पृथग्दद्यादिहार्घ्यं श्रुतिचोदनात्' इति शौनकोक्तेः ॥ अथार्घ्यपात्रनिर्णयः । अथार्घ्यपात्रम् । पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्यपाद्मयोः-" पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः । जलजं वापि कुर्वीत तथा सागरसंभवम् ॥ '' ब्राह्मे-" सौवर्णताम्ररौप्याश्मस्फाटिकं शंखशुक्तयः । भिन्नान्यपि हि योज्यानि पात्राणि पितृकर्मणि ॥" हेमाद्रौ प्रजापतिः-" सौवर्णं राजतं ताम्रं खाड्गं मणिमयं तथा । यज्ञियं चमसं वापि ह्यर्घ्यार्थं पूरयेद्बुधः ॥ अत्र विप्रैकत्वद्वित्वचतुष्ट्वादावर्घ्यपात्रे द्वे एव ॥ मानवसूत्रे तु-' द्वे वैश्वदेविके त्रीणि

णमें प्रदान करे, प्रचेताका कथनहै कि, आसनोंपर आसन दे, हाथमें कदापि न दे, वे ब्राह्मण 'धर्मोसि' इस मन्त्रसे उन कुशाओंका स्वीकार करें, 'धर्मोसि विशिराजा प्रतिष्ठितः' यह मन्त्र है, गालवका कथन है कि, हाथसे कुशा लेकर और दक्षिण हाथमें रखकर, दैवश्राद्धमें क्षणभर अंगुष्ठरहित हाथको करै, 'ॐ तथा' इस प्रकार ब्राह्मण कहै, तुम प्राप्त हो इस प्रकार कर्ता कहै, प्राप्त हूंगा इसप्रकार ब्राह्मण कहै ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृहन्नारदीयका कथन है कि, यव और कुशाओंसे विश्वेदेवाओंको आसन देकर फिर दे यही दैवश्राद्धमें क्षण है, वह षष्ठी वा चतुर्थी विभक्तिसे करना चाहिये यह भी वही कहता है, फिर अर्घ्य दे यह मनुआदि कहते हैं, शौनक और जयंतने अर्घ्यरहित ही देवपूजन कहा है, इससे आश्वलायनोंके मतसे दैवश्राद्धमें अर्घ्यदान नहीं है, यह बोपदेवका कथन है सो उचित नहीं कारण कि, इसमें परिशिष्ट और पारिजातका विरोध पडता है वृद्धिश्राद्धमें तो दैवमें भी अर्घ्य दे कारण कि, शौनके यह कहा है कि श्रुतिकी आज्ञासे देवताओंको भी पृथक् अर्घ्य श्राद्धमें देना चाहिये ॥ अब अर्घ्यके पात्र कहते हैं, पृथ्वीचन्द्रोदयमें मत्स्य और पद्मपुराणके वाक्य हैं कि, वनस्पतिके पत्तोंके जलसे उत्पन्न हुआ वा समुद्रसे उत्पन्न अर्घ्यपात्र करना चाहिये, ब्रह्मपुराणका कथन है कि सोना तांबा, चांदी, पत्थर, स्फटिक, शंख, सीपी, इनके पात्र फूटेभी हों तो ये पात्र पितृकर्ममें युक्त करने, हेमाद्रिमें प्रजापतिका कथनहै कि, सोना, चांदी, तांबा, गैंडा, मणि, यज्ञका, चमस, इतने पात्रोंको बुद्धिमान् मनुष्य अर्घ्यके निमित्त भरै, श्राद्धमें ब्राह्मण एक दो चार आदि भी होंय तो

पित्र्ये एकैकमुभयत्र च' इत्युक्तम् ॥ तदेकविप्रपरं पात्राभावपरं चेति हेमाद्रिः ॥ मदनरत्ने तु दैवे एकपात्रमुक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि–'पैतृकपात्राणि द्वे द्वे वैश्व-दैविके' इति बृहत्पराशरोक्तेर्द्वे एवेत्याह ॥ बह्वृचानां तु दैवे विप्रद्वित्वेऽप्येकमर्घ्य-पात्रमर्घशो दद्यादित्युक्तं परिशिष्टे प्रयोगपारिजाते च ॥ कलिकायां हारीतः–'दत्तमक्षय्यतां याति खाड्गेनार्घ्यं तु यत्कृतम् ॥' वृद्धमनुः–"मृन्मयं दारुजं पात्र-मयःपात्रं च यद्भवेत् । राजतं दैविके कार्ये शिलापात्रं च वर्जयेत् ॥" पुराणसमुच्चये–"मृत्स्नाभवं तथा कांस्यमारक्तं जतुसंभवम् । त्रपुसीसलोहभवं सदा पात्रं विवर्जयेत् ॥" तत्रैव–"अष्टांगुलं भवेत्पात्रं पितॄणां राजतं शुभम् । दशांगुलं तु देवानां सौवर्णं शक्तितः कृतम् ॥ स्थापयेदर्घ्यपात्रे द्वे न्युब्जे तत्र कुशोपरि । द्वेद्वे पवित्रे विधिवत्पात्रयोश्चोपरि क्षिपेत् ॥ २ ॥" यज्ञपार्श्वः–"पवित्रेस्थेति मन्त्रेण पवित्रे छेदयेत्तु ते । औषधिमन्तरे कृत्वा त्वंगुष्ठांगुलिपर्वणोः ॥ स्फ्येन काष्ठेन लोहेन न मृन्मयनखादिभिः ॥" वसिष्ठः–"तूष्णीं प्रोक्ष्याम्भसा पात्रे कुर्या-दूर्ध्वं बिले ततः । पूरयेत्पात्रयुग्मं तु कृत्वोपरि पवित्रके ॥" वृद्धपराशरः–"पात्रद्वयमथार्घ्यार्थं तैजसं चैकवस्तुनः । प्राङ्मुखोमरतीर्थेन शन्नो देव्योदकं

भी अर्घ्यपात्र दोही करै ॥ मानवसूत्रमें तो विश्वेदेवाओंके एक दो पितरोंके तीन वा दोनों स्थानोंमें एक २ होतेहैं यह कहा है, वह एक ब्राह्मणके विषयमें वा पात्रके न प्राप्त होनेपर है यह हेमाद्रिका मत है, मदनरत्नमें तो दैवश्राद्धमें एकपात्र लिखाहै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इस बृहत्पा-राशरके वचनसे दोही कहेहैं कि, पितरोंके तीन पात्र और विश्वेदेवाओंके दो लिखे हैं, बह्वृ-चोंको तो परिशिष्ट और प्रयोगपारिजातमें यह कहाहै कि, दैवश्राद्धमें दो ब्राह्मण होंय तो भी अर्घ्यपात्र आधा २ प्रदान करै कलिकामें हारीतका कथन है कि, खड्गके पात्रसे अर्घ्य दियाहोय तो दिया हुआ अक्षय होता है, वृद्धमनुका कथन है कि, मट्टी, काठ, लोहा, चांदी, शिलाके पात्रोंको दैवश्राद्धमें त्यागदे ॥ पुराणसमुच्चयमें कहा है कि, मट्टी, कांसी, लाख, शीशा, लोहा इनके पात्र और रक्तपात्रको सदैव त्याग दे, वहांही लिखा है कि, पितरोंके श्राद्धमें आठ अंगुलका चांदीका पात्र और देवोंके श्राद्धमें सुवर्णका दश अंगुलका पात्र यथाश-क्तिसे निर्माण करै, औंधे दो पात्र कुशाओंपर रक्खै, दो दो पवित्री विधिसे अर्घ्यपात्रों पर रक्खै, यज्ञपार्श्वका लेख है कि औषधिको बीचमें करके अंगुष्ठ और अंगुलियोंके पर्वोंसे वा स्फ्य काष्ठसे, 'पवित्रेस्थः' इस मंत्रसे उन पवित्रियोंका छेदन कर, लोहा मृत्तिकाके पात्र और नख आदिकोंसे छेदन न करै, वसिष्ठने कहाहै कि, तूष्णीं जलसे दोनोंपात्र छिडककर सीधे करै और दोनों जलसे पूरे करके पवित्रियोंको उनके ऊपर रखदे ॥ वृद्धपराशरने लिखा है कि, अर्घके निमित्त दोनों पात्र, एक धातुके बनेहों, पूर्वमुख होकर देवतीर्थसे 'शन्नोदेवी०'

क्षिपेत् ॥ यवोसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुष्पाणि चन्दनम् ॥ " मानवसूत्रे-' सुमनसः प्रक्षिप्योत्पूय यवान् प्रक्षिप्य' इति ॥ यवोसीति मन्त्रः पाद्मे-"यवोसि धान्यराजो वा वारुणो मधुमिश्रितः। निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतः ॥ " 'राजो वा वारुणो मधुसंयुतः' इति परिशिष्टपाठः ॥ गोभिलेन तु-' यवोसि सोमदैवत्यः' इति तिलमन्त्रोऽत्र स्वाहायुक्त उक्तः ॥ हेमाद्रौ यमः-" यवहस्तस्ततो देवान्विज्ञाप्यावाहनं प्रति। आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥ " वृद्धपराशरः-" ततः सव्यकरं न्यस्य विप्रदक्षिणजानुनि। देवानावाहयिष्ये हमिति प्राचमुदीरयेत् ॥ आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास आगतः। विश्वेदेवाः शृणुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत् ॥२॥ " श्राद्धविशेषे विश्वेदेवनामाज्ञाने हेमाद्रौ बृहस्पतिः-"उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः। अयमुच्चारणीयस्तैर्मन्त्रः श्रद्धासमान्वितैः ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये ह्यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ २ ॥ " इदं चावाहनमर्घ्यपात्रासादनात् प्राक् हेमाद्रिणोक्तम् ॥ तत्र कातीयैः प्राक्कार्यं तथैव तत्सूत्रात् ॥ अन्यैस्तदुत्तरम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये शंखः-" सयवं पुष्पमादाय चरणादिशिरोन्तकम्। अर्चयेत्यर्चनं कुर्यादन्तरे चोदकं

इस मंत्रसे जल, और ' यवोसि० ' इस मंत्रसे मौन हो जौ और पुष्प चन्दन डाले, ' यवोसि ' मन्त्र पद्म पुराणमें लिखा है कि, हे यव! तू धान्योंका राजा है, और वारुण मधुसे युक्त है सब पापोंको दूरकर तुझे ऋषियोंने पवित्र कहा है, 'राजो वा वारुणो० ' ऐसा परिशिष्टमें पाठ है गोभिलने तो.' यवोसि सोमदैवत्यः० ' यह तिलका मन्त्रही स्वाहासहित यहां वर्णन किया है ॥ हेमाद्रिमें यमका कथन है कि, यवोंको हाथमें लेकर आवाहनके निमित्त देवोंकी प्रार्थना कर उनकी आज्ञासे विश्वेदेवोंकी प्रार्थना करे, वृद्धपराशरका कथन है कि, ब्राह्मणकी दक्षिण जंघापर दक्षिणहाथ रखकर यह वाक्य कहे कि, मैं देवताओंका आवाहन करता हूं आवाहन कर उनकी आज्ञासे ' विश्वेदेवास आगत० ' विश्वेदेवाः शृणुत० ' इन दो मन्त्रोंको पढे, श्राद्ध विशेषमें विश्वेदेवाओंका नाम स्मरण न होय तो हेमाद्रिमें बृहस्पतिने यह कहा है कि, विश्वेदेवाओंकी उत्पत्ति और नाम जो ब्राह्मण नहीं जानते वे श्रद्धासे युक्त इस मन्त्रका उच्चारण करे कि, महाभागी और महाबली विश्वेदेवा वे आओ, जो इस श्राद्धमें कहे हैं, यह आवाहन अर्घ्यपात्रसे प्रथम हेमाद्रिने कहा, है और कातियोंने भी इसी प्रकार सूत्रके अनुसार करनेको लिखा है, दूसरोंने उसके उपरान्त कहा है ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें शंखका वाक्य है कि, जो पुष्प लेकर चरणसे शिरपर्यंत पूजनकर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पूजन और मध्य २ में जल दे, पितृश्राद्धमें

---

१ विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवंमेयेअन्तरिक्षे य उपद्यविष्ठ। ये अग्निजिह्वा उतवायजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ ऋ० ॥ ४ । ८ । १६ ॥

तथा ॥ " पित्र्ये तु मूर्द्धादिपादान्तम् ॥" पादप्रभृतिमूर्द्धान्तं दैविके पूजनं भवेत् । शिरःप्रभृति पादान्तं नमो व इति पैतृके " इति मदनरत्ने प्रचेतसोक्तेः ॥ कालिकायां संग्रहे-" तिष्ठन् कृताञ्जलिर्भूत्वा पठेन्मन्त्रं समाहितः । विश्वेदेवाः शृणुत इत्यागच्छंत्वपरं ततः ॥ " हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः-" ततोर्घ्यपात्रसंपत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान् । तदग्रे चार्घ्यपात्रं तु स्वाहार्घ्या इति विन्यसेत् ॥" गार्ग्यः-"दत्त्वा हस्ते पवित्रं च कृत्वा पूजां च पादतः । या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपत् ॥ " संग्रहे-'विश्वेदेवा इदं वोर्घ्यमिति दानं समादिशेत् ।' तदन्ते ' स्वाहा नमः ' इति वाच्यम् ॥ ' या दिव्या इति मन्त्रेण स्वाहाकारं नमोन्तकम् ' इति हेमाद्रौ नागरखण्डात् ॥ आथर्वणसूत्रन्तु-' पाद्यमर्घ्यमाचमनीयमिति द्विजकरे निनयेत् ' इत्यस्यैव त्रयमुक्तम् ॥ गभस्तिः-" अर्घ्यं च पिण्डदानं च स्वस्त्यक्षय्ये तथैव च । गन्धपुष्पादिकं सर्वं हस्तेनैव तु दापयेत् ॥ " प्रतिविप्रं या दिव्ये त्यावृत्तिः ॥ बह्वृचानां त्वनेन दत्तार्घ्यानुमन्त्रणम् ॥ ततः पात्रं दक्षिणे देवेभ्यः स्थानमसीतिन्युब्जमुत्तानं वा कार्यमिति गारुडे उक्तम् ॥ एतदापस्तम्बानां

पूजन मस्तकसे चरणपर्यंत और देवश्राद्धमें चरणसे शिरतक पूजन होताहै और ' नमो वः ' ० ' इस मन्त्रसे पितरोंका पूजन शिरसे चरणतक करै, यह मदनरत्नमें प्रचेताने लिखा है कि, कालिकामें संग्रहका वाक्य है कि, स्थित सावधान और कर जोडकर ' विश्वेदेवाः शृणुत० ' और ' आगच्छंतु० ' इन दो मन्त्रोंको पढै ॥ हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका कथन है कि, फिर ब्राह्मणोंसे अर्घ्यपात्रकी सिद्धि पूछकर उनके आगे ' स्वाहार्घ्या० ' इस मन्त्रसे अर्घ्यपात्र रखदे, गार्ग्यने कहा है कि, हाथमें पवित्री देखकर और चरणसे शिरपर्यंत ' या दिव्या० ' इस मन्त्रसे अर्घ्यके जलको हाथमें डाले संग्रहमें कहा है कि, हे विश्वेदेवो ! यह अर्घ्य तुम्हारे निमित्त है, यह दानका मन्त्र कहकर उसके अन्तमें ' स्वाहा नमः ' इस मन्त्रको पढै, कारण कि, हेमाद्रिके नागरखण्डमें यह लिखा है कि, ' या दिव्याः ' इस मन्त्रके अन्तमें स्वाहा और नमः पढकर अर्घ्य देना चाहिये अथर्वणसूत्रमें तो पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय यह सब ब्राह्मणके हाथमें देने कहे हैं, गभस्तिने कहा है कि, अर्घ्य पिंडदान स्वस्तिवाचन अक्षय्य जल गन्ध फूल आदि सब हाथसे दे, और प्रति ब्राह्मणके प्रति, या दिव्या ' इस मंत्रको पढै, बह्वृचोंमें तो दिये हुये अर्घ्यका इस मन्त्रसे अनुमन्त्रण होता है अर्थात् अर्घ्य देकर मंत्रको पढा जाता है फिर पात्रसे दक्षिणकी ओर देवताओंकी स्थिति हो यह कहकर औंधा वा सीधा रख दे, यह गारुडमें लिखा है, आप-

---

१ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरश्शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्तसतो वः पितरो देष्मतद्वः पितरो वास आधत्त ॥

नियतमन्येषां न । हेमाद्रौ विष्णुधर्मे–" गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च वस्त्रैश्चाप्यथ भूषणैः । अर्चयेद्ब्राह्मणाञ्शक्त्या श्रद्दधानः समाहितः ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये मार्कण्डेयः–'चन्दनागरुकर्पूरकुंकुमानि प्रदापयेत् ॥ ' विष्णुः–' चन्दनकुंकुमकर्पूरागुरुपद्मकान्यनुलेपनाय' इति ॥ व्यासः–'अपवित्रकरो गन्धैर्गन्धद्वारेति पूजयेत् । ', कलिकायां स्मृतिः–"गन्धद्वारेति वै गन्धमायने ते च पुष्पकम् । धूरसीत्यमुना धूपमुद्दीप्यस्वेति दीपकम् ॥ युवं वस्त्राणि मन्त्रेण वस्त्रं दद्यात्प्रयत्नतः । आसने स्वासनं ब्रूयादर्घ्ये स्वर्घ्यं द्विजोत्तमः ॥ सुगन्धिश्च सुपुष्पाणि सुमाल्यानि सुधूपकः । सुज्योतिश्चैव दीपे तु स्वाच्छादनमिति क्रमः ॥३॥" विप्राणां गन्धेन वर्तुलं त्रिपुण्ड्रं वा न कार्यम् । हेमाद्रौ देवलः–"ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे मालां तथैव च । निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् ॥ " पुण्ड्रं वर्तुलमित्यपरार्के मदनरत्ने च ॥ पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वर्तुलमर्धचन्द्रं च ॥ " ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् । ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम् " इति ॥ वृद्धपराशरोक्तेस्तिर्यग्लेपो भवत्येव " वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा । तिर्यगप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः " इति व्यासोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ यत्तु बृहन्नार-

---

स्तम्बोंमें इसका नियम है औरमें नहीं, हेमाद्रिके विषे विष्णुधर्ममें कथन किया है कि, श्रद्धावान् मनुष्य सावधान होकर गंध, पुष्प, धूप, वस्त्र, भूषणोंसे ब्राह्मणोंका यथाशक्ति पूजन करै ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें मार्कण्डेयका कथन है कि, चंदन, अगर, कपूर, कुङ्कुम दे, विष्णुधर्मका कथन है कि- लेपनके निमित्त चंदन, अगर, कुंकुम, कपूर, पद्माखको दे, व्यासजीने कहा है कि, जिसके हाथमें पवित्री न हों वह ' गंधद्वारां ' मंत्रको पढकर गंधसेही अर्चन करै, कालिकामें स्मृतिका वाक्य है कि, ' गन्धद्वारां० ': इससे गंध ' आयने ते० ' इससे फूल ' धूरसि ' से धूप, ' उद्दीप्यस्व० ' इससे दीप, और ' युवं वस्त्राणि० ' इससे वस्त्र प्रयत्नसे दे, आसनमें स्वासन, अर्घ्यमें स्वर्घ्य, गन्धमें सुगन्ध पुष्पमें सुपुष्प, मालामें सुमाला, धूपमें सुधूप दीपमें सुज्योतिः वस्त्रमें स्वाच्छादन, यह क्रमसे करै, ब्राह्मणोंका गंधसे वर्तुल (गोल) वा त्रिपुण्ड्र न करै ॥ हेमाद्रिमें देवल कहते हैं कि, मस्तकमें पुण्ड्र और कन्धेपर माला देखकर और वृषलीपतिको देखकर पितर निराश हो जाते हैं ब्राह्मणोंके मस्तकपर गोलाकार पुण्ड्र होता है, यह अपरार्क और मदनरत्नमें कथन किया है त्रिपुंड्र वर्तुलाकार और अर्द्धचंद्रको पुंड्र कहते हैं, कारण कि, वृद्धपराशरमें लिखा है ऊर्ध्वपुण्ड्र करै, त्रिपुण्ड्र न करै, देव और पितृकर्ममें ऊर्ध्वतिलक करै, त्रिपुण्ड्रको देख पितर निराश जाते हैं, तिरछा लेप तो होता है, कारण कि, व्यासने यह कहा है कि, श्राद्धके समय सदा मस्तकपर तिलकको त्याग दे, तिरछा वा ऊर्ध्व पुण्ड्र तो यत्नसे धारण करै यह पृथ्वीचन्द्र कहते हैं ॥ और बृहन्नारदी-

दृयेि-'ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन' इति तत्कर्तृपरम् ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे-"पूतिकं मृगनाभिं च रोचनं रक्तचन्दनम् । कालेयकं तृग्रगन्धं तुरुष्कं चापि वर्जयेत् ॥ " कस्तूर्यां विकल्प इति हेमाद्रिः ॥ वृद्धशातातपः-"पवित्रं तु करे कृत्वा यः समालभते द्विजान् । राक्षसानां भवेच्छ्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतैः ॥ " पुष्पं तु ब्राह्मे-"जातीचम्पकलोध्राश्च मल्लिका बाणबर्बरी । चूताशोकाटरूषं च तुलसी शतपत्रकम् ॥ कुब्जकं तगरं चैव भृंगमारण्यकेतकी । यूथिकामतिमुक्तं च श्राद्धे योग्यानि भो द्विजाः ॥ कमलं कुमुदं पद्मं पुण्डरीकं च यत्नतः । इन्दीवरं कोकनदं कह्लारं च निवेदयेत् ॥ ३ ॥ " हेमाद्रौ वायुभविष्ययोः-"सुकुमारैः किसलयैर्यवदूर्वाङ्कुरैरपि । संपूजनीयाः पितरः श्रेयस्कामेन सर्वदा ॥ ". स्कान्दे-"जातिश्च सर्वा दातव्या मल्लिका श्वेतयूथिका। जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च चम्पकम् ॥ तत्रैव वृद्धमनुः-"न नियुक्तः शिखावर्ज्यं माल्यं शिरसि धारयेत् ॥ श्राद्धे वर्ज्यपुष्पाणि । वर्ज्यानि पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये-"केतकी तुलसीपत्रं बिल्वपत्रं च वर्जयेत् । द्रोणं च करवीरं वै धत्तूरं किंशुकं तथा ॥१ ॥ " माधवीय स्मृत्यर्थसारे तुलसी निषिद्धा ॥ तुलसीनिषेधो निर्मूल इति हेमाद्रिः । समूलत्वेपि पिण्डपरः ॥ " तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः।

यमें कहा है कि, कोई आचार्य श्राद्धमें ऊर्ध्वपुण्ड्र और तुलसीकी इच्छा नहीं करते यह कर्ताके निमित्त है, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, दुर्गंध, कस्तूरी, गोरोचन, लाल चंदन कालेयका उग्रगंध तुरुष्क इनको त्याग दे, हेमाद्रि यह कहते हैं कि, कस्तूरीमें विकल्प है, वृद्ध शातातपका कथन है कि, पवित्री धारण करके जो ब्राह्मणोंको स्पर्श करता है वह श्राद्ध पितरोंको न मिलकर राक्षसोंका होता है, फूल तो ब्रह्मपुराणमें ये लिखे हैं कि, जाती, चंपक, लोध, चमेली, वाणवर्बरी, आम, अशोक, अडूसा, तुलसी, कमल, कुवजक, तगर, भांगरा, वनकी केतकी, जुही, अतिमुक्त हे ब्राह्मणो ! ये पुष्प श्राद्धके योग्य हैं, कमल, कुमुद, पद्म, पुण्डरीक, इन्दीवर, कोकनद, कल्हार इनको भी प्रदान करे ॥ हेमाद्रिमें वायुपुराण और भविष्यपुराणके वाक्य हैं कि, कल्याणकी इच्छावाला पुरुष सदैव पितरोंका पूजन कोमल २ कमल यव और दूर्वाओंके अंकुरोंसे करै, स्कंदमें लिखा है कि, जाती चमेली सफेद जुही जलसे पैदा हुए सब फूल और चंपा ये सबके देने योग्य हैं, उसी स्थानमें वृद्धमनुका कथन है कि, आज्ञाके विना पुष्पमाला शिखाको छोडकर शिरपर न धारण करै ॥ वर्जित फूल, पृथ्वीचंद्रोदयमें भविष्य पुराणके वाक्यसे लिखे हैं कि, केतकी, तुलसी, वेलपत्र, द्रोण, कनेर, धतूरा, केशु त्याग दे, माधवी और स्मृत्यर्थसारमें तुलसी भी निषिद्ध कही है, हेमाद्रि यह कहते हैं कि, तुलसीका निषेध प्रामाणिक नहीं है प्रामाणिक होय तो पिंडोंपर है, कारण कि, प्रयोगपारिजातमें पद्मपुराणका कथन है, कि, तुलसीकी गंध सूंघकर प्रसन्न हुए पितर गरुडपर चढकर भगवान्के स्थानको

प्रयान्ति, गरुडारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः " इति प्रयोगपारिजाते पाद्मोक्तेरिति बोपदेवः ॥ वृद्धपराशरः– " न जातिकुसुमैर्विद्वान् बिल्वपत्रैश्च नार्चयेत् । जपादिकुसुमं झिण्टी रूपिकासकुरंटिका॥पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः॥" हेमाद्रौ शङ्खः–"उग्रगन्धीन्यगन्धीनि चैत्यवृक्षोद्भवानि च । पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ जलोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥" अङ्गिराः– 'न जातिकुसुमानि दद्यान्न कदलीपत्रम्' इति जात्यां विकल्प इति हेमाद्रिः ॥ निषेधः पिण्डविषयः–" कुन्दं शंभौ न नो दद्यान्नोन्मत्तं गरुडध्वजे । पिण्डे जातीं च नो दद्याद्देवीमर्केण नार्चयेत्॥" इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेरिति बोपदेवः ॥ स्मृतिसारे–"आगस्त्यं भृङ्गराजं च तुलसीं शतपत्रिका । चम्पकं तिलपुष्पं च षडेते पितृवल्लभाः ॥ केतकीं करवीरं च बकुलं कुन्दकं तथा । पाटलां चैव जातीं च श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् ॥ २ ॥" केचित्पिण्डे तुलसीमाहुः–"पितृपिण्डार्चनं श्राद्धे यैः कृतं तुलसीदलैः । प्रीणिताः पितरस्तैस्तु यावच्चन्द्रार्कमेदिनि ॥ " इति मार्कण्डेयोक्तेः ॥ तत्र धूपाद्युपचारनिर्णयः । धूपस्तत्रैव विष्णुधर्मे–"धूपस्तु गुग्गुलुर्देयस्तथा चन्दनसारजः । अगरुश्च सकर्पूरस्तुरुष्कस्त्वचस्तथैव च ॥" विष्णुः–'घृतमधुयुक्तं गुग्गुलुं श्रीखण्डदेवदारुसरलादि दद्यात्' इति ॥ तत्रैव देवलः–"ये हि प्राण्यङ्गजा धूपा हस्तपादाहताश्च ये । न ते श्राद्धे नियोक्तव्या ये

जाते हैं, यह बोपदेव कहते हैं, वृद्धपराशरका वचन है कि, विद्वान् मनुष्य जातीके पुष्प और बिल्वपत्रोंसे पूजन न करे जयवंती, झुंडी, रूपिका, कुरण्डिकाके फूल श्राद्धकर्ममें त्यागने उचित हैं ॥ हेमाद्रिमें शंखका वाक्य है कि, जिनकी उग्र गन्ध हो वा जिनमें गन्ध न हो जो चौतरेके पेडके हों वा लाल हों वे त्यागने योग्य हैं, और जलसे उत्पन्न हुए होंय तो वे लाल पुष्प विशेषकर देने योग्य हैं अंगिराका कथन है कि, जातीपुष्प और केलेके पत्र न दे, हेमाद्रि तो यह कहते हैं कि, जातीमें विकल्पहै निषेध पिंडोंके निमित्त है, कारण कि, वृद्धयाज्ञवल्क्यका यह वचन है कि, महादेवको कुन्द विष्णुको धतूरा और पिण्डपर जातीको न देना और आकके फूलसे देवीको न पूजे यह बोपदेवका मत है ॥ स्मृतिसारमें कहाहै कि, अगस्त, भांगरा, तुलसी, कमल, चम्पा, तिलफूल, यह छः पितरोंको प्रियहैं केतकी, कनेर, वकुल, कुंद, पाटला, जाती, श्राद्धमें इन्हें यत्नसे त्यागदे, कोई पिंडपर तुलसीको कहतेहैं कारण कि, मार्कण्डेयका कथन है कि, जिन मनुष्योंने श्राद्धमें तुलसीके दलोंसे पितरोंका अर्चन किया है, उनके पितर तबतक प्रसन्न रहतेहैं जबतक पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्यहैं ॥ उसी स्थानमें विष्णुधर्ममें लिखा है कि, धूप, चन्दन, अगर, कपूर, तुरुष्क, तुरुष्ककी त्वचा इनकी धूप देनी विष्णुका वचन है कि, घी और शहत से युक्त गुग्गुल, चन्दन, देवदारु, सरल आदि दे । वहांही देवलका वाक्य है कि, जो धूप प्राणियोंके अंगसे उत्पन्न होती है अथवा हाथ और

च केचोग्रगन्धयः ॥ घृतं न केवलं दद्याद्दुष्टं वा तृणगुग्गुलम् ॥" दीपमाह विष्णुः-"घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः । वसामेदोद्भवं दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥" वस्त्रं ब्राह्मे-"कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा । श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति चोत्तमान् ॥" हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्ते-"यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे विजानता । पितृभ्यो वस्त्रदानस्य फलं तेनाश्नुतेऽखिलम् ॥" तत्रैव पाद्मे-'निष्क्रयो वा यथाशक्ति वस्त्राभावे प्रदीयते ' अन्यान्यपि च देयानि ॥ श्राद्धे देयवस्तुनिर्णयः । तत्रैव कालिकापुराणे-"धात्वादिनिर्मिता रम्या दीपिकाः श्राद्धकर्मणि । पितॄनुद्दिश्य यो दद्यात्स भवेद्भाजनं श्रियः ॥ यो धूपदानपात्रं तु पात्रमारार्तिकस्य च । दद्यात्पितृभ्यः प्रयतस्तस्य स्वर्गेऽक्षया गतिः ॥ २ ॥" विष्णुधर्मे-'यः कञ्चुकं तथोष्णीषं पितृभ्यः प्रतिपादयेत् । ज्वरोद्भवानि दुःखानि स कदाचिन्न पश्यति ॥ स्त्रीणां श्राद्धे तु सिन्दूरं दद्युश्चण्डातकानि च । निमन्त्रिताभ्यः स्त्रीभ्यो ये ते स्युः सौभाग्यसंयुताः ॥ ३ ॥' हेमाद्रावादित्यपुराणे-"न कृष्णवर्णं दातव्यं नापि कार्पाससंभवम् । पितृभ्यो नापि मलिनं नोपयुक्तं कदाचन ॥ न च्छिद्रितं नापदशं न धौतं कारुणापि च ॥" कार्पासनिषेधोऽन्यसंभवे ॥ तत्रैव-'पितॄन् सत्कृत्य वासोभिर्दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ।

पांवसे ताडना की हो, जिसमें तीक्ष्ण गन्ध हो ऐसी धूप श्राद्धमें देनेयोग्य नहीं होती, केवल घी वा दुष्ट तृण और गुग्गुल ये भी नहीं देने ॥ विष्णुने तो दीपकको कहा है कि, घृतसे वा तिलके तेलसे दीपक दे, वसा वा मेदाके दीपकको किसी प्रकार न देना चाहिये, ब्रह्मपुराणमें कपडा देना लिखाहै कि, कौशेय, रेशमी, कपासका नया दुपट्टा और श्वेतवस्त्र इनको जो मनुष्य श्राद्धमें प्रदान करता है वह उत्तम कामनाओंको प्राप्त होता है हेमाद्रिमें ब्रह्मवैवर्तका वाक्य है कि ज्ञानीमनुष्य वस्त्रके अभावमें यज्ञोपवीत दे, वह पितरोंके वस्त्रदानके फलको प्राप्त होता है वहांही पद्मपुराणका वाक्य है कि, वस्त्रके अभावमें यथाशक्ति वस्त्रका मूल्य देना चाहिये उसीस्थलमें और भी देनेके पदार्थ कहे हैं ॥ वहांही कालिकापुराणके वचनसे कहे हैं कि, जो मनुष्य पितरोंके निमित्त श्राद्धकर्ममें धातुआदिसे बनी हुई मनोहर दीवट देता है उसके यहां लक्ष्मी स्थिर रहती है, जो मनुष्य धूपदानी और आरतीके पात्रको देता है उसकी स्वर्गमें अक्षयगति होती है, विष्णुधर्ममें लिखा है कि, जो मनुष्य पितरोंके निमित्त कंचुक (कुरता) और उष्णीष (पगडी) देता है वह ज्वरसे उत्पन्न हुए दुःखोंको कदाचित् नहीं प्राप्त होता स्त्रियोंके श्राद्धमें निमंत्रित स्त्रियोंको सिंदूर और चूडा आदिको जो देते हैं वे भाग्यवान् होते हैं ॥ हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका वाक्य है कि, ऐसे वस्त्र पितरोंको श्राद्धमें न दे, काला कपासका, मैला, पहरा हुआ, छिद्रयुक्त, दशाहीन, धोबीका धुला इनमें कपासके वस्त्रका निषेध अन्यवस्त्रके मिलनेपर समझना, वहांही लिखा है कि वस्त्रोंसे पितरोंको

यज्ञोपवीतदानेन विना श्राद्धं तु निष्फलम् ॥" एतद्यतिस्त्रीशूद्रश्राद्धेऽपि देयमिति हेमाद्रिः ॥ तत्रैव नृसिंहपुराणे-" कमण्डलुं ताम्रमयं श्राद्धेषु प्रददाति यः । काष्ठेन निर्मितं वापि नारिकेलमथापि वा ॥ दद्यात् कमण्डलुं श्राद्धे स श्रीमानभिजायते । यो मृत्तिकाविरचितान् श्राद्धेषु च घटान् शुभान् ॥ प्रदद्यात्करकान्वापि सोऽक्षयं विन्दते सुखम् ॥ २ ॥" तत्रैव-"उपानच्छत्रवस्त्राणि भुक्तिपात्रं कमण्डलुम् । शयनासनयानानि दर्पणव्यजनानि च ॥ अन्नं सुसंस्कृतं गन्धांस्ताम्बूलं दीपचामरम् । पितृभ्यो यः प्रयच्छेत्तु विष्णुलोकं स गच्छति ॥२॥" सौरपुराणे-" चामरं तालवृन्तं च श्वेतच्छत्रं च दर्पणम् । दत्त्वा पितॄणामेतानि भूमिपालो भवेदिह ॥ " तत्रैव नन्दिपुराणे-" अलंकाराः प्रदातव्या यथाशक्ति हिरण्मयाः । केयूरहारकटकमुद्रिकाकुण्डलादयः ॥ " तथा-" स्त्रीश्राद्धेषु प्रदेयाः स्युरलंकारास्तु योषिताम् । मञ्जीरमेखलादामकर्णिकाकंकणादयः ॥ आदर्शव्यजनच्छत्रशयनासनपादुकाः । मनोज्ञाः पट्टवासाश्च सुगन्धाश्चूर्णमुष्टयः ॥ अङ्गारधानिकाः शीते योगपट्टाश्च यष्टयः । कटिसूत्राणि रौप्याणि मेखलाश्चैव कम्बलाः ॥ कर्पूरादेश्च भाण्डानि ताम्बूलायतनं तथा । भोजनाधारयन्त्राणि पतद्ग्राहांस्तथैव च ॥ तथाञ्जनशलाकाश्च केशानां च प्रसाधनम् । एतान् दद्यात्तु यः सम्यक् सोऽश्व-

---

पूजकर यज्ञोपवीत दे यज्ञोपवीतके दिये विना श्राद्ध निष्फल होता है, यज्ञोपवीत स्त्री, संन्यासी शूद्र इनके श्राद्धमें भी देना यह हेमाद्रिका मत है ॥ वहांही नृसिंहपुराणका कथन है कि जो मनुष्य श्राद्धमें तांबे,वा काष्ट नारियलके कमंडलुको देता है वह लक्ष्मीयुक्त होता है, जो मट्टीके सुन्दरघट वा करक (करवा) को देता है वह अक्षय सुखको प्राप्त होता है, वहांही लिखा है कि, उपानह, (जूता) छतुरी, वस्त्र, भोजनका पात्र, कोटा शय्या, आसन, यान, (सवारी) दर्पण, बीजना (पंखा), भलीप्रकार बनाया अन्न, गंध, पान, दीपक चँवर इनको जो पितरोंके अर्थ देता है वह विष्णुलोकको जाता है ॥ सूर्यपुराणमें लिखा है कि, चँवर, तालवृन्त (तालका पंखा) सफेद छत्र, दर्पण पितरोंके निमित्त देनेसे राजा होता है, वहांही नंदिपुराणका कथन है कि, केयूर (बाजू) हार, कडे, अगूंठी, कुंडल आदि सुवर्णके अलंकार यथाशक्ति देने तैसेही वचन है कि, स्त्रियोंके श्राद्धमें मंजीर (पाजेव) मेखला (कौंधनी) कर्णिका (कर्णफूल) कंकण आदि स्त्रियोंके भूषणोंको दे, आदर्श (सीसा) पंखा, छत्र, सेज, आसन, खडाऊं और सुंदर पटके वस्त्र और सुगंधित चूर्णका मुष्टि और शीतमें अंगारधानिका अंगीठी) योगपट्ट, लाठी, चांदीके कटिसूत्र, मेखला, कंबल, वस्त्र कपूर और तांबूलका पात्र (पानदान) भोजन रखनेके पात्र, (कटोरदान) भोजन लेनेके पात्र अञ्जनकी सलाई, केशोंका प्रसाधान (कंघी आदि) को जो भली प्रकार देता है वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥

मेधफलं लभेत् ॥९॥ " स्कान्दे–" सौवर्णं राजतं वापि कांस्येनाप्यथ निर्मितम् । दत्त्वा भोजनपात्रं तु सम्राट् भवति भूतले ॥ " वामनपुराणे–" बन्दीकृतास्तु ये केचित्स्वयं वा यदि वा परैः । येन केनाप्युपायेन यस्तान्मोचयते नरः ॥ पितरस्तस्य गच्छन्ति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ " पराशरः–' वाचयेत्परिपूर्णत्वं वासो दत्त्वा विधानतः । ' नारदीये–' दैवैश्च समनुज्ञातो यजेत्पितृगणं त्वथ ॥ ' तत्र पित्र्ये आसनाद्यशेषमर्चनकाण्डे वैश्वदेविकं ज्ञेयम् ॥ विशेषस्तूच्यते–' तत्रासने द्विगुणभुग्नाः कुशाः ॥ अत्रावाहनमासनात्पूर्वं वार्घ्यपूरणोत्तरं वाग्नौकरणोत्तरं वेति स्मृतिषु पक्षा उक्ताः ॥ एषां शाखाभेदेन व्यवस्था ॥ द्वितीयपक्ष एव बहुसंमतः ॥ तत्रार्घ्यमाहाश्वलायनः–' तैजसाश्ममयमृन्मयेषु त्रिषु पात्रेष्वेकद्रव्येषु वा दर्भान्तर्हितेष्वपः प्रसिच्य शन्नो देवीरित्यनुमन्त्र्य तिलानावपति "तिलोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नमद्भिः प्रतः स्वधया पितॄनिमांल्लोकान् प्रीणयाहि नः स्वधा नमः ॥" इति ॥ अश्ममयं–स्फाटिकम् ॥ मृन्मयं–स्वहस्तकृतमेव ॥ "कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं दैविकं न तत् । तदेव हस्तघटितं दैविकं केवलं तथा ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ अन्यान्यपि पात्राणि पूर्वमुक्तानि ॥ मनुः–"अन्नाभावे द्विजाभावे यद्येको ब्राह्मणो भवेत् । पात्राण्यासादयेत्त्रीणि न तु ब्राह्मणसंख्यया ॥"

स्कंदपुराणमें लिखा है कि' सुवर्ण, चांदी, कांसीसे बने हुए भोजन पात्रको जो देता है वह पृथ्वीपर चक्रवर्ती होता है, वामनपुराणमें कहा है कि, जो स्वयंव न्धनमें हुए हैं वा औरोंने किये हैं जो मनुष्य उनको जिस किसी उपायसे छुटाता है, उसके पितर' सनातन और अविनाशी पदको गमन करते हैं' पराशरने लिखा है कि, वस्त्रको देकर विधिपूर्वक, ब्राह्मणोंके मुखसे श्राद्धकी परिपूर्णता कहलवै, नारदीयपुराणमें लिखा है कि, फिर देवताओंकी आज्ञासे पितृगणोंकी अर्चा करै, उसमें पितरोंकी आसन आदि संपूर्ण पूजा विश्वेदेवाओंके समान जाननी, जो विशेष है उसे वर्णन करते हैं, वहां आसनमें दूनी भुग्नकुशा रखनी और आवाहन आसनसे पूर्व वा अर्घ्यपूरणके उपरांत वा अग्नौकरणके उपरांत होता है ये बहु सम्मत है ॥ वहां आश्वलायनने अर्घ्यको कहा है कि, धातुके स्फटिक मिट्टीके तीन पात्रोंमें कुशा रखकर और जल देकर 'शन्नोदेवीरभिष्टये०' यह मंत्र पढे फिर 'तिलोसि सोमदेवत्यो०' इस मन्त्रसे उसमें तिल डाले, मट्टीका पात्र वह लेना जो अपने हाथसे बनाया हुआ होय, कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, कुम्हारके चकसे बनेहुए पात्र आसुरी हैं, देवताओंके योग्य नहीं और वेही हाथसे बनेहुए हों तो दैविक होना कहते हैं, और भी पात्र पहिले कह आये हैं ॥ मनुने लिखा है कि, यदि अन्न वा द्विजोंके अभावमें एकही ब्राह्मण होय तो तीन पात्र रक्खै, ब्राह्मणकी संख्यासे नहीं, जहां दत्तक आदि श्राद्धकर्ता हो उसके पिता आदिमें भी

दत्तकादेः कर्तुर्हि पितृत्वादावपि वचनात् ॥ त्रीण्येव पात्राणीति हरिहरः ॥ माधवीये वैजवापः—"अर्घ्ये पितॄणां त्रीण्येव कुर्यात्पात्राणि धर्मवित् । एकस्मिन्वा बहुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥" हेमाद्रावप्येवम् ॥ अत्रानुमन्त्रणं सकृत् ॥ तिलोसीत्यस्य प्रतिपात्रमावृत्तिः पितृशब्दस्यानूहश्चेति वृत्तिकृत् ॥ दर्भश्च त्रिगुणं पवित्रम् ॥ तिस्रस्तिस्रः शलाकास्तु पितृपात्रेषु पार्वणे । एकोद्दिष्टे शलाकैकां निधायोदकमाहरेत् ॥"इति हेमाद्रौ चतुर्विंशतिमतात् ॥ तत्रैव विष्णुः—'दक्षिणाग्रदर्भेषु दक्षिणापवर्गचमसेषु पवित्रान्तर्हितेष्वप आसिञ्चेच्छन्नो देवीति मन्त्रेण जलसेचनं बह्वृचभिन्नविषयम् ॥' अत्रास्मिन्पक्षे प्रतिपात्रं मन्त्रावृत्तिः ॥ कारिकायाम्—'गन्धपुष्पाणि चैतेषु पात्रेषु प्रक्षिपेदथ ॥' ब्राह्मे—"जलं क्षीरं दधि घृतं तिलतण्डुलसर्षपान् । कुशाग्रमधुपुष्पाणि दत्त्वाचामेत्ततः स्वयम् ॥ " जातूकर्ण्यः—"ततोर्घ्यपात्रसंपत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ तदग्रे चार्घ्यपात्राणि स्वधार्घ्या इति विन्यसेत् ॥ " ततस्तिलहस्तो विप्रसव्यजानौ दक्षिणकरं न्यस्यावाहनं पृच्छेत् ॥ अत्र गोत्रसम्बन्धनामानि द्वितीयान्तत्वं च प्रागुक्तम् ॥ बैजवापगृह्ये—'तिष्ठन् पितॄनावाहयिष्यामीत्यामन्त्र्य ॥ ' कौर्मे—"अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां दक्षिणामुखः । आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः ॥

वचनसे तीनही पात्र होते है, यह हरिहर आदिका मत हैं माधवीयमें वैजवापका कथन है कि, पितरोंके अर्घ्यमें तीनही पात्र धर्मज्ञाताको विधिसे करने उचित है चाहे ब्राह्मण एक हो वा अधिक हों, हेमाद्रिमें भी ऐसाही लिखा है, यहां अनुमंत्रण एक वार करना और 'तिलोसि॰ यह मंत्र प्रत्येक पात्रमें पढना चाहिये वृत्तिकारका तो यह मत है कि, पितृशब्दका ऊह न करना और उनमें कुशा तिगुनी पवित्री रखनी चाहिये कारण कि, हेमाद्रिमें चतुर्विंशतिका यह लेख है कि, पार्वणश्राद्धमें तीन २ कुशाकी शलाका पितरोंके पात्रमें और एकोद्दिष्टमें एक २ शलाका रखकर जल डाले ॥ वहांही विष्णुका वाक्य है कि, दक्षिणाग्र कुशा जिनमें हो और दक्षिणकोही पवित्रियोंसे ढके पात्र रक्खे हों उनमें 'शन्नोदेवी॰' इस मंत्रको पढकर जल डाले जलसे सींचना बह्वृचोंसे भिन्नके विषय है इस पक्षमें प्रत्येक पात्रमें मन्त्र पढना, कारिकामें लिखाहै कि,फिर इन पात्रोंमें गन्ध पुष्प डाले, ब्रह्मपुराणका लेख है कि, जल दूध दही घी तिल चावल सरसों कुशाका अग्र शहत पुष्प इनको देकर स्वयं आचमन करै ॥ जातूकर्ण्यका कथनहै कि, फिर ब्राह्मणोंसे अर्घ्यपात्रकी सम्पत्ति कहलावे और 'स्वधार्घ्या' यह कहकर उनके आगे अर्घ्यके पात्र रक्खै, फिर तिल हाथमें लेकर ब्राह्मणकी दक्षिण जानुपर दक्षिण हाथ रखकर ब्राह्मणोंसे आवाहनको पूछै, यहां गोत्र नाम सम्बन्ध द्वितीयांत कहने यह पहिले कह आये, बैजवापके गृह्यमें कहा है कि, खडाहोकर पितरोंका आवाहन करताहूं यह ब्राह्मणोंसे पूछै, कूर्मपुराणका वाक्य है कि, अपसव्य और दक्षिणको मुख करके 'उशंतस्त्वा॰, इस मन्त्रसे फिर पित-

आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तुनस्ततः ॥" अत्र सव्यस्यापि प्रागुक्तेर्विकल्पः ॥ अत्राद्यमंत्रवृत्त्याऽस्मत्पितरममुकशर्माणममुकगोत्रं वसुरूपमावाहयामीत्युक्त्वा मूर्धादिपादान्तं तिलान्विकीर्यायन्तुन इति सर्वान्ते सकृज्जपेद् " इति निबन्धाः ॥ अत्रोपवेशनसंवेशनपाद्यार्घ्याचमनीयान्यपि हेमाद्रिणोक्तानि तान्यथर्ववेदिनां नियतानि ॥ नान्येषाम् ॥ तेषां च प्रपितामहादिपित्रन्तं प्रातिलोम्येन सर्वः प्रयोगः ॥ वाराहे–'गन्धपुष्पार्चनं कृत्वा दद्याद्धस्ते तिलोदकम् ।' गार्ग्यः–'शिरस्तः पादतो वापि सम्यगभ्यर्चयेत्ततः ' ' ततः स्वधार्घ्या इति पितृपितामहादिविप्राग्रे प्रत्येकं निवेदयेत् ' इति कारिकायां वृत्तौ च ॥ आश्वलायनः–"प्रसव्येनेतरपाण्यङ्गुष्ठान्तरेणोपवीतित्वाद्दक्षिणेन वा सव्योपगृहीतेन पितरिदं ते अर्घ्यं पितामहेदं ते अर्घ्यं प्रपितामह ते अर्घ्यमित्यप्पूर्वं ताः प्रतिग्राहयिष्यन् सकृत्सकृत्स्वधा अर्घ्या इति प्रसृष्टा अनुमन्त्रयीत ॥ ' या दिव्या आपः पृथिवी संबभूवुर्या अन्तरिक्ष्या उत पार्थिवीर्याः ॥ हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥ ' अर्घ्यादि प्राग्गन्धादेर्यज्ञोपवीतमेव ॥ अर्घ्यदानाद् प्रागन्या अपो दद्यात् ॥ यद्यप्यत्र सव्येन दक्षिणेन वार्घ्यं दद्यादित्युक्तं तथापि दक्षिणेनेत्यस्मिन्मतोर्थः ॥

रोंका आवाहन करै, आवाहन करके पितरोंकी आज्ञासे फिर ' आयन्तुनः० ' इस मन्त्रको पढै यहां सव्य होकर भी पहिले कह आये हैं इससे विकल्प है ॥ यहां प्रथम मन्त्रको पढकर मेरे पिता अमुक गोत्र अमुक शर्मा, वसुरूपका आवाहन करताहूं, मस्तकसे पाद पर्यन्त तिलोंको डालकर सबके अंतमें ' आयंतुन० ' इस मंत्रको एकवार जपै, यह बहुतसे ग्रंथोंमें लिखाहै, यहां बैठना, सोना, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय यहभी हेमाद्रिने कहे हैं, वे सब अथर्वण वेदियोंके निमित्त हैं औरोंके नहीं, और उनके मतमें प्रपितामहसे पितापर्यंत उलटा सब प्रयोग होताहै, वाराहपुराणका वाक्यहै कि, गंधपुष्पसे पूजन करके हाथमें तिलजल दे, गार्ग्यका कथन है कि, शिर वा चरणके क्रमसे फिर भलीप्रकार पूजन करै, फिर ' स्वधार्घ्या' यह कहकर पिता, पितामह, आदि ब्राह्मणोंके आगे एक २ अर्घ्यको रखदे, यह कारिका और वृत्तिमें कहाहै ॥ आश्वलायनका वाक्यहै कि, उपवीत युक्त यजमान दक्षिण हाथके अंगूठेसे ढके अपसव्यसे वा सव्यसे ढकेहुए दक्षिणहाथके अंगूठेसे हे पितः ! यह तुमको अर्घ्यहै, हे पितामह !यह तुमको अर्घ्यहै ऐसे कहकर उनका जल ब्राह्मणोंको ग्रहणकराकर एक२ वार 'स्वधा अर्घ्या' यह पूछे, और भलीप्रकार अर्घ्यदेनेके उपरान्त यह मंत्र पढे कि, जो जल दिव्य हैं पृथ्वी और अन्तरिक्ष सम्बन्धी हैं और जिनका सुवर्णके समान वर्ण तथा जो यज्ञके योग्य हैं वे हमें सुखदो, अर्घ्य और गन्धसे पहले यज्ञोपवीत प्रदान करै, अर्घ्य देनेसे पाहिले और २ भी शुद्ध जल दे, यद्यपि यहां सव्य और दक्षिणसे अर्घ्य देना कहा है तथापि यही सत्य है कि, दक्षिण हाथसे दे।

कारिकायां वृत्तौ चैवम् ॥ पित्रादेस्त्रिभिः पात्रैर्दद्यात् ॥ पितुः स्थाने विप्रत्रयं चेदेकमर्घ्यं विभज्य दद्यात् ॥ त्रयाणां स्वधा अर्घ्या इति सकृन्निवेदनम् ॥ एवं पैतामहादावपि ॥ अन्यजलदानमर्घ्यमन्त्राश्च प्रतिविप्रमावर्तन्ते ॥ तेषु गन्धादौ च प्रतिविप्रं पदार्थानुसमयः काण्डानुसमयो वा ॥ पित्रादित्रयाणामेकविप्रपक्षे त्रिभिः पात्रैरेकस्यैवार्घ्यं दद्यात्' इति वृत्तिः ॥ कारिकापि-'स्वधाऽर्घ्या इत्यपोर्घ्यास्ता उपवीती निवेदयेत् ॥" निवेदनात् प्राक् प्राचीनावीतमेवेत्यर्थः ॥ "अर्घ्यं सशेषमादाय दक्षिणेन तु पाणिना । सव्यहस्तगृहीतेन निनयेत्पितृतीर्थतः ॥ दत्वा दत्वा निर्नीतास्ता या दिव्याचानुमन्त्रयेत् ॥ " यत्तु-'या दिव्या इति मंत्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिःक्षिपेत् ' इति ॥ यच्च वाराहे-'तिलाम्बुना चापसव्यं दद्यादर्घ्यादिकं द्विजः ' इति ॥ यच्च व्यासः-"गोत्रसंबन्धनामानि पितृणामनुकीर्तयन् । एकैकस्य तु विप्रस्य अर्घपात्रं विनिःक्षिपेत् ॥" इति । तद्बह्वृचातिरिक्तविषयम् ॥ तत आचामेत् । एवं मातामहेष्वपि । आश्वलायनः-'संस्रवान् समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामो मुखमनक्ति ' संस्रवः

कारिका और वृत्तिमें भी ऐसेही लिखा है पिता आदिकोंको तीन पात्रोंसे अर्घ्य दे, यदि पिताके स्थानमें तीन ब्राह्मण होयँ तो एकही अर्घ्यको विभागसे देदे, और तीनोंके आगे 'स्वधार्घ्या, यह उच्चारणकर एक वार निवेदन करै, इसी प्रकार पितामह आदिके ब्राह्मणोंमें भी जानना चाहिये, जलदान अर्घ्यदानके अन्यमंत्र प्रत्येक ब्राह्मणके प्रति पृथक् २ पढने, उनमें गन्ध आदिके विषय प्रतिविप्र पदार्थका संकेत है वा काण्डसमूहका संकेत है, जब पितामादि तीनोंका एक ब्राह्मण हो यह पक्ष है, तब तीनों पात्रोंसे एकही अर्घ्य दे, यह वृत्तिग्रन्थमें भी कहा है कि, अर्घ्यके जल स्वधार्घ्या यह कह कर और सव्य होकर निवेदन करै, आर निवेदनसे पहले प्राचीनावीत (अपसव्य) रहै, शेष अर्घ्यको दक्षिण हाथमें लेकर और वामहाथसे पकडै, दक्षिणहाथसे पितृतीर्थसे दे और देदेकर' दिव्या' इस पूर्वोक्त ऋचाका उच्चारण करै ॥ जो किसीने कथन किया है कि, ' या दिव्या ' इस मन्त्रसे अर्घ्यदे जो वाराहपुराणमें लिखा है कि, अर्घ्यके तिल और जल द्विजाति अपसव्य होकर दे, जो व्यासजीका वाक्य है कि, पितरोंके गोत्र सम्बन्धमें नामोंको कहै एक २ ब्राह्मणके आगे एक २ अर्घ्यपात्र रक्खै यह सब वचन बह्वृचोंसे भिन्नके विषयमें है, फिर आचमन करै इसी प्रकार मातामह आदिमें भी जानना उचित है ॥ आश्वलायनने कहाहै कि, अर्घ्यक संस्रवोंको लेकर पुत्रकी इच्छावाला यजमान उन जलोंसे अपने मुखको सींचै, संस्रवनाम शेष

१ दिव्या आपो अभियदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् । गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रासमेति ॥ ऋ० ॥ ५ । ७ । ३ ।

शेषः । 'संस्रवो हि परिशिष्टो भवति' इति, शतपथश्रुतेः ॥ केचित्तु हस्तगलिताम्बु वदन्ति ॥ समवनीयान्त्ये द्वे पात्रे पितृपात्रम् । आसिञ्चेदिति वृत्तिः ॥ 'प्रथमे पात्रे संस्रवान् समवनीय' इति कातीयसूत्राच्च ॥ ब्राह्मे तु प्रतिबिम्बावलोकनमुक्तम् ॥ स्कान्दे त्वायुष्कामस्य नेत्रासेचनमुक्तम् ॥ विप्रैः प्राङ्मुखस्य कर्तुरभिषेकः कार्य इति केचित् ॥ आश्वलायनः—"नोद्धरेत् प्रथमं पात्रं पितॄणामर्घ्यपातितम् । आवृतास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोऽब्रवीत् ॥" 'यावद्विप्रविसर्जनम्' इति तुर्यपादे यमीयः पाठः ॥ अत्र वृत्तिः—'पितृपात्रं समवनयनदेशान्न चालयेदाश्राद्धसमाप्तेः । यस्मात्तत्र 'तृतीयपात्रेणावृत्ताः ' इति ॥ यद्वा । प्रथमपात्रमेव न्यग्बिलं कुर्यात् इति ॥ कामाभावेपीदमेव शेषप्रतिपादनम् ॥ हेमाद्रौ कौर्मे—"संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहितः । पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं निधापयेत् ॥" शूलपाणौ यमस्तु—"पैतृकं प्रथमं पात्रं तस्मै पैतामहं न्यसेत् । प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेन्न च चालयेत् " इत्याह ॥ 'अथ संस्रवानानीय तृतीयेनाच्छाद्य न्युब्जीकुर्यात्' इति सर्वैकवाक्यतयार्थ इति केचित् ॥ अत्रिः—"गन्धादिभिस्तदभ्यर्च्य तृतीयेनापिधापयेत् । पितृभ्यः स्थानमसीति

(बाकी) का है कारण कि, शतपथ ब्राह्मणकी श्रुति है कि, परिशिष्ट संस्रव होता है, कोई तो हाथसे गिरे जलको संस्रव कहते हैं, वृत्तिमें कहा है कि, अन्तके दो पात्र लेकर पिताके पात्रमें सींचे और कातीय सूत्रमें भी लिखा है कि, पहिले पात्रमें संस्रवोंको डाले ब्रह्मपुराणमें तो अर्घोंमें मुखका अवलोकन लिखा है, स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, अवस्थाका अभिलाषी नेत्रोंको साच, पितृकर्ममें ब्राह्मण प्राङ्मुख बैठ यजमानको अभिषेक करें, यह किन्हीका मत है आश्वलायनका कथन है कि, जो पितरोंका पात्र पहले औंधा किया हुआ है उसको सीधा न करना क्यों कि, उससे ढकेहुए पितर स्थित हैं यह शौनकने लिखा है इस श्लोकके चौथे पादमें यमने यह कहा है कि, तबतक सीधा न करै, जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन न हो, वृत्ति ग्रन्थमें तो यह कहा है कि, पिताका पात्र जहां दिया हो उसको स्थानसे श्राद्धकी पूर्तितक न चलावै जिससे वहां पितर तीसरे पात्रसे ढके हैं, अथवा पहले पात्रकोही औंधा करै, कामनाके अभावमें भी यही शेष जलका कथन किया है ॥ हेमाद्रिमें कूर्मपुराणका कथन है कि, फिर सम्पूर्ण संस्रवोंको सावधानीसे पात्रमें करै, फिर 'पितृभ्यः स्थानमसि' यह कह पात्र औंधा रखदे शूलपाणिमें यमने तो यह लिखा है कि, पिताके पहिले पात्रमें पितामहका और उसपर प्रपितामहका पात्र रखकर न उठावै न चलावै, किन्हीका यह मत है कि, संस्रवोंको लेकर और तीसरे पात्रसे ढककर औंधेमुंह करदे, सबकी एक वाक्यतासे यह अर्थ ठीक है ॥ अत्रिका कथन है कि, गन्धआदिसे उनको पूजनकर फिर तीसरे पात्रसे ढकदे और 'पितृभ्यः स्थान-

शुचौ देशेऽर्चितेऽर्चयेत् ॥" अर्चनं न्युब्जीकृतेपि तुल्यम् ॥ 'न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ सर्वविप्रोत्तरतो न्यसेदिति हेमाद्रिकल्पतरुः ॥ विप्रवामे इति हलायुधः ॥ कर्तुर्वामे इति शूलपाणिः ॥ ' उत्तानं विवृतं वापि पितृपात्रं तु तद्भवेत्' इत्युशनसोक्तेर्न्युब्जतैव साधुः ॥ 'मातामहादिसंस्रवानपि पितृपात्र एव गृहीत्वा प्रयाजवत्तन्त्रेण न्युब्जीकुर्यात्' इति शूलपाणिः । एकोद्दिष्टे तूहेन न्युब्जतेति पितृभक्तौ श्रीदत्तः ॥ यमोपि–" स्पृष्टमुत्तानमन्यत्र नीतमुद्घाटितं तथा । पात्रं दृष्ट्वा व्रजन्त्याशु पितरस्तं शपन्ति च ॥ " वैश्वदेवे उत्तानमिति मदनपारिजातः ॥ वैजवापः–" तस्योपरि कुशान् दत्त्वा प्रदद्याद्देवपूर्वकम् । गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं वस्त्रोपवीतके ॥ " अत्र गन्धादेर्दैवे पित्र्ये च पदार्थानुसमयस्य याज्ञवल्क्योक्तकाण्डानुसमयेन विकल्पो ज्ञेयः॥ बह्वृचानां तु सूत्रे दैवानुक्तेः काण्डानुसमय एव अत्र प्राचीनावीतिनामगोत्रसंबुद्ध्याद्युक्तं प्राक् अन्यद्दैववत्तदन्ते आचमनं च ॥ हेमाद्रौ कालिकापुराणे ॥"निर्वर्त्य ब्राह्मणादेशात् क्रियामेवं यथाविधि । भाजनानि ततो दद्याद्धस्तशौचं पुनः क्रमात ॥ " आदेशात्पात्राणि

मासि०' यह कहकर शुद्धस्थानमें उनकी अर्चा करै, और पूजन औंधा करनेपरभी तुल्य है कारण कि, प्रचेताका वचन है कि, औंधेपात्रको उत्तर दिशामें रखदे, हेमाद्रि और कल्पतरु तो यह कथन करते हैं कि, सब ब्राह्मणोंके उत्तरमें रक्खै हलायुध कहते हैं कि, ब्राह्मणोंके बांई ओरमें रक्खै, श्राद्धकर्ताकी बाईं ओरमें रक्खै यह शूलपाणिका मत है, सीधा और ढका वह पिताका पात्र न हो, इस उशनाके कथनसे औंधा करनाही उत्तम है मातामह आदिके संस्रवोंकोही पिताके पात्रमेंही लेकर प्रयाजके समान एकवार उलटाकर दे यह शूलपाणि कहते हैं, एकोद्दिष्ट श्राद्धमें तो ऊहकरके औंधा करै, यह पितृभक्तिमें श्रीदत्तने लिखा है ॥ यमस्मृतिका वाक्य है कि, देने और खोलनेको त्यागकर सब स्थानमें सीधा पात्र हो तो उसको देखकर पितर शीघ्र चले जाते हैं और उसको शाप देते हैं, वैश्वदेवमें सीधा पात्र होता है यह मदनपारिजातका मत है वैजवापका कथन है कि उसके ऊपर कुशास्थापितकर विश्वेदेवाओंके क्रमसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, यज्ञोपवीत प्रदान करै, यहां देव और पितृकर्ममें गन्धादिकका जो प्रत्येकको देना है उसका याज्ञवल्क्यके कथन किये काण्डानुसमयही है अर्थात् एकसाथ देनेके संग विकल्प जानना उचित है बह्वृचोंके सूत्रमें तो देवश्राद्धका विधान नहीं कहा इससे काण्डानुसमयही है, यहां अपसव्यसे नाम गोत्र सम्बन्ध आदि पहले कह आये हैं और सब कर्म देवके समान जानने और उसके अन्तमें आचमनका विधान है ॥ हेमाद्रिग्रंथमें कालिका पुराणका वाक्य है कि, ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्धके कर्मको करके पात्रदे, और वारम्वार हाथ धुलवावे और पात्र भी ब्राह्मणोंकी आज्ञासे प्रदान करै

दद्यादित्यन्वयः ॥ तेन तत्रापि प्रश्नानुज्ञे ज्ञेये ॥ तत्रैव ब्राह्मे-"मण्डलानि च कार्याणि नैवारैश्चूर्णकैः शुभैः । गौरमृत्तिकया वापि भस्मना गोमयेन वा ॥" भृगुः-"भस्मना वारिणा वापि कारयेन्मण्डलं ततः । चतुष्कोणं द्विजाग्र्यस्य त्रिकोणं क्षत्रियस्य तु ॥ मण्डलाकृति वैश्यस्य शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम् ॥" बह्वृचपरिशिष्टे तु-'दैवे चतुरस्रं पित्र्ये वृत्तं मण्डलं कृत्वा क्रमेण सयवान् सतिलांश्च दर्भान् दद्यात्' इत्युक्तम् ॥ मार्कण्डेयः-"यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूरा ये चैव राक्षसाः । हरन्ति रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥" हेमाद्रौ हारीतः-'भूमावेव निदध्यान्नोपरि पात्राणि' इति ॥ तानि च हेमाद्रावत्रिराह-'भोजने हैमरौप्याणि दैवे पित्र्ये यथाक्रमम् ॥' हारीतः-'राजतपर्णताम्रकांस्यपात्राणि भोजने' इति ॥ तत्रैव वाराहे-"सौवर्णानीह रौप्याणि कांस्यानि तदसम्भवे । अन्यान्यपि हि कार्याणि दारुजान्यपि जानता ॥ नायसान्यपि कार्याणि पैत्तलानि न कर्हिचित् । न च सीसमयानीह दृश्यन्ते त्रपुजान्यपि ॥ २ ॥" अत्रिः-"पञ्चाशत्पलिकं कांस्यं तदधिकं भोजनाय वै । गृहस्थैस्तु सदा कार्यमभावे हैमरौप्ययोः ॥ पालाशेभ्यो विना न स्युः पर्णपात्राणि भोजने ॥" पृथ्वीचन्द्रस्तु-'कांस्यपात्रे हविर्दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः' इति ब्राह्मोक्तेः कांस्यपात्रनिषेधमाह ॥ वोपदेवस्तु स्मृतिसंग्रहमुदाजहार-"श्राद्धे पलाशपात्राणि

वहांही ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, नवारका चून श्वेतमृत्तिका भस्म वा गोवरसे ब्राह्मणोंके पृथक् २ मंडल करै, भृगुका कथन है कि, भस्म वा जलसे ब्राह्मणका चौकोन, क्षत्रीका त्रिकोन, वैश्यका गोलाकार मंडल करै, शूद्रके यहां छिडकनेकोही कथन कियाहै, बह्वृचपरिशिष्टमें तो यह लिखाहै कि, विश्वेदेवाओंका चौकोन पितरोंका गोलमण्डल करके क्रमसे यवसहित और तिलोंके सहित कुशा दे ॥ मार्कण्डेयका कथन है कि, मण्डलके विना अन्नके रसको यातुधान (असुर) पिशाच और क्रूरराक्षस हरण कर लेते हैं, हेमाद्रिमें हारीत ऋषिका कथन है कि, पृथ्वीमेंही पात्र रक्खै पत्ते आदिके ऊपर न रक्खे, वे पात्र हेमाद्रिमें अत्रिने इस प्रकार कहेहैं कि, विश्वेदेवाओंके पात्र सोनेके पितरोंके क्रमसे चांदीके होते हैं हारीतका कथन है कि, भोजनके पात्र चांदी पत्ते तांबे और कांसीके होतेहैं औरभी पात्र वाराहमें कहेहैं जो वे सोनेके न होंय तो उसके अभावमें चांदीके उसके अभावमें कांसीके जानता हुआ मनुष्य पात्र निर्माण करै लोहा, पीतल, सीसा, कलके पात्रकेभी न निर्माण करै क्योंकि ये निकृष्ट हैं अत्रिका कथन है कि, ग्रहस्थी सदैव सुवर्ण और चांदीके अभावमें बावन पलभर कांसीका पात्र बनवावे, ढाकके विना भोजनके पात्र और पत्तोंके नहीं होते ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें इसप्रकार ब्रह्मपुराणके वचनसे कांसीके पात्रका निषेध कहाहै कि, कांसीके पात्रमें हविको देखकर पितर निराश होजाते हैं, वोपदेवने तो स्मृतिसंग्रहके ये वचन कहेहैं कि, श्राद्धमें ढाक मौहुआ, गूलर, पारिका, कुटज,

मधूकौदुम्बराणि च । पारिकाकुटजप्लक्षक्रकचानि क्रमाज्जगुः ॥ कदलीचूतपनस-जम्बुपुन्नागचम्पकाः । अलाभे मुख्यपात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि ॥ २ ॥ " इति ॥ हेमाद्रौ तु कदलीपात्रनिषेधमाहाङ्गिराः–'न जातीकुसुमानि दद्यान्न कदलीपत्रम् ' इति ॥ क्रतुः–" असुराणां कुले जाता रम्भा पूर्वपरिग्रहे । तस्य दर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः ॥ " एवं पात्राण्यासाद्य भस्ममर्यादां कृत्वा विप्रहस्तशोधनं कुर्याद् ॥ तत्र ' पिशङ्ग 'राक्षणो' इति मन्त्रद्वयं केचित्पठन्ति ॥ मात्स्ये–"अकृत्वा भस्ममर्यादां यः कुर्यात्पाणिशोधनम् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ " तत्रैव ब्रह्माण्डे–"प्रक्षाल्य हस्तपात्रादि पश्चादद्भिर्विधा-नवत् । प्रक्षालनजलं दर्भैस्तिलैर्मिश्रं क्षिपेच्छुचौ ॥ " मण्डलोपरीति हेमाद्रिः ॥ अग्नौकरणनिर्णयः । अथाग्नौकरणम् ॥ हेमाद्रौ मार्कण्डेयः–आहिताग्निस्तु जुहुया-द्दक्षिणाग्नौ समाहितः । अनाहिताग्निश्चौपसदे ह्यग्न्यभावे द्विजेप्सु वा ॥"वायवीये–" आहृत्य दक्षिणाग्निं तु होमार्थं वै प्रयत्नतः । अग्न्यर्थं लौकिके वापि जुहुयात्कर्म-सिद्धये॥" आहिताग्निः सर्वाधानी ॥ अर्धाधानी तु गृह्य एवेति चन्द्रिकापरार्क-मिताक्षरामाधवादयः ॥ तस्यापि दक्षिणाग्नौ लौकिको गृह्य इति हेमाद्रिः कल्प-तरुश्च ॥ आद्यपक्ष एव तु युक्तो बहुसम्मतश्च ॥ यद्यपि स्मार्तमग्नौकरणं श्रौते

पिलखन, क्रकच, केला, आम, पनस, जामन, पुन्नाग, चंपाके पात्र क्रमसे वर्णन किये हैं, यदि मुख्य ढाकके पात्र न मिलें तो पितृकर्ममें यहभी ग्रहण करने योग्य हैं, हेमाद्रिमें तो अंगिराने केलेके पत्तेका त्याग कहाहै कि, जातीके फूल और केलेके पत्तोंको प्रदान न करै ॥ क्रतुने कहाहै कि, असुरोंके कुलमें उत्पन्नहुई रंभा असुरोंकी स्त्री है उसके अवलोकनसेही पितर निराश हो चलेजातेहैं, इसप्रकार पात्रोंको स्थापितकर और भस्मकी मर्यादाको करके ब्राह्मणोंके हाथका शोधन करावे हाथ धुलानेमें भी 'पिशंग 'राक्षणो ' इन दो मंत्रोंको कोई पढते हैं, मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, भस्मकी मर्यादा किये विना जो हाथ धुलाताहै वह श्राद्ध आसुर होजाताहै और पितरोंको प्राप्त नहीं होता उसीस्थलमें ब्रह्माण्डपुराणके वाक्य हैं कि, फिर जलसे विधिपूर्वक हाथ पांव धुलाकर कुशा और तिलोंसहित उस प्रक्षालनके जलको पवित्रस्थानमें डालदे, मंडलके ऊपर डाले यह हेमाद्रि कहतेहैं ॥ अब अग्नौकरणको वर्णनकरतेहैं । हेमाद्रिमें मार्कण्डेयका कथनहै कि, आहिताग्नि (अग्निचयनी) मनुष्य सावधानतापूर्वक दक्षिणाग्निमें हवन करै और अनाहिताग्नि उपासना अग्निमें और अग्नि न होय तो ब्राह्मणमें वा जलमें हवन करै, वायवीयका वाक्यहै कि, होमके निमित्त दक्षिणाग्निको वा लौकिक अग्निको यत्नसे लाकर कर्मसिद्धिके निमित्त हवन करै, अर्द्धाधानी तो गृह्यअग्निमें करै यह चन्द्रिकामें अपरार्क मिताक्षरा माधवआदि कहतेहैं, वह भी दक्षिणाग्निमें करै लौकिक, गृह्यअग्निका नाम है यह हेमाद्रि और कल्पतरुका कथनहै इनमें पहिलापक्ष युक्त और बहुत पुरुषोंको सम्मत है, यद्यपि

दक्षिणाग्नौ न युक्तं तथापि वचनाद्भवतीति हेमाद्रिचन्द्रिकादयः ॥ इदं दर्शश्राद्ध एव ॥ आब्दिकादिषु तु सर्वाधानी पाणौ अर्धाधानी गृह्ये कुर्यादिति हेमाद्रिमाधवादयश्च ॥ "पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः" इति लौगाक्ष्यादिभिः क्रमेणोक्तेर्विहितदक्षिणाग्नित्वात् ॥ अत एवात्र वचने साग्निक आहिताग्निरुक्तो हेमाद्रिणा ॥ एतदापस्तम्बादीनामेव ॥ आश्वलायनस्याहिताग्नेः पाणावेवेति वृत्तिः ॥ अर्धाधानिना गृह्य एव व्यतिषङ्गेणेति प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च ॥ बोपदेवस्त्वाह होमशब्दः पिण्डपितृयज्ञपरः ॥ "पितृयज्ञे तु जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः । श्राद्धे त्वौपासनाग्नौ तु निरग्निर्लौकिकेऽनले ॥ अनग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । सन्धायाग्निं ततः कुर्याद्धोममग्निं समुत्सृजेत् ॥ २ ॥" इति त्रिकाण्डमण्डनोक्तेः ॥ श्राद्धे गृह्याग्नावेवेति लौकिकाग्न्यादिविधानं च तैत्तिरीयादिविषयम् ॥ बहृचस्य त्वग्नेरपि पाणिहोम एव, अग्निपाणी विना सूत्रे विधानान्तरानुक्तेः ॥ 'अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्' इति मनूक्तेश्च ॥ वृत्तावप्येवम् ॥ क्वचित्साग्नेरपि पाणिहोम उक्तो गृह्य-

---

स्मार्त अग्नौकरण श्रौत दक्षिणाग्निमें युक्त नहीं तथापि वाक्योंसे होताहै यह हेमाद्रि चंद्रिका-आदि कहतेहैं, वह अमावस्याके श्राद्धमें होताहै वार्षिक आदि श्राद्धोंमें तो सर्वाधानी हाथमें और अर्द्धानी गृह्यअग्निमें अग्नौकरण करै, यह हेमाद्रि और माधव कथन करते हैं कारण कि, पक्षान्तकर्म और वैश्वदेव कर्मको करके बुद्धिमान्, अग्निहोत्री पिंडयज्ञ करै, और फिर अन्वाहार्य कर्मको करै, लौगाक्षि आदिके कहे इस क्रमसे वह शास्त्रमें कही दक्षिणाग्नि है, इससे इस वचनसे साग्निकसे हेमाद्रिमें आहिताग्नि कथन कियाहै यहभी आपस्तम्बोंके निमित्त है ॥ आश्वलायन आहिताग्नि तो हाथमें ही करै, वृत्तिग्रन्थमें कथन किया है अर्धाधानी ता परिवर्तनसे गृह्यअग्निमें हवन करै यह प्रयोगपारिजात और परिशिष्टमें लिखा है, बोपदेवका तो यह मत है कि, होमशब्दसे पिंडपितृयज्ञका विधान करते हैं कारण कि, त्रिकांडमंडनने यह कथन किया है कि पितृयज्ञमें सावधानीसे, दक्षिणाग्निमें हवन करै श्राद्धमें औपासनाग्निमें हवन करै, जो अग्निहोत्री न हो वह लौकिक अग्निमें हवन करै, अग्निहोत्रीसे भिन्न और जिसकी स्त्री दूर हो वह मनुष्य पार्वणके दिन अग्निको प्रज्वलित करके हवन करै फिर अग्निको त्यागदे, अमावस्याके श्राद्धमें तो गृह्यअग्निमें हवन करै, उसमें लौकिक अग्निआदिका जो विधान किया है वह तैत्तिरीय शाखावालोंके विषयमें है. अग्निहोत्रीमें पृथक् बहृचोंको तो हाथमें ही हवन करना कारण कि, अग्नि और हाथको छोडकर सूत्रमें किसी औरका विधान वर्णन नहीं किया अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमेंही आहुति दे यह मनुने भी कथन किया है, और वृत्तिमें भी ऐसेही है, कहीं तो अग्निहोत्रीको भी हाथमेंही हवन करना कथन किया है, गृह्यपरिशिष्टका

परिशिष्टे-"अन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युर्मासिमास्यथ पार्वणम् । काम्यमभ्युदयेष्टम्यामे-कोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥ चतुर्ष्वाद्येषु चाग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते । पित्र्यब्राह्मण-हस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ॥ २ ॥" इति ॥ एकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणं श्राद्धे तन्नि-षेध ॥ बृचभाष्यकारास्तु सर्वैकोद्दिष्टेषु पाणिहोममाहुः ॥ इदं बहृचानामेव ॥ अत्रेदं तत्त्वम् । 'स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य' इति सूत्रे नात्रापूर्वः स्थाली-पाकश्चोद्यते ॥ सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गात्तेनानुवादोयम्' इति वृत्तिकारोक्तेः ॥ पार्वणे आर्थिकस्यानङ्गस्य व्यतिषङ्गस्य वार्षिकादिष्वनतिदेशादर्धाधानिनोपि पाणिहोम एवेति वृत्तिस्वरसः ॥ एवं मासिकादावपि-"षोडशे मासिके श्राद्धे सपिण्डीकरणे तथा । पाणावेव तु होतव्यमन्यत्राग्नौ तु हूयते" इति बोपदेवोदाहृतवचनाच्च ॥ भाष्यकारमते तु-'सह स्थालीपाकेनेतिकरणत्वान्नित्यवच्छ्रवणाच्च पार्वणे ह्यङ्गम् ॥ ततः काम्यादिषु तदभावे कार्यस्य पिण्डदानस्याप्यभावः ॥' एतदेवा-नुसृत्य विकृतावपि वार्षिकादौ व्यतिषङ्ग उक्तः प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च ॥ तेनैतन्मतेऽर्धाधानिनोऽग्नावेव । वस्तुतस्तु-'स्थालीपाके सहशाखया प्रस्तरं प्रहरति' इतिवत्सहभावमात्रश्रुतेः ॥ पत्नीवते त्वष्टुरुपलक्षणमिव नाङ्गत्वम्॥ तत्त्वे वा नाङ्गा-

---

वाक्य है कि, अग्निहोत्रियोंको अन्वष्टकाश्राद्धमें अग्निमें हवन करना चाहिये, पूर्व कहेहुए चार कर्मोंमें पितृ ब्राह्मणके हाथमें हवन कहा है, एकोद्दिष्ट श्राद्धसे सपिंडीकरण लेना कारण कि, श्राद्धमें हवनका निषेध है॥ बह्वृचके भाष्यकार तो संपूर्ण एकोद्दिष्ट श्राद्धोंमें हाथमेंही होमको कहते हैं, यह भी बह्वृचोंके निमित्त है. यहां यह सिद्धांत है कि, स्थालीपाकसहित पिंडके निमित्त अन्नको निकालकर इस सूत्रमें नवीन स्थालीपाक वर्णन नहीं किया कारण कि नया होता तो सब श्राद्धोंमें उसका प्रसंग लिखा होता तिससे यह अनुवाद वचन है इस वार्तिककारके वचनसे अर्थात् प्राप्त हुए अंगभिन्न व्यतिषंग स्थालीपाकका पार्वण और वार्षिक आदि श्राद्धमें मन्तव्य न होनेसे अर्द्धाधानीको भी हाथमेंही हवन करना चाहिये, यह वृत्तिका आशय है, इसीप्रकार मासिकआदि श्राद्धमें भी जानना उचित है, और वोपदेवका कथन किया हुआ यह वचन भी है कि, षोडशमासिक और सपिंडीकरण श्राद्धमें हाथमें हवन करना, और इसके सिवाय अन्यत्र अग्निमें हवन करै ॥ भाष्यकारके मतमें तो सूत्रमें 'स्थालीपाकेन' यह करणमें तृतीया विभक्ति है, और नित्य उसका श्रवण है इससे स्थालीपाकभी पार्वण श्राद्धका अंग है, इससे काम्य आदि श्राद्धोंमें उसके अभावसे करनेयोग्य पिंडदानका भी अभाव जानना, इससे इसीका अनुसरण करके वार्षिकआदि विकृतिमें भी व्यतिषंग प्रयोगपारिजात और परि-शिष्टमें लिखा है, तिससे इसके मतसे अर्द्धाधानी भी अग्निमेंही हवन करै, सिद्धान्त तो यह है कि, "स्थालीपाकेन सह" यहां "शाखया प्रस्तरं हरति" इसकी समान समावमात्र श्रुती है, इसके समान सहभाव अर्थात् एक (साथ होना) सुननेसे त्वष्टाकी पत्नीके

नुरोधेन प्रधानभूतपिण्डदानत्यागो युक्तः-तद्व्यतिषङ्गाभावेप्यग्नौ होमो भवति इति बोपदेवः ॥ अनाहिताग्नेर्गृह्याग्निमतस्तु सर्वमतेऽग्नावेव ॥ वार्षिकादौ वृत्तिमते व्यतिषङ्गो न अन्यमते त्वस्ति ॥ अत्र यथाचारमनुष्ठेयम् ॥ आश्वलायनः- "उद्धृत्य घृताक्तमन्नमनुज्ञापयत्यग्नौकरिष्ये । करवै करवाणीति वा प्रत्यनुज्ञा । क्रियतां कुरुष्व कुर्विस्यथाग्नौ जुहोति यथोक्तं पुरस्तात् " इति ॥ व्यतिषङ्गपक्षे इदमिति वृत्तिः ॥ करवै करवाणीत्यत्राग्नाविस्यनुषङ्गः । पुरस्तात् पिण्डपितृयज्ञे ॥ तच्चैवम्- 'मेक्षणेनावदायावदानसंपदा जुहुयात्सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः इति स्वाहाकारेण वाग्निं पूर्वं यज्ञोपवीती मेक्षणमनुपहृत्य' इति ॥ अवदानसंपदा-उपस्तरणाद्यपेक्षयेत्यर्थः ॥ व्यतिषङ्गपक्षे आतिप्रणीतेयं होमोऽन्यथा मुख्ये 'अतिप्रणीतेऽग्नाविध्ममुपसमाधाय' इति बह्वृचपरिशिष्टात् ॥ केचित्तस्य रक्षोनिबर्हणार्थत्वान्मुख्ये वदन्ति ॥ तदेतद्विरोधाच्चिन्त्यम् ॥ प्रयोगपारिजातेऽप्येवम् ॥ शौनकः-"स्वाहाकारेण होमे तु भवेद्यज्ञोपवीतवान् । तत्र प्रागग्नये हुत्वा पश्चात्सोमाय हूयते ॥ अग्नौ यज्ञोपवीत्येव प्रक्षिपेन्मेक्षणं ततः" । छन्दोग-

---

समान उपलक्षण है अंग नहीं जानना और अंगभिन्नके अनुरोधसे प्रधानभूत पिंडदानका त्याग उचित नहीं, इस कारणसे व्यतिषंगके अभावमें भी अग्निमें हवन होता है यह बोपदेवका कथन है अग्निहोत्रीसे भिन्न और गृह्यअग्निवालोंका हवन तो सबके मतसे अग्निमेंही होता है, वार्षिकआदि श्राद्धोंमें तो वृत्तिके मतसे है, व्यतिषंग नहीं औरके मतसे है इसमें जैसा देशाचार हो वैसा करना ॥ आश्वलायनका कथन है कि, घीसे युक्त अन्नको निकालकर आज्ञा लेता है कि अग्निमें हवन होता है उसे मैं करताहूं आप आज्ञा द करो इस प्रकार आज्ञाके अनन्तर पूर्वोक्त कहनेके अनुसार अग्निमें हवन करै, व्यतिषंग पक्षमेंही यह है कि, यह वृत्तिमें कहा है पूर्वोक्त वचनमें " करवावै करवाणि " इन दोनों पदोंमें अग्नौ इस पदका सम्बन्ध कथन करते हैं और पिंडपितृयज्ञमें तो पाहिले होता है वह इस प्रकार है, 'मेक्षणेनावदायावदानसंपदा,' इस मन्त्रसे, वा स्वाहा कारसे यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण पाहिले अग्निका मेक्षण[1] करके अवदानकी संपदा उपस्तरणसे पहिले है, व्यतिषंग पक्षमें यह; होम अति प्रणीत (अंग) में है, अन्यथा मुखमें जानना कारण कि, बह्वृच परिशिष्टका कथन है कि, अति प्रणीत अग्निमें इन्धन रखकर कोई तो अतिप्रणीत अग्निको राक्षसोंके निवारणके निमित्त होनेसे मुख्यमें कहते हैं, वह उक्त परिशिष्टके विरोधसे विचारणीय है, प्रयोगपारिजातमें भी ऐसेही लिखा है ॥ शौनकका कथन है कि, स्वाहा कारसे होम करनेमें यज्ञोपवीतको धारण किये रहै, वहां पहिले अग्निके निमित्त होम करके पीछे सोमके लिये आहुति दी जाती है, फिर यज्ञोपवीत धारणकर मेक्षणमें

---

१ जिससे इस अग्निमें चरु डाला जाता है वह पात्र विशेष ।

परिशिष्टे-"अग्नौकरणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना । अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन च ॥ कातीयानां त्वपसव्यमेव पिण्डपितृयज्ञवद्धृत्वा" इति सर्वातिदेशात् ॥ सव्यं तु छन्दोगपरम् ॥ गोभिलेनैतदुत्तरमेवापसव्योक्तेः ॥ 'छन्दोगा जुहुयुः सव्येनापसव्येन याजुषाः' इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेश्च ॥ अथ पाणिहोमः । आश्वलायनः-"अभ्यनुज्ञायां पाणिष्वेव" इति ॥ पिण्डपितृयज्ञकल्पाभावेनाग्न्यभावे काम्यादिष्वित्यर्थः ॥ तेन बह्वृचानामेकोद्दिष्टे पाणिहोमो भवत्येव ॥ निषेधोऽन्यपरः ॥ पाणिष्विति बहुवचनात्सर्वविप्रपाणिषु होम इति वृत्तिः ॥ एवं मातामहेपि । शौनकोपि-"सर्वेषामुपविष्टानां विप्राणामथ पाणिषु । विभज्य जुहुयात्सर्वं सोमायेत्यादिमन्त्रतः ॥" य हेमाद्रौ कात्यायनः "पित्र्ये यः पंक्तिमूर्धन्यस्तस्य पाणावनग्निकः । हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निक्षिपेत्" इति बह्वृचातिरिक्तानाम् ॥ यत्तु तत्रैव मात्स्ये-"अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ वाथ जलेपि वा । अजकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वाथ शिलान्तिके ॥" इति ॥ तत्तीर्थश्राद्धविषयम् ॥ 'तद्यदापां समीपे स्याच्छ्राद्धं ज्ञेयो विधिस्तदा' इति तत्रैव कात्यायनोक्तेः ॥ निर्जले त्वजकर्णादौ ॥ यत्तु चन्द्रोदये यमः-'देवविप्रकरेऽनग्निः कुर्या-

---

अग्निको डालदे, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, अग्नौकरण होम, यज्ञोपवीत धारण कर वा अपसव्य होकर दक्षिणाभिमुख करै, कातियोंके मतमें तो अपसव्यसेही होना चाहिये कारण कि, पिण्डपितृयज्ञके समान करै यह सबके निमित्त आज्ञा है, सव्यसे करना तो छन्दोगोंके निमित्त है, कारण कि गोभिलने अग्नौकरणके उपरान्तही अपसव्य होना कहा है, वृद्धयाज्ञवल्क्यका भी कथन है कि छन्दोग सव्यसे और यजुर्वेदी अपसव्य होकर हवन करैं ॥ अब पाणिहोमको कथन करते हैं, आश्वलायनका कथन है कि, आज्ञा होनेके उपरान्त हाथमेंही होम होता है जब पिंडपितृयज्ञ नहीं तब यह होता है, और अग्निके अभाव और काम्य आदिमें नहीं तिससे बह्वृचोंके मतसे एकोद्दिष्टमें हाथमें होम होता है, निषेध औरोंके विषयमें है, 'पाणिषु' इस बहुवचनसे संपूर्ण ब्राह्मणोंके हाथमेंही होम होता है यह वृत्तिग्रन्थमें लिखा है, इसी प्रकार मातामहमें भी समझना चाहिये, शौनकका कथन है कि, बैठे हुए सब ब्राह्मणोंके हाथमें सब अन्नको विभाग करके 'सोमाय०' इस मन्त्रसे हवन करै, जो हेमाद्रिमें कात्यायनका कथन है जो सब पंक्तिका शिरोमणि है उसके हाथमें पितृकर्ममें अग्निहोत्रीसे भिन्न ब्राह्मण, मन्त्रसे हवन करके और ब्राह्मणोंके पात्रमें मौन होकर अन्नको डालदे वह बह्वृचोंसे भिन्नोंके विषय जानना उचित है ॥ जो कि उसी स्थलमें मत्स्यपुराणका कथन है कि अग्नि न होय तो ब्राह्मणके हाथमें जल वा अजा और घोडेके कानमें गोष्ट वा शिलाके समीप आहुति प्रदान करैं, कारण कि, कात्यायनने उसी स्थलमें यह कहा है कि, वह अग्नौकरणकी विधि तब जाननी जब जलोंके निकट श्राद्ध हो, जल न होय तो बकरीके कर्णआदिमें हवन करै, जो चन्द्रोदयमें यमका वाक्य है कि अग्निहोत्रीमें भिन्न

ग्नौकरणं द्विजः' इति ॥ तदभार्यपरम् ॥ "अपत्नीको यदा विप्रः श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् । पित्र्यविप्रैरनुज्ञातो विश्वेदेवेषु हूयते ॥" इति तत्रैव कात्यायनोक्तेः ॥ हूयते इति छान्दसो व्यत्ययः ॥ हेमाद्रौ वायवीये-'विधुरो दैविके कुर्याच्छेषं पित्र्ये निवेदयेत् ।' दैवविप्रानेकत्वे तत्रैव-" विश्वेदेवे यदेकस्मिन् भवेयुर्द्व्यादयो द्विजाः । तदेकपाणौ होतव्यं स्याद्विधिर्विहितस्तदा ॥" सोप्याद्यः 'प्रथमं वा नियम्येत' इति न्यायात् । तेन मृतभार्यस्य दैवे होमः ॥ अनुपनीतब्रह्मचार्यादेस्तु पित्र्ये ॥ 'अग्न्यभावः स्मृतस्तावद्यावद्भार्यां न विन्दति' इति हेमाद्रौ जातूकर्ण्योक्तेः ॥ 'सभार्यनष्टाग्नेरपि पित्र्यविप्रकरे' इति पृथ्वीचन्द्रः ॥ उपवीतित्वेन दैवे होमः । प्राचीनावीतेन पित्र्ये ॥ यद्वा सर्वत्र दैवपित्र्यकरयोर्विकल्पः इति हेमाद्रौ मदनरत्ने पारिजाते च ॥ यदा तु पितृमातामहयोर्दैवपित्र्यविप्रभेदः, तदा भेदेन पाणिहोम इत्यपरार्कचन्द्रिकादयः ॥ यदा तु दैवं तन्त्रं तदा तन्त्रेण सकृदेव पाणिहोम इति केचित् ॥ हेमाद्रिस्तु-'मातामहस्य भेदेपि कुर्यात्तन्त्रेण साग्निकः' इति कातीयस्मृतेर्भेदमाह ॥ एवं पित्र्येपि ॥ माधवीयेप्येवम् ॥ एवं साग्नेरपि

ब्राह्मण देव ब्राह्मणोंके हाथमें अग्नौकरण हवन करे, वह उसके निमित्त है जिसके स्त्री न हो, कारण कि वहांही कात्यायनका कथन है कि अग्निहोत्रीसे भिन्न ब्राह्मण जब पार्वणश्राद्ध करनेकी इच्छा करे, तो पितरोंके ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर विश्वेदेव ब्राह्मणोंके हाथमें आहुति प्रदान करे हेमाद्रिमें वायवीयका कथन है कि, स्त्रीरहित मनुष्य देव ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करे, और शेष अन्न पितृ ब्राह्मणोंको प्रदान करे यदि पितरोंके ब्राह्मण अधिक होंय तो उनकोंही दे यदि एक श्राद्धमें विश्वेदेवाओंके ब्राह्मण दो आदि होंय तो एक ब्राह्मणके हाथमें होम करनेसे विधि होती है, वह भी प्रथम लेना कारण कि, न्याय इस प्रकार है, पहले ब्राह्मणका नियम है इससे स्त्रीहीन मनुष्य देव ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करे, और जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो और जो ब्रह्मचारी हो वह पितृ ब्राह्मणके हाथमें हवन करे. कारण कि हेमाद्रिमें जातूकर्ण्यका कथन है कि, जबतक स्त्रीको न विवाहे तबतक अग्निका अभाव कहा है, स्त्रीवालेभी जिनकी अग्नि नष्ट हो गई वे पितृ ब्राह्मणके हाथमें हवन करें सव्यसे देव होम और अपसव्यसे पितृहवन करें अथवा सब स्थानमें देव और पितृ ब्राह्मणोंके हाथमें करनेका विकल्प है यह हेमाद्रि और मदनपारिजातमें कहा है, जब पितृ और मातामह दोनोंका देव और पितृ ब्राह्मणके भेदसे भेद है तब पृथक् २ हाथमें हवन होता है, यह अपरार्क और चन्द्रिका आदि कहते हैं, और जब देवका नियम है, तब तंत्रसे हवन एकवारही होता है, यह कोई आचार्य कहते हैं ॥ हेमाद्रिने तो इस कातीयस्मृतिसे भेद लिखा है कि, अग्निहोत्री ब्राह्मण मातामहके भेदमें भी तंत्रसे हवन करै, इसीप्रकार पितरोंमें भी जानना उचित है, माधवीयमें भी ऐसेही कहा है

विदेशादौ पाणिहोमो ज्ञेयः ॥ यत्तु कर्केणाग्निं विना श्राद्धमेव नास्तीत्युक्तम्, तत्सपिण्डीकरणवार्षिकाद्यकरणापत्तेर्यत्किंचिदेव ॥ यत्तु बृहन्नारदीये-"अनग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं साग्निकैर्विधिवद्द्विजाः ॥ क्षयाहदिवसे प्राप्ते स्वस्याग्निर्दूरगो यदि । तथैव भ्रातरः स्युश्चेल्लौकिकाग्नाविति स्थितिः ॥ औपासनाग्नौ दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते । यद्यग्नौ जुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी: ॥ औपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छन्ति सत्तमाः ॥ पाणावेव तु होतव्यमिति नैतत्समञ्जसम् ॥४॥" इति ॥ तद्वृद्धानादराडुपेक्ष्यम् ॥ हेमाद्रौ यमः-"अग्नौकरणवत्तत्र होमो विप्रकरे भवेत् ।, पर्युक्ष्य दर्भानास्तीर्य यतो ह्यग्निसमो द्विजः ॥" मेक्षणेन करेण वा होमः मेक्षणग्रहणं नेति वृत्तिः ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्-"नानुज्ञा पाणिहोमे स्यान्न स्तः पर्यूहनोक्षणे । नामेतमद्यादिति च न स्यातामिध्ममेक्षणे ॥" कर्काचार्योऽप्येवमाह ॥ माधवीये चान्द्रिकायां चानुज्ञादि सर्वं भवतीत्युक्तम् ॥ पाणिहोमे प्रश्नाद्याहापरार्के शौनकः-'अनग्निश्चेदाज्यं गृहीत्वा भवत्स्वेवाग्नौकरणम्" इति पूर्ववत् 'तथास्तु' इति ॥

इसी प्रकार अग्निहोत्रीको भी विदेश आदिमें हाथमें हवन करना चाहिये, ये जो कर्कने कहा है कि, अग्निके विना श्राद्ध होताही नहीं, वह इससे तुच्छ है कि, ऐसा होनेसे वार्षिक श्राद्ध और सपिंडीकरण हीन हो जायँगे, जो बृहन्नारदीय पुराणमें यह लिखा है कि, हे ब्राह्मणो ! अग्निहोत्रीसे भिन्न और जिसकी स्त्री दूर हो वह अग्निहोत्री अपने भ्राताओंसे विधिवत् श्राद्ध करावै यदि क्षयाके दिन अपनी अग्नि दूर हो और भाई भी वैसेही हो तो लौकिक अग्निमें करै, यह मर्यादा है, औपासनाग्निके दूर होते और भाईके निकट रहते जो, अग्नि व पाणिमें होम करता है वह पातकको प्राप्त होता है । कोई उत्तम विद्वान् मनुष्य उपासनाग्निके दूर होनेमें पाणिहवन चाहते हैं यह उचित नहीं कारण कि, वह वृद्धोंके न माननेसे त्यागने योग्य है ॥ हेमाद्रिमें यमका कथन है कि, छिडककर और कुशा विछाकर वहां अग्नौकरणके समान ब्राह्मणके हाथमें हवन करै, कारण कि, वह अग्निकी समान है, मेक्षणसे वा हाथसे होम होता है, वृत्तिमें लिखा है कि, मेक्षण ग्रहणको नहीं कहते हैं यह वृत्तिमें लिखे है, स्मृतिरत्नावलीमें कहा है कि, आज्ञा, पर्यूहन[1], उक्षण, इध्म और मेक्षण और अग्नेतं अद्यात् इतने कर्म पाणिहोममें नहीं होते, कर्काचार्य भी इसी प्रकार कहते हैं, माधवीय और चन्द्रिकामें तो यह लिखा है कि, अनुज्ञा आदि सब होता है, पाणिहोममें प्रश्न आदि अपरार्कमें शौनकने लिखा है अग्निहोत्री ब्राह्मण घीको लेकर कहै कि, हे ब्राह्मणो ! मैं अग्नौकरण करूंगा इस प्रकार पूछै और ब्राह्मण पूर्वके समान 'तथास्तु ' कहै ॥ आश्वलायनका कथन है कि, यदि आचमन किये ब्राह्-

१ पर्यूहन—अग्निका छका सूखे कुशोंका घुमाना, पर्युक्षण—दक्षिणावर्तसे जल घुमाना, मेक्षण अग्निमें चरु डालनेका पात्र ।

आश्वलायनः-'यदि पाणिष्वाचान्तेष्वन्यदन्नमनुदिशत्यन्नमन्ने सृष्टं दत्तमध्रुवम्' इति ॥ पाणौ हुतं पात्रे निधाय विप्रैराचम्य भोजनार्थमन्ने परिविष्टे हुतशेषं पात्रेषु दद्यादित्यर्थः ॥ सृष्टं प्रभूतम् ॥ नैमित्तिकं चेदमाचमनम् ॥ न हुतभक्षणनिमित्तम् ॥ 'अन्नं पाणितले दत्तं पूर्वमश्नन्त्यबुद्धयः । पितरस्तेन तृप्यन्ति शेषान्नं न लभन्ति ते ॥ यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्यदुपकल्पितम् । एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ॥ २ ॥" इति च बह्वृचपरिशिष्टात् ॥ हेमाद्रावप्याचमने हेत्वर्थवाद उक्तः-'पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः' इति ॥ भाष्ये त्वाचान्तेषु भक्षितेषु 'चमु भक्षणे' इति भक्षणोत्तरं च नाचमनमग्निसाम्यात् । पूर्वनिषेधस्तु सपिण्डीकरणे ज्ञेयः । ददाति चोदितत्वात् । तत्त्वत्र जुहोति चोदितत्वादित्युक्तम् । न त्वेतद्बहुसंमतम् ॥ यत्तु बौधायनेन 'तस्मिंस्तु प्राशिते दद्याद्यदन्नं प्रकृतं भवेत्' इति भक्षणमुक्तं, तत्तच्छाखीयानामेवेति हेमाद्रिः ॥ तत्रैव यमः-"पित्र्यं पाणिहुताच्छेषं पितृपात्रेषु निक्षिपेत् । अग्नौकरणशेषं तु न दद्याद्वैश्वदेविके ॥" एतदग्निहोमेपि समम् ॥ तथा कर्कस्तु सूत्रे हुतशेषं दत्त्वेत्यविशेषात्सर्वविप्रेषु दद्यादित्याह ॥ तत्रैव वृद्धवसिष्ठः-" पित्र्यविप्रकरे हुत्वा शेषं पात्रेषु निक्षिपेत् ।

णोंके हाथमें औरको दे तो बहुत भी हो तो भी वह अन्न अध्रुव होजाता है, इसका यह आशय है कि, हाथमें होमेहुये अन्नको पात्रमें रखकर ब्राह्मणोंके संग आचमन करके भोजनके निमित्त अन्न परसनेके उपरान्त होमके शेष उस अन्नको भोजनके पात्रमें रख दे, यह आचमन नैमित्तिक है, हवनके शेष भोजनके लिये नहीं है, कारण कि, बह्वृचपरिशिष्टमें कहाहै कि, हथेलीपर दियेहुए अन्नको निर्बुद्धि मनुष्य पहिले खाते हैं, उससे पितर तृप्त होते हैं, शेष अन्न उनको प्राप्त नहीं होता जो अन्न हथेलीपर दिया है ,जो और पाक श्राद्धका अन्न है उस सबको इकट्ठा करके भोजन करै, उसमें भिन्नभाव न करै, हमाद्रिमें भी आचमनमें हेत्वर्थवाद लिखा है कि, ब्राह्मणका हाथही मुख है ॥ भाष्यमें तो "आचान्तेषु" का अर्थ भक्षितेषु किया है अर्थात् जब ब्राह्मण भोजन करचुके हों कारण कि 'चमु भक्षणे' धातु है और भक्षणके पीछे आचमन नहीं होता, कारण कि, ब्राह्मण अग्निके तुल्य हैं, पहिला निषेध तो सपिंडीकरणमें जानना चाहिये, यह बात 'ददाति' के कहनेसे प्रतित होती है और यहां 'जुहोति' के कहनेसे यह नहीं लिखा यह बात बहुतोंको संमत नहीं है जो बौधायननें यह भक्षण करना कहा है कि, जब होमके अन्नको ब्राह्मण भोजन करचुके तब श्राद्धका जो प्रकृत अन्न हो उसे दे, वह उसी शाखावालोंके निमित्त है यह हेमाद्रि कहते हैं ॥ वहांही यमका कथन है कि, पितृब्राह्मणोंके हाथमें हुतशेष अन्नको पितरोंके पात्रमें डालै, और उस अग्नौकरण शेषअन्नको विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणोंको न देवे यह अग्निहवनमें भी समान समझना चाहिये, तैसेही कर्काचार्यने यह कहा है कि, सूत्रमें हुतशेष देकर यह अविशेष कहनेसे सब ब्राह्मणोंको दे उसी स्थलमें वृद्धवसिष्ठका

पिण्डेभ्यः क्षेपयेत्किंचिन्न दद्याद्वैश्वदेविके ॥" अथापस्तम्बानां सूत्रे-'उद्धियता-मग्नौ च क्रियतामित्यामन्त्रयते॥काममुद्धियतां काममग्नौ च क्रियतामित्यतिसृष्ट उद्धरेज्जुहुयाच्च ॥' नष्टाग्निविधुरादेर्विशेषो बृहन्नारदीये-" नष्टाग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । संधायाग्निं ततो होमं कृत्वा तं विसृजेत्पुनः ॥" अयाश्चेति तत्कालेऽग्निं संधाय हुत्वा त्यजेत् इत्यर्थः॥एतदापस्तम्बानामेव॥पाणिहोमस्तु छन्दोगादीनाम् ॥ विश्वप्रकाशेपि-"साग्निरौपासनेऽनग्निरग्नौ कुर्वीत लौकिके । पाणौ होमं प्रशंसन्ति न त्वापस्तम्बशाखिनाम् ॥ स्नातका विधुरा वा स्युर्यदि वा ब्रह्मचारिणः । अग्नौ-करणहोमं तु कुर्युस्ते लौकिकेऽनले ॥ अयाश्चाग्ने मनोज्योतिरुद्बुध्यस्व्याहृतीर्हु-नेत् ॥ ३ ॥ " ततोनुज्ञातोग्नींधनाद्याज्यभागान्ते यन्मे मातेत्याद्यैर्जुहुयात् ॥ तत्र सप्तान्नाहुतयः षडाज्यस्येति त्रयोदश ॥ व्यत्ययो वा ॥ यथा-"यन्मे माता प्रलु-लोभ तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तां, यास्तिष्ठन्तीति द्वाभ्याममुष्मै स्वाहेति पितुर्नाम्ना द्वौ होमौ ॥ यन्मे पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतः पितामहो वृंक्तामन्तर्दधे इति तन्नाम्ना पितामहाय द्वौ ॥ यन्मे प्रपितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतः प्रपितामहो वृंक्तामन्तर्दधे ऋतुभिरिति तन्नाम्ना प्रपितामहाय द्वौ ॥ " मातामहेषु तूहः-

कथन है कि,, पिण्डब्राह्मणाके हाथम हवन करके शेषअन्नको पात्रमें डाले और कुछ पिंडोंके लिये भी बचाले और विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणोंको न दे ॥ अब आपस्तंबोंके सूत्रमें लिखा है कि, उद्धार और अग्नौकरण करूं इस प्रकार यजमान ब्राह्मणोंसे पूंछै, यथेच्छ उद्धार करो, और अग्नौकरण करो, इन ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर उद्धार और होम करै, जिसके अग्नि और स्त्री न हो उसके निमित्त विशेष बृहन्नारदीयमें कहा है जो नष्टाग्नि हो और जिसकी स्त्री दूर हो वह पार्वणके समय अग्निस्थापन और हवन करके फिर उस अग्निका विसर्जन कर दे, इसका यह अर्थ है कि ' अयाश्च० ' इस मंत्रसे उसी कालमें अग्निको स्थापन हवन करके फिर उस अग्निको त्याग दे यह भी आपस्तंबोंके निमित्त है, छन्दोगोंमें तो पाणिहवन होता है ॥ विश्वप्रकाशमें भी इसी प्रकार लिखा है कि, अग्निहोत्री भी उपासनअग्निमें और अग्निहीन लौकिक अग्निमें हवन करै कारण कि, आपस्तंब शाखावालोंको हाथमें होम करना श्रेष्ठ नहीं है स्नातक, स्त्रीसे हीन, वा ब्रह्मचारी जो होवें अग्नौकरणहोमको लौकिक अग्निमें करै, अयाश्चाग्ने० मनो ज्योति० उद्बुध्य० व्याहृति० इन मंत्रोंसे चार आहुति प्रदान करै फिर आज्ञाको प्राप्त अग्नि, इन्धन आदि आज्यभागके अन्तमें, ' यन्मे माता० ' इत्यादि मंत्रोंसे हवन करै, उसमें ७ सात अन्नकी आहुति और छः घीकी होती हैं, इस प्रकार १३ तेरह आहुतिका विधान है, वा इनका व्यत्यय है कि सात घीकी और छः अन्नकी देनी, जैसे ' यन्मे माताप्रलुलोभ तन्मे पिता वृंक्तां ' यास्ति-ष्ठंति' इन दो ऋचाओंका अन्तमें (अमुष्मै पित्रे) इस प्रकार पिताके नामसे दो, होम ' यन्मे पितामही प्रलुलोभ तन्मे पितामहो वृंक्तां, अन्तर्दधे ऋतुभिः ' इन दो ऋचाओंसे प्रपितामहके

"यन्मे मातामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातामहो वृंक्ताम् ॥ अन्यं मातामहाद्वृद्धमित्यादौ ॥ यन्मे मातुः पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः पितामहो वृंक्ताम् ॥ अन्यं मातुः पितामहाद्वृद्धम् । यन्मे मातुः प्रपितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः प्रपितामहो वृंक्ताम् ॥ अन्यं मातुःप्रपितामहाद्वृद्धम् ॥ सर्वत्राप्यमुष्या इत्यत्र ङेन्तं तन्नाम योज्यम् ॥ तद्गृह्यसंग्रहे—"योज्यः पित्रादिशब्दानां स्थाने मातामहादिकः । अन्नहोमे तथा स्पर्शे जलपिण्डादिदानके । यन्मे मातामहीत्यादि तत्रोदाहरणं भवेत ॥" ततो ये के चेत्येकान्नाहुतिः ॥ ततः स्वाहा पित्रे इत्याद्यैराज्यं हुत्वा स्विष्टकृतं हुत्वा सर्वभक्ष्यं किंचिदादायोदगुष्णं भस्मापोह्य तत्र तूष्णीं स्वाहाकारेण जुहोति ॥ परिषेचनान्तं स्थालीपाकवत् ॥ अयमग्नौकरणहोमो मासिकश्राद्धे एव ॥' तच्च स्मार्ताग्न्यभावे न कार्यम् ' इति केचित्॥ कार्यमेवेति बहवः ॥ अत एव सर्वाधानिनो होमवर्ज्यं मासिकश्राद्धमुक्तं सुदर्शनभाष्ये ॥ महालये तद्वदित्येके ॥ प्रकरणान्तरत्वात् । कर्मान्तरत्वेन स्मार्तपार्वणवत्कार्यम् इति त्वस्मद्गुरवः ॥ आब्दिकादिषु तु स्मार्तपार्वणविधिरेव ॥ एवं मातृवार्षिकादिषु ॥ मासि श्राद्धविकृतावष्टकायां मातृश्राद्धे वैकृतहोमेन प्राकृतहोमबाधः ॥' अन्वष्टकासु मातृश्राद्धं न' इति भाष्ये ॥ तत्रापि श्राद्धान्तरवत् ॥

नामसे दो मातामहपक्षमें तो यन्मे मातामही० तन्मे० मातामहो० यन्मेमातुः पितामही० तन्मेमातुः पिता० यन्मेमातुः प्रपितामही० तन्मेमातुः प्रपिता० यहां सब स्थानमें अमुष्मैके स्थानमें चतुर्थी ङे, विभक्ति० जिसके अन्तमें हो ऐसा तिस २ का नाम मिलालेना ॥ सोई गृह्यसंग्रहमें लिखा है कि अन्नका हवन स्पर्श जल और पिंडदान आदिमें पिताआदिशब्दोंके स्थानमें मातामहआदि शब्द मिलालेना, ' यन्मे मातामही ' इत्यादि उसके उदाहरण हैं, फिर 'ये चेह '-इस मंत्रसे एक अन्नकी आहुति देनी पुनः पित्रे स्वाहा० इत्यादि मंत्रोंसे घृतसे, और स्विष्टकृत् होम करके और कुछ २ सम्पूर्ण भक्ष्यको लेकर कुछ गरम भस्म उत्तरको डालकर तूष्णीं स्वाहाकारसे परिषेचनान्त स्थालीपाकके समान मौन होकर होम करै, यह अग्नौकरण होम मासिक श्राद्धमें ही करना होता है, स्मार्त्तअग्नि न होय तो वह न करना, यह किन्हींका मत है, और करना यह बहुत कहते हैं ॥ इसीसे सर्वाधानीको सुदर्शनभाष्यमें हवनको त्यागकर मासिकश्राद्ध कहा है, महालयमें इसी प्रकार करै, यह कोई आचार्य कहते हैं प्रकरणका भेद और कर्मका भेद होनेसे स्मार्त्तपार्वणके समान महालय करैं, यह हमारे गुरुका कथन है वार्षिक आदि श्राद्धोंमें तो स्मार्त्त पार्वणका विधान है इसी प्रकार माताके वार्षिक आदिमें जानना उचित है मासिकश्राद्धकी विकृति अष्टकामें मातृश्राद्धकी विकृतिके हवनसे प्रकृतिके हवनका बाध होता है, अन्वष्टकामें मातृश्राद्ध नहीं होता यह भाष्यकार कहते हैं वहां भी यदि वह

क्रियमाणे तु यन्मे मातेत्यादौ गुणत्वेपि मातृप्राधान्यं विवक्षितम् । 'मासि श्राद्धेन कल्पो व्याख्यातः ' इति सूत्रात् ॥ आग्नेय्येवमनीताकार्यम् ' इति वचनादग्निशब्दस्यैव वैकृतदेवताभिधायित्वम् ॥ तेनामुष्या इत्यत्र ' अमुकशर्मभ्यां पितृभ्याम् ' इत्याद्यूहः कार्यः ॥ तत्र-'मासि श्राद्धे जीवत्पित्रादीनां व्युत्क्रममृतपित्रादीनां च कार्यम् ' इत्युक्तं सुदर्शनभाष्ये ॥ तत्प्रकारस्तु वक्ष्यते ॥ मातापित्रोर्द्वित्वादौ तु नोहः ॥ ' तस्मादृचं नोहेत् ' इति निषेधात् ॥ प्रकृतावूहाभावाच्च पत्नी सनह्येतिवत् ॥ उपदेशिमते तूहः ॥ यथा-'यन्मे मातरौ प्रलुलोभतुश्चरत्यावनुव्रते ' इत्याद्यस्मत्पितृकृतमासिकश्राद्धनिर्णये ज्ञेयम् । इति दिक् ॥ अन्यत् प्राग्वत् ॥ अथ परिवेषणम् । तच्चोपवीत्येवाज्येन देवपूर्वम् 'आमासु पक्वम्' इति पात्राण्युपस्तीर्य कुर्यात् इति हेमाद्रिः ॥ भारते दानधर्मेपि-"आज्याहुतिं विना नैव यत्किंचित्परिविष्यते । दुराचारैश्च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥" तत्रैव शौनकः-'विधिना देवपूर्वं तु परिवेषणमाचरेत् ॥ ' तत्रैव धर्मः-'फलस्यानन्तता प्रोक्ता स्वयं च परिवेषणे॥ ' तत्रैव वायुभविष्ययोः-'भार्यया श्राद्धकाले तु प्रशस्तं परिवेषणम्॥' ब्रह्माण्डे-"नापवित्रेण नैकेन हस्तेन न विना कुशम् । नायसे नायसेनैव श्राद्धे तु

और श्राद्धके समान क्रिया जाय तो ' यन्मे माता ' इत्यादि मंत्र गौण भी होयँ तो भी माताकी प्रधानता अपेक्षित है अग्निहोत्री इस प्रकार करे इस वाक्यसे. भी शब्दही विकृतिके देवताका कहनेवाला है तिससे 'अमुष्यै ' यहां 'अमुकशर्मभ्यां पितृभ्यां ' इत्यादि ऊह करना वह मासिकश्राद्धमें भी करना, जिसके पिता जीवते हों वा व्युत्क्रम (पहिले पिता पीछे बाबा) से मृतक हुए होयँ यह सुदर्शनभाष्यमें लिखा है, उसका प्रकार तो वर्णन करेंगे जहां माता पिताआदि दो २ हों वहां ऊह नहीं होता कारण कि, तिससे ऋचाका ऊह न करै यह निषेध है और प्रकृतिमें ऊहका अभाव नहीं है स्त्रीको उद्यत करके इसके समान उपदेशीके मतमें तो ऊह है जैसे ' यन्मे मातरौ प्रलुलुभतुः चरत्यावनुव्रते ' इत्यादि हमारे पिताके बनाये मासिकश्राद्धनिर्णयमें देखलेने यह संक्षेपसे कहा है और पूर्ववत् जानना ॥ अब परिवेषणको वर्णन करतेहैं, वह यजमान सव्य होकर देवपूर्वक 'आमासु. पक्वं' इस मन्त्रसे पात्र परसकर और घृतकी आहुति देकर करे, यह हेमाद्रिका मत है भारतके दानधर्ममें भी कहाहै कि, घृतकी आहुति विना जो परसा जाताहै वा दुराचारियोंने जो भोजन कियाहै, उसे राक्षसोंका भाग जानतेहैं, वहांही शौनकका कथन है कि, ' विधिसे देवपूर्वक परसे, वहांही धर्मका कथन है, कि, स्वयं परसनेमें अनन्तफल होता है, वहांही वायु और भविष्यपुराणका कथन है कि, श्राद्धके समय भार्याका परसना उत्तम है ॥ ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य कि, पवित्रीके विना एक हाथसे और कुशाके विना और लोहके पात्रसे श्राद्धमें न परसना

परिवेषयेत् ॥" वसिष्ठः-"आयसेन तु पात्रेण यदन्नं संप्रदीयते । भोक्ता विष्ठासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥" पैठीनसिः-'सीसकायसरीतीपात्राण्ययाज्ञियानि ॥' तत्रैव हारीतः-"सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण वा । दत्तमक्षय्यतां याति फल्गुपात्रेण वा पुनः ॥" कार्ष्णाजिनिः-"दर्व्या देयं घृतं चान्नं समस्तव्यञ्जनानि च । उदकं चैव पक्वान्नं नो दर्व्या तु कदाचन ॥" यमः-'पंक्त्यां विषमदातुश्च निष्कृतिर्नैव विद्यते ' पृथ्वीचन्द्रोदये पराशरः-"सर्वदा च तिला ग्राह्याः पितृकृत्ये विशेषतः । भोज्यपात्रे तिलान् दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥" चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः-"हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनादयः । पितॄणां नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम् ॥" घृतपात्रे विशेषो ग्रन्थान्तरे-"ओदने परमान्ने च पात्रमासाद्य मुग्धधीः । घृतेन पूरयेत्पात्रं तद्घृतं रुधिरं भवेत् ॥" 'घृतादिपात्राणि भूमौ स्थापयेन्न भोजनपात्रे' इति मदनरत्ने ॥ संग्रहे-' हस्तदत्तं तु नाश्नीयाल्लवणव्यञ्जनादिकम् । अपक्वं तैलपक्वं च हस्तेनैव प्रदीयते ॥ " पात्रालम्भनमुक्तं चतुर्विंशतिमते-"उत्तानं दक्षिणं सव्यं नीचपात्राण्युपस्पृशेत् ॥" याज्ञवल्क्यः-"दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् । कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्वि-

---

चाहिये, वसिष्ठका वाक्य है कि, लोहेके पात्रसे जो अन्न परसा जाता है वहां खानेवाला विष्ठाका भोजन करता है और दाता नरकमें जाता है, पैठीनसिका कथन है कि, शीशा लोहा पीतलके पात्र यज्ञके योग्य नहीं होते वहांही हारीतका कथन है कि, सोना चांदी गैंडा गूलर फल्गु इनके पात्रसे जो अन्न परोसा जाता है वह अक्षय होता है ॥ कार्ष्णाजिनीका कथन है कि, अन्नमें घी और संपूर्ण व्यंजन (शाकआदि) कर्छलीसे देने, जल और पक्वान्न कर्छलीसे कदाचित् न देना चाहिये, यमका वाक्य है कि, पंक्तिमें विषम (किसीको न्यून किसीको अधिक) देनेवालेका प्रायश्चित्त नहीं है. ऐसा कभी न करै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें पराशरका वाक्य है कि, पितरोंके कर्ममें सदैव विशेषकर तिल लेने, भोजनके पात्रमें तो तिलोंको देखकर पितर निराश हो चले जाते हैं ॥ चन्द्रिकामें वृद्ध शातातपका वाक्य है कि, हाथसे दिये हुए स्नेह नोन और व्यंजन पितरोंको नहीं मिलते, और भोजनकर्ता पापभागी होता है घीके पात्रमें विशेष ग्रंथान्तरमें कहा है जो मुग्धबुद्धि भात वा परमान्न पर पात्रको रखकर उसे घृतसे भरता है वह घी रक्तके तुल्य होता है, मदनरत्नमें लिखा है कि घृत आदिका पात्र भूमिपर रक्खै, भोजनपात्रमें नहीं. संग्रहमें लिखाहै कि, हाथसे परसें व्यंजन और लवणको न भोजन करै विना पकेहुए तेलसे पके हुएको तो हाथसेही देना पात्रका छूना चतुर्विंशतिके मतमें लिखा है कि, दक्षिणका पात्र सीधा और बायेंका पात्र नीचा छुए ॥ याज्ञवल्क्यका कथन है कि अन्न देकर " पृथ्वीपात्रम् " इस मन्त्रसे पात्रोंका अभिमंत्रण करके, " इदंविष्णुः " इस मंत्रसे ब्राह्मणोंका

अंगुष्ठं निवेशयेत् ॥ ' बौधायनः-'विप्रांगुष्ठेनानखेनानुदिशति' "पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेमृतं जुहोमि ।" ब्राह्मणानां त्वविद्यावतां "प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा मे पितॄणां क्षेष्ठा अत्रामुष्मिँल्लोके" इति ॥ अत्र जुहोम्यग्रे स्वाहाशब्दः कातीयसूत्रे उक्तः ॥ पैत्रे स्वधाशब्दः ॥ अंगुष्ठे विशेषमाह हेमाद्रौ धौम्यः-'परिवृत्य नवांगुष्ठं द्विजः स्थाने निवेशयेत् ॥ ' तथा-"उत्तानेन तु हस्तेन द्विजांगुष्ठनिवेशनम् । यः करोति द्विजो मोहात्तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ " तत्रैव यमः-'विष्णोर्हव्यं च कव्यं च ब्रूयाद्रक्षस्व च क्रमात् ॥ ' दैवे पित्र्ये चेत्यर्थः ॥ तत्रैवात्रिः-"सम्बन्धनामगोत्राणि इदमन्नं ततः स्वधा । पितृक्रमादुदीर्येति स्वसत्तां विनिवर्तयेत् ॥ हस्तेनाभुक्तमन्नाद्यमिदमन्नमुदीरयेत् ॥ " अत्र-'अन्नदाने चतुर्थी स्यात् ' इत्यादिविशेषाः पूर्वमुक्ताः ॥ श्राद्धे अन्ननिवेदनम् ॥ अत्र पूर्वोक्तमन्त्रान्ते-' पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवा देवता इदमन्नं सपरिकरं हव्यम् अयं ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे दत्तं दास्यमानं चातृप्तेः । गयेयं भूः गदाधरो भोक्ता इदमन्नं ब्रह्म सौवर्णपात्रस्थमन्नमक्षय्यवटच्छायास्थम् अमुकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा नमो न

अंगूठा लगावे, बौधायनका कथन है कि, नखको त्यागकर ब्राह्मणका अंगूठा लगाकर " पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा" इस मन्त्रको और विद्यावाले ब्राह्मणोंके यहां तो, "प्राणापानयोरमृतं जुहोम्यक्षितमसि मा मे पितॄणां क्षेष्ठा, अत्रामुष्मिन् लोके" इस मन्त्रको पढे कातीय सूत्रमें' आज्यं जुहोमि' के आगे' स्वाहा' शब्द कहा है और पैत्रमें 'आज्यं जुहोमि' के आगे 'स्वधा' शब्द कहाहै, अंगुष्ठमें विशेष धौम्यने हेमाद्रिमें कहाहै, ब्राह्मणोंके स्थानमें औंधा हाथ कर अंगूठा लगावे, इसी प्रकार वाक्य है कि, सीधे हाथका जो ब्राह्मण अज्ञानसे अंगूठा लगाताहै, उस श्राद्धको राक्षस भोजन करते हैं ॥ वहांही यमका कथन है कि, दैव और पितृ श्राद्धमें क्रमसे यह कहै कि, हे विष्णो ! हव्य और कव्यकी रक्षा कीजिये, वहांही अत्रिका कथन है कि, संबंध नाम गोत्र इदं अन्नं स्वधा यह वाक्य पिताके क्रमसे कहकर अन्नमेंसे अपनी सत्ताको पृथक् करै, हाथसे दिये हुये अन्नआदिमें, 'इदमन्नं' यह कहै, यहां अन्नदानमें चतुर्थी होती है, इत्यादि विशेष पहिले कह आये॥ यहां पूर्वोक्त मन्त्रके अन्तमें कहै कि, हे पुरूरव आर्द्रवसंज्ञक देवताओ ! यह सामग्रीसहित अन्न हव्य (होमके योग्य) और यह ब्राह्मण आहवनीयके अर्थ है, इसको दियाहुआ और जो तृप्तिपर्यन्त दिया जायगा यह पृथ्वी गया है और गदाधर भगवान् भोक्ता है, यह अन्न ब्रह्मरूप है सोनेके पात्रमें रक्खा अन्न अक्षय वटकी छायामें है, अमुक विश्वेदेवताओंके निमित्त यह अन्न परोसा है और तृप्तिपर्यन्त जो परोसा जायगा स्वाहा नमः (आपको प्राप्त

मम' इति बह्वृचपरिशिष्टहेमाद्र्याद्यनुमतः प्रयोगः ॥ एवं पित्र्ये अमुकगोत्रवसुरूपादितत्तन्नाम ज्ञेयम् ॥ ततो 'ये देवास' इति दैवे, 'येचेह पितरः' इति पित्र्ये केचिज्जपन्ति ॥ ततोऽच्छिद्रं वाचयेत् ॥ तत्रैव प्रचेताः—"आपोशानकरे विप्रे संकल्प्याच्छिद्रभाषणात् । निराशाः पितरो यान्ति देवैः सह न संशयः ॥" पारस्करः—" संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः । श्राद्धं निवेद्यापोशानं जुषप्रेषोथ भोजनम् ॥" निवेद्येति ब्रह्मार्पणं कृत्वेत्यर्थः ॥ अत एव बृहन्नारदीये अन्नत्यागमुक्त्वोक्तम् ' दत्तं हविश्च तत्कर्म विष्णवे वै समर्पयेत्' इति । यत्तु कृत्यरत्ने काष्र्णाजिनिः—"अपसव्येन कर्तव्यं पितृकृत्यमशेषतः । अन्नदानादृते सर्वमेवं मातामहेष्वपि ॥" तच्च—ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः "हरिर्दाता हरिर्भोक्ता" "चतुर्भिश्च" इति केचित्पठन्ति ॥ धर्मप्रदीपे—"ततोन्नं पितृदेवेभ्यः संकल्पय च यथाविधि । दत्तं यद्दास्यमानं च आतृप्तेर्न ममेति च ॥ " तथा—" श्राद्धीयान्नस्य संकल्पो भूमावेव प्रदीयते । हस्तेषु दीयमानं तु पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ वैश्वदेवस्य वामे तु पितृपात्रस्य दक्षिणे । संकल्पोदकदानं स्यान्नित्यश्राद्धे यथारुचि ॥ २ ॥ प्रचेताः—" आपोशानं प्रदायाथ सावित्रीं त्रिर्जपेदथ । मधुवाता इति त्र्यृचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा ॥ "

हो) यह मेरा नहीं यह प्रयोग (विधि) बह्वृचपरिशिष्ट हेमाद्रि आदिकोंने कहा है ॥ इसी प्रकार पितृश्राद्धमें अमुक गोत्र वसुरूपआदि उस २ का नाम जानना फिर कोई (ये देवास०) इस मंत्रको देवश्राद्धमें और ' ये चेह पितरः ' इस मंत्रको पितृश्राद्धमें जप करते हैं, फिर ब्राह्मणोंसे अच्छिद्र कहाना चाहिये वहां ही प्रचेताका वाक्य है कि, ब्राह्मणोंके हाथमें आपोशान देकर और संकल्प करके अच्छिद्र कथन न करे तो देवताओं सहित पितर निराश हो चले जाते हैं इसमें सन्देह नहीं, पारस्करने कहा है कि पितरोंके निमित्त संकल्प करके गायत्री और मधुमती ऋचाको जप करे, और श्राद्धको ब्रह्मार्पण करके भोजनकी आज्ञा दे, फिर भोजन करै, इसीसे बृहन्नारदीय पुराणमें अन्न त्याग कहकर लिखा है कि, दीहुई हवि और कर्मको विष्णुको अर्पण करै, जो कृत्यरत्नमें काष्र्णाजिनीका कथन है कि, अन्नदानके सिवाय सम्पूर्ण पितृकर्म और इसी प्रकार मातामहोंका कर्म अपसव्य होकर करै, वह भी इसकेही विषयमें है कोई ' ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ' ' हरिर्दाता हरिर्भोक्ता ' ' चतुर्भिश्च ' इन वचनोंको पढते हैं ॥ धर्मप्रदीपमें लिखा है कि, फिर पितर और देवताओंको यथाविधि अन्नका संकल्प करके कहै कि, यह दियाहुआ और तृप्तिपर्यन्त देने योग्य अन्न मेरा नहीं है तैसेही वाक्य है कि, श्राद्धके अन्नका संकल्प पृथ्वीमें दे हाथोंमें दिया हुआ पितरोंको प्राप्त नहीं होता, विश्वेदेवाओंके बांये और पितरोंके पात्रके दहिने भागमें संकल्पके जलका दान रुचिके अनुसार नित्यश्राद्धमें देना चाहिये, प्रचेताका कथन है कि, आपो-

मिताक्षरायां पारस्करः—"संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः। श्राद्धं निवेद्यापोशानं जुष प्रैषोथ भोजनम्॥ गायत्रीं त्रिः सकृद्वापि जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्। मधुवाता इति त्र्यृचंमध्वित्येतत्त्रिकं तथा॥" याज्ञवल्क्यः—"सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचम्।जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेपि वाग्यताः॥" यथासुखं जुषध्वमिति वाच्यम्॥ श्राद्धे भोजननियमः। अत्रिः—"असंकल्पितमन्नाद्यं पाणिभ्यां यदुपस्पृशेत्। अभोज्यं तद्भवेदन्नं पितॄणां नोपतिष्ठते॥ अन्नं दत्तं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न संपिबेत्॥" अपोशाने विशेषमाह स्मृतिसमुच्चये—"आपोशानं वामभागे सुरापानसमं भवेत्। दक्षभागे तु यः कुर्यात्सोमपानसमं भवेत्॥" तथा—"पुनरापूर्यापोशानं सुरापानसमं भवेत्॥" हेमाद्रावत्रिः—"दत्ते वाप्यथवा दत्ते भूमौ यो निक्षिपेद्बलिम्। तदन्नं निष्फलं याति निराशैः पितृभिर्गतैः॥" केचिदाज्येन कुर्वन्ति। तन्न॥ पायसेन तथाज्येन माषान्नेन तथैव च। न कुर्याद्बलिदानं तु ओदनेन प्रकल्पयेत्॥" इति स्मृतिसारे निषेधात्॥ शंखः—"श्राद्धे नियुक्तान् भुञ्जानान्न पृच्छेल्लवणादिषु। उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो नात्र संशयः॥" कात्यायनः—'अश्नत्सु जपेत्सव्याहृतिकां गायत्रीं सकृत् त्रिर्वा रक्षोघ्नीः पौरुष

शान देकर तीन गायत्री 'मधुवाता' तीन ऋचा तीनवार 'मधु ३' पढै॥ मिताक्षरामें पारस्करका कथन है कि, पितर और देवताओंको संकल्प करके सावित्री और मधुमती ऋचाको जपै, फिर श्राद्धको निवेदन करके आपोशान, भोजनकी आज्ञा और भोजन क्रमसे होते हैं, तीन वार एकवार व्याहृतियोंसहित गायत्री मधुवाता तीन ऋचा और तीनवार 'मधु ३' पढै। याज्ञवल्क्यने कहा है कि, व्याहृतियोंसहित गायत्री मधुवता तीन ऋचा पढकर कहै कि, आनन्दसे भोजन करो, और ब्राह्मण भी मौन होकर भोजन करैं॥ अत्रिने कहा है कि, संकल्पसे पहिले ब्राह्मण अन्नादिका स्पर्श करले तो वह अन्न भोजनके योग्य नहीं रहता, और पितरोंको नहीं मिलता, जबतक जलपान न करै, तबतक दिये अन्नको स्वीकार न करै, आपोशानमें विशेष, स्मृतिसमुच्चयमें लिखा है कि, बाईं ओरमें आपोशान होय तो मदिरापानके समान और दक्षिण ओरमें होय तो सोमपानका फल प्राप्त होता है, तैसेही वाक्य है कि, आपोशानको दूसरे वेर अंजलि भरकर करै तो मद्यपानके तुल्य होताहै॥ हेमाद्रिमें अत्रिका वाक्य है कि, दीहुई या न दीहुई बलिको जो पृथ्वीमें डालता है पितरोंके निराश जानेपर वह अन्न फलहीन होजाता है, कोई घृतसे बलि देतेहैं सो उचित नहीं, कारण कि, स्मृतिसारमें इसका निषेध लिखा है कि, खीर घी उडदसे बलिदान करना उचित नहीं भातसे करै, श्राद्धमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंसे शाकमें नोन कैसा है इत्यादि न पूछै पूछै तो उसके पितर जूंठ मुखही निराश हो चले जाते हैं इसमें सन्देह नहीं कात्यायनने लिखा है कि, प्रथम एकवार व्याहृति-

सूक्तमप्रतिरथम् ' इति ॥ हेमाद्रौ सौरपुराणे—' ऐन्द्रं च पौरुषं सूक्तं श्रावयेद्ब्राह्मणांस्ततः ॥ ' मात्स्यपाद्मयोः—" ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तोत्राणि विविधानि च । इन्द्रेशसोमसूक्तानि पावमानीश्च शक्तितः ॥ मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत्प्रीतिकारि च यत्पुनः । अभावे सर्वविद्यानां गायत्रीजपमाचरेत् ॥ २ ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—" वीणां वंशध्वनिं चाथ विप्रेभ्यः संनिवेदयेत् । जपेच्च पौरुषं सूक्तं नाचिकेतत्रयं तथा ॥ त्रिमधु त्रिसुपर्णं च पावमानीर्यजूंषि च ॥ " हेमाद्रावत्रिः—"हुंकारेणापि यो ब्रूयाद्धस्ताद्वापि वदेद्गुणान् ॥ भूतलाच्चोद्धरेत्पात्रं मुञ्चेद्धस्तेन वा पिबेत्॥ प्रौढपादो बहिःकच्छो बहिर्जानुकरोऽपि वा । अंगुष्ठेन विनाऽश्नाति मुखशब्देन वा पुनः । पीतावशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् । खादितार्धात् पुनः खादेन्मोदकानि फलानि च ॥ मुखेन वा धमेदन्नं निष्ठीवेद्भाजनेऽपि वा । इत्थमश्नन् द्विजः श्राद्धं हत्वा गच्छत्यधोगतिम् ॥ ४॥ " जाबालिः—'इष्टमुष्णं हविष्यं च दद्यादन्नं शनैः शनैः ॥' वृद्धशातातपः—" अपेक्षितं याचितव्यं श्राद्धार्थमुपकल्पितम् । न याचते द्विजो मूढः स भवेत् पितृघातकः ॥" यत्तु यमः ' श्राद्धे द्विजो नैव दद्यान्न याचेन्नैव दापयेत् ' इति तदसम्पादितवस्तुविषयमिति

वोंसहित गायत्री, तीन वार ' रक्षोघ्नं, पुरुषसूक्त ' और ' अप्रतिरथ' को पढे हेमाद्रिमें सौरपुराणका वाक्य है कि, ' इन्द्रसूक्त ' और ' पुरुषसूक्त ' ब्राह्मणोंको श्रवण करावे ॥ मत्स्य और पद्मपुराणमें लिखा है कि, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, इन्द्र, रुद्र, सोमके सूक्त, पावमानी ऋचा और इसी प्रकार तिनके प्रसन्नतार्थ तीर्थ मण्डल ब्राह्मणको उच्चारण करै, सब विद्या न होंय तो गायत्रीमात्रका जप करै। पृथ्वीचंद्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, फिर ब्राह्मणोंको वीणा और बांसकी ध्वनि सुनावै, पुरुषसूक्त तीनों नाचिकेत, तीनो मधु, तीनो सुपर्ण और पावमानी ऋचा और पावमानी, यजुर्वेद श्रवण करावै ॥ हेमाद्रिमें अत्रिके वाक्य हैं कि, जो हुंकारसे वा हाथसे अन्नके गुणोंको वर्णन करै, भूमिसे भोजनके पात्रको उठावै, और पृथ्वीपर त्याग दे, वा हाथसे जलपान करै, जो जानु खडे किये कच्छ खोलै, गोडोंसे बाहर हाथ करै, अंगुलियोंमें अंगूठा लगाये विना वा मुखसे शब्द करताहुआ भोजन करता है, और जो पीनेसे उच्छिष्ट जलोंको फिर निकालकर पीता है और भोजनसे बचे लड्डू और फलोंको फिर भोजन करता है और जो मुखसे अन्नमें फूक मारता है वा पात्रमें थूकता है तो इन प्रकारोंसे भोजन करताहुआ ब्राह्मण श्राद्धको नष्ट करके नरकमें प्राप्त होता है, जाबालिने लिखा है कि जो श्राद्धके निमित्त बना हो उसमेंसे अभीष्ट अन्नको मांगले जो मूढ ब्राह्मण नहीं मांगता वह पितरोंका नष्ट करनेवाला होता है, जो यमने लिखा है कि, ब्राह्मण न दे न मांगे

१ तथा च—हविर्गुणा न वक्तव्या यावन्न पितृतर्पणम् । पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥ अर्थात्—जबतक पितरोंका तर्पण न हो हविके गुण कथन न करै तर्पण करने उपरान्त गुण कहै ॥

हेमाद्रिः। हारीतः—"ऊर्ध्वपाणिश्च विहसन् सक्रोधो विस्मयान्वितः। भुग्नपृष्ठश्च यद्भुङ्क्ते न तत्प्रीणाति व पितॄन्॥" प्रचेताः—" न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन। न पादौ न शिरो वस्ति न पदा भाजनं स्पृशेत्॥ " शंखः—" श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत्॥ तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत्।" उशनाः—"भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन। अन्यत्र दध्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात्सक्तुभ्य एव च॥" ब्राह्मे—' न चाश्रुपातयेज्जातु न शुष्कां गिरमीरयेत्। न चोद्वीक्षेत भुञ्जानान्न च कुर्वीत मत्सरम्॥" यमः—' स्वाध्यायं श्रावयेत्सम्यग्धर्मशास्त्राणि चैव हि।' प्रचेताः—" भुञ्जानेषु तु विप्रेषु ऋग्यजुःसामलक्षणम्। जपेदभिमुखो भूत्वा पित्र्यं चैव विशेषतः॥ यजूंषि चैव रुद्रं च रक्षोघ्नोऋचं एव च॥" रक्षोघ्नीः कृणुष्व रक्षो हणमित्याद्याः॥ तत्रैव निगमः—"भुञ्जत्सु जपेत् पावमानीरुद्री-

---

न दिवावि वह उसके बिषयमें है जो श्राद्धमें वस्तु न बनी हो यह हेमाद्रिमें है। हारीतने लिखा है कि, ऊपरको हाथ करके हँसताहुआ क्रोधयुक्त, विस्मयसे युक्त, पीठ टेढी करके जो भोजन करता है, वह पितरोंको तृप्त नहीं करता है, प्रचेताने लिखा है कि, भोजन करताहुआ बायें हाथसे अन्नको और चरण शीश और स्थानको न छूवै, और चरणसे पात्रको न छूवै, शंखने लिखा है कि, श्राद्धकी पंक्तिमें भोजन करताहुआ ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणको छूले तो उस परसेहुए अन्नको न त्यागकर ८०० आठ सौ गायत्रीको जपै; उशनाने लिखा है कि, बुद्धिमान् मनुष्यको भोजन किसी प्रकार निःशेष न करना चाहिये, दहीं, दूध, सहत और सत्तू यह शेष न रहै तो कुछ भय नहीं, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, आसुओंको त्याग न करै, रूखी वाणी न कहै, भोजन करतेहुये ब्राह्मणोंको न देखै, और क्रोध न करै॥ यमने कहा है कि, वेदपाठ और धर्मशास्त्रोंको सम्यक् प्रकार श्रवण करावे॥ प्रचेताने कहाहै कि, ब्राह्मणोंके भोजन करतेहुये ऋग्यजुः सामवेद और विशेषकर पितरोंके मंत्र जपे यजुर्वेद, रुद्राध्याय, रक्षोघ्नऋचा ' कृणुष्वपाजः' और ' रक्षोहणं ' इत्यादि ऋचाओंको जपै, वहांही निगम है कि, ब्राह्मणभोजनके समय ' पावमानीः ' मध्वन्नवतीः " और

---

१ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघाहि घृतश्चुतः। ऋषिभिः संभृतोरसोब्राह्मणेष्वमृतं हितम्॥ १॥ पावमानीर्दिशंतु न इमं लोकमथो अमुम्। कामान्त्समर्धयन्तु नो देवैर्देवीः समाहिताः॥ २॥ येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम्॥ ३॥ प्राजापत्यं पवित्रं शतो द्याम हिरण्मयम्। तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे॥ ४॥ इन्द्रः पुनीहि सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समच्या। यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा जातवेदामूर्जयन्त्या पुनातु॥ ५॥ ऋषयस्तु तपस्तेपुः सर्वे स्वर्गजिगीषवः। तपस्तपसोऽग्रयन्तु पावमानीर्ऋचोऽब्रवीत्॥ ६॥ यन्मे गर्भे वसतः पापमुग्रं यज्जायमा-